यह पुस्तक निम्नांकित अन्तिम तिथि को या उससे पूर्व पुस्तकालय में जमा हो जानी चाहिये। अन्यथा पांच पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क देना होगा।

लेख-सूची ।

पृष्ठ

चित्र-सूची ।

सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग २०, खण्ड २

जुलाई—दिसम्बर

१९१९

सम्पादक

१—महावीरप्रसाद द्विवेदी

२—देवीप्रसाद शुक्ल, बी० ए०

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग

वार्षिक मूल्य पाँच रुपये

लेख-सूची ।

चित्र-सूची।

रङ्गीन चित्र।

सादे चित्र।

सूची।

रङ्गीन चित्र	६
सादे ,,	६६
कुल ,,	७२

दीपक ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

भाग २०, खण्ड २] अगस्त १९१९—भाद्रपद १९७६ [संख्या २, पूर्ण संख्या २३६

मोह।

मुझको क्रीड़ा से तुमने इस पिँजड़े में है बन्द किया
ख़ूब किया, आनन्द किया, पर द्वार खुला ही छोड़ दिया
लीलामय, तुम सदा यही आनन्द करो
किन्तु दुहाई है कि द्वार भी बन्द करो
द्वार खुला रहने से इसमें यदि कोई घुस आवेगा
तो यह क्रीड़ा-कीर तुम्हारा योंही मारा जावेगा
इसे सोचकर डर के मारे काँप रहा है हाय! हिया
मुझको क्रीड़ा से तुमने इस पिँजड़े में है बन्द किया
अहो दयामय! आज सहज भी ध्यान गया
बद्ध-भाव के भान मात्र से ज्ञान गया
द्वार बन्द करने को तुमसे मैं यों विनती करता हूँ
किन्तु निकल स्वच्छन्द इसीसे बाहर नहीं विचरता हूँ
कौन कहेगा किस माया ने मेरे मन को मोह लिया
मुझको क्रीड़ा से तुमने इस पिँजड़े में है बन्द किया

मैथिलीशरण गुप्त

बाय-स्काउट संस्था।

ठकों ने बाय-स्काउट्स (बाल-चरों) का नाम सुना होगा—उनके चित्र भी देखे होंगे; पर अभाग्यवश ऐसे लोग थोड़े ही हैं जिन्होंने कभी यह प्रश्न पूछा होगा कि यह किस प्रकार की संस्था का नाम है? इसके उद्देश्य क्या हैं? इसकी कार्य-प्रणाली क्या है? अथवा इसको भारतवासी बालकों के लाभार्थ स्थापित करने की माँग इतनी प्रबल क्यों हो रही है? (अब भारत सरकार ने भी इसको अपने हाथ में लेना निश्चित कर लिया है।) स्थान स्थान पर मुझे तो यही अनुभव हुआ है कि हमारे देश में अभी तक इस लाभ-दायक, शिक्षादायक और अति श्रेष्ठ विषय में बहुत कुछ अज्ञान फैला हुआ है। हमारे समाचार-पत्र तथा सम्पादक-गण भी इसकी ओर पूरा पूरा ध्यान नहीं देते। और

विशेष कर हिन्दी भाषा में तो इसकी बहुत कम चर्चा हुई है।

इस विषय की महत्ता और इस संस्था के कार्य्य के जाज्वल्यमान परिणाम को देखकर हम लोगों को सोचना चाहिए कि इस विषय में हमारा कर्त्तव्य क्या है। पण्डित श्रीधर पाठकजी के हिन्दी व्याख्यान जो पण्डितजी ने भारतीय बाय-स्काउट* एसोसियेशन में कुछ मास हुए दिये थे, प्रयाग की सेवा-समिति ने छपवाकर हिन्दी-संसार का बड़ा उपकार किया है, पर मेरी तुच्छ मति में तो यह आता है कि इस विषय में अभी बहुत सा साहित्य लिखने तथा लिखवाने की आवश्यकता है। देशीय तथा प्रान्तीय भाषाओं द्वारा देश के प्रत्येक कोने में इसका प्रचार करना तथा ज्ञान फैलाना हमारे लेखक और सम्पादक-गण अपना कर्त्तव्य समझ लें तो देश का बड़ा कल्याण हो।

इस लेख में लेखक का प्रयत्न केवल यही होगा कि वह हिन्दी-भाषा-भाषियों के समक्ष इस जगत्प्रसिद्ध संस्था (स्काउटिङ्ग) के मुख्य मोटे मोटे सिद्धान्तों को उपस्थित कर दे। इसका आधुनिक ढङ्ग स्थापित हुए कुछ अधिक समय नहीं हुआ; परन्तु इसका प्रचार सब देशों में प्रचण्ड वेग से हो रहा है। इस लेख में मैं इसकी उन्नति का वर्णन नहीं करना चाहता। आज मेरा प्रयोजन इस विषय की केवल सिद्धान्तरूपी मुख्य मुख्य बातें बतलाकर पाठकों के हृदयों में इसकी ओर जिज्ञासा उत्पन्न करने का है। मैं
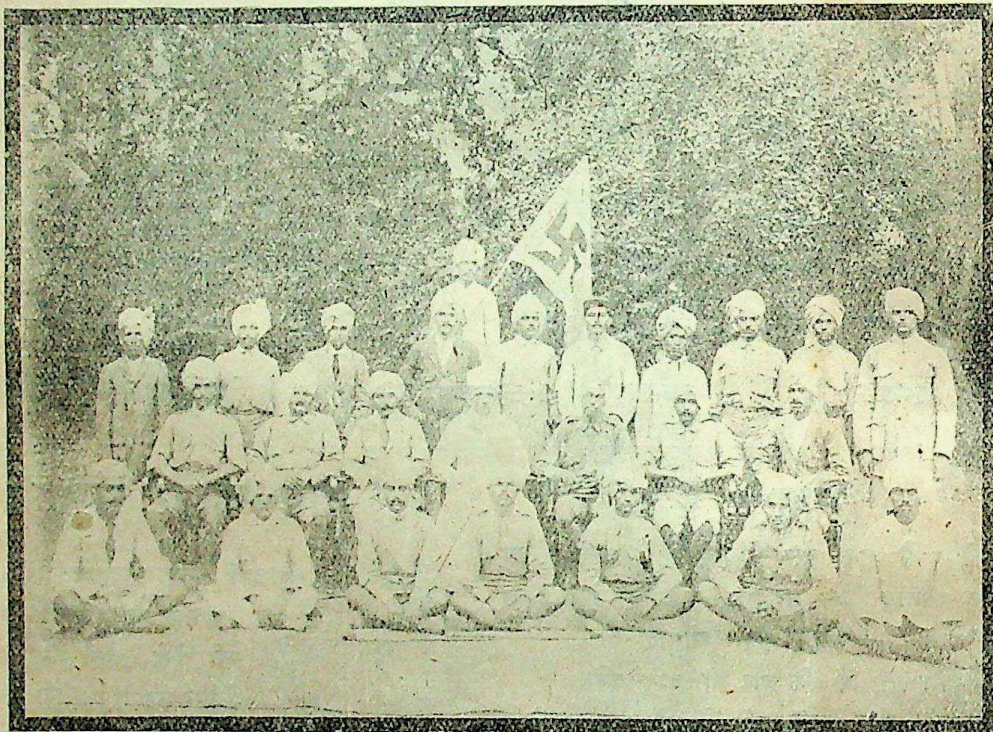
भारतीय सेवा-समिति प्रयाग के अधिकारी-गण और दूसरे नगरों से आये हुए स्काउट-मास्टर्स जो प्रयाग में शिक्षा पा रहे हैं।

* पण्डित श्रीधर पाठकजी ने इस शब्द का हिन्दी पर्याय "बाल-चर" प्रयोग किया है। मैं मूल अँगरेज़ी शब्द ही का प्रयोग करता हूँ। इसके कई कारणों में से एक यह है कि यह संसार-विख्यात संस्था हो गई है। इसका नाम बदलने से आधुनिक उस संस्था का ठीक अर्थ नहीं निकलता, जिससे मुझे इस लेख में प्रयोजन है।

इस विषय को इस लेख में आदि से अन्त तक शिक्षा-प्रणाली कहकर पुकारूँगा ।

आधुनिक स्काउटिङ्ग (संस्था) इँगलेंड में शुरू हुई । इसके स्थापित करनेवाले प्रसिद्ध जनरल सर राबर्ट बेडेन-पावैल साहब हैं । आप अब तक इस संस्था को उन्नति पहुँचाकर संसार का उपकार कर रहे हैं । इस स्थान पर इस संस्था की उत्पत्ति की कथा थोड़े से शब्दों में कह देना अनुचित न होगा ।

दक्षिण अफ्रिका के युद्ध में जब सन् १८९९–१९०० में मेफ़किङ्ग नामक नगर तथा गढ़ में अँगरेज़ों को शत्रुओं ने घेर लिया था और जब कि सैनिकों की संख्या दिन प्रति-दिन घटती जा रही थी, तब उस गढ़ के फ़ौजी अफ़सर तथा उनके सहकारी लफ़्टिनेन्ट जनरल सर राबर्ट बेडेन-पावैल साहब ने कार्य्य-सम्पादन की एक युक्ति विचारी । उनके गढ़ में लगभग ५,००० स्त्री-पुरुषों में कई सैकड़े बालक भी थे । इन जनरल महाशयों ने उन बालकों का प्रयोग करने का विचार किया । उन्होंने सब बालकों को फ़ौजी वर्दी पहनाकर थोड़ी सी क़वायद की शिक्षा दे उत्साहित किया और उनको काम में लाने लगे, इससे उनको कई सैकड़े सैनिक युद्ध करने को अलग मिल गये । वे बालक चिट्ठियाँ पहुँचाने में, बाइसिकिल दौड़ाकर समाचार लाने में, साधारण पहरे-चौकी के काम में बड़ी योग्यता तथा आनन्द से कार्य करने लगे । कई बार तो वे लोग अपना कर्त्तव्य पालन करने को गोलों की वर्षा में भी बड़े आनन्द और निर्भयता से चले जाते थे ।

जनरल बेडेन-पावैल पर इस अवस्था का बड़ा विचित्र प्रभाव पड़ा । युद्ध समाप्त होने पर जब वे इँगलेंड लौटे तब उन्होंने इस विषय पर विचार करना आरम्भ किया और उन्होंने अपने नये अनुभव का पूरा प्रयोग करने का सङ्कल्प किया । यह उसी सङ्कल्प का परिणाम है कि आज लगभग बारह वर्ष के भीतर ही लाखों स्काउट्स दिखाई देते हैं ।

आपने इस महती संस्था की नींव डाली और आप ही समस्त ब्रिटिश साम्राज्य के स्काउटों के "मुख्य स्काउट" हैं । आपको अपने दक्षिण अफ्रिका के अनुभव से ज्ञात हुआ कि यदि बालक को उसकी युवावस्था ही से लेकर, उसके चित्त-विकार तथा मानसिक शक्तियों का विकास किया जाय,
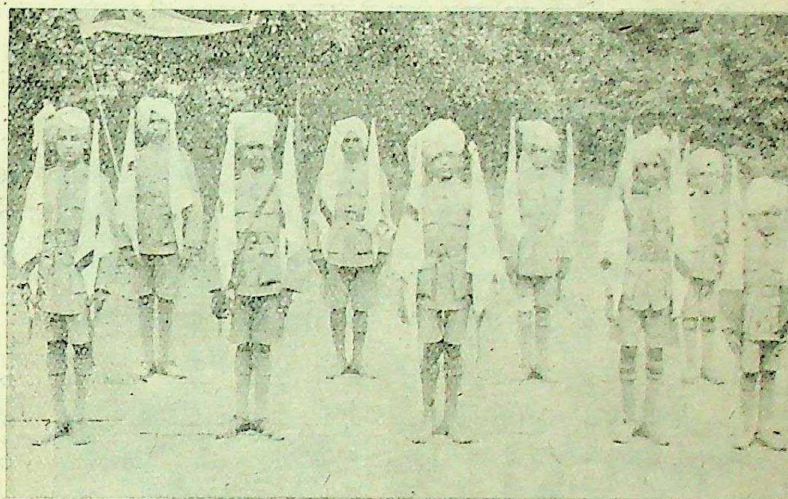
बाय-स्काउट्स झंडियों के इशारों से परस्पर बातचीत करते हैं ।

तो जन्म पर्यन्त उसके चरित्र, उसके आचरण, उसकी आदतें, उसकी निःस्वार्थ सेवा करने की आकांक्षायें सदा के लिए पुष्ट कर सकते हैं । उन्होंने इस विषय का अध्ययन किया और इसके अनन्तर आपने अपनी जगद्विख्यात 'Scouting for Boys' नाम की पुस्तक लिखी, जिसकी लगभग सवा तीन लाख प्रतियाँ इन दस वर्षों में छप चुकी हैं ।

ज० सर रा० बेडेन-पावैल की प्रणाली में प्रविष्ट होने-वाले बालकों की अवस्था १८ और १९ वर्ष के भीतर रक्खी गई है । यह नियम उन्होंने आरम्भ ही में बनाया था । पश्चात् अनुभव से उन्हें यह विदित हुआ कि हमारी संस्था के लाभ अल्पायु बालकों तथा १८ वर्ष से बड़े युवा पुरुषों को भी पहुँच सकते हैं । तब उन्होंने सात से लेकर बारह वर्ष तक के बालकों को भी प्रविष्ट करना शुरू किया; इनको शेर-बच्चे (कब्स) कहते हैं । आपने १९ वर्ष से

ऊपर की अवस्थावाले युवा पुरुषों को भी अपनी स्काउट-सेनाओं में बना रखने का उपाय निकाला है; इनको सीनियर स्काउट्स कहते हैं।

बाय-स्काउट्स जब सेनाओं में प्रवेश कर लेते हैं तब वे कई प्रकार की शिक्षा प्राप्त करते हैं। यह विषय जानने के पूर्व एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात जान लेना आवश्यक है और वह यह है कि इस संस्था के नियमों का क्या उद्देश है।

विज्ञानाध्ययन से भले प्रकार ज्ञात होता है कि पुरुष तथा स्त्रियों की वयोवस्था में एक वह समय होता है जिसको युवावस्था (अँगरेज़ी में, Adolescence) कहते हैं। यदि
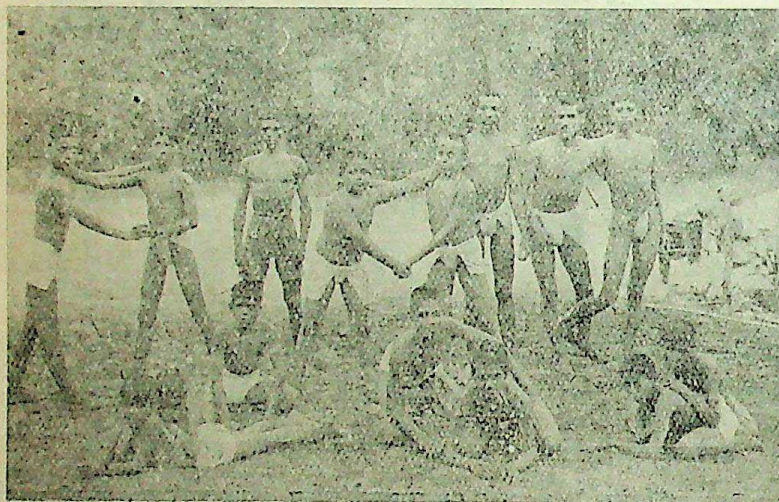
बाय-स्काउट्स कुश्ती लड़ते हैं।

इसमें प्रयत्न किया जाय तो पुरुष तथा स्त्रियों के आचरण ही नहीं, बरन उनकी चित्तवृत्ति तथा मानसिक शक्तियों के विकास पर पूर्ण प्रभाव डाला जा सकता है। इस विषय पर अधिक समय तथा स्थान न देकर, मैं डाक्टर जे० डब्ल्यू० स्लाटर साहब की विख्यात तथा प्रशंसनीय पुस्तक "The Adolescent" में से दो-चार वाक्य उद्धृत करके यह प्रमाणित कर देना चाहता हूँ कि युवावस्था की उचित शिक्षा कैसी कठिन और महत्त्वपूर्ण समस्या है। आप अपनी पुस्तक के नवें अध्याय में लिखते हैं—

"The time occupied is undoubtedly the most precious of the whole life time for the growth of mind and character, yet it is thrown away in grind on materials of third-rate value—this for a stupid and scientifically obsolete tradition."

स्काउट-शिक्षा में चित्त की वृत्तियों का पूर्ण विकास (Emotional development) करने का प्रयत्न किया जाता है। ऐसा करने से बालक के जोश तथा उत्साह का दुरुपयोग अथवा नाश नहीं होने पाता। उसका उत्साह दिन-प्रतिदिन उत्तम धाराओं में बहता रहता है और बालक की मानसिक शक्तियों की वृद्धि होती रहती है।

वही डाक्टर महोदय अन्यत्र लिखते हैं—

"Predominant attention is given to the development of the emotions, corresponding to the significance of these factors in the period studied. The chief function of youth is the creation of ideals and the development in connection with these of characteristics especially typical of civilized man."

इसी युक्ति के अनुसार बालकों के चित्त, उत्साह तथा विकार (Emotions) के पूर्ण उद्गार के हेतु सर राबर्ट बेडेन-पावैल अपने बाय-स्काउट्स के समक्ष मध्यकालीन योधाओं (Knights of the middle ages) का लक्ष्य रखते हैं। जिस प्रकार वे योधा बालक, निर्बल पुरुष, भिक्षुकों तथा अबलाओं की रक्षा करना अपना धर्म समझते थे और जिस प्रकार वे अपने शौर्य्य और पुरुषार्थ को धर्म तथा स्वामी की सेवा तथा परोपकार में अर्पण करते थे, उसी प्रकार स्काउटों के उद्देश्य रक्खे जाते हैं। पहली बात सर राबर्ट की प्रणाली में यह है कि बालक अपने जीवन का लक्ष्य सामने कर उसके अनुसार चलने पर तत्पर हो जाते हैं। फिर पुराने काल के धर्मात्मा, शूर-वीर, निर्बलों के प्रतिपालक, शुद्धात्मा योधा स्काउट्स के लक्ष्य

बनाये जाते हैं, जिनके वीर ऐतिहासिक श्रेष्ठ चरित्रों की कथाओं का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

इसी अवस्था में उनके हृदय तथा मन के पट पर यह अङ्कित किया जाता है कि संसार में तुमको अपनी प्रतिष्ठा (Honour) की रक्षा करनी चाहिए जिससे तुम्हारे वचन पर सब लोग विश्वास कर लेवें, क्योंकि स्काउट के वचन पर सदा विश्वास किया जाता है। उनको शिक्षा दी जाती है कि तुम्हारा जीवन दूसरे के लिए बनाया गया है; तुम दूसरों के, विशेष कर निर्बल अबलाओं तथा अनाथों के जीवन को सुखी बनाकर ही अपने जीवन के सुख को उपार्जन कर सकते हो; अन्यथा तुम सच्चे स्काउट कदापि नहीं हो सकते। उनको अपने स्काउट-नियमों का ज्ञान
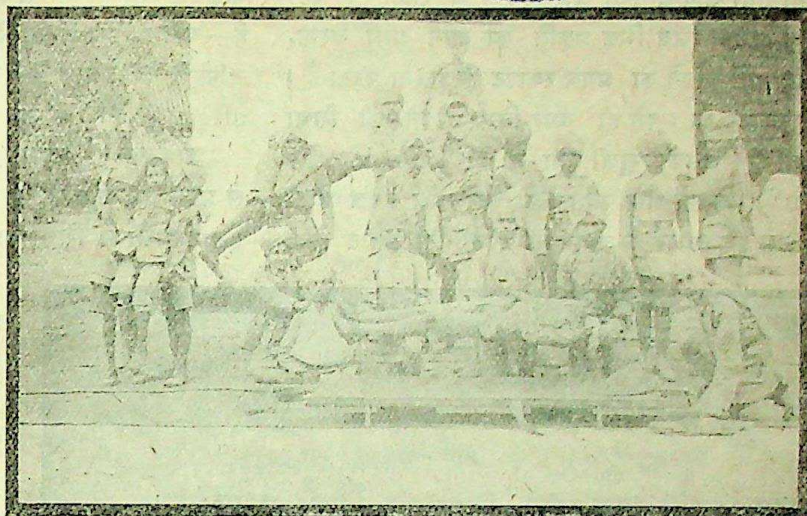
बाय-स्काउट्स घायलों की सेवा करना और उन्हें अस्पताल पहुँचाना सीखते हैं।

बाय-स्काउट्स बिगुल बजाकर अपनी सेना से काम कराते हैं।

भक्ति द्वारा बतलाया जाता है। उनके कोमल हृदयों में "सत्य का प्रेम और सेवा का उत्साह" पैदा किया जाता है और परमेश्वर तथा राजा की ओर भक्ति उत्पन्न की जाती है।

ये थोड़ी सी बातें उन बालकों के लिए जो स्काउट बनते हैं, आचरण-सुधार तथा चरित्र-गठन का हेतु होती हैं, परन्तु स्काउटिङ्ग में केवल एक ही प्रकार की शिक्षा नहीं होती। सर राबर्ट का उद्देश अपने Peace Scouts बनाने में यह था कि हम लोगों की आधुनिक सभ्यता में जो प्राकृतिक जीवन की अन्तिम झलक रह गई है उसको नाश होने से बचावें। उनका उद्देश इन बालकों में प्राकृतिक शोभा और भक्ति (Nature-love) भर देने का है। वे चाहते हैं कि बालक प्राकृतिक जीवन से विमुख न हों। यही नहीं, बरन बालकों का प्रेम ऐसे जीवन की ओर अधिक बढ़े जो सब देशों के इतिहासों के आदि काल में पाया जाता है। उस समय मनुष्य-जाति प्राकृतिक जीवन बनाये रखती थी। स्काउट अपने जीवन में से कुछ

भाग नगरों से बहुत दूर जङ्गलों में जाकर व्यतीत करते हैं। अपनी भूमि से उत्पन्न पदार्थों को पहचानना, उनका प्रयोग जानना तथा जीव-जन्तुओं और पक्षियों के शब्दों को पहचानना, उनकी भिन्न भिन्न प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना, इत्यादि बातें जानने का प्रयत्न स्काउट को करना पड़ता है। इससे स्काउट को अपने ही ऊपर निर्भर रहने की शिक्षा मिलती है। उसको खुली हवा में ("Life in the open"), जङ्गलों और पर्वतों की ओर प्रेम उत्पन्न होता है। उसे इस प्रकार के जीवन की उपयोगिता प्रतीत होती

बाय-स्काउट्स क़वायद कर रहे हैं।

है—और इसी युक्ति द्वारा उसके हृदय में ईश्वर-भक्ति का भाव दृढ़ किया जाता है। वह ईश्वर-दत्त प्राकृतिक शोभा को भोगता है और भगवान् की ओर अपना प्रेम बढ़ाता तथा कृतज्ञ बनता है। इसीसे स्काउटों को यह भी शिक्षा मिलती है कि उनके जीवित रहने के लिए बहुमूल्य वस्तुओं की मांग नहीं होनी चाहिए; साधारण जीवन संसार में सब सुखों का भाण्डार है।

तृतीय उद्देश सर राबर्ट का यह है कि इसी कोमल अवस्था में बालकों को अपने शरीर को शुद्ध, स्वस्थ तथा बली बनाना और रखना सीखना चाहिए। इस हेतु वे उनके लिए विविध प्रकार के खेलों तथा व्यायामों की व्यवस्था करते हैं।

सर राबर्ट का यह भी उद्देश है, कि यदि हम अपने समाज, साम्राज्य, तथा मातृभूमि के लिए स्वस्थ, योग्य, पुरुषार्थी, निस्स्वार्थ तथा चतुर नागरिकों को तैयार करना चाहते हैं तो उनको सन्मार्ग पर लाने की अवस्था यही है—यही अवस्था है जब कि उनको देश-प्रेम, राज-भक्ति तथा "पहले देश, पीछे आप" ("Country first, self afterwards") के उच्च उपदेशों की शिक्षा दे सकते हैं।

अब यह नई प्रकार की शिक्षा कहां तथा किस रीति से प्रदान की जाती है सो भी जान लेना आवश्यक है। इस प्रणाली में शिक्षा का साधन गुरुजी का दण्ड नहीं होता, तथा स्थान पाठशालाओं के सङ्कुचित आश्रम नहीं होते। शिक्षा अधिकतर खेल, कूद, व्यायाम, तथा कौतुकों द्वारा दी जाती है। (सर राबर्ट ने एक पृथक् पुस्तक "Scouting games" नाम की लिखी है जिसमें कई प्रकार के खेल, उनके नियम तथा साधन दिये हैं) ये खेल-कूद, कौतुक, आदि जङ्गल, झाड़ी, मैदान और पर्वतादि में खेले जाते हैं। इस संस्था में कोई स्काउट-मास्टर किसी बालक को शारीरिक दण्ड नहीं देता। वह अपने लघु भ्राता की नाईं प्रत्येक स्काउट का प्रेम तथा आदर करता है।
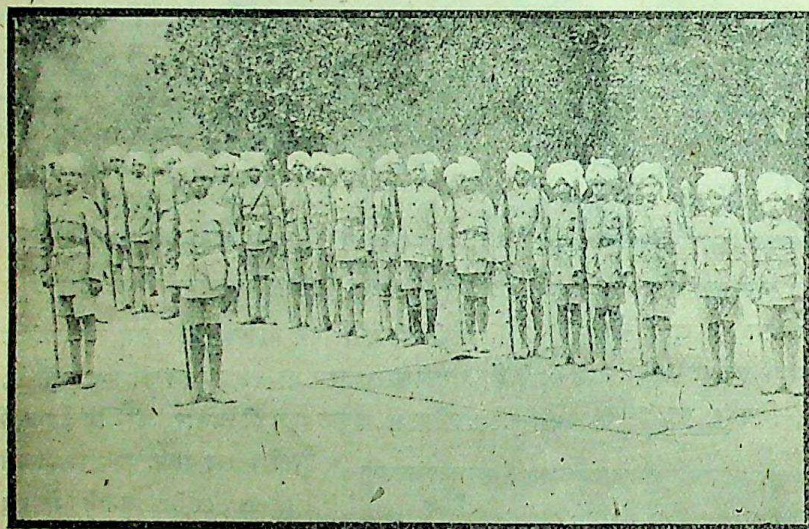
प्रत्येक स्काउट को इसके पूर्व कि वह नियम-बद्ध किसी स्काउट-सेना (Scout-Troop) का सदस्य बन सके, अपनी मान-मर्यादा [HONOUR] से एक प्रतिज्ञा स्काउट-मास्टर तथा अपने दूसरे भाइयों के सामने करनी पड़ती है, जिसको Scout-promise कहते हैं। स्काउट का यह संस्कार बड़े समारोह के साथ होता है और प्रतिज्ञा बड़ी भक्ति तथा आदर के साथ उत्तर-दायित्व के भावों से सबके सामने ली जाती है। स्काउट के लिए यह विधि उपनयन-संस्कार के तुल्य होती है। स्काउट-प्रतिज्ञा यह है—

मैं अपनी मान-मर्यादा से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं भरसक	On my Honour I promise to do my best

(१) ईश्वर, सम्राट्, तथा मातृभूमि की ओर अपना कर्त्तव्य पालन करूँगा।	(1) to do my duty to God, crown and country,
(२) अन्य लोगों की हर समय सेवा करूँगा।	(2) To help other people at all times, and
(३) स्काउट-धर्म का पालन करूँगा।	(3) to obey the Scout Law.

बाय-स्काउट्स के मास्टर और सर्वेण्ट आफ़ इण्डिया सोसायटी के मेम्बर, पण्डित श्रीराम वाजपेयी।

स्काउट-धर्म Scout Law.

१—स्काउट के मान पर विश्वास किया जाना चाहिए।	1. A Scout's Honour is to be trusted.
२—स्काउट ईश्वर, सम्राट्, अपने माता-पिता, अपने अफ़सर, तथा अपने अधीन जो हों उनकी ओर भक्ति रखता है।	2. A Scout is loyal to the King Emperor, to his Motherland, his parents, his officers, his employers and those under him.
३—स्काउट का कर्तव्य है कि दूसरों की सेवा करे।	3. A Scout's duty is to be useful and to help others.
४—स्काउट सबका मित्र है और प्रत्येक अन्य स्काउट का भाई है, चाहे वह अन्य किसी भी जाति अथवा पन्थ का हो।	4. A Scout is friend to all and a brother to every other Scout, no matter to what social class or creed the other belongs.
५—स्काउट नम्र होता है।	5. A Scout is courteous.
६—स्काउट जीव-जन्तुओं का मित्र होता है।	6 A Scout is friend to animals.
७—स्काउट अपने माता-पिता, अपने पेट्रोल-लीडर (नायकों) तथा अपने स्काउट-मास्टर की आज्ञा मानता है।	7. A Scout obeys orders of his parents, patrol-leaders, and Scout-master.
८—स्काउट सब आपत्तियों में हँसमुख तथा प्रसन्न रहता है।	8 A Scout is cheerful in all difficulties.
९—स्काउट किफ़ायतशार रहता है।	9. A Scout is thrifty.
१०—स्काउट मन, वचन तथा कर्म से शुद्ध होता है।	10. A Scout is clean in thought, word and deed.

Trusty, loyal and helpful
Brotherly, courteous, kind
Obedient, smiling and thrifty
Pure as the rustling wind.

बाय-स्काउट्स हर तरह की ग्रन्थियां लगाना और खोलना सीख रहे हैं।

इस लेख में यह दिखलाना भी उचित होगा कि स्काउट्स का अध्ययन-क्रम क्या है? और इस शिक्षा-प्रणाली में परीक्षाओं का स्थान किसने लिया है? अभाग्यवश अथवा सौभाग्यवश इस शिक्षा-प्रणाली में भी परीक्षा-देवी राज्य करती हैं। इस संस्था की परीक्षा और साधारण विश्व-विद्यालयों की परीक्षाओं में अन्तर केवल यह है कि स्काउट-परीक्षा देने के लिए बालक स्वयं आतुर होते हैं और स्काउट-मास्टर को परीक्षा लेने के लिए तङ्ग कर देते हैं; पर साधारण कालेजों की परीक्षाओं से कुछ योग्य विद्यार्थियों के अतिरिक्त अन्य युवक बहुधा दुःखित तथा चिन्तित ही रहते हैं। स्काउट्स को नाना प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना होता है, उस सबको यहां गिनाना सम्भव नहीं। सर राबर्ट ही की पुस्तक में लगभग ९६ प्रोफ़िशियन्सी बेजेज़ (Proficiency badges) दिये हुए हैं और संख्या कुछ इनसे भी अधिक हो चली है। इन सबके अतिरिक्त उनको क़वायद, वायु तथा तारागण की गति, नेत्रों, कर्णों तथा अन्य इन्द्रियों का ठीक प्रयोग करना सीखना पड़ता है।

"नित्यप्रति काम में आनेवाली प्रायः सभी कलाओं का थोड़ा बहुत ज्ञान प्रत्येक चर (स्काउट) को प्राप्त कर लेना चाहिए। ज़ल-विद्या, स्थल-विद्या, आकाश-विद्या, तैरना, कुश्ती लड़ना, तार देना, टाइप-राइटरी, चिप्र-लेखन, पैरगाड़ी की सवारी, मोटर चलाना, तडिद्विद्या, आग बुझाना, पशु-रक्षा, खेती, वाजि-विद्या, वास्तु-विद्या (अर्थात् इञ्जीनियरिङ्ग), वाद्य-विद्या, नाट्य-कला, गान-विद्या, रसोई बनाना,
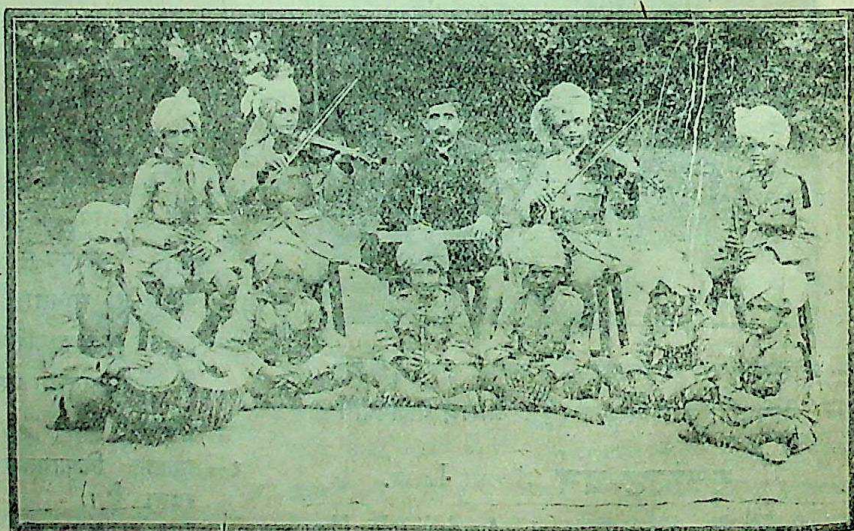
बाय-स्काउट्स सङ्गीत का अभ्यास कर रहे हैं।

वैद्यक-विद्या, घायलों की सेवा, रसायन, सूरत बदलना, ठठेरी-विद्या, लुहार, सुनार, बढ़ई की विद्या, खानि-विद्या, केवट-विद्या, सीना-पिरोना, कपड़ा बुनना, चित्र-विद्या, फ़ोटो लेना, भेष बनाना, भेष बदलना, मोहिनी डालना, वशीकरण, ज्योतिष, पण्डिताई, पुरोहिताई, कथा-पुराण बांचना, क़िस्से-कहानी सुनाना, आदि अनेक कलाओं में से जितनी का अभ्यास हो सके उतना ही अच्छा"—पण्डित श्रीधर पाठक ।

जिन विषयों में परीक्षा होती है वे नीचे लिखे जाते हैं—

प्रथमा परीक्षा, Tenderfoot tests.

(स्काउट बनने के संस्कार के पूर्व इस परीक्षा को पास करना होता है ।)
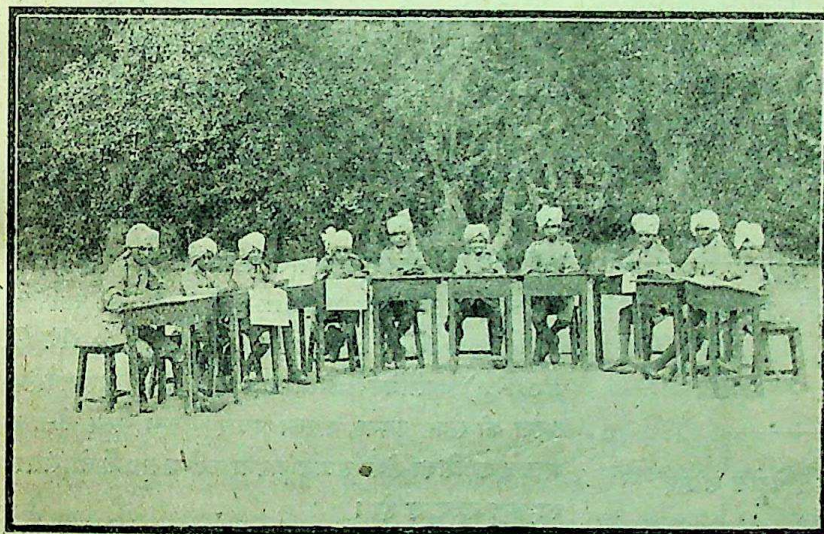
बाय-स्काउट्स ख़बरें लेना और भेजना सीख रहे हैं ।

१ स्काउट-धर्म तथा उसका अर्थ जानना ।

२ स्काउट के गुप्त चिह्न तथा स्काउट की सलामें ।

३ छः प्रकार की गाँठें बाँधना जानना ।

४ ब्रिटिश-साम्राज्य के झण्डे को पहचानना और उसको सही तरह से उड़ाना ।

द्वितीया परीक्षा, Second Class tests.

१ एक मास की हाज़िरी ।

२ घायलों की सेवा करना ।

३ झण्डे से समाचार पहुँचना ।

४ राष्ट्रीय गीत ।

५ स्काउट क़दम पर चलना ।

६ आग जलाना ।

७ भोजन बनाना ।

८ १६ दिशाओं को पहचानना ।

९ कुछ धन बचाकर बङ्क में रखना । (कम से कम आठ आना ।)

१० आधे मील तक किसी चीज़ को ढूँढ़ना ।

तृतीया परीक्षा, First Class tests.

१ ५० गज़ तैरना ।

२ बङ्क में कुछ बचाया धन होना । (कम से कम १).)

३ झण्डी द्वारा तार भेजना (अधिक वेग से ।)

४ नाव चलाना ।

५ खोज ढूँढ़ना ।

६ घायलों की सेवा (हड्डी टूटने पर, नस टूटने पर, इत्यादि ।)

७ कई आदमियों के लिए रसोई बनाना ।

८ किसी स्थान का नक़शा बनाना ।

९ किसी नये स्काउट को प्रथमा परीक्षा पास कराकर तैयार करके उपस्थित करना ।

१० ऊँचाई, चौड़ाई, लम्बाई आदि का नाप २५ फ़ी सैकड़े कम ग़लती से बतलाना, इत्यादि ।

स्काउट सेनाओं का सङ्गठन किस प्रकार होता है ? स्काउटों को सेनाओं (Troops) में बांट देते हैं और प्रत्येक ट्रूप में कई समुदाय (Patrol) होते हैं जिनमें ६ और ८ स्काउटों के बीच में रहते हैं । बहुधा प्रत्येक नगर में एक 'ट्रूप' होती है; परन्तु जब एक नगर में बहुत संख्या हो जाती है (जैसे लन्दन तथा मद्रास में है) तब

उसमें कई ट्रूप एक ही शहर में हो सकती हैं । प्रत्येक पेट्रोल का नाम रखा जाता है । इँगलेंड में किसी पशु के नाम से पेट्रोल को नाम देते हैं और उसी पशु की बोली को वे अपनी वृन्द-ध्वनि (Patrol cry) बनाते हैं, जैसे कि dog patrol, horse patrol, wolf patrol. भारतवर्ष में भारतीय स्काउट किसी बड़े ऐतिहासिक पुरुष अथवा महा-योधा के नाम से पुकारे जाते हैं—उदाहरणार्थ भीष्म-पेट्रोल, अकबर-पेट्रोल, शिवाजी-पेट्रोल, गोखले-पेट्रोल, इत्यादि ।

स्काउट-सङ्गठन इस प्रकार होता है—
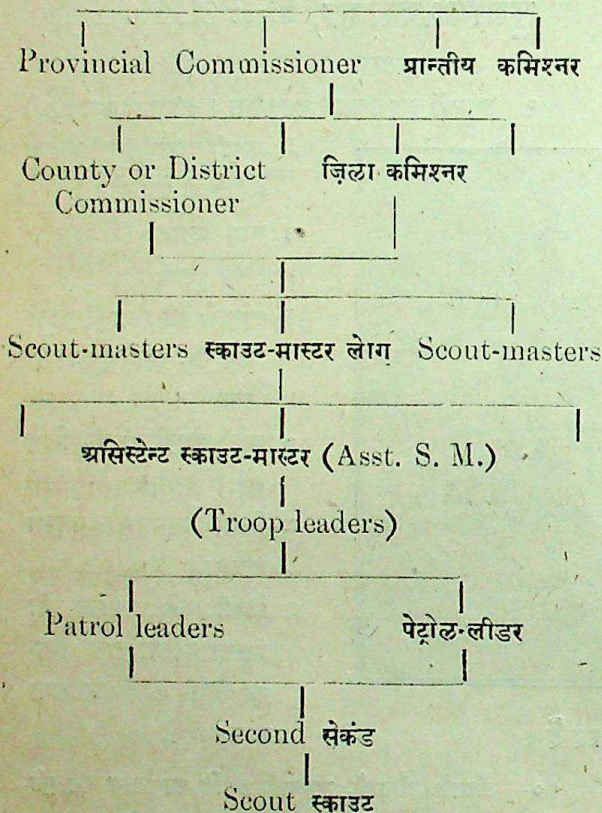
धन की सहायता बहुधा सर्वसाधारण की ओर से प्राप्त होती है । इस कारण सर्वसाधारण ही में ज़िले के प्रान्तीय तथा मुख्य (central) एसोसियेशन्स (सङ्घ) बन जाते हैं । इनकी कौंसलें (अन्तरङ्ग सभायें) भी होती हैं ।

एक सम्बद्ध और महत्तावाली संस्था की चर्चा किये बिना हम इस लेख को समाप्त नहीं कर सकते । इस संस्था को कोर्ट आव् आनर (मान-न्यायालय) कहते हैं। यह सभा जिसके अधिपति स्काउट-मास्टर तथा सदस्य सब पेट्रोल-लीडर होते हैं सब प्रकार के काम करती है । इसके कार्य्य तीन प्रकार के होते हैं—न्यायसम्बन्धी (Judiciary), व्यवस्थापक (Legislative), तथा सेना-सम्बन्धी नीति, कार्य्य-विवरण, धन के आय-व्यय का व्योरा और रीति निश्चित करना (Executive) ।

संसार के स्काउटों की संख्या आज लाखों में गिनी जाती है । उनमें आपस में भ्रातृभाव रहता है और प्रत्येक स्काउट को, चाहे वह किसी भी जाति अथवा धर्म का हो, अन्य स्काउट अपना भाई समझते हैं । पत्र-व्यवहार में भाई शब्द से परस्पर सम्बोधन करते हैं । सारे संसार के स्काउटों का आदर्श वाक्य (माटो) "Be prepared" है, अर्थात् प्रत्येक स्काउट सर्वथा सेवा करने को उद्यत रहे ।

बड़े गौरव की बात इस संस्था में यह है कि स्काउटों की धर्म-सम्बन्धी बातों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता, परन्तु प्रत्येक स्काउट से यह आशा अवश्य की जाती है कि वह अपने धर्म तथा मतानुसार पूजा-पाठ या प्रार्थना करे ।

इस संस्था का लाभ बालकों को ही नहीं, किन्तु बालिकाओं को भी होता है । बालक बाय-स्काउट्स कहलाते हैं, बालिकाएं गर्ल-गाइड्स (बालिका-पथदर्शक) कहलाती हैं ।

यदि ऐसी "non-military, non-sectarian and non-political organisation" (—F. G. Pearce) असैनिक, असाम्प्रदायिक और अराजनैतिक संस्था की सेवा करना, उसका प्रचार करना सब देशों के भक्त तथा शिक्षा-सेवी सज्जन अपना कर्त्तव्य समझें तो संसार का बड़ा कल्याण हो ।

(प्रोफ़ेसर) मोहनसिंह मेहता, (एम० ए०)

सत्य का कला से सम्बन्ध ।

परमात्मा के सृष्टि-राज्य में पशु-पक्षि-गण, आहार-विहार और आत्म-रक्षा ही के क्षुद्र व्यापारों में संसार-यात्रा व्यतीत कर देते हैं; पर सृष्टि-राज्य का मुकुट-मणि, मनुष्य इन विषयों को अपने उद्देश की प्राप्ति का एक साधन-मात्र मानता

है और वह अनेक पदार्थों, और अनन्त गम्भीर विचारों का आविष्कार करता है, जिनका मनुष्येतर प्राणियों को स्वप्न में भी ध्यान नहीं आता। मनुष्य अपनेको अनेक अपरिचित वस्तुओं से घिरा पाता है। जलचर, थलचर, नभचर और वृक्षादि उसके नेत्रों के सामने आते हैं। उसके दाएँ और बाएँ, आमने-सामने, नीचे और ऊपर, छोटे और बड़े, अन्धकारमय और ज्योतिर्मय पदार्थ दिखाई पड़ते हैं। वह दिन में सूर्य भगवान् की प्रकाशमयी किरणें देखता है, तो निशा में निशाकर की ज्योति से प्रसन्न होता है, और नक्षत्र तथा ताराओं की शोभा से वह अलग ही आनन्द-विह्वल होता है। वह एक ओर आमोद-प्रमोद में मग्न होता हैं, तो दूसरी ओर शोक और मोह से उसका हृदय काँप उठता है। एक ओर वीणा-वाद्य है, तो दूसरी ओर हा हा-रुदन। कभी मेघों की गरज, कभी बिजली की तड़क, कभी जल-वेग और कभी वायु-वेग को देखकर वह विस्मय से बेसुध हो जाता है। उसके हृदय में अनेकों शङ्कायें उठती हैं; कितने ही प्रश्न उसके मन को बार बार मथन करते हैं। मैं कौन हूँ? यह इन्द्रिय-गोचर जगत् क्या है? मेरा इससे क्या सम्बन्ध है? दोनों का उत्पादक क्या है? इन सब प्रश्नों को मनुष्य के मस्तिष्क में स्थान मिलता है।

बड़े बड़े दार्शनिक, तत्त्ववेत्ता और विज्ञानवेत्ता इस धरा पर हो चुके। यदि दार्शनिकों का ध्येय सत्य की खोज करना, जीव, प्रकृति और परमात्मा का वास्तविक ज्ञान लाभ करना रहा है, तो कला-कुशलों का पवित्र जीवन भी सत्य के पवित्र मार्ग पर आरूढ़ हुआ है। यदि दार्शनिकों का जीवन सत्य की खोज में समाप्त हुआ है, तो कवियों, शिल्पकारों और चित्र-कला-विशारदों को भी सदैव सत्यानुसन्धान इष्ट रहा है। अन्तर केवल इतना है कि एक सत्य के एक रूप के ज्ञान में रत होता है, और दूसरा सत्य के एक भिन्न ही रूप का भावुक है।

जीव, सृष्टि और परमात्मा-सम्बन्धी प्रश्नों ने विविध प्रकार के उत्तर उत्पन्न किये हैं। इस दशा में यदि अल्पज्ञ मनुष्य की बुद्धि अगम्य ज्ञान के सागर पर टीलों से टकरा जाय तो आश्चर्य्य ही क्या? यदि कुछ लोगों को केवल प्रकृति का विलास-मात्र दीखता है, तो दूसरों को इतने से सन्तोष नहीं होता और वे इस भाव को परतन्त्र मानकर कहते हैं कि आत्मा की सत्ता ही वस्तुतः माननीय है। दूसरे ऐसे हैं जो यह कहते हैं कि जीव, प्रकृति और परमात्मा तीनों की स्वतन्त्र सत्ता है। सबकी जिज्ञासायें इतने से सन्तुष्ट नहीं होतीं, आत्मा की ज्ञान-पिपासा इससे शान्त नहीं होती। इधर ब्रह्मवादी केवल ब्रह्म की सत्ता का प्रतिपादन करने लगता है; उसे 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के सिवा और कोई सत्य नहीं दीखता। यही अन्तिम सत्य है जिसे जानने और पहचानने के लिए हिन्दू दर्शन प्रादुर्भूत हुए हैं; यही सत्य है जिसे उच्च कोटि का हिन्दू कवि, हिन्दू चित्रकार अपने अपने काव्यों और चित्रों के द्वारा देखता है। कवि-सम्राट् कालिदास और भवभूति तथा सूरदास और तुलसीदास अपने महाकाव्यों द्वारा इसी एक सत्य का गुण गा रहे हैं; कवि-सम्राट् रवीन्द्र ठाकुर अपने काव्य द्वारा तथा राजा रविवर्मा अपने चित्रों द्वारा इसी सत्य की उपासना कर रहे हैं। दार्शनिक इस सत्य का निर्गुण, सौन्दर्य्य-विहीन रूप उपस्थित करता है; कला-कुशल इस अनन्त सौन्दर्य्य का सौन्दर्य्य खींचकर भावुक का चित्त उसी सनातन 'सत्य' की सेवा में लगा देता है।

काव्य की ओर देखिए या नाटक की चित्र-कला पर दृष्टि डालिए अथवा शिल्प-कला पर, वाद्य-कला का अवलोन कीजिए या गान-विद्या का, सर्वत्र आत्मा की ज्ञान-पिपासा की शान्ति और भगवान् की प्राप्ति ही इष्ट रही है। यूनान की शिल्प-विद्या अथवा चित्र-कला का जन्म दैवी सौन्दर्य का सुखास्वादन करने के लिए हुआ। भक्त-शिरोमणि सूरदास का सूरसागर भगवान श्रीकृष्ण के, और

कविकुल-चूड़ामणि भक्ताग्रगण्य तुलसीदास की रामायण रामजी के चरणाम्बुज की प्राप्ति ही के लिए हुई। जिस हिन्दू को ब्रह्म के सिवा और कोई सत्य नहीं दीखता, उसके लिए वेद प्रभु-सम्मित वाक्य और स्मृति-इतिहासादिक सुहृत्सम्मित वाक्य होने पर भी, काव्य और नाटक कान्ता-सम्मित वाक्य हैं, जिनके द्वारा कला चमत्कृत वाणी और माधुर्य्यमयी, रस-सनी भारती में, जीव को शान्ति पहुँचाती और अपने आवरण के साथ साथ द्रष्टा को—संसार पथिक को सत्य की ओर दीपक दिखलाती है। कला का यह आदर्श न केवल हिन्दुओं का ही रहा है, बरन आर्येतर धर्मावलम्बियों और देशवासियों ने भी इस की सत्यता को जानकर इसका अनुकरण किया है। एक ग्रन्थकार का कथन है कि बौद्ध धर्म का विशेष प्रचार चित्र और मूर्ति द्वारा हुआ। हिन्दू कवियों की भाँति प्रसिद्ध अँगरेज़ कवि वर्ड्सवर्थ क्षुद्राति-क्षुद्र पुष्प को भी ऐसे विचारों का दाता समझते हैं जिन्हें व्यक्त करना मनुष्य के लिए बहुत कठिन है! सत्य की खोज में कला पूर्णतः सफलीभूत न हो तो हर्ज ही क्या? वास्तव में कला का काम सनातन सत्य की खोज है और जहाँ तक उसकी कल्पना और भाव की पहुँच होती है वह सत्य को प्राप्त करती है। निदान कला का उद्देश मनुष्यों को ईश्वर तक पहुँचाने अथवा सत्य को प्राप्त कराने का है और यही सत्य और कला का सम्बन्ध है।

सत्य और कला के सम्बन्ध पर विचार करनेवाले प्रायः सत्य के इस रूप की ओर ध्यान नहीं देते और जब वे कला का विचार करने लगते हैं तब उसका विचार जीव और प्रकृति के साथ करते हैं। इस पर विशेष कर दो प्रकार के विचार पाये जाते हैं। एक का कथन है कि कला में और चाहे जो कुछ हो, अन्ततो गत्वा उसे यथातथ होना चाहिए; दूसरे प्रकार के विचारवालों का सिद्धान्त है कि कला में 'यथातथ' कैसा? एमर्सन महोदय ने कहा है कि "कला का काम अनुकरण नहीं, बरन उत्पन्न करना है।" चित्रकार भद्दे भद्दे, कुडौल पदार्थ पाता है, उसमें वह सौन्दर्य देखेगा, भद्दापन का ध्यान उसे न करना होगा। जहाँ हमें कुछ भी मनोरम और सुन्दर नहीं दिखलाई पड़ता वहाँ वह ऐसा भावपूर्ण चित्र खींचेगा कि हमारा मन मोह जाएगा। चर्म-चक्षुओं को जो कुछ वास्तव में दीख रहा है, कानों को जो कुछ सुनाई देता है, उसके रूखेपन और भद्देपन पर बिलकुल ध्यान न दे, चित्रकार उच्चादर्श द्वारा, पवित्र भावना द्वारा, मोहिनी-रूप उपस्थित करेगा। यही कला का काम है। उसमें नवीनता और आकर्षकता का होना नितान्त आवश्यक है। जिसे हम प्रतिदिन देखते सुनते हैं उसे ही कला के नाम से दिखाने सुनाने चलें तो हम ऐसी कला को दूर ही से नमस्कार करते हैं। कितने दिनों तक वे फ़ोटो जीवित रहेंगे जिन्हें हूबहू उतार लेते हैं; कितने दिन का जीवन उन उपन्यासों का होगा जिन्हें एक बार पढ़ लेने पर फिर पढ़ने को जी नहीं चाहता? उनके जीवन का अन्त तो उसी दिन हुआ जिस दिन उनके जीवन का आरम्भ हुआ!

आस्कर वाइल्ड ने कहा है कि कला में रूप की समीचीनता और विषय की आधुनिकता उसके लिए विषरूप है। लोग समझते हैं कि जिन अवस्थाओं से हम घिरे और सम्बद्ध हैं उनसे कला को भी सम्बद्ध रखना चाहिए। इस विचार का परिणाम यह होगा कि जीव और प्रकृति के भार से कला का मस्तक लद जायगा। जिनसे हमें सुख और दुःख हो रहा है, जिनसे हमें प्रेम और घृणा हो रही है उनसे हमारा सम्बन्ध भले ही हो; परन्तु कला तभी कला रहेगी जब वह उनका सङ्ग छोड़ दे। यदि तुलसीदासजी विषय की नवीनता पर मरे जाते तो वे महाकाव्य न बना पाते, और न कालिदास ही ऐसी दशा में महाकाव्य बना सकते। सच तो यह है कि कला का विषय वे लोग हैं जो हमसे बहुत पहले हो गये हैं या बहुत पीछे होंगे।

कुछ लोग कहते हैं कि कला में कल्पना और भावना चाहे कितनी ही क्यों न हों, अन्त में कला को प्रकृति का मुख ताकना ही पड़ता है। जीव और प्रकृति के अनुकूल कला को होना ही पड़ता है। इस भाव के विपरीत यह सिद्धान्त है कि 'प्रकृति बेचारी सदा समय के पीछे रहती है' और जीव कला का प्राणघातक है। इन दोनों वक्तव्यों में कुछ न कुछ सत्य अवश्य प्रतीत होता है। महाकवि वर्ड्सवर्थ 'सरोवर-कवि' बनने के लिए झीलों के पास गये, पर झील की प्रकृति ने उन्हें सरोवर-कवि न बना पाया। इसके विपरीत उन्होंने घर ही पर रहकर,

'Books in running brooks,
Sermons in stones,
Good in every thing.'

का सिद्धान्त निश्चित किया। कालिदास ने पतित-पावनी भागीरथी का क्या ही हृदय-ग्राही चित्र खींचा है।—

क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा॥

क्या इस वर्णन के लिए कालिदास को गङ्गा-यमुना के सङ्गम तक आना पड़ा था? गोस्वामी तुलसी-दासजी सीताजी की अनुपम छवि का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

जो छवि सुधा पयोनिधि होई। परमरूपमय कच्छप सोई॥
शोभा रजु मन्दर शृङ्गारू। मथै पाणि-पङ्कज निज मारू॥

ऐसी काल्पनिक छवि के वर्णन के लिए तुलसी-दास को सीता का असली रूप देखना न पड़ा था। न भवभूति को, दण्डकारण्य का निम्न-लिखित वर्णन करने के निमित्त, अपना स्थान छोड़ना पड़ा था—

कहुँ सुन्दर घनश्याम कतहुँ धारे छवि घोरा।
कहुँ गिरि खोदन गूँजि बढ़त झरनन कर सोरा।
सुनसान कहुँ गम्भीर बन, कहुँ सोर वन-पसु करत हैं।
कहुँ लपटि निसरत सुप्त अजगर साँस सों तरु जरत हैं।
गिरि-खोह महँ कछु जल भरे कहुँ छुद्र खात लखात हैं।
अहि-स्वेद गिरगिट पियत तहँ जब प्यास सों घबरात हैं।

निदान हम देखते हैं कि कला जीव और प्रकृति से नहीं, किन्तु कल्पना से उद्भूत होती है। यही उसकी प्रथम श्रेणी है। द्वितीय श्रेणी में वह उन्हें अपने घर में स्थान देती है, पर इसलिए नहीं कि वे उसके घर के स्वतन्त्र प्रभु हो बैठें और कल्पना और भावना को निकाल बाहर करें। जीवन की घटनायें और प्रकृति के पदार्थ पङ्खों का काम देते हैं जिनके आधार पर कला उड़ती है। परन्तु जिस समय कला में से कल्पना जाती रहती है और सब कुछ सत्य पर अवलम्बित होने लगता है, उस समय कला का सर्वस्व जाता रहता है और वह कला ही नहीं रह जाती। इसी बात को दो-एक उदाहरणों द्वारा देखें। इँगलेंड में पहले नाट्यकला मठाधीशों के हाथ में थी; नीत्युपदेश उसका उद्देश था और बनावटी कथाओं से उसका आवरण बना था। तदनन्तर उसमें जीव और प्रकृति को स्थान मिला; और नाटकों में अनोखे लोग घूमने फिरने लगे। नाटकों में रोम-सम्राट् सीज़र ऐसा अङ्कित किया गया जैसा सीज़र वास्तव में न था। तब और नाट्यकारों को इस बात का अनुभव हुआ कि कला का धर्म्म सत्य का सीधासादा कथन नहीं, किन्तु "जटिल सौन्दर्य" का प्रदर्शन है। चाणक्य के समकालीन उसे वैसा न देखते रहे होंगे जैसा हम उसे विशाखदत्त के मुद्राराक्षस की कला द्वारा देखते हैं। यदि कला में अर्थात् काव्य और नाटक में अथवा चित्र आदि में ऐतिहासिक सत्यता न हो, तो न सही; क्योंकि उसकी सत्यता का निर्णय अन्य ही माप से किया जाता है। कला का क्षेत्र सत्य नहीं, किन्तु कल्पना और भाव है। जब कला सत्य के लिए पछताने लगे तब जानना चाहिए कि उसका गलाऔंट्र आ गया। उत्तम भावनाओं से ही उत्तम चित्र खिंच जाते हैं। इटली के एक प्रसिद्ध चित्रकार से एक सरदार ने

पूछा, भाई ! तुम जो रमणियों के ऐसे मनोहर, भावपूर्ण मुख अङ्कित करते हो उनके आदर्श कहाँ से पाते हो ? चतुर चित्रकार ने यह कहकर कि मैं अभी बताता हूँ, एक भद्दी ग्रामीण स्त्री को बुलाया और उसे आकाश की ओर मुँह उठाकर बैठ जाने के लिए कहा। उसके बैठ जाने पर उसने झट-पट प्रार्थना में रत एक अत्यन्त सुन्दरी रमणी का भावपूर्ण चित्र खींच डाला और सरदार की ओर फिरकर कहा, पवित्र और सुन्दर भाव चित्त में होना चाहिए; फिर इसकी परवाह नहीं कि नमूना कैसा है। इससे निष्कर्ष यह होता है कि कला भाव-राज्य की बात है, उसमें सत्य इतना ही है कि वह पवित्र अन्तःकरण से उत्पन्न होती है और पवित्र भावना का प्रत्यक्ष रूप है।

यदि जीव दर्पण है तो कला असली रूप है। जीव कला का अनुकरण करता है—यद्यपि कई अंशों में यह भी ठीक है कि कला जीव का (सत्य का) अनुकरण करती है। एक उच्च कोटि का कवि कल्पनात्मक वर्णन उपस्थित करता है, और लोग उसका अनुकरण करते हैं अर्थात् कवि की कल्पना सत्य में परिणत की जाती है। यह ठीक कहा गया है कि कवि लोग भविष्य के स्वप्न देखते हैं और जो स्वप्न वे आज देखते हैं वे कल सत्य हो जाते हैं। उच्च कोटि का चित्रकार जो भावपूर्ण चित्र खींचता है, उसके रूप को अपनेमें उत्पन्न करने के लिए बहुतेरे लोग यत्न करते हैं। इस बात को भारतीयों की भाँति यूनानियों ने भी भली भाँति समझ रक्खा था। इसीलिए वे वधू के गृह में 'हर्मीज़' या 'अपोलो' के चित्र लटका देते थे, जिससे वधू उन चित्रों के समान सुन्दर सन्तान जने। कला न केवल आत्मानुभव कराती और गम्भीर विचारों को उत्पन्न करती और आत्मा को शान्ति देती है, बरन जीव ही कला का अनुगामी हो जाता है। इसी हेतु कला में जीव अथवा सत्य का अनुकरण नहीं होता; किन्तु उसमें, उत्तम भाव, उत्तम कल्पनायें खींची जाती हैं और तब वह स्वर्गीय सौन्दर्य्य का स्वरूप दिखलाती है। इससे उपदेश मिलता है, ईश्वर के स्वरूप पहचानने में सुगमता होती है और 'सत्य' की वृद्धि होती है। यही हेतु है कि यूनानियों ने कला में सत्य (Realism) के होने को आपत्ति-जनक माना था। यही कारण है कि प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने बालकों का जीवन चरित्रवान् बनाने के लिए शिक्षाप्रद, भावपूर्ण, पर कल्पित और झूठी कथाओं की रचना का पक्ष लिया है।

जो सिद्धान्त मूर्ति और चित्रादि के सम्बन्ध में ठीक है वही साहित्य को भी लागू है। साहित्य भविष्यत् का स्वप्न देखता है। उसे आशा रहती है कि भविष्य जीव उसका अनुगामी होगा। आज का साहित्य कल का उद्गम स्थान है। लड़कों ने किसी पत्र में चञ्चलता की कहानी पढ़ी नहीं, कि वे वैसी ही नटखटता दिखाने लगे। शोपेनहार ने अपने काल के जिस निराशावाद का विश्लेषण किया उसका जन्मदाता शेक्सपियर का हैम्लेट नामक नाटक था। साहित्य जीवन का अनुकरण बहुत कम करता है; बरन उसे अपनी स्वार्थ-सिद्धि का हथियार बना लेता है। इँगलेंड में एक रूपवती महिला थी। उसके विचार स्थिर न थे। कभी वह राजनीति में हाथ डालती, कभी धर्म-सम्बन्धी प्रश्नों में, कभी मेस्मेरिज़म में और कभी किसीमें और कभी किसीमें। इस प्रकार वह अनिश्चित पथ पर बही चली जाती थी कि अचानक एक पत्रिका में उसने एक ऐसी रूपवती रूसदेशीय महिला का वृत्तान्त पढ़ा जो उससे सभी बातों में मिलती-जुलती थी। कुछ समय के पश्चात् उसने यह पढ़ा कि वह रूसी महिला किसी ऐसे पुरुष के साथ भाग निकली जिसकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति उस महिला से बहुत ही गिरी हुई थी। इस बात ने उस अँगरेज़-महिला के हृदय में ऐसी लहर मारी कि कुछ दिनों

पीछे पता चला कि रूसी अबला की भाँति वह भी किसीके साथ भाग खड़ी हुई! कुछ भद्र पुरुषों ने आत्महत्या इसलिए कर ली है कि अमुक अमुक व्यक्तियों ने कवियों की कल्पित कथाओं में आत्मघात किया था। तात्पर्य्य यह है कि कला का अनुकरण सत्य करता है। पर इसका आशय यह नहीं कि जो कला सत्य का अनुगमन करेगी अर्थात् वास्तविक 'जीवन' का चित्र खींचेगी, वह कभी उत्तम कला हो ही नहीं सकती।

सत्य ही का एक दूसरा रूप प्रकृति समझी जाती है, अर्थात् प्रकृति के राज्य में जो कुछ इन्द्रिय-गोचर होता है वह सत्य कहाता है; और कुछ लोगों का यह विचार भी है कि कला को प्रकृत्यनुरूप होना चाहिए। यह बात वहीं तक सत्य है जहाँ तक कला प्रकृति से 'रङ्ग और आकृति के विचित्र विचित्र मेल लेती है'। बिना प्रकृति को कभी देखे या उसके विषय में कुछ पढ़े या सुने, कला कल्पना और भावना कहाँ से ला सकती है?

इस अंश में प्रकृति कला का आधारभूत है और इतने अर्थ में कला उसका अनुकरण भी करती है। ऊपर कह आये हैं कि 'जीव' कला का अनुगामी होता है, वैसेही प्रकृति भी कला की अनुकृति करती है। प्रायः प्रकृति में हम तब तक सौन्दर्य्य नहीं देखते जब तक कोई कला-चतुर प्रकृति के गर्भ में पैठकर सुन्दरता को प्रकट नहीं कर देता। वैदिक युग में लोग उषा-काल का क्या ही सुन्दर चित्र खींचते थे, सूर्योदय में वे क्या ही शृङ्गार पाते थे। पर हममें कितने हैं जो उषा के सौन्दर्य्य को देखें और उससे प्रेम करें? यदि प्रकृति हमारे मन का खेल है—हमारे मन की भावना मात्र है—तो उसमें जो जो कल्पनायें और भावनायें की जावेंगी सब अनुभव में आवेंगी। कल्पना और भावना को निकालकर देखिए, तो प्रकृति अपने प्राकृत स्वरूप में आ जावेगी और वह सुषमा और सौन्दर्य्य आँखों से ओझल हो जावेगा। यह कला-चातुरी की महिमा है कि हमें केवल फल-फूल का जो सामान्य भौतिक पदार्थ दीखता है, उसमें कला अलौकिक शोभा देखती है। परन्तु जो कुछ कल्पना दिखलाती है वह भी कहीं न कहीं वर्तमान है और उसका रूप होने से वह सत्य ही है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि सत्य और कला में सहज विरोध है।

जब 'वर्ड्सवर्थ' को प्रकृति में देख पड़ता है कि क्षुद्रातिक्षुद्र पुष्प उससे अति गम्भीर विचार कर रहा है—

> To me the meanest flower that blows can give,
> Thoughts that do often lie too deep for tears.

तब साधारण जन उसे फूल ही देखता है। कला में कल्पना और भावना का इतना स्थान है कि तुलसीदास जी बतलाते हैं—

> जेहि के रही भावना जैसी। प्रभु-मूरति देखी तिन तैसी॥

तुलसीदास अपनी कल्पना में हिमालय पर्वत को क्या देख रहे हैं कि

> शैल सकल जहँ लगि जगमाहीं।
> लघु विशाल नहिं बरनि सिराहीं॥
> बन सागर नद नदी तलावा।
> हिमि-गिरि सब कहँ नेवत पठावा॥

तुलसीदास को इन भौतिक पदार्थों में एक अलौकिक सत्य दीख रहा है और इतर साधारण जन को केवल भौतिक रूप। महाराज पुरूरवा उर्वशी की खोज में विह्वल हैं। ऊपर एक मेघ दिखाई पड़ता है, उसे वे समझते हैं कि राक्षस है जो उर्वशी को हरे लिये जा रहा है।

नवजलधरः सन्नद्धोऽयं न दृप्तनिशाचरः,
सुरधनुरिदन्दूराकृष्टं न नाम शरासनम् ॥
अयमपि पटुर्धारासारो न बाणपरम्परा,
कनकनिकषस्निग्धा विद्युत् प्रिया नोर्वशी ॥

यह कालिदास की कला-चातुरी ही तो है। पुरूरवा राजहंस के कूजन को यदि उर्वशी के नूपुर का शिञ्जन समझ रहा है तो, दूसरी ओर, यह कल्पना करता है कि हंस उसकी प्रिया का समाचार कहेगा। भौंरा, चमेली, चम्पा, केतकी, उसकी बात बतलावेंगे। जब शकुन्तला महर्षि कण्व की तपोभूमि से विदा होती है तब उसे वृक्षादि वस्त्र और रागरङ्ग देते हैं। यह सब कालिदास की कल्पना का खेल है कि—

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणामाङ्गल्यमाविष्कृतं,
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित् ॥
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ॥

सीता जी को ढूँढ़ते ढूँढ़ते रामजी विकल-मति हो पूछते हैं—

हे खगमृग, हे मधुकर-श्रेणी।
तुम देखी सीता मृगनयनी ॥
खञ्जन, शुक, कपोत, मृग, मीना।
मधुप-निकर, कोकिला प्रवीना ॥

यह तुलसीदासजी का खींचा हुआ चित्र है। इन सबमें वास्तविक तथ्य बहुत थोड़ा अथवा इतना ही है कि राम का जानकी पर अथवा पुरूरवा का उर्वशी पर अत्यन्त स्नेह है। यह गम्भीर प्रेम का भावमय चित्र है। यद्यपि यह गम्भीर प्रेम का चित्र है, और एक सत्य का द्योतक है, तथापि यह अक्षरशः सत्य नहीं है। यही सत्य और कला का पारस्परिक सम्बन्ध है।

अब कला और सत्य के सम्बन्ध में इस बात का विचार करते हैं कि कला किसी समय के लोगों की प्रकृतियां तथा सामाजिक और नैतिक अवस्थाओं को कहाँ तक प्रकाश करती और उनसे प्रेरित और प्रभावित होती है। किसी युग-विशेष के लोगों की सामाजिक या नैतिक, आर्थिक या राजनैतिक, अवस्था, उनकी प्रकृति अथवा प्रवृत्ति किसी काव्य या नाटक, चित्र अथवा शिल्प-कला की उत्पत्ति का कारण होती है। तुलसीदासजी की रामायण उनके समय की अवस्थाओं से प्रभावित हुई थी; बाबू मैथिलीशरण गुप्त की भारत-भारती आधुनिक अवस्थाओं से प्रभावित है। पर इस सत्यता को तूल नहीं दे सकते। कला अपने समय का उतना चित्र नहीं खींचती जितना कल्पनात्मक समय का, और इस विषय में तत्त्वदृष्टि से यह कह सकते हैं कि सत्य से नहीं, असत्य से कला का सम्बन्ध अधिक है। वर्तमान अवस्थाओं से सन्तुष्ट या असन्तुष्ट होकर किसी कला को भले ही जन्म दीजिए, पर वह कला तभी उत्तम होगी जब उसमें सत्य का राज्य बहुत कम और कल्पना का विशिष्ट हो।

समय कला का जनयिता नहीं, किन्तु समय-विशेष कला की सन्तान है। रोमन-साम्राज्य के सम्राटों की जो मूर्तियाँ देखने में आती हैं उनसे यह अनुमान होता है कि रोमन-साम्राज्य का नाश 'उन भयानक अधरों और बड़े बड़े कामुक जबड़ों में' है। परन्तु इतिहास की दूसरी ही कुछ साखी है। जापान के चित्रों में जापानी जैसे चित्रित किये जाते हैं वैसे वे वास्तव में नहीं हैं। क्या रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद वैसे ही थे जैसे कि वे चित्रों में दिखाये जाते हैं? कदापि नहीं। सच तो यह है कि हम भूतकाल को कला के नेत्रों से देखने लगते हैं, और कला ने "कभी सत्य नहीं कहा है।"

जब हम जीव और प्रकृति को कला में अनुचित स्थान देने लगते हैं, तब कला का रूप थोथा हो जाता

है। जीव और प्रकृति कला के लिए सामग्री हैं—गारा हैं—जिसकी सहायता से कला की शानदार मंज़िल उठेगी। सत्य वे पङ्ख हैं जिनको आधार पाकर कला वायुयान की भाँति भूमि से उड़कर ऊँची से ऊँची दूरी तक आकाशमण्डल में मँडराएगी। कला में से कल्पना और भावना को निकालकर उसमें 'जीव' और 'प्रकृति' अर्थात् सत्य को बसाइए, फिर देखिए कि कला बेचारी बिना वेश-भूषा के रह जाती है! सारांश यह है कि यद्यपि सत्य और कला का स्वाभाविक वैर नहीं है तथापि कला में सत्य का स्थान गौण और कल्पना और भावना, अथवा यों कहिए कि सौन्दर्य्य की पूर्णता ही का स्थान प्रधान है।

चन्द्रबली त्रिपाठी।

सामाजिक पन्थ (Socialism)

सम्पत्ति-शास्त्र की दृष्टि से वर्त्तमान युग 'प्रचण्ड कारख़ानों' का है। इसके पहले का युग 'घरेलू धन्धों' का था। 'घरेलू धन्धों' के युग में मनुष्य-समाज की सब श्रेणियां, सम्पत्ति की दृष्टि से, क़रीब क़रीब बराबर थीं। परन्तु प्रचण्ड कार-ख़ाने की प्रथा ने अमीर और ग़रीब की स्थिति में ज़मीन-आसमान का अन्तर कर दिया है। इस प्रथा में एक बड़ा भारी दोष है। इस प्रथा से जो अमीर है, वह दिनों-दिन अमीर ही अमीर होता जाता है; और जो ग़रीब है वह भरपेट खाना भी उपार्जित नहीं कर सकता। इस प्रकार इस प्रथा के कारण सम्पत्ति की बँटाई में एक बड़ी विषमता पैदा होती है। इस विषमता को दूर करने के लिए सामाजिक पन्थ यानी सोशलिज़्म (Socialism) का उदय हुआ है।

सन् १८३४ ई० में इँगलिस्तान के प्रसिद्ध समाज-सुधारक राबर्ट ओवेन ने मज़दूरों की एक परिषद् बनाई। इस परिषद् के सम्बन्ध में सबसे पहले 'सोशलिज़्म' पद का उपयोग किया गया था। तब से यह पद शीघ्र ही सम्पत्ति-शास्त्र का एक विशेष पारिभाषिक शब्द बन गया। इस तरह यह शब्द अत्यन्त अर्वाचीन है। परन्तु यह पन्थ अपने इस नामकरण के कई वर्ष पहले ही से विद्यमान था। इसकी उत्पत्ति सम्पत्ति-शास्त्र के अभिमत पन्थ (Classical school) से है। इसके कई एक सिद्धान्त 'व्यापारीय पन्थ' (Mercantile System) से मिलते-जुलते हैं। आज-कल इस पन्थ का यूरोप में बड़ा ज़ोर है। इसका साहित्य भी उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।

ऊपर कहा जा चुका है कि अर्वाचीन औद्योगिक-क्रान्ति का परिणाम समाज में साम्पत्तिक विषमता पैदा करने पर अधिक हुआ। यह तीव्र विषमता लोगों के चित्त में बहुत चुभी। वह उन्हें अन्याय के समान मालूम होने लगी। इसलिए समाज में, सम्पत्ति की बांट को, बराबरी के तत्त्व पर क़ायम करने की बुद्धि से या समाज के चाल-चलन और औद्योगिक व्यवस्था में हेर-फेर करने के विचार से अथवा समाज की बेढङ्गी साम्पत्तिक विषमता को दूर करने के अभिप्राय से, जो जो प्रयत्न हुए उनकी पूर्ण मीमांसा कर, जो संस्था उनका समर्थन करती है वह सामाजिक पन्थ है। अपना यह उद्देश समाज में प्रचलित करने के लिए सामाजिक पन्थ सीधी ही नहीं, किन्तु वक्र नीति का भी अवलम्बन करता है। उद्देश-सिद्धि के लिए वह कभी किसी व्यक्ति-विशेष द्वारा, परोपकार बुद्धि से बताये गये मार्ग को स्वीकार करता है, कभी सरकारी क़ानूनों की सहायता चाहता है, और कभी कभी क्रान्ति करने पर भी कटिबद्ध हो जाता है। इस तरह सामाजिक पन्थ के प्रथमतः दो भाग हैं। एक वह जो ऊपर लिखा आन्दोलन समाज में शान्तिपूर्वक किया चाहता है; दूसरा वह जो क्रान्तिपूर्वक। शान्ति-मूलक सामाजिक पथ के चार उपभेद किये गये हैं—(१) व्यक्तिक सामाजिक पन्थ, (२) राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ, (३) समावेशक सामाजिक पन्थ और (४) संयुक्त सामाजिक पन्थ। क्रान्तिमूलक सामाजिक पन्थ के दो उपभेद हैं—(१) अराजक और (२) विध्वंसक।

नीचे बताये वृक्ष और विवरण से ये भेद और उपभेद ठीक ठीक शीघ्र ही ध्यान में आ जायँगे।

(सम्पत्ति-शास्त्र) अभिमत पन्थ
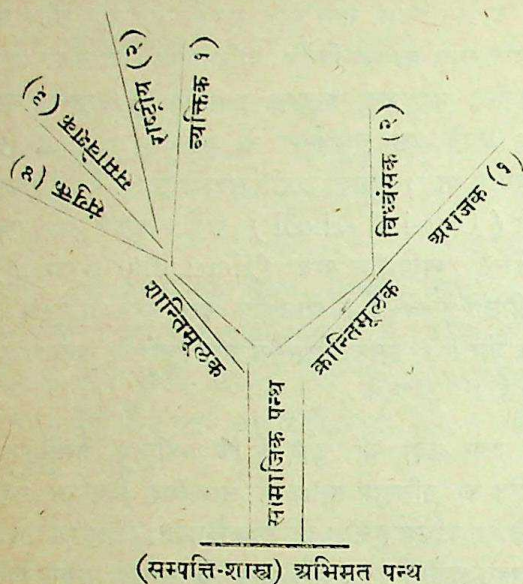
(१) व्यक्तिक सामाजिक पन्थ।

औद्योगिक क्रान्ति से मज़दूरों की साम्पत्तिक स्थिति पर बड़ा भारी असर पड़ा। उनकी स्थिति दिनों-दिन कष्ट-मय होती चली। अमीर और ग़रीब में बड़ा भारी अन्तर होने लगा। इस अन्तर को कम करने के लिए कुछ परोपकारी व्यक्तियों ने कई एक कल्पनायें और सिद्धान्त निकाले। उन्होंने केवल अपनी हिम्मत से ये कल्पनायें और सिद्धान्त समाज में प्रचलित करने के प्रयत्न किये। इसीसे इस मतवालों का नाम व्यक्तिक सामाजिक पन्थ पड़ा। इस पन्थ के अनुयायी, मज़दूर-सरीखी सम्पत्ति-हीन श्रेणी से मिलते हैं। उन्हें अपने भले बुरे का ज्ञान दिया जाता है, और उनमें सङ्घ-शक्ति क़ायम करने की चेष्टा की जाती है।

(२) राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ।

यह पन्थ राष्ट्रीय सरकार की सहायता से क़ायदे और क़ानून बनवाकर, सम्पत्ति का योग्य विभाग करने के प्रयत्न में रहता है। व्यक्तिक सामाजिक पन्थ स्वावलम्बी है। वह अपनी ख़ुशी से, बिना किसीकी सहायता के, समाज में सुधार किया चाहता है। परन्तु राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ का सारा भरोसा राष्ट्र की सरकार और उसके क़ायदों पर है। इसके मतानुसार प्रजा के जान-माल की रक्षा करना ही सरकार का कुल कार्य्य नहीं। जन-समाज को सुख देना और उन्हें सुस्थिति पर लाना भी सरकार का एक मुख्य कर्त्तव्य है। सामाजिक स्थिति में सरकारी क़ायदों के ज़रिये हेर-फेर करना जितना सहज है उतना और कुछ भी नहीं। इसलिए इस पन्थ का कहना है कि सरकार हमारे कहे अनुसार देश में अच्छे अच्छे क़ायदे बनावे।

(३) समावेशक सामाजिक पन्थ।

यह वह पन्थ है जो समाज की सब श्रेणी के पुरुषों का अपने एक पन्थ में समावेश करना चाहता है। इसका मत राष्ट्रीय पन्थ के मत से मिलता-जुलता है। इसके मतानुसार सम्पत्ति उत्पन्न करने के दो मुख्य साधन—पूँजी और ज़मीन—प्रचण्ड कारख़ाने की प्रथा के कारण देश के कुछ इने-गिने श्रीमान् लोगों के हाथ में चले गये हैं। इससे मज़दूरों को अपने परिश्रम का पूरा फल नहीं मिलता। मज़दूरों के परिश्रम का सब फल, पूँजीवाले और ज़मींनदार बीच ही में लूट लेते हैं। इसलिए पूँजी और ज़मीन पर किसी भी एक विशेष व्यक्ति का अधिकार न होना चाहिए। देश की सब ज़मीन और पूँजी पर सिर्फ़ सरकार का ही स्वामित्व रहे और देश के सब कारख़ाने और धन्धे भी सरकारी हो जावें। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य सरकार का नौकर होकर रहेगा और किसीको भी बिना मिहनत किये सम्पत्ति का हिस्सा न मिलेगा। इस तरह देश में सम्पत्ति की बांट समान तत्त्व पर आ जायगी। उपभोग्य और जङ्गम वस्तुओं पर व्यक्ति-विशेष का स्वामित्व भले ही रहे, परन्तु सम्पत्ति के उत्पन्न करनेवाले साधनों पर सिर्फ़ सरकार का ही आधिपत्य रहे।

(४) संयुक्त सामाजिक पन्थ।

इस पन्थ के सिद्धान्त हमारे हिन्दू-सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा के सिद्धान्तों से बहुत कुछ मिलते हैं। हिन्दू-सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा का विकसित स्वरूप ही मानो इस पन्थ का आदर्श है। इस पन्थ के मतानुसार देश की किसी भी

वस्तु पर किसी एक व्यक्ति विशेष का पूर्ण अधिकार रहना, वर्तमान सब अनर्थों का मूल है। इसलिए यह पन्थ चाहता है कि देश की सब सम्पत्ति पर सब लोगों का संयुक्त अधिकार हो। हिन्दू कुटुम्ब-प्रथा में, एक कुटुम्ब की सब चीज़ों पर किसी एक व्यक्ति-विशेष का पूरा अधिकार नहीं रहता। कुटुम्ब के सब लोग अलग अलग कमाते हैं, परन्तु चीज़ों का उपभोग सब मिलकर करते हैं। कुटुम्ब के किसी भी एक पुरुष को यह अधिकार नहीं कि वह उस कुटुम्ब की ज़मीन या पूँजी को अपनी इच्छानुसार किसी तीसरे को दे दे, या अपने मरने पर किसी तीसरे ही पुरुष के नाम उनका वसीयतनामा लिख दे। वह ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि वे चीज़ें उस ख़ास व्यक्ति की नहीं, किन्तु संयुक्त कुटुम्ब की हैं। उसका अधिकारी संयुक्त कुटुम्ब है, कोई एक विशेष व्यक्ति नहीं। इसी प्रकार देश की सब सम्पत्ति पर सब लोगों का संयुक्त अधिकार हो। देश की किसी भी वस्तु पर किसी भी ख़ास व्यक्ति का इतना अधिकार न हो कि वह उसे इच्छानुसार बर्त सके। इस दशा में कुटुम्ब के समान देश के सब लोग एक रूप हो जायँगे। तब सम्पत्ति की बाँट का प्रश्न ही न निकलेगा, और सब सामाजिक अनर्थों की इतिश्री हो जायगी।

व्यक्तिक सामाजिक पन्थ अपनी ख़ुशी से स्वयं परिश्रम करके, मज़दूरों की गिरी हुई दशा सुधारने का प्रयत्न करता है। मज़दूर-सङ्घ सहकारी बङ्क, आदि इसी पन्थ के सुधार हैं जो प्रायः लगातार सब देशों को सर्वमान्य हैं। राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ के नये सुधार कुछ भी नहीं। वह सरकार की सहायता से व्यक्तिक सामाजिक पन्थ के सुधार समाज में प्रचलित करना चाहता है। कारख़ाने के नये क़ायदे, प्राथमिक मुफ़्त शिक्षा इत्यादि इस पन्थ के साधारण सुधार हैं। और सब पन्थों की अपेक्षा सभ्य देशों में इस पन्थ का बड़ा मान है। सभ्य देशों की सरकार इसका कहना मानती है। समावेशक पन्थ राष्ट्रीय पन्थ से एक क़दम बढ़कर है। इसके अनुसार देश की सम्पत्ति उत्पन्न करने के सब साधनों और ज़मीन पर सिर्फ़ सरकार का ही स्वामित्व रहे। कोई भी पुरुष, सिर्फ़ अपने बढ़ने के लिए, सम्पत्ति उत्पन्न करने के किसी भी साधन का अधिकारी न हो। संयुक्त सामाजिक पन्थ के अनुसार देश का कोई भी पुरुष, देश की किसी भी वस्तु का स्वतन्त्र अधिकारी न बने। इसे यूरोप की वर्तमान सामाजिक रचना बिलकुल पसन्द नहीं, क्योंकि वह रचना 'ख़ानगी जायदाद' की कल्पना पर बनी हुई है। 'यह मेरा है, यह तेरा है' यही जिस समाज-रचना का प्रमुख अङ्ग है, ऐसी रचना का रहना ही ठीक नहीं। वह एकदम दूर कर दी जाय और उसकी जगह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाली कल्पना प्रचलित की जाय। इस पिछली बात पर ही यह पन्थ विशेष ज़ोर देता है।

क्रान्तिमूलक सामाजिक पन्थ

अराजक पन्थ और विध्वंसक पन्थ

(Anarchism and Bolshevism)

ध्यानपूर्वक देखने से मालूम हो जायगा कि ये दोनों पन्थ ऊपर लिखे संयुक्त सामाजिक पन्थ से केवल कुछ डग आगे हैं। संयुक्त सामाजिक पन्थ के अनुसार 'ख़ानगी जायदाद' की कल्पना समाज के सब अनर्थों की मूल है। अराजक और विध्वंसक पन्थ के अनुसार देश की समाज और सरकार ही सब मानव जाति के आपत्तियों की मूल हैं। समाज और सरकार ही के कारण 'ख़ानगी जायदाद' का उदय होता है। समाज और सरकार ही 'ख़ानगी जायदाद' की वस्तुओं का रक्षण करना अपना मुख्य धर्म समझती हैं। इसलिए समाज और सरकार को उठा देना ही हर एक मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है। इस पन्थ का मत है कि प्राकृतिक नियमों के अनुसार मनुष्य-प्राणी जन्म से और और जीवों के समान स्वतन्त्र है। परन्तु समाज और सरकार ने मनुष्य प्राणी को उसकी इस स्वाभाविक स्वतन्त्रता से वञ्चित कर दिया है। हर एक मनुष्य इन दोनों का गुलाम बन गया है। इनके सबब वह अपने जीवन का स्वच्छन्द उपभोग नहीं कर सकता। वह कोई कार्य्य करने में स्वतन्त्र नहीं, समाज और सरकार जैसा कहती है, जैसा चाहती है, ठीक वैसा ही वह कहता और करता है। इस प्रकार उसका सारा जीवन बनावटी और दुःखमय है। वह अपनी प्रकृति-दत्त शक्तियों से स्वच्छन्द काम नहीं ले सकता। इसलिए यदि सच्चे सुख की आवश्यकता हो तो प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि पहले वह इन दोनों को जड़-मूल से मिटा देवे।

बुकानन और प्रूहों (Proudhon) इन पन्थों के जनक हैं। इनके मत से 'ख़ानगी जायदाद' केवल चोरी की जायदाद है। ऐसी जायदाद की रक्षा समाज और सरकार करती है। इसलिए समाज और सरकार भी चोर हैं; और दोनों को उठा देना मनुष्य के लिए हितकारी है। इस पन्थ के अनुयायी स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि हम सब प्रकार की सत्ता के शत्रु हैं।

विध्वंसक पन्थ का जन्म रूस में हुआ। अराजक पन्थ के उद्देश इसके उद्देश से मिलते-जुलते हैं। परन्तु विध्वंसक पन्थ अराजक पन्थ से अधिक भयङ्कर है। अराजक पन्थ वर्तमान समाज और सरकार को मिटाकर उसके स्थान पर एक नया आदर्श स्थापित करना चाहता है। विध्वंसक पन्थ का उद्देश केवल मार-काट और नष्ट-भ्रष्ट करना है। रूस की वर्तमान स्थिति ने इस पन्थ को वहां इतना ज़ोरदार बना दिया।

इस प्रकार, अराजक तथा समावेशक और संयुक्त सामाजिक पन्थों का उद्देश समाज की फिर से रचना करने का है। परन्तु आज तक इन पन्थों में से किसी एक ने भी कोई कल्याणकारी बात स्थापित नहीं की। इसलिए विचारवान् लोग इन पन्थों से सदैव दूर रहते हैं।

सारांश, पूरा सामाजिक पन्थ 'ख़ानगी जायदाद' की कल्पना का घोर विरोधी है। वह इसे समाज से उठा देना चाहता है। अब हमें यह देखना चाहिए कि इनमें से किस पन्थ का उद्देश अधिक न्याययुक्त माना गया है।

अरिस्टाटल सरीखे यूनानी विद्वानों के मतानुसार संयुक्त सामाजिक पन्थी सच्चे मनुष्य-स्वभाव से परिचित नहीं। यह मानी हुई बात है कि जब तक किसी मनुष्य को यह न मालूम हो कि 'यह चीज़ मेरी है' तब तक उसके हाथ से जी तोड़ कर सच्चा परिश्रम न होगा। अँगरेज़ी कहावत 'Every body's work is no body's work' (सबका काम किसीका भी काम नहीं) बिलकुल सत्य है। इसलिए इन विद्वानों के अनुसार 'ख़ानगी जायदाद' की कल्पना मनुष्य की उन्नति का एक-मात्र उत्तम उपाय है। आज-कल मनुष्य-समाज ने जो कुछ उन्नति की है, वह सब इसी कल्पना के पाये पर की है। इस प्रकार यह कल्पना ठीक ही है और इसकी रक्षा करना प्रत्येक समाज और सरकार का मुख्य धर्म है। सामाजिक पन्थियों ने 'ख़ानगी जायदाद' की कल्पना को समाज से निकाल देने का भी बहुत कुछ प्रयत्न किया; परन्तु वे निष्फल रहे। तो भी यह सिद्ध है कि यह प्रथा समाज को हानिकारक नहीं।

राबर्ट ओवेन एक प्रसिद्ध सामाजिक-पन्थी सुधारक हो गया है जिसने सामाजिक-पन्थी आदर्श को समाज में फैलाने का सबसे पहले प्रयत्न किया है। इस सत्पुरुष के निज के कई कारख़ाने थे। उनमें वह बालकों को नियुक्त करता, और उनके आरोग्य तथा शिक्षा पर विशेष ध्यान देता। रात्रि की पाठशालायें खोलने का सबसे पहला प्रयत्न इसी सत्पुरुष ने किया है; कारख़ाने के क़ायदे बनवाने में इसने बड़ी मिहनत उठाई है। इसने अपनी सारी सम्पत्ति मज़दूरों की दशा सुधारने में लगा दी। इसका विचार था कि अन्दाज़न १२०० लोगों के लिए १२०० या १८०० एकड़ ज़मीन ख़रीदें। ये सब लोग एक ही इमारत में रहें, और उत्पत्ति का हिस्सा सब मिलकर भोगें। फोरियर और सेंट साइमन के विचार भी ऐसे ही थे। वे चाहते थे कि सारे समाज की छोटी छोटी टोलियां बनाई जायँ। प्रत्येक टोली एक ही इमारत में रहे और यह अपना खेती का मुख्य धन्धा करे। परन्तु अगर कोई टोली चाहे तो दूसरा धन्धा भी कर सकती है। इस टोली में ख़ानगी मिलकियत और कुटुम्ब-प्रथा अवश्य हो; परन्तु श्रीमान् और ग़रीब सब इकट्ठे रहें। सबके परिश्रम से उत्पन्न की गई सम्पत्ति का ठीक हिस्सा प्रत्येक मनुष्य को मिले। बची हुई सम्पत्ति का ५/१२ हिस्सा 'श्रम' (मज़दूर) को, ४/१२ 'पूँजी' को, और ३/१२ 'बुद्धि' को दिया जाय। इस कल्पना के बताये मार्ग पर नये समाज स्थापित करने के बहुत बहुत प्रयत्न किये गये, परन्तु कहीं भी यश न मिला।

फरडिनण्ड लेज़ली जर्मनी में एक बड़ा प्रसिद्ध सामाजिक पन्थी हो गया है। जर्मनी में सामाजिक पन्थ की नींव इसीने डाली है। इसके मतानुसार पूँजी किसी विशेष व्यक्ति की न हो। पूँजी की अधिकारिणी सिर्फ़ देश की सरकार हो। यह सरकार मज़दूरों का धनोत्पादक सङ्घ बनावे। मज़दूरों की दुरवस्था का दूर करना सिर्फ़ इसी एक सुधार से हो सकता है। लेज़ली चाहता था कि राष्ट्र का मज़दूर अपनी अपनी स्थिति सुधारने का मार्ग स्वयं ढूँढ़

निकाले। परन्तु लेज़ली के अनुयायियों ने इस हलचल को राष्ट्रीयता का स्वरूप दे दिया।

जर्मनी का दूसरा प्रसिद्ध सामाजिक पन्थी कार्ल मार्क्स है। इसने सम्पत्ति-शास्त्र और सामाजिक पन्थ पर कई ग्रन्थ लिखे हैं। मार्क्स के पहले, लोग सामाजिक पन्थ की हँसी उड़ाते थे। वे उन्हें 'यूटोपियन्स' (हवाई महल बनानेवाले) कहा करते थे। सामाजिक पन्थ के सिद्धान्त उस समय ऐसे बेतुके जान पड़ते थे कि उनकी हँसी उड़ाना कोई कठिन न था। परन्तु मार्क्स ने, अपने ग्रन्थों में, अपनी विचार और तर्कना शक्ति से यह दिखा दिया कि सामाजिक पन्थी हवाई महल बनानेवाले नहीं हैं। उनके उद्देश न्याय-युक्त हैं, सत्य हैं, तर्कना से टक्कर लेनेवाले हैं और इस मानवी संसार में प्रचलित करने के लायक़ हैं।

इस लेखक का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पूँजी' है। यह अर्वाचीन सामाजिक पन्थियों का पवित्र ग्रन्थ है। इसमें मार्क्स ने सम्पत्ति-शास्त्र के कई पुराने तत्त्वों का खण्डन किया है और कई नये तत्त्व और सिद्धान्त ढूँढ़ निकाले हैं। इसके कुछ नये तत्त्व और सिद्धान्त ये हैं—

(१) केवल पैसा ही पूँजी है।

(२) विनिमय से पदार्थों की क़ीमत नहीं बढ़ती। पदार्थों की क़ीमत पूँजी पर अवलम्बित नहीं। पदार्थों की क़ीमत सिर्फ़ श्रम पर अवलम्बित है। श्रम ही सम्पत्ति उत्पन्न करने का मुख्य साधन है।

(३) "अधिक मज़दूरी देने से मज़दूरों की संख्या बढ़ती है। अधिक मज़दूरों के होने से मज़दूरी कम हो जाती है। इस प्रकार मज़दूरी की दर मज़दूरों पर ही अवलम्बित है।" माल्थस की यह उक्ति मार्क्स को बिलकुल पसन्द नहीं। मार्क्स के मतानुसार व्यापार की मन्दी-तेज़ी से पूँजी की कमी-अधिकता होती है। पूँजी के इस घटाव-बढ़ाव से ऐसा मिथ्याभास होता है, मानों जन-संख्या में परिवर्त्तन हो रहा हो। परन्तु यथार्थ में जन-संख्या में इतनी जल्दी परिवर्तन नहीं हो सकता। उसके लिए कम से कम १८ साल लगते हैं।

सारांश, मार्क्स के मतानुसार सब सम्पत्ति 'श्रम' से उत्पन्न होती है। पूँजीवाले बिना कुछ किये, बैठे-बैठाये, बीच ही में नफ़ा उड़ाते हैं, और श्रम का योग्य बदला मज़दूर को नहीं देते! इस अनर्थ का मूल 'ख़ानगी जायदाद' की कल्पना है। इसलिए ज़मीन, 'ख़ानगी जायदाद' में कभी न गिनी जावे। उस पर सारे राष्ट्र का अधिकार हो। पूँजी और कारख़ाने सरकारी विभाग हो जावें। इस प्रकार सुधार किये बिना, सम्पत्ति के सच्चे उत्पन्न करनेवाले, मज़दूरों की अवस्था न सुधरेगी। मार्क्स के ये नये विचार उस समय की सरकार अमल में लाने के लिए तैयार न थी। इसलिए कई एक सामाजिक पन्थों ने ऐसी सरकार को उठाकर उसके स्थान में नया सुधार करने के लिए उद्योग किया। इसमें वे यशस्वी न हुए। तब अराजक और ध्वंसक पन्थों की उत्पत्ति हुई।

इन सब सामाजिक पन्थों में आज-कल केवल राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ दिनों-दिन उन्नति कर रहा है। सुधरे हुए देशों की सब सरकारों पर इसका प्रभाव है। इसका उदय जर्मनी में हुआ था। जर्मनी में जब क्रान्ति-कारक सामाजिक पन्थ का ज़ोर बढ़ने लगा तब जर्मन सरकार और वहां के प्रसिद्ध महापुरुष प्रिन्स बिसमार्क ने उसे दबाने के लिए इस पन्थ का समर्थन किया और इसके मतानुसार देश के क़ानून-क़ायदों में सुधार करना आरम्भ किया। बिसमार्क को इस काम में सलाह देनेवाला सामाजिक पन्थ का प्रसिद्ध लेखक 'वागनर' था।

वागनर के मतानुसार समाज की भिन्न भिन्न श्रेणियों में प्रेमभाव उत्पन्न करना, अन्याय का प्रतिकार कर जहां तक बने सम्पत्ति का विभाग समान-तत्त्व पर करना, कनिष्ठ और मध्यम श्रेणी के लोगों की नैतिक और साम्पत्तिक दशा के सुधार के साथ क़ायदों द्वारा सरकारी सारे समाज को उन्नति के मार्ग पर लाने की कोशिश करना राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ के मुख्य उद्देश हैं। इसका कहना है कि सरकार अपने पुराने सङ्कीर्ण विचारों को त्याग दे। कनिष्ठ श्रेणी के लोगों की दशा सुधारने के लिए सरकार औद्योगिक कार्यों में अवश्य हेर-फेर करे। वह मज़दूरों में स्वावलम्बन, सहकारिता, सङ्घ इत्यादि के तत्त्व फैलावे। क़ायदे से मज़दूरी के घन्टे, छुट्टियां इत्यादि नियत करे। कारख़ाने हवादार, आरोग्य-कारी तथा जोखिम से रहित, बनवाने पर विशेष ध्यान देवे। मज़दूरों को पेन्शन दिलवाने, उनके

जीवन का बीमा करवाने, उनकी बीमारी में तथा उन्हें चोट लगने पर उनका पेट पालने की व्यवस्था करे। अगर कहीं एकही पुरुष के हाथ में सम्पत्ति की उत्पत्ति का साधन चला जाय, और वहां मज़दूरों पर ज़ुल्म होने का डर हो जाय, तो सरकार को चाहिए कि ऐसे कारख़ाने वह खुद अपने हाथ में ले ले।

वागनर के नीचे लिखे विचार बहुत प्रसिद्ध हैं—

(१) देश के जङ्गल की मालिकी सरकार अथवा किसी सार्वजनिक संस्था के पास हो। ऐसी स्थावर सम्पत्ति पर अनुपार्जित उत्पत्ति बहुत अधिक होती है। अगर यह उत्पत्ति सरकारी हो जायगी तो लोगों का कर बहुत कुछ कम हो जायगा।

(२) खेती की ज़मीन के सम्बन्ध से देश में बड़ी बड़ी जमींदारियों का होना देश के लिए विशेष हानिकारक है। इससे कुछ गिने गिनाये लोग ही ज़मीन के मालिक बन जाते हैं और इस कारण से ज़मीन का सार्वजनिक उपयोग नहीं होने पाता। इसलिए देश में छोटे छोटे किसान बनाये जावें और ज़मीन पर उन्हें पूर्ण अधिकार दिया जावे।

(३) शहर में ज़मीन पर किसी भी पुरुष का कभी ख़ानगी अधिकार न हो। ऐसा होने से ज़मीन की क़ीमत कल्पना से अधिक बढ़ जाती है; और शहर में रहने के लिए ग़रीबों को स्थान मिलना कठिन हो जाता है।

(४) रेलवे, सड़क, नहर सरीखे आवागमन के साधन सदैव सरकारी हों। रेलवे का उद्देश द्रव्य कमाने का न हो। सस्ते में लोगों को या उनकी चीज़ों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचा देना ही उसका मुख्य उद्देश हो। रेलवे राष्ट्रीय हो जाने पर रेलवे कम्पनियां प्रजा की सम्पत्ति को निचोड़ न सकेंगी और उनके मुनाफ़े की अनुपार्जित सम्पत्ति का सारा फ़ायदा सरकार के सब लोगों को एक समान मिलेगा।

(५) मिट्टी-तेल, नमक, पत्थर का कोयला, ये पदार्थ सब लोग एक समान उपयोग में लाते हैं; इसलिए ऐसे पदार्थों की खानें सरकारी हों।

वागनर प्रिन्स विसमार्क का मुख्य मन्त्री था। इसलिए उसके विचारों का बहुतसा भाग जर्मन सरकार ने अपने राज्य में प्रचारित कर दिया। दूसरे दूसरे देशों की सरकारें भी उन्हें धीरे धीरे अपने अपने राज्य में फैलाती जा रही हैं। इससे यह मालूम होता है कि और और पन्थों की अपेक्षा राष्ट्रीय पन्थ अधिक यशस्वी हुआ है। उसके उद्देश और उसकी कल्पनायें बहुत कुछ सुसाध्य और न्याययुक्त मानी जाती हैं।*

लक्ष्मण गोविन्द आठले।

अध्यात्म-विषयक कुछ अनुमान।

इस विश्व की रचना क्यों और किस प्रकार हुई? यह विश्व किस तरफ़ गति कर रहा है और क्यों कर रहा है? यहाँ कोई नियम हैं या नहीं? यदि हैं तो कौन से और उनका प्रवर्तक कौन है? यदि नहीं तो इस रचना का क्या अर्थ है? या यह एक उद्देश-हीन कार्य है जो अनादि काल से चला आ रहा है और न जाने कब तक चलता रहेगा? इत्यादि। इस प्रकार की सैकड़ों बातें हैं, जिनके समाधान-कारक उत्तर नहीं मिलते, जिसके कारण लोग समझते हैं कि इस सृष्टि का प्रवर्तक ईश्वर है, और उसके नियम समझ में नहीं आ सकते। कोई कोई यह भी कहते हैं कि इस सृष्टि का कोई विशेष अर्थ नहीं है, यह ऐसी ही है और ऐसी ही चलती रहेगी। यहाँ कोई नियम नहीं है, और न कोई शासक है। कुछ कारणों से पृथ्वी सूर्य के आसपास चलती है; अन्य कई कारणों से आकर्षण होता है। कुछ कारणों से उत्पत्ति हो जाती है, अन्य कई कारणों से मृत्यु, इत्यादि। ऐसे अनेक

---

* फ़र्ग्युसन कालेज, पूना के प्रसिद्ध सम्पत्ति-शास्त्री प्रोफ़ेसर गो० चि० भाटे एम० ए० की एक विवेचना के विशेष आश्रय पर लिखित—लेखक।

कारण बतलाकर कुछ बातें समझा दी जाती हैं। इसी प्रकार अपने समाधान के लिए हमने सैकड़ों मत बना लिये हैं और बनाते जाते हैं।

परन्तु क्या इनसे हमारी शङ्काओं का समाधान हो जाता है ? जितना जितना हम अधिक विचार करते हैं उतनी ही हमारी जिज्ञासा क्या अधिक नहीं बढ़ती ? हम देखते हैं कि सब देशों में और सब कालों में विश्व के विषय में मनुष्य की यह जिज्ञासा बढ़ती ही रही है। इसी जिज्ञासा के कारण मनुष्य बहुत कुछ जानने और समझने लगा है, और अवश्य आगे बहुत कुछ जानने और समझने लगेगा। परन्तु यह जिज्ञासा क्या है और किस जिज्ञासु की यह जिज्ञासा है ? यदि मनुष्य-मात्र की थोड़े या अधिक अंशों में यह जिज्ञासा है तो इस प्रकार मनुष्य-मात्र के लिए इस जिज्ञासा के होने का क्या कारण है ? और इस जिज्ञासा का रखनेवाला यह मनुष्य ही क्या वस्तु है ?

इस जिज्ञासा और जिज्ञासु का विचार ही हमारे यथार्थ ज्ञान की जड़ है। अब प्रथम हम इस बात का विचार करेंगे कि यह जिज्ञासु—यह मनुष्य—क्या है ?

एक बीज अङ्कुर होकर ज़मीन से निकलता है। उसमें पल्लव आने लगते हैं, कली आती है, फूल खिलता है, फल निकलता है। मनुष्य अपने बाल्य-काल से जानने की चेष्टा करता हुआ पाया जाता है, अन्त तक उसकी यह चेष्टा क़ायम रहती है और अन्त में उसका ज्ञान भी बाल्यकाल की अपेक्षा बहुत अधिक हो जाता है। मनुष्य के शरीर में जानने की चेष्टा करनेवाली यह क्या वस्तु है ? अच्छी तरह विचार करने से मालूम होता है कि मनुष्य के शरीर में एक अद्भुत, अदृश्य—जागृत—शक्ति विद्यमान है, जिसके बिना मनुष्य मनुष्य ही नहीं, और उसमें जो जिज्ञासा पाई जाती है वह इसी शक्ति की प्रेरणा है। इस शक्ति को हम, आत्मा कहें वा अन्य कोई नाम दें, परन्तु शक्ति का अस्तित्व मनुष्य-मात्र में प्रतीत होता है। अधिक विचार करने से मालूम होगा कि यह शक्ति न केवल मनुष्य-मात्र में है, परन्तु वृक्षों में, प्राणियों में—विश्व में—भी यही शक्ति व्याप्त है। (विस्तार-भय से यहाँ अधिक नहीं लिखा जा सकता। आधुनिक आधिभौतिक शास्त्रवाले भी इस बात को मानने लगे हैं कि परमाणुओं में भी इसी प्रकार की शक्ति का अस्तित्व माने बिना बहुत से विज्ञान के सिद्धान्त नहीं समझाये जा सकते।) इतना ही नहीं, जिस प्रकार मनुष्यों में जिज्ञासा की शक्ति स्वाभाविक है उसी प्रकार, चाहे हम इस बात को समझ सकें या नहीं, वृक्षों में, प्राणियों में, सब पदार्थों में, जिनमें यही शक्ति व्याप्त है, जिज्ञासा की शक्ति स्वभाव से पाई जायगी। यह जिज्ञासा क्या है, इसका विचार करने से यह बात कुछ और स्पष्ट हो जावेगी।

यह जिज्ञासा और कुछ नहीं है, आत्मा का—उस शक्ति का—अपना यथार्थ स्वरूप जानने की इच्छा है—अपना विकास करते हुए पूर्णत्व को पहुँचने का प्रयत्न है। इस प्रकार विकास करते रहना इस शक्ति का स्वभाव है—नियम है। किसी किसी स्थिति में, यथा जड़ पदार्थों में, यह शक्ति अस्वयंवेद्य (Unconscious) रहती है, परन्तु फिर भी विकास करती ही रहती है। आगे चलकर इसी विकास-द्वारा जब वह स्वयंवेद्य (Conscious) हो जाती है तब भी यह विकास होना क़ायम ही रहता है। यह बात आगे चलकर स्पष्ट हो जायगी। यदि मैं यह विचार करूँ—और इस प्रकार के विचार के लिए आधार है जो आगे स्पष्ट होगा—कि मैं एक परमाणु से लगाकर अनेक योनियों में होता हुआ—वृक्ष, प्राणी इत्यादि में फिरता हुआ—मनुष्य-योनि को प्राप्त हुआ हूँ, तो मुझे अपनी आत्मा के विकास का स्वरूप, यह समझते हुए कि वही परमाणु का आत्मा

विकास करता हुआ मनुष्य-योनि को प्राप्त हुआ है, स्पष्ट रूप से मालूम होगा और इसी प्रकार यदि विकास होता चला जायगा तो अवश्य ही, कभी न कभी, वह आत्मा पूर्णत्व को पहुँच जायगा। इस रीति से ज्ञात होगा कि हम जिसे जिज्ञासा कहते हैं वह वास्तव में उस शक्ति का पूर्णत्व को पहुँचने का प्रयत्न है और इस प्रकार का प्रयत्न सब पदार्थों में स्वयं ही विद्यमान है। साथ ही, जैसा कि हम मनुष्यों में देखते हैं, ये सब पदार्थ पारस्परिक सम्बन्ध द्वारा एक दूसरे के विकास में मदद करते हुए पाये जाते हैं। इस प्रकार विश्व की गति पूर्णत्व को पहुँचने की तरफ़ ही है—यही इसका नियम है।

इस अद्भुत और पूर्णतया विकसित शक्ति को परमेश्वर कहिए, परमात्मा कहिए—कोई भी नाम दीजिए। हम किसी किसी व्यक्तियों में इस शक्ति का बड़ा भारी अंश पाते हैं—इन व्यक्तियों का आत्मा हमारी अपेक्षा बहुत अधिक विकसित हुआ पाया जाता है—यही व्यक्ति महात्मा कहलाये जाते हैं। प्राणियों का बड़प्पन या छोटापन भी यही हो सकता है— जिसका आत्मा जितना ही अधिक विकसित है वह उतना ही बड़ा है। अवतार भी हम इसी को कहते हैं। जिस व्यक्ति को हम अवतारी कहते हैं उसमें यह शक्ति हमारी अपेक्षा बहुत अधिक विकसित पाई जाती है। यदि यह शक्ति कहीं पूर्णत्व को पहुँची हुई मिले तो हम उसे पूर्णावतार कह सकते हैं।

इस विषय के और भी अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं। जन्म-मरण की क्या समस्या है? ये क्या हैं और क्यों होते हैं? यदि परमाणु से लगाकर मनुष्य-योनि तक एक ही आत्मा का अस्तित्व माना जाय तो यह आत्मा क्यों और किस प्रकार एक योनि में से निकल-कर दूसरी योनि में प्रवेश करता है? सुख-दुःख क्या हैं? नीति-अनीति क्या हैं? कर्म और भाग्य क्या हैं? ऐसे अनेक प्रश्न हमें घेर लेते हैं और इनका समाधान-कारक उत्तर हमें नहीं मिलता। फिर भी जो बातें हमें स्पष्ट रूप से मालूम होती हैं उनसे हम बहुत कुछ अनुमान बाँध सकते हैं।

ऊपर बतलाया गया है कि आत्मा—एक शक्ति—सब पदार्थों में विद्यमान है और विकास को प्राप्त करते रहना उसका नियम है। इससे ज्ञात होता है कि सब व्यवहार आत्मा ही का है। तब यह प्रश्न होता है कि जब आत्मा ही अपना विकास कर रहा है तब फिर मनुष्य के लिए क्या कर्तव्य रहा? और मनुष्य में जो अनेक शक्तियाँ हैं—मन, हृदय, मस्तिष्क, अन्य आन्तरिक और बाह्य शक्तियाँ—इन सबका क्या अर्थ है? और ये किसलिए हैं? इन और इसी प्रकार के अन्य प्रश्नों का यही उत्तर होगा कि वास्तव में आत्मा के सिवा मनुष्य कोई वस्तु नहीं है और मनुष्य के जो अनेक अङ्ग और शक्तियाँ हैं वे सब अपनी प्रगति के लिए उत्पन्न किये हुए आत्मा ही के साधन हैं। ये साधन किस प्रकार निर्मित हुए, यह बतलाना हमारी शक्ति के बाहर है, परन्तु अनुमान इस बात को दृढ़ करता है कि ये शक्तियाँ आत्मा ही ने अपनी उन्नति के लिए उत्पन्न की हैं। हम देखते हैं, स्थावर पदार्थों की अपेक्षा वृक्षों में अधिक शक्तियाँ हैं, वृक्षों की अपेक्षा प्राणियों में, प्राणियों की अपेक्षा मनुष्यों में अधिक अधिक शक्तियाँ पाई जाती हैं और जिस प्रकार आत्मा की जिज्ञासा बढ़ी है—पूर्णत्व को पहुँचने के लिए विकास पाने का प्रयत्न हुआ है—उसी प्रकार उस विकास को प्राप्त करने के लिए आवश्यक शक्तियों की उत्पत्ति हुई है। अमेरिका के कुछ विद्वानों ने हमारे शरीर में एक नई इन्द्रिय का अस्तित्व बत-लाया है जिसके द्वारा हम भौतिक दृष्टि से न दिख-लाई देनेवाली वस्तुयें भी देख सकते हैं और दूसरों के विचारों को, बग़ैर उनके प्रकट किये जाने के,

समझ सकते हैं; और इन विद्वानों का अनुमान है कि कुछ शताब्दियों के अनन्तर यह इन्द्रिय साधारणतया उपयोग में आने लगेगी। इन सब बातों से मालूम होता है कि आत्मा के विकास के लिए आवश्यक साधनों का अस्तित्व में आना ही यह सब दृश्य कहा जा सकता है। इसी प्रकार अनेक योनियों में प्राप्त होना भी आत्मा का अपने विकास के लिए आवश्यक रूप धारण करना ही है और यही जन्म-मरण की समस्या है। जब एक योनि में वा शरीर में रहकर आत्मा कुछ विकास प्राप्त कर लेता है और उसमें अधिक विकास की सम्भावना नहीं रहती, तब अपनी शक्तियों द्वारा आत्मा दूसरी योनि में प्रवेश कर लेता है। जन्म-मरण का तात्त्विक कारण यही है। प्रत्यक्ष में ये किस तरह होते हैं—एक योनि में से दूसरी योनि में प्रवेश किस तरह होता है, किस योनि के बाद कौन सी योनि आती है, एकही प्रकार की योनि में—यथा मनुष्य-योनि में—कितने जन्म धारण करने पड़ते हैं, इन बातों का ठीक ठीक कारण बतलाना हमारी शक्ति के बाहर है।

पूर्व-जन्म-संस्कार क्या है, इसका भी यहाँ विचार कर लेना ठीक होगा। यह भी हमारा दिया हुआ नाम है और आत्मा के अनेक योनियों में से गुज़रने की बात को समझने का प्रयत्न है। हम देखते हैं और जानते हैं कि हम कुछ संस्कार अपनी उत्पत्ति के साथ ही ले आते हैं और—यहाँ विस्तार-भय से अधिक नहीं लिखा जा सकता—अनेक उदाहरणों में ये संस्कार पाये जाते हैं, जिनकी उत्पत्ति माता-पिताओं से वा अन्य कारणों से नहीं बतलाई जा सकती। अतएव उन्हें पूर्व जन्म के संस्कार ही मानने पड़ते हैं। ये संस्कार और कुछ नहीं हैं, आत्मा का एक विशिष्ट मर्यादा तक किया हुआ विकास है, जिससे आगे का विकास अब इस जन्म में चलेगा। इसीको हम भाग्य भी कह लेते हैं। यह बात स्पष्ट ही है कि पूर्व-जन्म में आत्मा का जिस हद तक विकास हो चुका है उसी प्रमाण से आगे विकास होगा। इसी बात को हम इस तरह कहते हैं कि पूर्व-जन्म में जैसा कर्म किया है उसी प्रकार आगे फल मिलेगा।

सुख और दुःख आत्मा के विशिष्ट मर्यादा तक किये हुए विकास की स्थिति बतलानेवाले, हमारे दिये हुए नाम हैं। एक मनुष्य किसी एक अवस्था को सुखावस्था समझता है, दूसरा उसे दूसरी अवस्था बतलाता है, तीसरे की सुख की कल्पना कुछ और ही है। यही प्रकार दुःख का है। वास्तव में आत्मा के लिए कोई सुख-दुःख नहीं है। इसी प्रकार नीति-अनीति भी आत्मा के विकास के द्योतक हमारे दिये हुए नाम हैं। यही कारण है कि नीति-अनीति और सुख-दुःख की कल्पना, वास्तव में देखा जाय तो, प्रत्येक व्यक्ति के साथ भिन्न भिन्न पाई जाती है।

इसी प्रकार, जड़ पदार्थ आदि से लेकर मनुष्य-योनि तक अधिक अधिक शक्तियों का अस्तित्व, मनुष्यों में दिखाई देनेवाले विकासों का अनेकत्व, और उत्पत्ति के साथ ही पूर्व संस्कारों का हममें भाव, इन सब बातों से हम कार्य-कारण की परम्परा-द्वारा अपने आरम्भ का अनुमान एक परमाणु वा जड़ पदार्थ से करते हैं।

अब कुछ और शङ्कायें भी रह जाती हैं जिनका समाधान-कारक उत्तर नहीं मिलता। तोभी—इनका उत्तर न मिलने पर भी—पूर्वोक्त बातों में कोई बाधा नहीं आती। संसार का आरम्भ किस प्रकार हुआ? यदि हर एक व्यक्ति का आरम्भ एक परमाणु से है और विकास करनेवाला वही आत्मा है तो व्यक्तियों में अनेकत्व क्यों है? ये सब बड़े गूढ़ प्रश्न हैं। विश्व का आरम्भ क्यों और किस प्रकार हुआ, यह हम नहीं बतला सकते। इसी प्रकार व्यक्तियों में—यदि यही

मान लिया जाय कि व्यक्ति परमाणुओं से आरम्भ हुए हैं—अनेकत्व क्यों है, यह भी नहीं बतलाया जा सकता। सम्भव है कि वे परमाणु जिनसे हम अपने आरम्भ का अनुमान करते हैं स्वयं ही अनेकत्व लिये हुए हों। फिर भी इस प्रकार के कई प्रश्न रहेंगे जिनका उत्तर सहज में नहीं मिल सकता। इस अगाध सृष्टि की रचना और उसके नियमों को पूर्णतया समझना अवश्य ही दुःसाध्य है और रहेगा।

अन्त में अब हम एक शङ्का पर कुछ विचार करके इस लेख को समाप्त करेंगे।

वह शङ्का यह है कि यदि आत्मा ही सब कर रहा है तो फिर मनुष्य के लिए कर्तव्य-अकर्तव्य क्या रहा? क्या मनुष्य निश्चिन्त होकर सोवे? वास्तव में यह शङ्का क्षुल्लक है। ऊपर कहा गया है कि आत्मा से रहित मनुष्य कोई वस्तु नहीं है। यदि वास्तव में हम आत्मा के लिए केवल यन्त्र-सदृश हैं तो फिर हमारी निश्चिन्तता और हमारे कर्तव्य-अकर्तव्य क्या रहे? आत्मा जिस प्रकार यन्त्र को चलाएगा उसी प्रकार कार्य अवश्यही होगा। यदि यन्त्र में साधनों की कमी है तो, जैसा ऊपर बतलाया गया है, आत्मा आपही उन्हें पूरा कर लेता है। मनुष्य-दृष्टि से—हमारे बनाये हुए नियमानुसार—आत्मा के इस कार्य को चाहे हम अपना कार्य वा पौरुष अथवा और किसी नाम से पुकारें, परन्तु वास्तव में वह आत्मा के कार्य के सिवा और क्या है? हम अपने लिए नीति-अनीति, धर्म-अधर्म ठहरा लें, पर जो शक्ति हमारे एक संसार की तरह अनेक संसारों में—विश्व में—कार्य कर रही है, वह सब यथार्थ में उसी आत्मा का कार्य हो सकती है। हमें अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि इस दृष्टि से हमारी किसी प्रकार की कर्तृत्व-शक्ति या उन्नति बन्द नहीं होती और हमने अपने लिए जो मनुष्यत्व, पुरुषार्थ, इत्यादि कर्त्तव्य ठहरा रक्खे हैं उनमें भी किसी प्रकार की बाधा नहीं आती। हमारी ये सब बातें जैसी की तैसी क़ायम रहती हैं, और आत्मा का कार्य भी वही बना रहता है। इस विषय में केवल दृष्टि-भेद है। यही कारण है कि जो लोग—समझे या बिना समझे—कहते हैं कि जो कुछ करता है ईश्वर करता है, वे ठीक कहते हैं। साथ ही जो यह कहते हैं कि मनुष्य में सब कुछ करने का सामर्थ्य है वे भी ठीक कहते हैं। प्रथम उद्गार आत्मा—ईश्वर—की दृष्टि से किया हुआ है, दूसरा मनुष्य की सांसारिक दृष्टि से। दोनों में बात एक ही है।

तब यह प्रश्न होगा कि इन सब बातों का उपयोग क्या है? ईश्वर भी करता है, मनुष्य भी करता है, इस ज्ञान से तो कोई फ़ायदा नहीं दिखाई देता। हम जहाँ हैं वहीं बने हुए हैं, हमारे लिए कोई कर्तव्य-अकर्तव्य निश्चित नहीं होता। हमारे सब व्यवहार मनुष्य-दृष्टि से किये हुए नियमों द्वारा ही चलते हैं। ईश्वर-दृष्टि से इन व्यवहारों को देखने से क्या लाभ? सारांश यह कि मनुष्य-दृष्टि से इन तमाम बातों का क्या उपयोग हो सकता है? उत्तर में कम से कम दो मुख्य उपयोग बतलाये जा सकते हैं। प्रथम तो यह कि इससे यथार्थ ज्ञान होता है। यह समझना कि पृथिवी सूर्य्य के चारों तरफ़ घूमती है, या यह कि सूर्य पृथिवी के चारों तरफ़ घूमता है, व्यवहार-दृष्टि से एक ही बात है; परन्तु एक बात सत्य है, दूसरी असत्य। दूसरा उपयोग यह है कि इस ज्ञान से हमारी उन्नति में बहुत कुछ सहायता मिलती है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि जिन्हें हम प्राकृतिक नियम कहते हैं उन्हींके अनुसार कार्य करते रहने से हम उन्नति कर सकते हैं और यही उन्नति स्थायी भी होती है। यदि हम उन नियमों के विरुद्ध चलें तो एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते। यहाँ हम एक नियम पाते हैं; एक शक्ति अपना विकास कर रही है। किसी किसी अवस्था में वह शक्ति अस्वयंवेद्य (Unconscious) है; फिर भी अपना विकास करती जाती है। आगे चलकर, जिन्हें हम

महात्मा कहते हैं, ऐसे पुरुषों में वह शक्ति स्वयं-वेद्य (Conscious) हो जाती है। अब उसका विकास सुगम मालूम देता है, क्योंकि हम देखते हैं कि अब उसके पास इच्छा (Will) नाम की एक शक्ति हो गई है जिससे वह शीघ्र इच्छित अवस्था को प्राप्त कर लेती है। इस इच्छा-शक्ति से कार्य करती हुई वह शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ती चली जाती है। अतएव मनुष्य-दृष्टि से इस ज्ञान के द्वारा हमें यह फ़ायदा हो सकता है कि हम इस शक्ति (आत्मा) का ज्ञान अपने आपमें उत्पन्न कर लें—इस शक्ति को समझने लगें—, इसे स्वयंवेद्य बनालें और इसके इच्छा-शक्तिरूपी साधन को जितना हो सके उतना बढ़ाएँ। इस शक्ति के स्वयंवेद्य हो जाने के बाद ज्यों ज्यों हम इसके द्वारा अपनी असीम शक्ति और असीम ज्ञान का अनुभव करने लगेंगे, त्यों त्यों हम इच्छा-शक्ति के द्वारा उस असीम शक्ति और ज्ञान को प्राप्त करते हुए, उन्नति-पथ पर बढ़ते और बढ़ाते हुए चले जायँगे।

गोपालदास झालानी, बी० ए०

वीराङ्गना।

(दुर्योधन के प्रति भानुमती)

दासी अधीरा है सदा, नाथ, तुम जब से
यात्रा कर घोर कुरुक्षेत्र रण में गये
निद्रा नहीं आती, मिटी भोजन की रुचि है
दीखते नहीं हैं खाद्य द्रव्य इन आँखों से

जाती हूँ कभी मैं देव, देवालय में, कभी
राज-वाटिका में, कभी छत पर चढ़ के
देखती हूँ युद्धस्थल, रेणु-राशि नभ में
छाई है घटा सी, शर-राशि है चमकती
बिजली की भाँति झुलसाती हुई आँखों को
सुनती हूँ दूर सिंहनाद, शङ्ख-शब्द भी
थरथर काँपती है छाती महा भय से
देखा नहीं जाता, लौट आती हूँ तुरन्त ही
नीरव खड़ी हो देव, आड़ में मैं खम्भे की
युद्ध-कथा सुनती हूँ सञ्जय के मुख से
अन्ध नृप सम्मुख सभा में जो सुनाता है
जानती नहीं क्या सुनती हूँ, पगली हूँ मैं

लज्जा को जलाञ्जलि दे शोच-वश मैं कभी
सास के पदों में पड़ रोती हूँ विषाद से
नेत्र नीरधारा से भिगोती हूँ उन्हें अहो!
बोला नहीं जाता बस रोती मात्र हूँ प्रभो,
समझा न पाके मुझे महिषी भी रोती हैं
सारी कुरुनारियाँ हैं रोती और रोते हैं
अञ्चल पकड़ मां का ऊँचे स्वर से अहो!
कुरु-कुल-वत्स आँसुओं से सब भीगते
हैं, हा! नहीं जानती, क्यों रहती सदैव है
राज-अवरोध की दशा यों दुःखदायिनी

कुक्षण में मातुल तुम्हारा हा! क्षमा करो
दुःखिनी को कुक्षण में मातुल तुम्हारा हा!
चालकुल का कलङ्क हस्तिना में आया था
कुक्षण में नाथ, अक्ष-विद्या उस पापी से
सीखी थी तुमने, इस सुविपुल कुल को
नष्ट किया दुष्ट ने हा! काल कलि रूप से
होकर प्रविष्ट इस सुविपुल कुल में
धर्म्मराज जैसा धर्म्मशील कर्म्मक्षेत्र में
और कौन है हे नाथ, बतलाओ, मैं सुनूँ
भीम को निहारो, भीमविक्रमी अजेय है
देव-नर-पूज्य पार्थ सफल प्रहारी है
क्या ही गुण-शील नाथ, सुमति नकुल है
शिष्ट सहदेव सह जानते हो क्या नहीं?
याज्ञसेनी द्रौपदी है लक्ष्मी धरा-धाम में
स्वामी, किसके लिए है छोड़ा इन सबको?
गङ्गा-जल-पूर्ण घट ठेलकर पैरों से
मग्न होते हो क्यों तुम नाथ, कर्म्मनाशा में?
विप्र की अवज्ञा और भक्ति क्यों श्वपच की?
फूलों के तुषार-कण मोती नहीं होते हैं
देव, किस छल में पड़े हो, नहीं जानती

अब भी क्षमा करो मैं भिक्षा यही माँगती
क्षात्रमणि, सोचो, जब चित्रसेन तुमको
कुरु-वधुओं के साथ बाँधकर रथ से
ले चला था अम्बर में, आके तब किसने
बन्धु ज्यों तुम्हारे कुल-मान प्राण रक्खे थे ?
कुरु-कुल-राज, देख सङ्कट में वैरी को
फूले नहीं लोग समाते हैं, तुम जिनके
नित्य महा वैरी रहे वे ही नेत्र-नीर से
भोगे थे विलोक तुम्हें सङ्कट में नाथ हा !
प्राण लेना चाहते हो बाण मार उनके
रक्खे थे जिन्होंने प्राण-प्राणाधिक मान भी !
जब असहाय तुम हाय ! मृगराज ज्यों
जाल में फँसे थे नाथ, कौशल से शत्रु के
हे दया, क्यों मातः, इस पाप-पूर्ण जग में
मानवों के मन में निवास करती है तू ?

गर्वी कर्ण को क्यों तुम कर्ण से लगाते हो ?
हे नरेन्द्र, जिसने सुरों को भी समर में
जीत लिया एकाकी, तुम्हारे रहते हुए
कुरु-दल दलित किया था मत्स्य देश में
रोक लेगा कर्ण उसी पार्थ को क्या रण में ?
व्यर्थ यह आशा नाथ, सोचो, कभी स्यार भी
कर सकता है क्या पराजित मृगेन्द्र को ?
सूतपुत्र मित्र हो तुम्हारा नर-रत्न, हा !
चन्द्रकुल-केतु तुम चत्रकुल-राज हो

जानती हूँ भीम-बाहु भीष्म-पितामह हैं
देव-नर-पूज्य रथी द्रोणाचार्य्य गुरु हैं
स्नेह-नदी गिरती है किन्तु इन दोनों की
पाण्डव-पयोधि में हे नाथ, कहती हूँ मैं
ऐसा न भी हो तथापि कैसे नाथ, हाय ! मैं
समझाऊँ दग्ध इस अपने हृदय को ?
जीता था अकेले इन तीनों को किरीटी ने
तुमने किया था जब गोहरण हा विधे !
दावानल रूप रचा अर्जुन को तूने क्या
आशा-वन दासी का जलाने को अकाल में ?

सुनो नाथ, नींद यदि आती है कभी मुझे
श्वेत अश्व और कपि-केतुवाला रथ मैं
देखती हूँ काल रूप पार्थ बैठा जिसमें
वज्र-सम चाप लिये बाँयें हाथ में तथा
मर्म-भेदी देव-अस्त्र दाँयें हाथ में लिये
छाती काँपती है देवदत्त-ध्वनि सुनके
गर्जता है मारुति ध्वजा पै काल मेघ सा
बर्बर गम्भीर घोष चक्र कर रथ के
मानों कालवह्नि हैं उगलते, किरीटी की
शोभा अहा ! चन्द्रचूड़-भाल पर चन्द्र ज्यों
करके विभासित दिशाएँ दसों तेज से
स्यन्दन सवेग कुरु-सैन्य ओर दौड़ता
भागती सभीति कुरुसेना सब ओर है
सूरज को देख तमोराशि यथा अथवा
निकट निहारकर वज्र-नख बाज़ को
भीत खग भागते हैं, जागकर रोती हूँ
भीम की कथा क्या कहूँ, मदकल नाग सा
दुष्ट वध करने में उद्धत है दीखता
लाल लाल लोचन कराल जवा-फूल से
मार मार शब्द मुँह में है, गदा हाथ में
हाय ! मानों दण्डधर कालदण्ड है लिये
लोगों से सुना है, इस दुर्द्धर को गर्भ में
कुन्ती सास ने है धरा देव-समागम से
यदि यह सत्य है तो देव पिता यम ही
होगा सर्वनाशी जो, पिलाया दूध दुष्ट को
जान पड़ता है किसी बाघिन ने, नारी का
दूध पाल सकता क्या ऐसे नर-यम को ?

बढ़ने लगा है पत्र, फिर भी कहूँगी मैं
कैसा बुरा स्वप्न देखा मैंने गत रात्रि में
प्राणनाथ, सोच देखो, विज्ञतम तुम हो
ये सदैव दग्ध प्राण जान नहीं सकते
नाथ, इस माया को, अकेली कल रात को
बैठके तुम्हारे शयनालय में, अब जो
शून्य निरानन्द है तुम्हारे बिना, रोई मैं
देव, सब ओर गन्ध फैल गया सहसा
पूर्ण चन्द्रिका से भी विशेष विभा छा गई
करके प्रदीप्त सी दिशायें दसों शीघ्र ही
दासी के समक्ष देव-बाला आ खड़ी हुई

तुलना नहीं है कहीं जिसकी जगत में
चौंक चरणों में नत हो गई मैं भय से
आँसू पोंछ बोली तब कान्तिमयी कातरा
"व्यर्थ कुरुवंश-वधू, खेद करती है तू
रोक सकता है कौन विधि के विधान को
हाय! इस जगती में? देख वह रण तू"
देखा भय-युक्त मैंने जाती जहाँ तक है
दृष्टि, रणभूमि महा भीषण है सामने
बहती है रक्त-धारा सरिता के रूप में
कुन्जर पड़े हैं वज्र-भग्न गिरि-शृङ्ग से
अश्व गति-हीन और टूटे हुए रथ हैं
सौ सौ शव, कैसे कहूँ कितना क्या देखा है!
प्राणनाथ, मैंने उस अन्तक-श्मशान में
देखा है रथीन्द्र एक तीक्ष्ण शर-शय्या पै
और एक महारथी पृथ्वी पर है पड़ा
कण्ठ में है रज्जु-हीन चाप, खड़ा सामने
शत्रु सिर काटने को खड्ग लिये, देखा है
एक अन्य वीर भूमि-सेज पर स्वप्न में
मेदिनी में मग्न रथ-चक्र धरे रोष से
देखा बली वक्ष पर वर्म्म नहीं जिसके
निष्प्रभ हैं भानु देव नभ में ज्यों शोक से
पास ही दिखाई दिया एक ह्रद जिसके
तीर पर एक महाराज रथी जाता है
भग्न-उरुवाला बड़े कष्ट से घसिटता
चिल्लाकर रोती हुई जाग पड़ी तब मैं
दीख पड़ा देव, बुरा स्वप्न यह क्यों मुझे?
आओ तुम प्राणनाथ, छोड़कर रण को
पांच गाँव-मात्र पांच पाण्डव हैं माँगते
तुमको अभाव क्या है, तुष्ट करो उनको
तुष्ट करो अन्ध पिता-माता को, अभागी को
रक्खो कुरुवंश कुरुवंश-अवतंस हे!

अनुवादक—
"मधुप"

इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स अर्थात् साम्राज्य की व्यापारोन्नति।

बालकपन में हमने अपने गुरु से सुना था कि एक दफ़ा राजा मान्धाता ने संसार भर के चक्रवर्ती राजा होने के लिए अश्वमेध यज्ञ किया। कहते हैं, उस ज़माने के ऋषियों ने राजा के सब शत्रुओं को यज्ञ में हवन कर दिया। पर भवितव्यता प्रबल होती है। उसे यह बात मंज़ूर न हुई। राजा के हाथ से कोई दोष हो गया; इसलिए जब ऋषियों ने उसको अपने भावी साम्राज्य का स्वरूप प्रत्यक्ष करने के लिए दिव्य दृष्टि दी (हमारे कई इतिहासवेत्ता तो कहते हैं कि दूर्बीन दी!) तब बहुत दूर सात समुद्रों के पार हनुमानजी के सूक्ष्म रूप के सिवा उसे कुछ भी नहीं दिखलाई दिया। इसका अर्थ यह किया गया कि किसी ज़माने में हनुमानजी सात समुद्र पार जन्म लेकर संसार भर में चक्रवर्ती राज्य करेंगे।

स्कूल और कालेज में इतिहास के इतिहास हमने देख डाले; पर हमारे गुरुजी के इतिहास का पता कहीं न लगा! यह वृत्तान्त हमें कहीं दृष्टि-गोचर नहीं हुआ; इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि यह वास्तविक है या कपोल-कल्पित। हाँ, इस बात का प्रमाण ज़रूर मिलता है कि इस समय सात समुद्रों के पार के एक छोटे से टापू के निवासी संसार भर में चक्रवर्ती राज्य कर रहे हैं। उनके साम्राज्य में कभी सूर्यास्त नहीं होता। इस साम्राज्य में अनेक देश हैं—छोटे भी और बड़े भी, दीन और पीन भी, निर्बल और सबल भी। इस साम्राज्य में नाना प्रकार के लोक हैं जिनमें कई कुटिल हैं और कई सरल; कई भले हैं और कई बुरे; कई पराधीन हैं और कई स्वाधीन; कई ऐसे हैं जिनको पेट भर रोज़ खाने को नहीं मिलता, और कई ऐसे हैं जिनके विभव का कोई ठिकाना नहीं। इस साम्राज्य

का नाम है "ब्रिटिश एम्पायर", अँगरेज़ी साम्राज्य। इसी साम्राज्य की व्यापार-पद्धति पर हमें यहाँ पर विचार करना है।

अँगरेज़ी साम्राज्य में बहुत देश शामिल हैं। युनाइटेड किङ्गडम में ही तीन लोक शामिल हैं—इँगलेंड, स्काटलेंड और आयलेंड। हम समझते थे कि इन तीनों का एकीकरण हो गया है, मानो दत्तात्रेय की मूर्त्ति स्थापित हो गई, पर मालूम होता है कि ब्रह्मा और विष्णु के साथ बेचारे भोलानाथ की बड़ी मुश्किल से पटती है! आयलेंड स्वतन्त्र होना चाहता है। अमेरिका में कनेडा इसी साम्राज्य के अन्तर्गत है। इसके निवासी फ़्रांसीसी हैं। आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलेंड, दक्षिण आफ़्रिका, ईजिप्ट, भारत इत्यादि बहुत देश इसी साम्राज्य की सीमा को दशों दिशाओं में फैला रहे हैं। हिन्दू, मुसलमान, यहूदी, पार्सी, क्रिस्तान, सभी अँगरेज़ी प्रजा हैं। फ़्रान्सीसी, बोर, चीना, अरब, ये सभी अँगरेज़ों के अधीन हैं। इनके उपरान्त बहुत से देशों पर इँगलेंड का रक्षक हाथ है। इतने विस्तृत साम्राज्य की एक धारा कर देना हँसी-खेल नहीं। पर इस कठिन कार्य को सम्पन्न करने के लिए—साम्राज्य के सभी देशों को एक सूत्र में बाँधने के लिए इँगलेंड के शासनकारों ने हाथ बढ़ाया है; इसलिए उनके माता-पिताओं को हम धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकते। जिस उपाय द्वारा यह एकीकरण-अनुष्ठान किया जानेवाला है उसका नाम है "इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स" अर्थात् "साम्राज्य की व्यापारोन्नति"।

'कामनवील' के अनुसार "इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स" का अर्थ यह है—"साम्राज्य में उत्पादित अन्नादि तथा तैयार किये गये माल से साम्राज्य की आर्थिक अवस्था को उन्नत करना।" इस पद का अर्थ मेरी समझ से यह होता है कि साम्राज्य के लाभ के लिए देश हैं, देशों के लाभ के लिए साम्राज्य नहीं, अर्थात् यदि साम्राज्य के लाभ के लिए यह आवश्यक हो कि इँगलेंड धातु और कपड़े आदि का माल तैयार करे और जहाज़ बनावे, भारत साम्राज्य के लिए कच्चा माल, जैसे पाट, रुई, चमड़ा, तमाखू, अन्न, चाय, और चीनी पैदा करे, एवम् कदाचित् साम्राज्य भर के लिए मज़दूर भी तैयार करे; कनेडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलेंड कलबल, कला-कौशल, ख़ुराकी तैयार माल आदि जो उनकी ज़मीन, प्रकृति और बुद्धि के अनुकूल हो, उत्पन्न करें (और इन देशों की आवश्यकता की वस्तु ऐसी कौन सी है जो इनकी प्रकृति के अनुकूल नहीं है?), तो इसमें कौन सी बुरी बात है? इसमें तो सब किसीको लाभ है। एक देश दूसरे देश पर आश्रित रहे और सब देश साम्राज्य के अधीन रहें; पर कोई एक देश बिलकुल अनाश्रित न रहे। हमारे व्यापार को कोई हानि न हो; हम माल या आवश्यक वस्तुयें साम्राज्य के बाहर के देशों से न लेकर उसके अन्तर्गत देशों से लें। जब तक हमें साम्राज्य के अन्दर माल मिले तब तक हम बाहर से कुछ भी न ख़रीदें। इसीको कहते हैं—इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स अथवा साम्राज्य व्यापारोन्नति। इसी नीति से सभी साम्राज्य के निवासी खूब प्रीति के साथ हिल मिल से जाते हैं। ऐसा समझिए कि साम्राज्य एक शरीर है और उसके अन्तर्गत देश उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं। मानों, उस शरीर का शीश इँगलेंड है, आयलेंड और स्काटलेंड दो भुजाएँ हैं, भारत उसका धड़ है, और कनेडा, आस्ट्रेलिया आदि उपनिवेश उसके चरण हैं। जिस तरह से एक अङ्ग दूसरे अङ्ग का काम नहीं दे सकता उसी तरह एक देश में उत्पन्न होती हुई वस्तु दूसरे देश में पैदा नहीं होनी चाहिए। जैसे सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग एक दूसरे पर अवलम्बित हैं उसी तरह सब साम्राज्य के देश एक दूसरे पर अवलम्बित रहें। फिर जिस तरह शीश उड़ जाने से अङ्ग-प्रत्यङ्ग मिट्टी में मिल जाते हैं उसी तरह यदि साम्राज्य को हानि पहुँचेगी तो हम किसी काम के

नहीं रहेंगे। ऐसा भाव बना रहने से सब देश प्रीति की नीति और सूत्र में सदा बँधे रहेंगे और साम्राज्य के साँचे को कभी आँच न आने देंगे। इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स के पक्षपातियों का यही सिद्धान्त है।

मि० जोजफ़ चेम्बरलेन ने पार्लामेण्ट में बजट पेश करते हुए इसी नीति का प्रतिपादन किया है और जी-जान से वे इसके पीछे लगे हुए हैं। इनके पिता भी इसी नीति के पक्षपाती थे। मि० आस्टिन चेम्बरलेन ने साम्राज्य की नीति को बहुत कुछ स्थिर कर दिया था और उनका इँगलेंड तथा सभी उपनिवेशों में बड़ा आदर था। उनके पुत्र का भी उतना ही आदर है। अब ये शासन-मण्डल में भी शामिल हैं; इसलिए बहुत सम्भव है कि विलायत के सभी लोग इनकी इस नीति को पसन्द करें। यह "इम्पीरियल" नीति आज की नहीं है; सैकड़ों वर्षों से लोग इसका समर्थन करते आये हैं। जब से इँगलेंड के हाथ से अमेरिका निकल गया तब से आम लोगों का ध्यान इसी तरफ़ हो गया है। राजनीति और व्यापारनीति के बड़े बड़े प्रतिष्ठित ग्रन्थकारों की यही राय है। अमेरिका के निवासी अँगरेज़ हैं, अर्थात् जिन्होंने अमेरिका को सर किया वे अँगरेज़ इँगलेंड से अमेरिका गये थे। वर्षों तक अपनी मातृ-भूमि से उनका प्रेम और घना सम्बन्ध बना रहा। वे विलायत को कर देते थे। उन्होंने फ़्रान्स के हाथ से सारा देश निकाल इँगलेंड के अधीन किया था। पर उस समय विलायत में दूरदर्शी राजनीतिज्ञ बहुत कम थे और जो थे उनकी कोई सुनता नहीं था। हम यह नहीं कह सकते कि इस समय ऐसे दूरदर्शी राजनीतिज्ञ हैं या नहीं, पर भविष्य में यह बात आपही आप प्रकट हो जायगी। उस समय इँगलेंड की व्यापार-नीति औपनिवेशिक (colonial policy) थी, जिसका अर्थ यह है कि सब उपनिवेश प्रधान देश के लाभ के लिए हैं अर्थात् यदि अमेरिका को हानि पहुँचे तो कोई हर्ज नहीं और दूसरे किसी देश को नुक़सान हो तो कोई परवा नहीं; पर विलायत को लाभ होना चाहिए। सब उपनिवेशों को विलायती माल लेना ही चाहिए और इँगलेंड को जिस चीज़ की ग़र्ज़ हो वह उस उपनिवेश को देनी ही होगी। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि इँगलेंड की कोख से पैदा हुआ बालक अपने जनक के विरुद्ध खड़ा हो गया! अन्त में उसको अमेरिका से हाथ धोना पड़ा। एक बराबरी का समर्थ उपनिवेश हाथ से निकल गया और बड़ा भारी पछतावा रह गया! किसी भी अँगरेज़ से कहिए—यदि अमेरिका आज अँगरेज़ी साम्राज्य के अन्तर्गत होता तो,—और देखिए, उसकी क्या हालत हो जाती है! इसलिए हम कहते हैं कि सावधान! ऐसा न हो कि फिर वैसे ही पछताना पड़े। ख़ूब सोच-समझकर किसी नीति को ग्रहण कीजिए।

जब अमेरिका हाथ से निकल गया तब इँगलेंड की आँखें खुलीं। अब आदम स्मिथ और मिल की मुक्तद्वार वाणिज्य-नीति का प्रचार हुआ। पर इँगलेंड के सौभाग्य से उस समय के पहले ही अर्थात् मुक्तद्वार वाणिज्य-नीति के अवलम्बन करने के पहले ही उसका व्यापार इतना बढ़ गया था कि इँगलेंड के माल के आगे दूसरे किसी देश के माल का टिकना कठिन था। इसलिए इसी नीति को इँगलेंड ने ईश्वर के घर की नीति मान ली, मानों यह सदा और सब जगह लाभदायक है। वर्तमान महायुद्ध ने फिर इस एक-ब्रह्म की उपासना में विघ्न डाला। यदि जल पर इँगलेंड की सर्वोपरि सत्ता नहीं होती तो उसके निवासी इस महायुद्ध में आकाश के तारे गिनते। इसलिए उन्होंने एक बार और व्यापार-नीति में परिवर्तन करना विचारा है। देखें, उनकी यह नई नीति कहाँ तक मन की मुरादों को पूरी करती है।

पुरानी नीति में जिसके कारण अमेरिका से बिछोह हुआ और इस नई नीति में क्या अन्तर है?

उस समय केवल इँगलेंड के लाभ का ख़याल था और इस समय साम्राज्य के लाभ का ध्यान है। ऐसा कोई नहीं है जो साम्राज्य का हित न चाहता हो, पर त्यागियों के सिवा ऐसा भी कोई नहीं होगा जो अपना हित नहीं चाहता। अपने लाभ के साथ साथ साम्राज्य के सभी देशों को लाभ हो तो बड़ी अच्छी बात है; पर क्या सदा सभी विषयों में ऐसा हो सकता है? क्या अशक्त और नौजवान एक साथ बराबर दौड़ सकते हैं? कहते हैं, अँगरेज़ी उपनिवेश इम्पीरियल प्रेफ़रेंस पसन्द करते हैं। ऐसा होगा! पर हम यह नहीं मान सकते कि उपनिवेश किसी के भी हित के लिए अपने हित की आहुति देंगे। अभी हाल में दक्षिण आफ़्रिका का एक प्रतिनिधि-दल जनरल हर्ट ज़ोग के साथ विलायत गया है। यह दल हर एक तरह से अपने प्रदेश को स्वतन्त्र करना चाहता है। इसका यह कहना है कि बिलकुल स्वतन्त्रता देने से उपनिवेश बिगड़ जायँगे या साम्राज्य से हट जायँगे, ऐसा भय करना निर्मूल है। हमारे शास्त्रकारों ने भी लिखा है कि जब पुत्र समर्थ और समझदार हो जाता है अर्थात् बड़ी उम्र का हो जाता है तब उस पर शासन नहीं करना चाहिए, उस पर अङ्कुश या दबाव नहीं डालना चाहिए। ठीक तौर से समझाने से ही वह समझ जाता है। कड़ाई करने से यदि वह बिगड़ जाय तो फिर उसको रास्ते पर लाना कठिन है—टेढ़ी खीर है। इसलिए प्रीति की ज़ंजीर से ही उसको बाँध लेना चाहिए। यही सब बुद्धिमानों की राय है। उपनिवेशों को स्वतन्त्रता देने से इँगलेंड में उनकी प्रीति बढ़ेगी। देश-काल के अनुकूल जो देश जैसे अपनी उन्नति करना चाहे वह वैसे ही करे। यदि भारतवर्ष को भी संरक्षण-नीति श्रेयस्कर हो तो वह उसे ही धारण करे; इसमें साम्राज्य के दूसरे किसी देश को क्यों हस्तक्षेप करना चाहिए? इसलिए इँगलेंड को चाहिए कि इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स के लिए विशेष आग्रह न कर, साम्राज्य के सभी देशों को अपने अपने व्यापार की उन्नति करने के लिए अवकाश देना चाहिए, इसीसे साम्राज्य के व्यापार की उन्नति होगी।

अब हमको इस बात का विचार करना चाहिए कि इस समय, भारत की आमदनी-रफ़्तनी की कैसी हालत है और हम लोग इस विषय में क्या सुधार चाहते हैं तथा 'इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स' की नीति प्रचलित होने पर हमारे व्यापार की उन्नति हो सकेगी या नहीं? हमारे यहाँ रुई का माल, सूत, शक्कर, लोहा, फ़ौलाद, मशीनरी, मिट्टी का तेल, रेशम, दवाइयाँ, धातु की चीज़ें, अँगरेज़ी ख़ुराक, काग़ज़-पत्र, शराब, मोटर-गाड़ियाँ, साइकलें, रेलवे का सामान, आदि वस्तुएँ दूसरे देशों से आती हैं। इनमें केवल सूत का माल ही एक साल में ४९ करोड़ रुपये से अधिक का आता है। साढ़े पन्द्रह करोड़ रुपयों की चीनी और लगभग पन्द्रह करोड़ रुपयों का लोहे का माल आता है। इनमें लगभग दो तिहाई माल इँगलेंड तथा उसके उपनिवेशों से आता है। १९०९-१० से १९१३-१४ की आमदनी की औसत निकालने से इससे भी अधिक माल की आमदनी पाई जाती है। यहाँ से विदेशों को पाट, रुई, सूत, अन्न, चमड़ा, चाय, ऊन, आदि चीज़ें जाती हैं। रुई का माल तथा सन का माल भी जाता है। इसमें से आधा माल इँगलेंड के अधीन प्रदेशों में भेजा जाता है और शेष दूसरे देशों में जाता है। लड़ाई के बाद जर्मनी, आस्ट्रिया और बेल्जियम को माल नहीं गया। सन् १९१०-११ की परिगणना के अनुसार, जर्मनी से पाँच करोड़ से ऊपर का माल, बेल्जियम से लगभग छः करोड़ का और आस्ट्रिया से तीन करोड़ का माल आता था। जापान से जो पहले माल आता था उससे अब पाँच गुना अधिक आता है। चीन, जावा, अमेरिका और इटली से भी बहुत माल आता है।

इससे यह मालूम होगा कि हमारे यहाँ से कच्चा माल विदेश को जाता है और तैयार माल के लिए हमें दूसरे देशों पर आश्रित रहना पड़ता है।

जिस भारतवर्ष में सब तरह का वाणिज्य होता था और जिसकी आवश्यकताओं को पूरी करने के बाद करोड़ों रुपयों का माल विदेश जाता था, उसी भारत में आज शक्कर, सूती कपड़े इत्यादि बाहर से आते हैं! सम्भव है, कभी हम केवल रुई और चाय की खेती करते ही रह जायँ और कभी ख़ुराक के लिए भी हमें विदेशियों का मुँह ताकना पड़े! हम यह मानते हैं कि यदि भारत के व्यापार पर कर या लगान लगाया जाता तो आज भी भारत का व्यापार वैसा ही होता जैसा पहले था। उस अवस्था में मुक्तद्वार वाणिज्य-नीति या इम्पीरियल प्रेफ़रेंस या और किसी नीति का प्रतिपादन किया जाता तो हम भारतवासी उसे सहर्ष स्वीकार कर लेते; पर आज इस दीन हीन अवस्था में हम इनको स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। भारत में और अँगरेज़ी उपनिवेश में क्या समानता है? वे चाहे जिस तरह व्यापार कर सकते हैं, वे स्वतन्त्र हैं और हम हर किसीका मुँह ताकते रहते हैं। यदि साम्राज्य की व्यापारोन्नति का सिद्धान्त प्रचलित हो जाय और कोई उपनिवेश भारत को हानि पहुँचाने लगे तो हमारे पास क्या सत्ता है जो हम उस उपनिवेश से उत्तर ले सकें।

थोड़े समय पहले भारती मज़दूरों का प्रश्न प्रस्तुत था। इस विषय में ऐसा कहा गया कि भारतवासियों को उपनिवेशों में मज़दूर अवश्य भेजने चाहिएँ; परन्तु यदि उन मज़दूरों से वहाँ पर कड़ा बर्ताव किया जाय तो तुम भी उनके मज़दूरों से वैसा ही व्यवहार करो। तुमसे वे बुरी तरह से पेश आते हों तो तुम भी उनसे वैसा ही बदला लो। यह Retaliation यानी ले-दे की नीति ग्रहण करने के लिए भारत में अभी शक्ति नहीं है। भारतवासी उपनिवेश के निवासियों से क्या बदला ले सकते हैं? उपनिवेश के मज़दूर और दूसरे निवासी बदला देने के लिए आपके यहाँ क्यों आवेंगे? दूसरे, उनके हाथ में सत्ता है; वे आपके माल पर चाहे जो कर लगा सकते हैं। आपके हाथ में क्या है? यह चूहे-बिल्ली का मेल कब तक निभ सकता है? इसलिए हम कहते हैं कि इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स से भारत को कोई लाभ नहीं, बल्कि बड़ा नुक़सान है। यह इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स और कुछ नहीं, केवल मुक्तद्वार वाणिज्य-नीति का रूपान्तर है। हमें यह नहीं चाहिए। हमको संरक्षण की आवश्यकता है। हमारे देशी व्यापार-धन्धों को फिर से प्रचलित करना है, हमारी इस व्यापारी दीन-हीनता को हटाना है—इसलिए आप अपनी प्रेफ़रेन्स-पालिसी अपने पास ही रखिए।

इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स से हमको हानि यह होगी कि हमारे यहाँ से जो माल बाहर जाता है वह तो जायगा ही, क्योंकि उससे कम दामों में वह कच्चा माल कोई पैदा नहीं कर सकता। पर जो माल हमारे यहाँ साम्राज्य के बाहर से आता है वही अधिक दाम देकर साम्राज्य के अन्दर से हमें ख़रीदना होगा। अर्थात् बाहर हमको माल सस्ते में भी मिले तो भी वह हम नहीं ले सकेंगे, पर अधिक दाम से वही माल साम्राज्य के अन्तर्गत देशों से ही ख़रीदना होगा। फ़र्ज़ कीजिए कि किसी देश ने किसी माल की दर अनुचित रीति से, मनमानी करके बेहद बढ़ा दी, तो भी हमको वही माल ख़रीदना होगा, क्योंकि बाहर से हम कुछ भी नहीं ख़रीद सकते। यह अवस्था हमारे लिए बहुत ही दुःखप्रद होगी। इसलिए इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स का प्रतिवाद होना चाहिए। हमें यह कुछ नहीं चाहिए। हमें आर्थिक स्वतन्त्रता की आवश्यकता है। जब हमारे व्यापार-रोज़गार की बागडोर हमारे हाथ में नहीं है, तब हमें अपनी आर्थिक दशा सुधारने की आशा करना दुराशा-मात्र है। भारत के बड़े बड़े व्यापारियों की यही राय है। इंडस्ट्रियल कमीशन के समक्ष मि० करीमभाई इब्राहीम ने यही बात कही थी। इंडियन चेम्बर की भी यही राय है और सर एदलजी

वाचा ने इसी बात पर खूब ज़ोर दिया है। इंडियन मर्चेन्ट्स चेम्बर एंड ब्युरो की १९१५-१६ की रिपोर्ट में आपका जो व्याख्यान प्रकाशित हुआ है उसमें आपका कथन है कि—

अगर भारत की दरिद्रता बहुत कुछ दूर करना हो, यदि भारत के असंख्य साधारण स्थिति के लोगों का दुःख-दर्द नष्ट करना हो, जो शिक्षा और स्वच्छता की अवस्था का सुधार करना हो, तो सबसे प्रथम हमें ऐसी आर्थिक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए जो कि सुव्यवस्थित हो और हमारे काम में आ सकती हो। हम लोगों ने खूब अच्छी तरह से समझ लिया है कि जब तक हम लोगों को हमारी आर्थिक दशा सुधारने के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं दी जायगी तब तक सुख-समृद्धियुक्त इँगलेंड, फ़्रान्स और अमेरिका की तरह भारत को भी सुख-समृद्धियुक्त देखने की आशा करना केवल दुराशा-मात्र है। × × × × × × भविष्य में वर्तमान शासन-प्रणाली सुधारने के लिए चाहे आपको अधिक अधिकार प्राप्त हो जाय, पर जब तक भारत के व्यापार-वाणिज्य पर बनावटी अङ्कुश हैं तब तक दूसरे देशों के समान भारत को गौरव की आशा करना व्यर्थ है। भारत को कान पकड़कर इधर-उधर चलाने की अब बिलकुल ज़रूरत नहीं है। × × × × ×

ता० १६ फ़रवरी १९१७ को इस विषय में इसी चेम्बर ने बम्बई-सरकार को संवाद भेजा था जिसमें कहा गया था कि भारत कच्चे और तैयार माल के लेन-देन के सम्बन्ध में ब्रिटिश-साम्राज्य का एक शरीर हो और संसार के दूसरे देशों पर वह आश्रित न रहे। यह बहुत ही आवश्यक है; पर भारत की भलाई के लिए यह भी बहुत ही आवश्यक है कि वह अपनी आवश्यकताओं को आप ही पूरी करे। अपने व्यापार और उद्योग-धन्धों की स्वेच्छापूर्वक उन्नति करने में उसके आगे किसी बात का विचार उपस्थित न होना चाहिए। हाँ, यह ज़रूर है कि ऐसा कोई काम साम्राज्यान्तर्गत किसी देश को न करना चाहिए जिससे साम्राज्य भर को हानि पहुँचे।

माधवप्रसाद शर्मा, एम० ए०, एल-एल० बी०

व्यायाम या कसरत (Exercise)।

व्यायाम के गुण वा अवगुण, फ़ायदे या नुक़सान, उसके अन्न, पान, वस्त्र, आदि के विषय में लिखने से पहले कसरत के विषय में कुछ मामूली बातें लिखना आवश्यक है।

हममें से अनेक लोग बिना योग्यता के भी व्यर्थ तर्क करने लगते हैं, और कहने लगते हैं कि लेखक लोग तो सब अँगरेज़ी की ही बातें बताने लगते हैं, और नक़ल करना सिखाते हैं। हममें से प्रायः अधिक ऐसे लोग होते हैं जिनको अपने घर का कुछ भी हाल नहीं मालूम, और वे लोग न फ़ायदे की बातें, न अपने प्राचीन नेताओं के उपदेश और न पुरानी बातों को नये ढङ्ग से समझानेवालों के वचन मानना चाहते हैं। उन लोगों से जो इन बातों पर अमल करना चाहते हैं और इनसे फ़ायदा उठाना चाहते हैं, मेरी विनय यह है कि कसरत मस्तिष्क की या मन की ऐसी कसरत नहीं है जिसका फल बहस में विजय प्राप्त होते ही मिल जावे। "सूत न कपास, कोरे लट्ठम-लट्ठा"-वाली जुलाहों की लड़ाई से इसमें किसी पक्ष-वालों को फ़ायदा नहीं हो सकता। यहाँ तो अभ्यास की आवश्यकता पड़ेगी और अनुभव से ही हानि या लाभ का कुछ पता लग सकेगा। ब्यौरे में बहुत कुछ मत-भेद हो सकता है, किन्तु इस विषय में केवल अनुभवी लोग ही कुछ कह सकते हैं।

मेरी सम्मति में यदि हो सके तो प्रत्येक मनुष्य को कसरत करने के पहले किसी समझदार वैद्य, हकीम या डाक्टर से यह बात जान लेना चाहिए कि दुनिया की सैकड़ों कसरतों में से मेरे योग्य कौन सी कसरत होगी।

स्कूलों में तो पहले डाक्टरों द्वारा सब विद्यार्थियों की परीक्षा हो जानी चाहिए और तब उनको भिन्न भिन्न प्रकार के खेलों में शामिल करना चाहिए। इस स्थान में यद्यपि इन बातों से विशेष सम्बन्ध नहीं, तो भी ये ध्यान के योग्य बातें हैं, इसलिए इन्हें लिखना आवश्यक मालूम होता है। जिस समय डाक्टर द्वारा स्कूल या कालेज के विद्यार्थियों के शरीर की परीक्षा की जावे उस समय उन्हें बाल-विवाह, व्यर्थ चश्मा लगाने और अन्य बुराइयों के बाबत भी कुछ ठीक ठीक उपदेश कर दिया जावे। बहुत से विद्यार्थी ऐसे कमज़ोर होते हैं या उनको दिल की ऐसी असाध्य बीमारी पैदाइश ही से होती है कि विवाह उनका काल हो जाता है। जो हो, कसरत का विषय ऐसा कोई अज्ञात विषय नहीं है जिसके सम्बन्ध में समझदार आदमी कुछ न कुछ न समझता हो और उसका अनुभव न रखता हो। हमारे घरों की स्त्रियां भी केवल ६० वर्ष पहले शरीर से घर के काम-काज करने के लाभों को अच्छी तरह समझती थीं। हम लोग पत्रों में केवल ऐसी बातों की चर्चा देखा करते हैं, जिनसे सर्वसाधारण का कोई अधिक लाभ नहीं हो सकता। पत्र पढ़नेवाले राय देना ख़ूब जानने लगते हैं, परन्तु स्वयं अभ्यासी या क्रियाशील बनना उन्हें बिलकुल ही नहीं आता। मैंने सैनीटरी इन्स्पेक्टरों तक के घरों में निहायत गन्दगी देखी है!

संयुक्त प्रान्त के लोगों का स्वास्थ्य बहुत ही गिरी दशा में है। यहां के लोग इतने अधिक ग़रीब हैं कि खाने पीने तक को काफ़ी नहीं पाते और उन पर अत्यन्त मिहनत पड़ने के कारण उनका स्वास्थ्य भी कम उम्र में बिलकुल बिगड़ जाता है। इसके अन्य कारण भी हैं। पढ़े लिखे या बीच के दर्जे के लोगों की तन्दुरुस्ती भी ऐसे ही कुछ कारणों से और कसरत या व्यायाम आदि का शौक़ न होने से सदा ही ख़राब रहती है। ऐसे बाबू-घरों के मर्द प्रायः बाबूपने के कारण, तेल-फुलेल, पान, बीड़ी, सोडा, लेमोनेड, बर्फ़, टाई वग़ैरह में, और कहीं कहीं शराब आदि नशे की वस्तुओं में या अन्य ऐसे ही हानिकर बाज़ारी शौक़ों में अपनी आमदनी ख़र्च कर डालते हैं। शहरों में इन लोगों के अथवा ग़रीब लोगों के पुराने, सस्ते खेल-कूदों के सामान—ठीक ठीक मौक़ा न मिलने से, और कुछ सुस्ती के कारण भी ग़ायब होते जाते हैं। इस देश की पुरानी किताबों में कसरतों का अच्छा हाल दिया गया है। अमीर-घरों की शिक्षा में लड़के-लड़कियों को उनके अनुकूल बहुत सी कसरतें भी सिखाई जाती थीं, जिनके नाम चौंसठ कलावाली विद्याओं में बताये गये हैं—आयुर्वेद और धर्मशास्त्रों के ग्रन्थों में इनका विषय ऋतुचर्य्या, दिन-चर्य्या आदि स्थानों में सूक्ष्म रीति से बता दिया गया है। स्वास्थ्य के ख़राब होने के अन्य कारण ये हैं—ख़राब मकानों में रहना, म्यूनीसिपल्टी और गांवों में प्रायः बस्ती के भीतर खेलने-कूदने या घूमने के स्थानों (Lawns) का न होना। दूध, घी का न मिलना, ठीक ठीक भोजनों का भी प्रबन्ध न होना, आदि। गांवों में और शहर की म्यूनीसिपल्टियों में योग्य स्थानों के बनवाने का भार केवल उनके मेम्बरों या सरकार पर है। अन्य बातों के लिए तो इस समय लोगों का सहायक कोई भी नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए उनको ईश्वर-पूजन करते हुए भी इन सिद्धियों के लिए उद्योग करते रहना चाहिए। यदि शारीरिक कष्ट या मिहनत (कसरत) करने का उनका स्वभाव हो जायगा तो वे अपने कामों को पूरा करने में अधिक समर्थ होंगे।

हमारे घर में स्त्रियां, मातायें भी आज-कल अधिक मिहनत उठाना पसन्द नहीं करतीं। कहार और कहारियां, पीसनेवाली आदि भी अपने शरीर से कम काम करना चाहती हैं। इस तरह उनका भी स्वास्थ्य बिलकुल ख़राब होता जा रहा है। शहर के मर्द और औरत घर के मामूली कामों में भी हाथ-पैर न हिलाने के कारण दिन दिन कमज़ोर होते जारहे हैं और साथ ही साथ असल में वे पूरे ग़ुलाम और अधिक ग़रीब होते जा रहे हैं। बड़े घरों की औरतें केवल बैठे बैठे पान खाया करती हैं या ऐसे ही सुस्ती में समय बिताया करती हैं। फल यह होता है कि वे सदा ही रोगी बनी रहती हैं। बहुत से बाबू लोग भी पान सिगरट में ही दिन काटा करते हैं। ऐसे लोग अकसर कमज़ोरी, सनसनाहट, घबराहट और क़बज़ियत वग़ैरह की शिकायत करते देखे जाते हैं। बहुत से ग़रीब लोग अत्यन्त परिश्रम करने से या बिलकुल परिश्रम न करने के कारण भी कमज़ोर हो जाते हैं, जैसे मिलघरों के मज़दूर और बनियों के या दफ़्तरों के मुनीम, आदि।

मनुष्यों के शरीर का सच्चा श्रृङ्गार उनका स्वास्थ्य या तन्दुरुस्ती ही है, जिसको देखकर दूसरे लोग भी प्रसन्न होते हैं और ख़ुद भी वैसे ही तन्दुरुस्त होने की इच्छा करते हैं। उन लोगों को जो तन्दुरुस्त और दीर्घायु बनना चाहते हैं नीरोग और बड़ी उम्रवाले मनुष्यों के जीवन के सिद्धान्तों को अपने धर्म्मानुसार ग्रहण करना चाहिए और उन पर अमल करना सीखना चाहिए।

व्यायाम(१) या कसरत—शरीर की चेष्टायें या हरकतें अर्थात् शरीर के अङ्गों को घुमाना-फिराना आदि, जो शरीर को स्थिर (क़ायम) रखने (= ज़िन्दा रखने) और उसका बल बढ़ाने के मतलब से किया जावे, वही देह की कसरत या व्यायाम कहा जाता है।

कसरत शरीर की शक्ति के अनुकूल ही करना चाहिए। प्रमाण से ज़्यादा कसरत करने से हानि है। यह उत्तम और सूक्ष्म सिद्धान्त इस देश के प्राचीन ऋषियों का बताया हुआ है। उसका मानना या न मानना हमसे सम्बन्ध रखता है। इस उसूल ही पर अमल करते हुए भिन्न भिन्न शरीरों की कई क़िस्म की शक्तियों के अनुकूल व्यायाम के भेद बताये जा सकते हैं। जो इन सूक्ष्म सिद्ध सूत्रों के विपरीत चेष्टायें करेगा उसके शरीर का बल घटेगा और शरीर दीर्घ काल तक स्थिर न रहेगा। मैं पहले इस देश के प्राचीन ग्रन्थों में लिखे हुए, कुछ आचार्य्यों के सूत्रों के आशय को लिखकर आगे और कुछ लिखूँगा। व्यायाम शक्ति से आधा(२) ही करना चाहिए और फिर साथ साथ चिकने भोजन भी करने चाहिएँ; अर्थात् घी, दूध, मक्खन, मलाई, बादाम आदि का सेवन करते रहना चाहिए। जो प्रमाण से अधिक या देह से बे-फ़ायदा व्यायाम करता चला जाता है वह थोड़े काल में अवश्य ही रोगी हो जाता है। इसीलिए पसीना (३) निकलने पर कसरत बन्द कर देना चाहिए। अत्यन्त व्यायाम (१) करने से श्रम, ग्लानि, क्षय, तृष्णा, रक्तपित्त (मुँह से ख़ून आनेवाला एक रोग), खाँसी, ज्वर, आदि रोग पैदा हो जाते हैं। जो कसरत प्रमाण (२) से की जाती है उससे ये गुण प्राप्त होते हैं—शरीर का हलकापन, काम करने की शक्ति, शरीर की स्थिरता, कष्ट सहने की शक्ति, दोषों में कमी, भूख का ख़ूब लगना, मुटाई (obesity) का क्षय आदि। प्रमाण से बहुत ज़्यादा कसरत (३) करनेवाले मनुष्य का शरीर शीघ्र नष्ट हो जाता है। कसरत के पीछे (४) शरीर को धीरे धीरे मलवाना चाहिए। तैल से मालिश कराना आज भी एक तरह की बिना चेष्टावाली (passive) कसरत कहलाती है। हिन्दू शास्त्रकारों ने और आयुर्वेद के ऋषियों ने इससे जो लाभ बताये हैं उनको भी यहाँ बताना अच्छा होगा।

मालिश (५) से शरीर मज़बूत हो जाता है, चिकना

---

(१) शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्य्यार्था बलवर्द्धिनी।
देहव्यायामसंख्याता मात्रया तां समाचरेत्॥
चरक० सू० अ ०७

(२) अर्धशक्त्या निषेव्यस्तु बलिभिः स्निग्धभोजिभिः।
शीतकाले वसन्ते च मन्दमेव ततोऽन्यदा॥
वा० सू० अ० १

(३) स्निग्धः...... । तदहः स्विन्नगात्रस्तु व्यायामं वर्जयेन्नर इति॥ ६१॥ चरक० सू० अ० १४

(१) श्रमः क्लमः क्षयस्तृष्णा रक्तपित्तं प्रतामकः।
अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते॥३१॥
च० सू० अ० ७; वा० सू० अ० २ श्लो० १४

(२) लाघवं कर्मसामर्थ्यं स्थैर्यं क्लेशसहिष्णुता।
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते॥ ३०॥
च० सू० अ० ७

लाघवं कर्मसामर्थ्यं......मेदसः क्षयः।
विभक्त घनगात्रत्वं......॥ १०॥
वाग्भट सू० अ० १

(३) व्यायाम-हास्य-भाष्याध्वग्राम्यधर्मप्रजागरान्।
नोचितानपि सेवेत बुद्धिमानतिमात्रया॥ ३२॥
एतानेवंविधांश्चान्यान् योऽतिमात्रं न सेवते।
गजः सिंहमिवाकर्षन् सहसा स विनश्यति॥३३॥
च० सू० अ० ७

(४) तं कृत्वाऽनुसुखं देहं मर्दयेच्च समन्ततः॥
वा० सू० अ० २

(५) स्नेहाभ्यङ्गाद्यथा......चर्म स्नेहविमर्द्दनात्।
भवत्युपाङ्गो दक्षश्च दृढः क्लेशसहो यथा॥ ७९॥
......॥८०॥......॥८१॥......॥८२॥......॥८३॥
......॥८४॥......॥८५॥......गृध्रसीवाताः
(Sciatica)......॥८६॥ च० सू० अ० ५
"......वा० सू० अ० १ श्लोक॥ ७॥ ८॥

रहता है। शरीर को क्लेश सहने की शक्ति रहती है। मामूली घाव से शरीर नष्ट नहीं होता। नित्य मालिश करानेवाला मनुष्य दीर्घायु होता है और बुढ़ापे से नहीं सताया जाता। नज़र या आँख की रोशनी क़ायम रहती है। बहुत सी वात-व्याधियां होने ही नहीं पातीं और बहुत सी अच्छी होजाती हैं और नींद अच्छी आती है।

कसरत का प्रभाव—हमारे शरीर में दो प्रकार की मांस-पेशियां या पट्ठे (Muscles) हैं। उनमें से एक प्रकार की पेशियां हम सब मनुष्यों की इच्छा के अनुसार (पर केवल तन्दुरुस्ती की दशा में) चेष्टा कर सकती हैं। किन्तु बहुत सी ऐसी हैं, जैसे धमनी (Arteries), हृदय, श्वासयन्त्र, आंत आदि, जो साधारण मनुष्य की इच्छा के अनुकूल चल या रुक नहीं सकतीं। सुना जाता है (और किसी किसी अवस्था में रोगियों में भी देखा गया है) कि ये पेशियां उन योगियों के वशीभूत रहती हैं जो प्राण, आदि वायु को इच्छा के अनुकूल चला या रोक सकते हैं।

जब हम लोग व्यायाम करते हैं तब पेशियों की चेष्टा से शरीर में रुधिर का प्रवाह तेज़ हो जाता है। शरीर में गरमी बढ़ने लगती है और हृदय की तथा श्वास की गति भी बढ़ जाती है। धीरे धीरे कुछ समय के पीछे पसीना भी आने लगता है। फिर प्यास मालूम होने लगती है और अधिक श्रम करने से श्वास लेने में कष्ट होने लगता है, तथा थकावट मालूम होने लगती है। इससे भी अधिक कसरत से लोग बेहोश होकर गिर पड़ते हैं और कभी कभी गिरकर मर भी गये हैं।

नित्यप्रति प्रमाणपूर्वक कसरत करने से शरीर के पट्ठे मोटे और मज़बूत हो जाते हैं, और समय पर काम देते हैं। व्यायाम से भूख भी बढ़ने लगती है। पाख़ाने या क़ब्ज़ की शिकायत भी ग़ायब हो जाती है। व्यायामवाले मनुष्य का शरीर चिकना और सुडौल हो जाता है।

नित्य प्रमाण से अधिक कसरत करने से मनुष्य कुछ समय पीछे कमज़ोर, दुबले हो जाते हैं। उनका दिल भी कमज़ोर हो जाता है। वे ज़रा मिहनत से हांफने लगते हैं। कभी कभी उन्हें ख़ूनी बवासीर भी हो जाती है।

कसरत बिलकुल न करने से और मामूली खाना खाते पीते रहने से कुछ अधिक हानि नहीं होती, तोभी ऐसी अवस्था में मनुष्य धीरे धीरे कमज़ोर हो जाते हैं और किसी न किसी रोग की शिकायत किया करते हैं, जैसे क़ब्ज़, स्थूलता, पेट बढ़ना, आदि। वे चलने फिरने में जल्द थक जाते हैं। देखने में भी ऐसे लोगों का शरीर कसरतियों के सदृश सुडौल नहीं होता।

कसरत के समय के वस्त्र—वस्त्रों में सदा से समय की सभ्यता के अनुसार ही परिवर्त्तन होता जाता है। पर इसके विरुद्ध कुछ वस्त्र ऐसे हैं जो साधारण गृहस्थियों को देश और ऋतु के अनुकूल पहनने ही पड़ते हैं और उनको मनुष्य अपनी समझ, सभ्यता, शिक्षा और ज़रूरत के अनुकूल बना लेता है। यदि कसरत लँगोट पहनकर नङ्गे-पांव की जावे (जैसे अखाड़े में कुश्ती के समय) तो बहुत अच्छा हो। आज-कल बाहर की कसरतों में ऐसे वस्त्रों का प्रचार न होने के कारण, पढ़े-लिखे लोग चाहें तो जांघिया (घुटने तक लम्बा) और बनियान आदि पहनकर कसरत करें। गरमी के दिनों में जहां तक हो सके बदन खोल ही कर कसरत करना चाहिए। पसीना आने पर कसरत बन्द कर देना ज़रूरी है। जाड़े के दिनों में या ठंडे देशों में गरम वस्त्र और जूता आदि पहनकर ही कसरत करना उपकारी हो सकता है, क्योंकि वैसी अवस्था में शरीर की गरमी ही रक्षा करती है। हमारे देश में और गरमी के दिनों में कपड़े जूते डाटकर अधिक परिश्रम से केवल हानि ही हो सकती है। जल की क्रीड़ा या तैरने में छोटा वस्त्र (लँगोट या जांघिया) ही अच्छा होता है। कसरत के वस्त्रों के बनाने में मूल सिद्धान्त यह समझना चाहिए कि वे किसी भी तरह की कसरत में बाधक न हों अर्थात् शरीर की उचित और आवश्यक चेष्टाओं को न रोक सकें और शरीर के अङ्गों को अभिघात या चोट आदि से बचावें। पहाड़ पर और गरम धूल में जल्दी जल्दी चलने के समय पैर में जूता ज़रूरी है। सिपाहियों के लिए चढ़ाई के समय जूते आवश्यकीय वस्तु हैं।

कसरत का प्रमाण—आयुर्वेद का मत पहले बताया जा चुका है। जवान आदमी को नित्य इतनी कसरत करना ज़रूरी है जितनी शहर की सड़क पर ६ से ८ मील तक बराबर चलने से हो सकती है। स्त्रियों को इसकी आधी काफ़ी

होती है। हम लोगों के घरों में बच्चों का अपनी इच्छानुसार खेलना, दौड़ना, कूदना, रोना, चिल्लाना ही काफ़ी है। स्त्रियों के लिए घर के काम-काज ही काफ़ी हैं। लेकिन अब नई पश्चिमी सभ्यता के कारण पुरानी बातें ग़ायब हो गईं। इस सभ्यता के माननेवालों को चाहिए कि वे स्त्रियों को भी खुली वायु में घूमने या कसरत करने का मौक़ा दें। वृद्धों के लिए खुली हुई वायु में धीरे धीरे चलना-फिरना अथवा एक जगह बैठे रहना ही काफ़ी है। वृद्धों से और बच्चों से जवानों की कसरत करवाने में उनको बहुत नुक़सान हो सकता है।

स्त्रियों के घरेलू काम और कसरत—पुराने वक्तों में—६० वर्ष पहले—इस देश की स्त्रियां भी इतनी मज़बूत और तन्दुरुस्त होती थीं कि वे आठ-दस मन का बोझा एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान में सहज ही रख दिया करती थीं। इसका एक बड़ा भारी कारण यह था कि उन दिनों वे लोग घर का कुल काम (अन्न कूटना, फटकना, बीनना, पीसना, आटा मांडना, दाल पीसना, पकाना, बर्तन मांजना, सीना, सूत कातना, पानी भरना आदि) अपने ही हाथों किया करती थीं। इसके अतिरिक्त वे दूध दुहना, सानी करना, खेती का काम आदि किया करती थीं। इनमें से बहुत से काम बड़े बड़े घरों की औरतें भी किया करती थीं। खड़े होकर मट्ठा चलाना, चारपाई उठाना, बिछाना, लड़कों के तेल उबटन करना—ये काम करते करते ही उनकी इतनी कसरत हो जाती थी कि उनको नई सभ्यतावाली किसी अन्य टेनिस या बाइसिकिल या गोल्फ़ (golf) या डंबल आदि की ज़रूरत नहीं रहती थी। ऐसी औरत आज-कल की दस औरतों के लिए अकेली ही काफ़ी होती थी। तब आप समझ सकते हैं कि ऐसी स्त्रियों के बच्चे अफ़ीमची या मियाँ पिद्दी कैसे पैदा हो सकते थे, जिनको बहुत हिलाने और तङ्ग करने पर भी हाथ उठाना मुश्किल होता है! ऐसी ही औरतें सती हो सकती थीं यानी अपने पतियों की इज़्ज़त और जान के लिए अपनी जान भी देने के लिए तैयार रहती थीं। ऐसी स्त्रियों की सन्तान सच्ची, वफ़ादार, मज़बूत, दूरदर्शी, मातृसेवक और अपनी इज़्ज़त को प्राणों से भी अधिक समझनेवाली होती थी।

आज-कल स्कूल में पढ़नेवाली लड़कियों और ऐसी ही अन्य स्त्रियों को भी घर के कामों से बिलकुल परहेज़ होने लगा है। इसका प्रत्यक्ष फल यह देखने में आ रहा है कि उन कुटुम्बियों में सुस्ती के कारण अधिक दरिद्रता है और बच्चे, स्त्रियां, पुरुष कम ही उम्र में कमज़ोर होकर मरते देखे जा रहे हैं।

कसरत और खाने-पीने की वस्तुओं का सम्बन्ध—कसरत करनेवालों के लिए चिकने पदार्थ जैसे घी, मक्खन, मलाई, बादाम, दूध आदि जितने लाभदायक होते हैं उतने और कोई नहीं होते। कसरत के पीछे मक्खन आदि वस्तु चाटने से बल शीघ्र ही बढ़ता है, सांस की ताक़त या दम भी बढ़ जाता है, और सब इन्द्रियां तृप्त हो जाती हैं। यदि उसे किसीके साथ पीना हो तो गरम चावल के पतले पानी में या दाल के पानी के साथ या दूध के साथ साथ पीले।

शराब, सोडा, लेमोनेड वग़ैरह पीने से बहुत नुक़सान होता है।

ऐसे लोगों के लिए और ऐसे समय में चना (भिगोकर) खाना या चने की रोटी मुफ़ीद होती है।

कसरत और खुली, स्वच्छ वायु—शहर के घरों में ही नहीं, किन्तु बस्तियों में (म्यूनीसिपल्टी के भीतर) भी जवान लड़कों या छोटे बच्चों के कसरत करने और खेलने-कूदने के लिए बहुत कम मैदान रह गये हैं। सब जगह बँगलों और मकानों से घिरी जा रही है। इसीलिए धीरे धीरे शहरों का स्वास्थ्य बिलकुल बिगड़ता जा रहा है। हिन्दुस्तानी बस्तियों में बीमारी सदा बनी ही रहती है। ऐसे स्थानों में अधिक कसरत करनेवाले भी बीमार हो जाते हैं। कसरत करने के समय स्वच्छ वायु की और भी अधिक ज़रूरत रहती है। धुआँ या गर्द और बदबूदार हवा से फेफड़ों ही को नहीं बल्कि कुल शरीर को बहुत नुक़सान होता है।

कसरत और वायु—वृद्ध, जवान और बच्चों के लिए एक ही प्रकार की, एक ही समय और एक ही प्रमाणवाली कसरत से उसी तरह हानि होने का भय है जैसे उन्हें एक ही प्रकार के भोजन से है। कहा जा चुका है कि वृद्धों के लिए माला लेकर बैठना, स्वच्छ रहना या थोड़ा घूमना

फिरना ही यथेष्ट व्यायाम है। १ से ६ वर्ष तक के बच्चों को पड़े रहना, समय समय पर रोना-चिल्लाना, घुटनों के बल खिसकना, दौड़ना, कूदना, आदि और तेल की मालिश, उबटन, ही काफ़ी कसरत हैं। इनसे कसरत कराना अच्छा नहीं है। जवान आदमियों के लिए कसरत में स्वाभाविक रीति से भेद होते हैं। यह उनके पेशे के अनुकूल ही हो सकती है; पर उनकी शक्ति से अधिक नहीं होनी चाहिए।

बहुत से ऐसे पेशे भी हैं जिनमें लोगों को कसरत की कोई ज़रूरत नहीं रह जाती। ऐसे लोगों को अपने खाने की वस्तु एवम् समय पर, और काम करने के ढङ्ग पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए जिससे उनको हानि न हो। कहार, ठेलेवाले, किसान, लकड़ी चीरनेवाले, लोहार, बढ़ई, कुम्हार, बोझा ढोनेवाले, पुतली-घरों के मज़दूर आदि लोगों को खाते ही या ख़ाली पेट काम नहीं करना चाहिए। हो सके तो इनके लिए बन्द स्थानों में काम करने के समय स्वच्छ वायु का ठीक ठीक प्रबन्ध होना चाहिए। बन्द जगहों में काम करनेवालों को और अधिक मिहनत करनेवालों को आठ या नौ घण्टे से अधिक काम कभी नहीं करना चाहिए। ऐसा न करने से वे चालीस वर्ष से अधिक ज़िन्दा नहीं रह सकते। ऐसे लोगों के लिए आराम, तेल-मालिश, स्नान और खुली वायु की अधिक ज़रूरत होती है।

ऐसे जवानों के लिए (जैसे विद्यार्थी, दफ़्तरों के बाबू, वकील या बैठकर हलका काम करनेवाले और लोग) यह चाहिए कि वे और कुछ न कर सकें तो कम से कम अपने घर के काम ही के बहाने थोड़ा सा उठ-बैठ और झुक लिया करें, सैर कर आया करें या अन्य कोई साधारण देशी कसरत करके शाम के वक़्त शरीर के सब अङ्गों की मालिश करा लिया करें।

ईसाई स्कूलों में पढ़नेवाली लड़कियाँ—ऐसी लड़कियाँ अपने घर के पढ़े-लिखे लोगों की तरह घर का काम करना भी भूलती और छोड़ती जाती हैं। यदि नई सभ्यता का यही फल है कि मनुष्य अपने शरीर की सेवा के कार्य्यों को भी भूल जावे तो उसकी नक़ल खूब देख-भालकर करना चाहिए। पुरानी स्त्रियाँ घरों का कुल कार्य्य जानती और करती थीं और अपने बच्चों के छोटे छोटे रोगों का और स्त्रियों के जनाने का कार्य्य भी साधारण रीति से जाना करती थीं। आज-कल की स्कूल की पढ़ी लिखी स्त्री के लिए घर में एक झाड़ू-बुहारी देनेवाला, और चारपाई बिछाने-उठानेवाला, एक रसोइया (आज-कल छोटी छोटी क़ौम के लोगों के घर में भी एक रसोइया नौकर है), बर्तन मांजनेवाली एक कहारी, बच्चों को खिलानेवाला एक नौकर, एक आटा पीसनेवाली, मामूली कपड़ों की सिलाई के लिए दर्ज़ी, और घर की मामूली इस्तेमाली धोती, दुपट्टा, आदि रँगने के लिए एक रँगरेज़ चाहिए। उनको सूत कातने के लिए पुतली-घर होने चाहिएँ, कुएँ की जगह पाईप होना चाहिए, घर की तेल-बत्ती की जगह बिजली की रोशनी होनी चाहिए, थोड़ी दूर चलने के लिए भी डोली या इक्का होना चाहिए। अब हमारी माताओं और बहिनों के शरीर ऐसे कोमल, सुकुमार हो गये हैं कि हम केवल बातचीत ही से काम लेना चाहते हैं; हाथ पैर नहीं हिला सकते। घर के सब कामों को भूल जाना ही आज-कल की सभ्यता है। यह नहीं मालूम कि योरोप के लोग ज़रूरत पड़ने पर यहां के मज़दूरों से भी अधिक मैले-कुचैले और मिहनत के काम करने को तैयार रहते हैं। वे इतना आराम करते हुए भी शरीर से कड़ी मिहनत और कसरत करते रहते हैं जिससे वे इतने मज़बूत दिखाई पड़ते हैं। हम जानते हैं, हमारे खाने-पीने के पदार्थों में आज-कल कमी है। इसलिए उस कमी को पूरा करने के लिए हम लोगों को यथाशक्ति अपने घर के छोटे छोटे कामों को ख़ुद करके और पैसा बचाकर खाने की चीज़ों में लगाना चाहिए। दिन भर पान, तम्बाकू चबाने, सुर्ती खाने, तम्बाकू या सिगरट, भांग, गांजा, अफ़ीम, शराब, सोडा, लेमोनेड आदि के पीने से ही और ताक़त की दवाइयां खाने से कसरत करनेवालों का काम नहीं चल सकता। उनको घी, दूध और मठे की भी ज़रूरत है। यहां यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि घर में बैठे बैठे स्त्रियां भी अपने छोटे छोटे हुनर से २०) रुपया महीना कमा सकती हैं। प्रसङ्ग-वश इतना कहना ज़रूरी मालूम पड़ा, क्योंकि लोग कसरत के विरोध में इन विषयों के प्रश्न भी उपस्थित कर देते हैं।

कसरत और भोजन—कसरत ख़ूब भरे-पेट या बिलकुल ख़ाली-पेट या भूख की हालत में नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने से हाज़मे की शक्ति घट जाती है और पेट के रोग भी पैदा हो जाते हैं। स्कूल में विद्यार्थियों से ऐसी हालत में कसरत कराना उनके लिए हानिकारक है।

कसरत और क़ब्ज़ तथा अन्य रोग, जैसे कमज़ोरी, प्रमेह, आदि—कसरत करनेवालों को क़ब्ज़ की शिकायत नहीं रहती। उनको बहुत कम रोग होते हैं। वे प्रायः चिरञ्जीवी होते हैं। कमज़ोरी, प्रमेह आदि के लिए उन्हें ताक़त की दवाओं की आवश्यकता नहीं रहती।

कसरत से हमारे मन का सम्बन्ध—मनुष्य-शरीर के लिए वे कसरतें प्रायः अधिक लाभवाली होती हैं जिनमें कसरत करनेवालों का मन भी लगा रहे। देखने में आया है कि केवल ताक़त बढ़ाने की गरज़ से जो चेष्टायें (जैसे डंबल, मुग्दर आदि) की जाती हैं उनसे लाभ अवश्य होता है, पर उनके छोड़ने पर शरीर फिर कमज़ोर हो जाता है। लोगों के हाथ-पाँव कोई और काम करने से उतने कुशल नहीं होते जितने उन कसरतों से हो सकते हैं जिनमें उनका मन भी लगा रहे (जैसे लाठी लड़ना, फ़ुटबाल खेलना, थोड़े समय तक कुश्ती लड़ना, दौड़ना, तैरना, शिकार करना, आदि)। जब कई मनुष्य मिलकर कसरत करते हैं तब शरीर में जल्दी थकान नहीं मालूम होती। इसलिए हर श्रेणी के मनुष्यों को अपने पेशे के या दर्जे के अनुकूल ही मिलकर कसरत करने से अधिक आनन्द और लाभ हो सकता है। बाहर खेत में काम करनेवाले, पेड़ आदि लगानेवाले कभी कभी काशी के बड़े बड़े विद्वान् और हाईकोर्ट के जज तक देखे गये हैं; परन्तु नई रोशनी के हिन्दुस्तानी विद्वान् इनके कामों को तहज़ीब या सभ्यता के ख़िलाफ़ समझेंगे। उनके नेकटाई, कालर या बाल सँभालनेवाले या अन्य प्रकार का शृङ्गार करनेवाले हाथों में और उमदा पतले या रङ्गीन वस्त्रों में इन कामों से दाग़ आ जावेगा!

गाँव के या देहातों के अमीर लोग अब भी अपने परिश्रम से मज़बूत दिखाई देते हैं। ईश्वर करे उनमें एक रँगवाली सभ्यता का प्रचार न हो।

प्रायः अनेक श्रेणी के मनुष्यों को देह के किसी अन्य व्यायाम की ज़रूरत नहीं रहती। लोहार, बढ़ई, मज़दूर, खेतिहर, ठेला खींचनेवाले, पानी भरनेवाले, चिट्ठीरसा, तारवाले, आदि लोगों के लिए केवल मालिश ही उपयोगी होगी। कम से कम कसरत करने का विचार मन में लाने के पहले लोगों को सोचना चाहिए कि किस किस पेशे में कितनी मिहनत पड़ती है और किसमें मिहनत या कसरत बिलकुल नहीं पड़ती। ऐसा विचार करने पर अपने शरीर, मन, श्रेणी, और आयु, आदि के अनुकूल ही शरीर से मिहनत लेनी चाहिए।

कसरत के अन्य सहायक या साधन—कसरत के लिए ठीक ठीक या उचित स्थान (जैसे तैरने के लिए नदी या तालाब आदि) की आवश्यकता है। वस्त्र, वायु, शरीर की सफ़ाई, उचित खाद्य पदार्थ (घी, दूध) और अन्य सामान, जैसे गोली, गेंद-बल्ला, गिल्ली-डण्डा, नाव, लाठी, गदका, तीर-कमान आदि कसरत के दूसरे साधन हैं। तात्पर्य्य यह है कि नये और पुराने ढङ्ग की कसरत का कुल सामान, सवारी और यन्त्र, आदि आवश्यक होते हैं।

कसरत का समय—प्रातःकाल या सायङ्काल में फ़ुरसत का समय कसरत के लिए अच्छा समय है। आजकल बहुधा सायङ्काल ही को पढ़े-लिखे लोगों को अधिक फ़ुरसत मिलती है। बहुत से ऐसे घरेलू और बाहरी मिहनत के काम भी, जैसे पीसना, पानी भरना, आटा मलना, दाल पीसना, बर्तन मांजना, आदि, और मज़दूरी करना, ठेला चलाना, बोझा ढोना, खेतों में खोदना, चरसा चलाना आदि भी सवेरे और शाम को या दिन में ख़ाली-पेट करना चाहिए। जाड़े के दिनों में या ठंडे पहाड़ों में (गरमी के दिनों में भी) कसरत करने से ज़्यादा लाभ होता है, क्योंकि उन दिनों में घी या मक्खन आदि चिकने पदार्थ अधिक हज़म हो सकते हैं। इसलिए मामूली हलकी कसरतें दूसरे महीनों में विशेष कर ठंडे काल ही में करनी चाहिएँ। खाने-पीने की योग्य वस्तुओं को शरीर और समय की आवश्यकतानुसार इस्तेमाल करना चाहिए।

इस देश में कसरती लोगों का शरीर इतना सधा रहा करता था कि वे बड़े बड़े अचम्भे के काम कर सकते थे; जैसे पानी में या तलवारों पर नाचना। ऐसा करते हुए वे न डूबते थे और न ज़ख़्मी होते थे। बताशों

पर दौड़ना आदि कसरतें अब कम देखने में आती हैं। जहाँ तक मेरा ख़याल है ऐसे लोगों को हठ-योग(*) की अनेक कसरतें (आसन, मुद्रा, आदि) अच्छी तरह मालूम रहती थीं।

कसरत और कुछ रोगों की चिकित्सा—बहुत सी ऐसी चेष्टायें हैं जिनसे अनेक रोग भी अच्छे हो जाते हैं; जैसे मयूर-आसन से उदर के रोग(†)। इसी तरह श्वास की या प्राणायाम की कुछ विधियाँ हैं जिनसे दमे वग़ैरह पर असर पड़ता है। इनके लिए हठयोग देखिए।

कसरत करनेवाले को किन किन मुख्य बातों पर ध्यान देना चाहिए?—कसरत के विषय में ऊपर बताई बातों पर विचार करने से साफ़ मालूम हो सकता है कि नीचे लिखी तीन बातों पर ध्यान देना चाहिए—

(१) कसरत के भेद।

(२) कसरत का समय।

(३) कसरत का प्रमाण या अवधि।

कसरत के मुख्य भेद दो हैं—(१) जिनमें कसरत करनेवाला स्वयं शरीर के अङ्गों से धीरे धीरे या जल्दी जल्दी चेष्टा करता है। इन्हें चेष्टावाली कसरत (Active Exercise) कहना चाहिए। (२) वे चेष्टायें जिनमें कसरत करनेवाला स्वयं चुप पड़ा रहे या बैठा रहे और दूसरा मनुष्य उसके शरीर के अङ्गों से भिन्न भिन्न चेष्टायें कराता हो या उन पर मालिश आदि करता हो, यह बे-चेष्टा-वाली या आरामी कसरत (Passive Exercise) है।

चेष्टावाली कसरतों के उदाहरण—इनका सिद्धान्त बता दिया गया है। उसके अनुकूल आप भेद जान सकते हैं। कुछ भेद ये हैं—हठयोग के अनेक आसन, चलना, फिरना, दौड़ना, कुश्ती लड़ना, डण्डा या गदका लड़ना, कबड्डी, नाचना, बाजा बजाना, गाना, झूला झूलना या झुलाना, घोड़े पर सवार हो उसे दौड़ाना, शिकार करना, तैरना, नाव खेना, पेड़ पर चढ़ना, गेंद खेलना, डण्डे मुग्दर घुमाना, हाकी, क्रिकेट, गौल्फ़ के बहाने सैर करना। अनेक घरेलू काम जिनका हाल लिखा गया है, जैसे पीसना वग़ैरह, और कई पेशे ऐसे हैं जिनसे कारीगर या मज़दूर बिलकुल थक जाते हैं। इनमें बच्चा, जवान, वृद्ध, सबही के योग्य उचित मिहनत हो सकती है।

बे-चेष्टावाली या आरामी कसरत के उदाहरण—गाड़ी, मोटर, या नाव में बैठकर सैर करना या हवा खाना, पड़े पड़े या बैठे बैठे अङ्गों को धीरे धीरे मलवाना। ऐसी कसरतें बहुत छोटे बच्चों और बहुत वृद्धों के लिए उपयोगी हैं। जवान लोगों के लिए भी ये समय समय पर ठीक हैं। मालिश (कुछ बीमारियों को छोड़कर) प्रायः सबके लिए उपयोगी है।

कुछ कसरतों पर विचार—**सैर करना** (walking)—यह उन लोगों के लिए जो अन्य कोई कसरत नहीं किया चाहते और दिमाग़ से अधिक कार्य्य करते हैं अच्छी कसरत है। यह कम से कम दो से तीन कोस तक होनी चाहिए। इसे करनेवाले प्रायः बीमार नहीं होते और क़ब्ज़ की भी शिकायत नहीं करते। वे अधिक स्थूल भी नहीं होने पाते। सीधे, सिर ऊँचा रख के, आँखें सामने करके घूमने से अधिक लाभ होता है। सब ऋतुओं में सबेरे-शाम फिरना अधिक अच्छा है। यह कसरत पहाड़ों पर दिन के समय अच्छी होती है।

तैरना, नाव चलाना—गरमी के दिनों में जवान आदमियों के लिए यह अच्छी कसरत है और उनके लिए बड़ी उपयोगी भी है।

घोड़े की सवारी—यह सीधे जानवर पर बच्चों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। जवान लोगों के लिए घोड़ा दौड़ाना अच्छी कसरत है। यह सैनिकों के लिए या उनके लिए जो सैनिकों के सदृश मज़बूत बनना चाहते हैं, अच्छी होती है।

ज़ोर ज़ोर से चिल्लाना, गाना या कुछ काल तक पाठ करना—यह बच्चों के लिए और उनके लिए जिनके फेफड़े कमज़ोर हैं अच्छी कसरत है। बाजे बजानेवालों के लिए ऐसा करना हानिकारक है। बच्चों को खेलते समय

(*) प्लाविनी कुम्भक—इस प्राणायाम से आदमी जल पर कमल के पत्ते के सदृश तैरता है—

"अन्तःप्रवर्तितोदारमारुता पूरितोदरः।
पयस्यगाधेऽपि सुखात्प्लवते पद्मपत्रवत् ॥७०॥
ह० योग० उ० २

(†) धारासवष्टभ्य ॥...स्यान्मयूरम्...॥ ३० ॥
हरति सकलरोगानाशु गुल्मोदरादीन् ॥३१॥

साधारण शोर मचाने से नहीं रोकना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से ही उनके फेफड़े फैलते और बढ़ते हैं। काम करते समय (जैसे, पीसने में) स्त्रियों का गाना भी उनके लिए लाभदायक है। सर्दी की हालत में या दिल की बीमारियों में ये कसरतें हानिकर हैं।

अभ्यङ्ग या मालिश करना या शरीर को मलना—जैसे घोड़ों की मालिश से उनकी त्वचा चिकनी, झुर्री-रहित और कड़ी तथा पट्ठे मोटे और मज़बूत हो जाते हैं और घोड़ा देखने में सुडौल और गठीला मालूम पड़ता है, उसी तरह मनुष्य के शरीर की हालत भी निस्सन्देह सुधर जाती है। ऐसे मनुष्य प्रायः अन्धे-बहरे नहीं होने पाते। वे बुढ़ापे में मज़बूत मालूम होते हैं, दीर्घायु होते हैं, और मिहनत से जल्दी घबराते नहीं। छोटे-मोटे ज़ख़्मों या चोट से उनको कोई भी नुक़सान नहीं होता। यह व्यायाम नित्यप्रति करना रसायन है और बुढ़ापे को दूर रखता है।

गदका-फरी, लाठी लड़ना—ऐसी कसरतें जवान आदमियों के लिए ही मुफ़ीद हैं।

कसरत करनेवालों के लिए कुछ नियम—

१—व्यायाम या कसरत शरीर की शक्ति या ताक़त से आधी या कम होनी चाहिए। पसीने के निकल जाने पर कसरत बन्द कर देना चाहिए। बहुत थकान से हानि है।

२—कसरत धीरे धीरे करनी चाहिए।

३—जहाँ तक हो सके, कसरत स्वच्छ, खुले हुए स्थान में करना चाहिए।

४—पेट में खाना भरके या ख़ाली-पेट कसरत बिलकुल नहीं करना चाहिए। खाने के चार या पांच घण्टे पीछे कसरत करना ठीक होता है।

५—सबेरे और शाम के वक्त कसरत करना अच्छा है।

६—कसरत करते ही ठण्डा पानी, शराब, आदि पीना या भारी वस्तु खाने से हानि है। मक्खन चाटना लाभदायक है।

७—ठण्डी ऋतु में कसरत से लाभ हैं। गरमी और वर्षा में कसरत कम करना चाहिए। वर्षा के ठण्डे भाग में कसरत करना लाभदायक है।

८—जाड़े के दिनों में दौड़नेवाली कसरतों से कोई नुक़सान नहीं होता; परन्तु गरमी के दिनों में उन्हींसे नुक़सान हो सकता है। किसी न किसी प्रकार की कसरत हर ऋतु में अच्छी है।

९—हिन्दू घर की या परदे में रहनेवाली स्त्रियों के लिए उनके घर के काम ही कसरत का काम दे सकते हैं।

१०—बच्चों के लिए खेल-कूद ही उनकी अच्छी कसरत है। दो से छः वर्ष तक के बच्चों से कोई अधिक कसरत नहीं लेना चाहिए।

११—कसरत करनेवालों को विषय कम करना चाहिए।

प्रसादीलाल झा,
आयुर्वेद-निधि, एल० एम० एस०

नालन्द-विश्वविद्यालय।

मगध देश का प्रसिद्ध नालन्द-विश्वविद्यालय महाभारत में सुविख्यात जरासन्ध की राजधानी राजगृह के निकट था। आज-कल पटना ज़िला के बिहार सब-डिवीज़न में जहाँ बड़गाँव नाम का ग्राम है, वहीं लोग इस विद्यालय का स्थान निश्चित करते हैं।[1]

चीनी तीर्थ-यात्री फ़ाहियान नालन्द के विषय की कोई बात अपने यात्रा-वृत्तान्त में नहीं लिखता है। परन्तु सुङ्ग-यात्रियों[2] ने इस स्थान का परिदर्शन किया था। वे राजगृह से १५ ली (Li)* उत्तर को इसकी स्थिति बताते हैं। ई-साङ्ग इसे महाबोधि वृक्ष से सात योजन से कुछ ऊपर दूरी पर स्थित बतलाता है। ह्वेन साङ्ग की जीवनी से भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि होती है।[3]

ह्वेन साङ्ग कहता है कि परम्परागत कथा के

१. Cunningham—Anc. Geog., p. 468.

२-३. Walter's Ywan-Chwang, Vol. II, pp. 165-66.

* Li (ली) चीन का मील है जो अँगरेज़ी मील की तिहाई से कुछ ऊपर होता है।

अनुसार नालन्द का नाम एक नाग से पड़ा जो विद्यालय के दक्षिण में आम्र-कुञ्ज के बीच किसी तालाब में रहता था।[1] पर इस कथा की अपेक्षा हमें दूसरी कथा पर अधिक विश्वास हुआ। वह यह है—

गौतम बुद्ध अपने किसी पूर्व जन्म में 'नालन्द' (न+अलम्+द) "दान में अतृप्त" के नाम से प्रसिद्ध थे[2]। असल बात यह है कि जू-ले (Julai) पूसा के (Pusa) नाम से यहाँ कभी राज करते थे, जिनकी राजधानी इसी जगह थी। वे बड़े दयावान् व्यक्ति थे। अतएव लोगों ने उन्हें नालन्द (न+अलम्+द) की उपाधि से सम्मानित किया था। इसी कारण इस विहार का नाम भी नालन्द पड़ा[3]। बौद्ध धर्म्म-ग्रन्थों में राजगृह के निकट[4] नालन्द नामक एक ग्राम का उल्लेख है, और 'आम्र' शब्द, जान पड़ता है, विद्यालय के आदि-स्वामी के लिए व्यवहृत हुआ है[5]।

जैसा कि लोगों को मालूम है, गुप्त-काल में नालन्द विद्या के प्रधान केन्द्रों में से एक था। इस महाविद्यालय की नींव कब पड़ी, यह अनिश्चित है। फ़ाहियान ने, जो चौथी शताब्दी में यहाँ आया था, इसकी कुछ भी चर्चा नहीं की है। पर ह्वेन साङ्ग ने, जो सातवीं शताब्दी में भारतवर्ष में पहुँचा, सम्पूर्ण विद्यालय का ज्वलन्त वर्णन किया है। अतएव इतिहास-कार अनुमान करते हैं कि इन्हीं दो शताब्दियों के बीच अर्थात् पाँचवीं शताब्दी में किसी समय उसकी स्थापना हुई। पर यह सिद्धान्त सन्तोषजनक होना असम्भव है, क्योंकि ह्वेन साङ्ग अपने यात्रा-वृत्तान्त में लिखता है कि बुद्ध के निर्वाण[1] के कुछ समय बाद ही शक्रादित्य नाम के एक राजा ने इसे बनवाया और यह ७०० वर्षों से स्थित[2] है। डा० स्पूनर की भी राय है कि इसकी केवल भेद-सूचक प्रधानता इतने निकट की है; परन्तु जगह की प्रधानता और भी अधिक प्राचीन है[3]।

नालन्द-विश्वविद्यालय के जीवन में प्रायः तीन अवस्थायें[4] हुईं। पहली सात्विक अवस्था—यह 'शान्तियुग' के नाम से प्रसिद्ध है। यह काल अशोक के समय से आरम्भ हुआ। संसार से विरक्त कुछ संन्यासी मनुष्य-संसर्ग से अलग हो नालन्द में कुटी बनाकर रहने लगे। क्रमशः इनकी प्रशंसा फैलने लगी और नालन्द विद्या-पीठ में परिणत हो गया।

इसके बाद राजसिक अवस्था प्रारम्भ हुई। यह काल 'कर्म्म-युग' के नाम से विख्यात है। इस समय वीर विक्रमादित्य पृथ्वी का न्याय-पूर्ण शासन कर रहे थे। वे समय का सदुपयोग कर श्रीलक्ष्मी की कृपा से अतुल सम्पत्ति के अधिकारी हुए। इसी समय नालन्द महा-विश्वविद्यालय हुआ और भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के विद्यार्थी यहाँ आकर विद्याध्ययन करने लगे।

अन्ततः इस की अवस्था में तामसिक काल का आगमन हुआ। आठवीं शताब्दी में भारतवर्ष से बौद्ध-धर्म्म के ह्रास होने के साथ ही साथ नालन्द का भी ह्रास हो गया; क्योंकि नालन्द विशेषतः बौद्ध ही की सम्पत्ति थी। अन्त में यवनों की तलवार भारतवर्ष पर पड़ी और संन्यासी लोग या तो मार डाले गये या अन्य देशों में भाग गये।

१-२. Walter's Ywan-Chwang, Vol. II, pp. 164; Records of the Western World—Beal, Vol. II, pp. 167-168.

३. Walter's Ywan-Chwang, Vol. II., p. 164.

४. Majjhima Nikaya, Vol. I., p. 371

५. Walter's Ywan-Chwang, Vol II., p. 166.

१-२. The life of Hiuen-Tsiang—Beal, pp. 110—12.

३. Archæological Reports, Eastern circle, 1915-16, p. 33.

४. The idea of stages, borrowed from Havell's "Indo-Aryan Civilization."

सातवीं शताब्दी में १०,००० संन्यासी नालन्द-विश्वविद्यालय में निवास करते थे।[१] ह्वेन साङ्ग, जो यहाँ कई वर्षों रहा, वर्णन करता है कि "इसमें भिन्न भिन्न चमकीले रङ्गों से रँगी हुई और शिल्पकारी से सुशोभित बड़ी बड़ी कोठरियाँ थीं। चारों ओर चतुष्कोण दीर्घकाय आठ दीवारें और पर्वत-शिखर के सदृश नुकीले गुम्बज़ थे। आकाश से बातें करते हुए इसके बुर्ज और कङ्गूरे ऐसे जान पड़ते थे मानों प्रातःकाल के कुहरे में विलीन हो गये हों। भवन की खिड़कियाँ इतनी ऊँची थीं कि वहाँ से मेघ-राशियों की गति स्पष्ट दीख पड़ती थी। इसकी ऊँची छतों से सूर्य्य और चन्द्र परस्पर मिलते हुए दिखाई पड़ते थे। छायादार कुञ्ज और उपवन, निर्मल जल से परिपूर्ण ताल, और उसमें प्रस्फुटित नील कमल, लाल लाल कलियों से आच्छादित कनक-वृक्ष, और काली काली पत्तियों से ढँपे आम्रवृक्षों के नीचे रमणीक एकान्त-स्थानों को देखकर मुझे अपूर्व आनन्द मिलता था"।

बाहरी ओसारे पर चार मञ्ज़िलें थीं जिनमें सर्पाकार वरगे (Projection) और रङ्गीन ओलतियाँ थीं। चित्रित और आभूषित मोतियों के सदृश लाल लाल खम्मे और सुसज्जित कटहरे लगे थे। ओसारे की छतें खपरों की थीं, जिन पर रोशनी सहस्रों रूप में प्रतिबिम्बित होती थी। ये सब चीज़ें वहाँ के दृश्यों को और भी अधिक मनोहर बना देती थीं।

ई-साङ्ग भी (I-Tsiang) जो सातवीं शताब्दी के अन्त में यहाँ आया था, लिखता है कि इसमें आठ बड़े बड़े हाल (Halls) थे, और ३,००० कोठरियाँ थीं जिनमें ३,००० संन्यासी निवास करते थे।

ह्वेन साङ्ग कहता है कि उस समय भारत में सहस्रों सङ्घाराम थे; परन्तु नालन्द की विशालता, धन और कारीगरी में सभी फीके जान पड़ते थे। क्रमानुसार सभी राजाओं ने इसकी सुन्दरता बढ़ाने में स्पर्धा दिखाई और अन्त में यह यथार्थ में दर्शनीय हो गया।

छः कालेजों में से पहले को शक्रादित्य ने, दूसरे को बुद्ध गुप्त ने, तीसरे को तथागत ने, चौथे को बालादित्य ने, पाँचवें को वज्र ने और छठे को मध्य-भारत के किसी राजा ने बनवाया था।

नालन्द-विश्वविद्यालय को राजाओं और अन्य सहृदय पुरुषों से यथेष्ट आर्थिक सहायता मिलती थी। वहाँ के छात्रालयों में धनहीन विद्यार्थियों से कुछ फ़ीस नहीं ली जाती थी। क्रमानुसार उच्च श्रेणी के विद्यार्थियों को अच्छी कोठरियाँ और निम्न श्रेणी के विद्यार्थियों को साधारण कोठरियाँ मिलती थीं। आधुनिक खुदाई से पता लगता है कि एक कोठरी में एक ही विद्यार्थी रहता था, क्योंकि आज तक प्राप्त, छात्रालय की बड़ी से बड़ी कोठरियों की लम्बाई १२ फ़ीट और चौड़ाई ८ फ़ीट है। विहार का ख़र्च दान के द्रव्य से चलता था। यह भी पता लगता है कि इसके अधीन २०० से ऊपर ग्राम थे जो बड़े बड़े राजाओं ने विद्यालय को दान-स्वरूप दे दिये थे[१]। ह्वेन साङ्ग कहता है कि मुझे प्रतिदिन १२० जम्बीर, २० जायफल, २० खजूर (Areca nut), एक औंस कपूर, ½ बूशल महाशाली धान के चावल,

१. The life of Hiuen-Tsiang—Beal, p. 112.
२. The life of Hiuen-Tsiang—Beal, p. 111.
३. The life of Hiuen-Tsiang—Beal, pp. 111—12.
४. I—Tsiang Takakusu, p. 65.
५. Records of the Western World—Beal, p. 170.
६. The life of Hiuen-Tsiang—Beal, pp. 110-111.
७. The life of Hiuen-Tsiang—Beal, p. 113.
८. I—Tsiang Takakusu, p. 86.
९. Archæological Reports, Eastern Circle, 1915-16, p. 35.

१. I—Tsiang Takakusu, p. 65.

प्रत्येक मास में तीन राशि तैल और प्रतिदिन थोड़ा मक्खन, ये सब मिला करते थे[१]।

नालन्द का विहार यथार्थतः एक बड़ा विश्व-विद्यालय (यूनिवर्सिटी) था, जहाँ हर सम्प्रदाय की शिक्षा दी जाती थी। नालन्द में आर्य्य दर्शन-शास्त्रों की भिन्न भिन्न शाखाओं की शिक्षा देने के लिए एक सौ आचार्य्य थे। विद्यालय में गणित, ज्योतिष आदि सांसारिक विषयों के साथ ही साथ आत्म-विद्या और धर्म्म की शिक्षा वितरण की जाती थी। ह्वेन साङ्ग तो स्पष्ट-रूप से वर्णन करता है कि यहाँ बौद्ध-धर्म्म-ग्रन्थों के अतिरिक्त वेद, सांख्यदर्शन और अन्यान्य विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले प्रायः सभी ग्रन्थ पढ़ाये जाते थे। हेतु-विद्या, शब्द-विद्या, वैद्यक, इत्यादि विविध विषय भी कालेज के कोर्स में सम्मिलित थे[२]। नालन्द राजकीय मान-मन्दिर (आकाश के ग्रह नक्षत्रादि देखने का स्थान) था और वहाँ की जल-घड़ी[३] सम्पूर्ण मगध-वासियों को ठीक समय का ज्ञान कराती थी। ई-साङ्ग कहता है कि नालन्द की जल-घड़ी दिन के सभी घण्टे ठोंका करती थी और उसकी राय थी कि यही बात चीन में भी प्रचलित की जाय[४]। नालन्द-विश्व-बौद्यालय में शिल्पकला-विभाग भी था, क्योंकि बौद्ध भिक्षक शिल्पकला, चित्रकला और मन्दिरादि बनाने में भी कुशल थे। जान पड़ता है कि वहाँ एक कठिन प्रवेशिका परीक्षा होती थी जिसमें कड़े कड़े प्रश्न पूछे जाते थे और जो उसमें उत्तीर्ण होते वे ही विद्यालय में भरती किये जाते थे[५]। यदि सफली-भूत विद्यार्थियों की संख्या दश होती थी तो अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों की संख्या सात या आठ से कम नहीं होती थी। वहाँ का पाठ्य-क्रम दो या तीन वर्ष का था[१]। उपाधिप्राप्त युवक-गण राजा के यहाँ सार्व-जनिक सेवा के निमित्त जाते थे और शास्त्रार्थ में अपनी तीक्ष्ण बुद्धि तथा अद्भुत चतुराई का परि-चय देते थे[२]।

आचार्य्यगण प्रतिदिन भिन्न भिन्न सौ मञ्चों से शिक्षा प्रदान करते थे और विद्यार्थी लोग ध्यान-पूर्वक उनका उपदेश श्रवण करते थे[३]। सारा दिन तर्क-वितर्क में व्यतीत होता था। इसमें वृद्ध-युवा सभी भाग लेते और पारस्परिक सहायता करते थे। ह्वेन साङ्ग कहता है कि गूढ़ प्रश्नोत्तरों के लिए दिन-भर भी यथेष्ट नहीं होता था। भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों से विद्वज्जन आ आकर यहाँ अपनी अपनी शङ्काओं का समाधान कराते थे[४]।

विश्वविद्यालय के पदक, मुहर और अन्यान्य प्रशंसापत्र (सार्टिफिकेट आदि) पाने के लिए लोग बड़े लालायित रहते थे, यहाँ तक कि इसी भाव से लोग अपने को विश्वविद्यालय का विद्यार्थी बता-कर प्रतिष्ठित होते थे। नालन्द-विश्वविद्यालय की बहुत सी मुहरें प्राप्त हुई हैं जिन पर ये शब्द खुदे हुए हैं "श्री-नालन्द-महाविहारीय-आर्य्य-भिक्षुक-संघस्य"। इन मुहरों के दो किनारों पर शान्तिभाव से बैठे हुए दो मृगों के चिह्न बने हैं जो अपना अपना सिर ऊँचा किये चक्र की परिधि की ओर देख रहे हैं[५]।

विश्वविद्यालय का शासन (Discipline) बड़ा सन्तोष-जनक था। नियमादि कड़े थे और सम्पूर्ण भारत नालन्द ही के नियमादिकों का अनुसरण करता

१. The life of Hiuen-Tsiang—Beal, p. 109.
२. The life of Hiuen-Tsiang—Beal, p. 112.
३. Indo-Aryan Civilization—Havell.
४. I—Tsiang Takakusu, pp. 145-46.
५. Records of the W. World—Beal, p. 171.

१-२. I—Tsiang Takakusu, p. 177.
३. The life of Hiuen-Tsiang—Beal, p. 112.
४. Records of the Western World—Beal, p. 170.
५. Archæological Reports, E. C., 1916-17, p. 43.

था[१]। कार्य्य-सम्पादन में समय की बड़ी पाबन्दी देखी जाती थी। प्रति दिन प्रातःकाल एक बड़े घण्टे की घोषणा से स्नान करने का समय सूचित किया जाता था। विद्यार्थी गण सौ सौ अथवा एक हज़ार के झुण्ड में अँगौछे हाथ में लिये चारों ओर से तालाब की ओर जाते हुए दिखाई पड़ते थे[२]। स्नान करने के ऐसे तालाबों की संख्या दश थी[३]। प्रतिदिन सन्ध्या से लेकर गोधूलि-वेला तक धर्माचार्य्य मन्त्र उच्चारण करते और स्तुति करते हुए एक कोठरी से दूसरी कोठरी में जाते थे।

ह्वेन साङ्ग के निवास-काल में विद्यालय के महन्त सन्तत राजवंश के शीलभद्र नामक सज्जन थे। यूनिवर्सिटी के अन्य सदस्यों में धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभामित्र, जिन्मित्र, ज्ञानचन्द्र, शीघ्रबुद्ध प्रभृति थे। लामा सम्प्रदाय के संस्थापक पद्मसम्भव भी इसी यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट (Alumnus) थे।

नालन्द की प्रधान प्रधान प्रसिद्धियों में वहाँ का शिल्प भी शामिल है। डा० स्पूनर और मि० ब्राडले (Mr. Broadley) ने इसके मुख्य मुख्य भग्नावशेष प्राप्त किये हैं। मि० कनिङ्हम की राय है कि समस्त भारत के शिल्पों में ये सबसे सुन्दर हैं, और यथार्थ में ये भग्नावशेष कलकत्ते के अजायबघर की शोभा बढ़ा रहे हैं। रायल एशियाटिक सोसाइटी की उदारता को धन्य है, जिसने हाल की खुदाई से बहुत सी अनमोल वस्तुएँ प्राप्त की हैं जो चीनी यात्री ह्वेन साङ्ग के ज्वलन्त वृत्तान्त की पुष्टि कर रही हैं। समूचे मकान ईंटों के बने हुए थे। डा० स्पूनर कहते हैं कि ये ईंटें हलके, पीले रङ्ग, अद्भुत बनावट तथा उत्तम श्रेणी की हैं। ईंटें परस्पर इस प्रकार बैठाई गई हैं कि कहीं कहीं एक दूसरे का सम्बन्ध तक नहीं जान पड़ता। उनकी राय है कि जहाँ तक हमने हाल के मकान देखे हैं उन सबों से इसके ईंट के काम में कहीं विशेषता है। अब यह दिखाया जा सकता है कि इस स्थान पर लगातार कई शताब्दियों तक क्रमशः चार भिन्न भिन्न विहार बने। जब एक नष्ट होता तो दूसरा बनाया जाता; और इस भाँति पहले का नामो-निशान मिट जाता था।

हज़ारों वर्षों की स्थिति के बाद यह पवित्र स्थान कब ध्वंस हो गया, ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। इसमें सन्देह नहीं कि दशवीं शताब्दी तक इसका अस्तित्व था, क्योंकि इतिहास से पता लगता है कि राजा देवपाल ने नगरहार (जलालाबाद) के वासी वीरदेव नामक किसी पुरुष को विहार का महन्त बनाया था। फिर, बङ्गाल के राजा महिपाल के राजत्वकाल के नवें वर्ष में विहार के जल जाने पर तैलधक ग्राम के बालादित्य ने इसका पुनरुद्धार किया था। कालचक्र की कुगति से हमारे इस प्राचीन गौरव की गवाही अब केवल दो-चार मिट्टी के टूटे फूटे पुश्ते दे रहे हैं। डा० स्पूनर का कथन है कि "समूचा स्थल अब भी आश्चर्य्यजनक दिखाई पड़ता है। मिट्टी के ऊँचे ऊँचे पुश्ते एक क़तार में दक्षिण और उत्तर, ३,००० फीट तक फैले हुए हैं। इसकी चतुष्कोण पूर्व की दीवारें यद्यपि बिलकुल पृथ्वी के भीतर लुप्त हैं, तोभी उनकी स्थिति साफ़ दिखाई देती है, क्योंकि ये साधारण पृथ्वीतल से कुछ ऊपर हैं। मिट्टी के भग्न पुश्ते जो पूर्व और उत्तर की ओर हैं दृश्य की मनोहरता और भी

१. Records of the Western World—Beal, p. 170.

२. I—Tsiang Takakusu, p. 108.

३. I—Tsiang Takakusu, p. 154-55.

१. Archæological Reports, E. C., 1915-16, p. 35.

२. Archæological Reports, E. C., 1915-16, p. 2.

३. Ganda Raja Mala, p. 48.

४. Ganda Lekh Mala, p. 102.

बढ़ा रहे हैं। इतस्ततः फैले हुए शिल्प के भग्नांश और पुश्तों के टूटे फूटे टुकड़े सम्पूर्ण विहार के महत्त्व का पता बताने के साथ ही साथ पुरातत्त्व-वेत्ताओं को अभिलषित आनन्द दे रहे हैं।" *

अनुवादक—
दिनेशप्रसाद वर्म्मा
नन्दकुमारसिंह

अमरीका की सैर।

शिकागो में एक मास के क़रीब रहकर मैं पश्चिम की ओर चला। पांच दिन तक बराबर दिन-रात चलने के उपरान्त मैं लास-अंगलिज़ नगर में पहुँचा। बीच में कोई विशेष घटना नहीं हुई। हां राकी पहाड़ को पार करते समय पहाड़ी दृश्य बहुत अच्छे देख पड़े। बाक़ी का रास्ता तो प्रायः निर्जन वन था; पेड़-पत्तों का नामो-निशान भी नहीं था। केवल स्टेशनों के निकट कुछ वृक्ष देख पड़ते थे। रायल गार्ज Royal Gorge नामी दर्रे में से पार होते समय बड़ा ही मनोहर दृश्य देख पड़ा। दोनों ओर बड़ी ऊँची ऊँची पहाड़ियां और बीच में एक छोटी नदी है। इसी नदी के किनारे किनारे रेलगाड़ी दौड़ती जाती है। इस रास्ते का पता लगाना, फिर रेल बनाना, दोनों ही बातें परिश्रम की पराकाष्ठा की सूचना देती हैं। राकी पहाड़ को पार करने में पूरे २४ घण्टे बीत गये। इस पर्वत के बीच बीच में नाना प्रकार के धातुओं के कारख़ाने हैं। तांबे का कारख़ाना रेल के रास्ते में ही मिलता है। यहां से गुज़र-कर प्रसिद्ध साल्ट लेक नगर में गाड़ी बदलना होती है। यह नगर 'मोर्मन' चर्च के लिए विख्यात है। मोर्मन एक प्रकार का ईसाई सम्प्रदाय है। यह अन्य सम्प्रदायों से अनेक बातों में भिन्न है। इसका पूरा वृत्तान्त जानने के लिए "चेम्बर्स इन्साइक्लोपिडिया (Chamber's Encyclopedia) के सातवें खण्ड में ३१० पृष्ठ पर 'मोर्मन' नामी निबन्ध देखिए। यहां पर मैं उसका सार दे देता हूँ—

१८२० में न्यूयार्क के निकट मैनचेस्टर ग्राम में जोज़ेफ़ स्मिथ नामी एक बालक रहता था। वह १४ वर्ष की अवस्था ही में धर्म्म की ओर झुका। उसकी प्रकृति धार्मिक प्रचार की ओर बढ़ी, किन्तु सामयिक ईसाई सम्प्रदायों में एक दूसरे के विरुद्ध इतना अपवाद था कि वह बेचारा घबड़ा सा गया कि किसका ग्रहण और किसका त्याग करें। इस अनिश्चय के उपरान्त वह ईश्वर का ध्यान कर उनसे ज्ञान-प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने लगा। प्रार्थना के उत्तर में उसे ध्यान में ईश्वर और उनके पुत्र ईसा का दर्शन मिला। उन्होंने उसे बताया कि प्रचलित सब सम्प्रदाय दोष-युक्त हैं। दूसरी बार ध्यान में उसे यह जान पड़ा कि मैं संसार में सच्ची बाइबिल को पुनः लाने का कार्य्य करूँगा और मेरे द्वारा ईश्वर के पुत्र का पवित्र धर्म्म फिर से संसार में स्थापित होगा। इस प्रकार ईश्वर का जो राज्य फिर से स्थापित किया जायगा वह कभी भी लुप्त न होगा। उसे ध्यान में उस जगह का भी पता बताया गया जहां उसे अमेरिकन निवासियों का पुराना इतिहास और सच्ची बाइ-बिल स्वर्ण-पत्रों पर लिखी मिलेगी। यह जगह अन्टोरियो (Ontario) में पालयिरा (Poloyra) पर्वत के पश्चिमी ओर ४ मील पर थी। २२ सितम्बर १८२७ को एक फ़रिश्ते ने वह पुस्तक लाकर इसे दे दी। यह धातु-पत्रों पर लिखी हुई ८ इञ्च लम्बी, ७ इञ्च चौड़ी और ६ इंच मोटी पुस्तक थी। पुस्तक का कुछ भाग खुला था, बाक़ी पर मुहर लगी थी। यह एक विचित्र भाषा में लिखी थी जिसे मोर्मन लोग "संस्कृत मिश्री" भाषा (Reformed Egyptian) कहते हैं। इसी पुस्तक के साथ "उरिम और थमिम" (Urim and Thummim) भी प्राप्त हुए। ये एक प्रकार के चश्मे थे जिनकी सहायता से स्मिथ महाशय ने इस पुस्तक का आशय समझा और उसका अनुवाद अँगरेज़ी भाषा में किया। इसीका नाम 'मोर्मन की पुस्तक' है। यह प्रथम प्रथम १८३० में छपी थी। इस समय तक इस पुस्तक का अनुवाद डेन, फ़रासीसी, जर्मन, इटली, वेल्स, स्वीडिश, डच, हवाईयन, समोन, मोरी, तुरकी, दिवस और हिन्दु-स्तानी भाषाओं में हो-चुका है।

* गत सितम्बर मास के "हिन्दुस्तान रिव्यू" में प्रकाशित प्रो० शिवनाथ वसु के लेख का अविकल अनुवाद।

१८२६ की २५ मई को जान-दी-बैपटिस्ट ने इनके सामने प्रकट हो इन पर और ओलाइवर काउडेरी (Oliver Cowdery) के ऊपर हाथ रक्खा, और दोनों को पवित्र कर उन्हें "आरोनिक" (Aaronic) की पदवी दी। इसी सन में पीटर जेम्स और जान ने भी प्रकट हो उन्हें मेलची-सीडेट (Melichisedate) की बड़ी पदवी प्रदान की। १८३० की ६ अप्रैल को स्मिथ महाशय ने यह नया सम्प्रदाय ईश्वर की आज्ञा से न्यूयार्क के लिए Fayette (फ़ेयट) ग्राम में स्थापित किया था।

धीरे धीरे इस सम्प्रदाय की वृद्धि होती गई और सामयिक सम्प्रदायों ने इन्हें तङ्ग भी बहुत किया। ये लोग मसोरी (Mussorie) और इलोनोईस (Illionois) से निकाले गये। स्मिथ महाशय तथा उनके भाई हिरम (Hyrum) को लोगों ने १८४४ में मार भी डाला; किन्तु धर्म्म की आग न बुझी, बरन प्रति दिन बढ़ती ही गई। इस समय इसके अनुयायियों की संख्या ३४,६०० है और इनके ६ गिर्जे हैं, जिनमें से सबसे बड़ा साल्टलेक नगर में है। इनके प्रधान विश्वास जो और सम्प्रदायों से नहीं मिलते, ये हैं—

(१) ये परमेश्वर तथा उसके पुत्र ईसा और पवित्र आत्मा पर विश्वास करते हैं। (२) इनके विश्वास के अनुसार मनुष्यों को अपने कार्य्यों का फल मिलेगा। (३) इनके विश्वास के अनुसार ईसा की कुर्बानी से मनुष्य-मात्र को मुक्ति-प्राप्ति हो गई। शर्त केवल मसीह पर विश्वास लाना-मात्र है। वह विश्वास (I) मसीह पर ऐतबार के द्वारा (II) पश्चात्ताप से (III) पानी में पूरा डुबोकर बपतिस्मा (Baptism by immersion) लेने से और (IV) पवित्र आत्मा की प्राप्ति के लिए सिर पर हाथ रखकर (Laying on of hands for the gift of the Holy Ghost) प्रकट किया जाता है। (४) इनके मत के अनुसार बाइबिल का वह हिस्सा ईश्वर-कृत है जिसका ठीक अनुवाद हुआ है। (५) ये पुरानी और नई (भविष्य में होनेवाली) आकाश-वाणियों में विश्वास रखते हैं। (६) इनके मत के अनुसार इसराईल लोग फिर से एकत्र होंगे और ज़ियोन (Zeon, नया जेरूसेलम) अमेरिका में बनेगा। मसीह फिर संसार में मनुष्य-देह में आकर राज्य करेंगे और पृथ्वी का नया कलेवर होगा, जिससे यह वैकुण्ठ के तुल्य पवित्र हो जायगी। (७) ये पुरुषों के अनेक विचारों में विश्वास करते हैं। इनके मत में एक पुरुष का विवाह सर्वदा के लिए होता है; तिलाक़ नहीं हो सकता। मरण के पश्चात् भी स्त्री-पुरुष स्वर्ग या नरक में पति-पत्नी की भांति रहेंगे। इनका विश्वास है कि मनुष्य को अपने विश्वास के अनुसार ईश्वर की आराधना करने का अधिकार है: दूसरों को उसमें ज़बरदस्ती दख़ल देने की ज़रूरत नहीं है।

इसी सम्प्रदाय का मन्दिर इस नगर में विशेष देखने योग्य वस्तु है। यह नगर के मध्य में स्थित है। यहां पर एक विशाल सभा-मण्डप है जो २५० फुट लम्बा, १५० फुट चौड़ा और ७० फुट ऊँचा, देखने में कछुए की पीठ की तरह लगता है। इसके भीतर १२,००० मनुष्य कुर्सियों पर बैठ सकते हैं। यह ऐसी कारीगरी से बना है कि एक सिरे पर सुई गिराई जाय तो दूसरे सिरे पर उसका शब्द सुन पड़ता है। यह बात हमें हमारी मार्ग-प्रदर्शिका युवती ने प्रत्यक्ष करके दिखाई थी। मन्दिर इसके पूर्व भाग में बना है। यह पत्थर की एक विशाल इमारत है। इसके भीतर वही जा सकता है जो मोर्मन धर्म मानता हो और इस पर भी, पुजारियों तथा अन्य धार्मिकों को उसके पवित्र चरित्र का पता हो। यह इमारत २१० फुट ऊँची है। इसके ऊपर मोर्मनी देवदूत की सुनहली मूर्ति है। यहां पर और इमारतें भी हैं और एक लाट "सीगल" (समुद्री पक्षी) के स्मरण में बनी है। कहा जाता है कि जब मोर्मन लोग यहां आके बसे तब एक प्रकार के कीट-पतङ्ग खेती को खाकर ख़राब करने लगे। उनकी संख्या इतनी अधिक थी कि मनुष्य हताश हो गये। अकस्मात् इन पक्षियों ने कीट-पतङ्गों को खा लिया और फिर ये स्वयं चले गये। इस घटना को मोर्मन लोग ईश्वरीय कृपा और करिश्मा (लीला) बताते हैं। इसी घटना की स्मारक-रूप यह लाट खड़ी की गई है।

इस मन्दिर के अतिरिक्त लवण-झील तथा अन्य इमारतें भी दर्शनीय हैं, पर समय की कमी के कारण मैं इन्हें नहीं देख सका। इस झील में २५ सैकड़ा नमक है, अर्थात् १०० बालटी पानी लेकर सुखाने से २५

बाल्टी नमक निकलेगा। यह झील ८० मील लम्बी और ३० मील चौड़ी है।

नगर के बीच में एक फ़ुहारा है। उसके चारों ओर चार मूर्तियां बनी हैं। उनमें से एक यहां के प्राचीन निवासी रक्तवर्ण इण्डियनों की है। यह मूर्ति मुझे बहुत परेशान कर रही है। इसके गले में जनेऊ की तरह एक रेखा बनी है, जो समझ में नहीं आती कि क्या है। मैंने सैनशियागो की प्रदर्शिनी में एक तसवीर में भी ऐसा ही चिह्न देखा था, जिस पर मैंने Dr. Hewett (डा० हिवेट) यहाँ के प्रधान आर्कियालोजिस्ट (पुरातत्त्वज्ञ) से उसके बारे में पूछा। इन लोगों की पुरानी सभ्यता का नाम "माया" है। मैंने हिवेट महाशय से कहा कि क्या यह माया शब्द हिन्दुओं के माया शब्द से और चिह्न जनेऊ से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता? उन महाशय ने जनेऊ कभी देखा नहीं था। तब मेरे बताने पर वे एक प्रकार के सोच में पड़ गये और कहा कि यह समस्या मेरे सामने पहले नहीं उठी थी; मैं इस पर विचार और अनुसन्धान करूँगा।

आवश्यकता है कि हमारे देश के विद्वान् मिस्र, रोम, बैबिलोन, चैलेडिया और इस देश में आकर इस पुरानी किन्तु मृतक सभ्यता का पता लगाने में समय व्यतीत करें। पाश्चात्य देश के वैज्ञानिक इस कार्य्य में बड़ा ही परिश्रम कर रहे हैं।

यहीं से रवाना हो मैं लास-ऍंगलिज़ के लिए चला। रात्रि भर सोकर उठा तो मालूम हुआ कि बर्दवान पहुँच गया! बङ्गाल और इस स्थान में फ़र्क़ इतना ही था कि बङ्गाल में ताड़ और खजूर के ऊँचे ऊँचे वृक्ष भी देख पड़ते हैं, जो यहां नहीं हैं। यहां अधिकतर नारङ्गी के पौधे थे। यह यहाँ की प्रधान खेती है। मीलों तक अंगूर के खेत भी थे। यहां साल में फलों से करोड़ों रुपयों की आमदनी है। फलों में नारङ्गी, सेब, नाशपाती, सतालू और अंगूर प्रधान हैं। जो पृथ्वी इन पेड़ों से बची थी वह घास, गेहूँ, जौ और जई के पौधों से भरी थी। "सजलाम्, सफलाम्, मलयजशीतलाम्, शस्यश्यामलाम्" इसी भूमि को कहना पूरा शोभा देता है। यदि अमेरिका को एक अँगूठी से उपमा दें तो केलिफ़ोर्नियां को मरकत-मणि कहना होगा।

धीरे धीरे हमारी गाड़ी स्टेशन पर पहुँची। मैं उतरकर अपने निर्दिष्ट होटल में पहुँचा। यहां देखने को बस शहर के बाहर का मनोहर दृश्य है। आठ मास के बाद पृथ्वी को हरी देख, भारी कपड़े उतार हलके कपड़े पहनने में मुझे जो आनन्द आता था उसका लिखना कठिन है। नगर से प्रायः १२ मील बाहर समुद्र का किनारा है, वह देखने योग्य है। यहां मैंने पहले-पहल स्त्री-पुरुषों को साथ स्नान करते हुए देखा।

दूसरे दिन यहां से मैं सैनशियागो-प्रदर्शिनी देखने के लिए चला गया। खेद है कि इस समय मेरे पास प्रदर्शिनी का हाल विस्तार से लिखने के लिए मसाला नहीं है। सानफ्रान्सिस्को की प्रदर्शिनी के विषय में विस्तार से लिखने के उपरान्त अब इसकी आवश्यकता भी नहीं रह गई। पर, ऐसा भी नहीं है कि इस प्रदर्शिनी को सानफ्रान्सिस्को की प्रदर्शिनी ने ग्रहण लगा दिया हो। इसकी छटा न्यारी है। बहुत सी चीज़ें जो यहां देखीं वे "फ्रिस्को" में नहीं देख पड़ीं। यहां का प्रधान स्थान केलिफ़ोर्नियां-भवन है। इसमें यहां के पुराने निवासियों की सभ्यता के बचे-बचाये चिह्न एकत्र हैं। जो दुर्गा-मन्दिर, मूर्तियां, और ग्रामों के खिलौने यहां बनाकर रक्खे हैं उनसे दर्शकों के हृदय में उस विचित्र सभ्यता के सम्बन्ध से, जिसे स्पेन-निवासियों ने अपनी द्रव्य और भूमि की लोलुपता से धर्म के नाम की आड़ में नष्ट-भ्रष्ट कर डाला, बड़ी ही श्रद्धा का भाव उत्पन्न होता है। उसके नष्ट होने पर आह भरनी पड़ती है। इन तसवीरों को देखने ही से अनुमान हो जाता है कि स्पेन-निवासी डाकू, लुटेरे और क़ज़्ज़ाक़ों की भांति क्रूर, पापी और भयानक पशु रहे होंगे। पुराने निवासी, इमारतों के नक़शे, चित्र और मूर्त्तियां देखने से यह साफ़ मालूम होता है कि यहां की प्राचीन सभ्यता बड़े ऊँचे दर्जे को पहुँच चुकी थी।

डाक्टर हिवेट ने इन लोगों की धर्म्म-पुस्तक भी दिखाई जो ग्लीफ़िक के सदृश थी। इसकी तीन पुस्तकें इस समय वर्तमान हैं—दो मैड्रिड (Madrid) में और एक बर्लिन में। जो पुस्तक मैंने देखी थी वह मैड्रिड की पुस्तक की नक़ल है। अभी इसके पूरे रूप पढ़ने की कुञ्जी नहीं मिली; उसके मिलने पर पुस्तक के बारे में बहुत कुछ ज्ञान

प्राप्त होगा। हिवेट महाशय कट्टर ईसाइयों की मूर्खता पर अफ़सोस करते थे और कहते थे कि इन मूर्ख, कट्टर मज़हबी लोगों ने संसार का बड़ा ही अपकार किया है।

प्रदर्शिनी में मेक्सिको ग्राम की पुरानी सभ्यता के बहुत कुछ चिह्न अभी तक मौजूद हैं। वहाँ पक्षियों के रङ्ग-बिरंगे परों से चित्र बनाने की कला और मोम की मूर्त्ति बनाने की कला बहुत ऊँचे आसन पर पहुँच गई थी।

इसके अलावा सैनशियागो की प्रदर्शिनी में इण्डियन ग्राम देखने योग्य है। यह ठीक उसी प्रकार का है जैसा मिट्टी की छतवाले, सुन्दर लीपे-पोते घरों से पूर्ण पञ्जाबी ग्राम होता है। इण्डियन ग्राम को देख आंसू निकल पड़े! इस ग्राम में पञ्जाब की भांति घरों के बरामदे में मक्की, मिर्चा और गोहरियों की मालायें भी सूखने को लटकाई थीं। ये बेचारे हमारी ही तरह रोटी हाथ से बनाते हैं और उसे "रोटी" कहते हैं। यहां मैंने अन्य अनेक वस्तुएँ देखीं जिनका पूरा वर्णन संयोग होने पर फिर कभी पाठकों को भेंट करूँगा।

इस नगर के सम्बन्ध में तीन स्थानों का ज़िक्र करना और आवश्यक है—

(१) "कैफ़िटेरिया"—यह एक विशेष प्रकार की खाने की दूकान है। पूर्व में भी यह होती है; पर मैंने इसे यहीं देखा। इस नगर में इन दूकानों की बड़ी चाल है। यहां यह दस्तूर है कि आप गृह में जाकर वहां एक बड़ी लोहे की किश्ती, एक मुँह पोंछने का रूमाल, एक जोड़ी चाकू-कांटा और चम्मच उठा लें। फिर सामने जो भोजन की दूकान है उसमें जो पदार्थ आपको रुचें उन्हें आप थाली में रखा लें। अन्त में एक लड़की आकर सब वस्तुओं को देख टिकट दे देगी। अब आप बीच में बैठ भोजन करें और जाते समय दाम दे दें। इस प्रबन्ध में, सफ़ाई और सस्तापन दोनों हैं। हमारे हलवाइयों की दूकानों में भी ऐसा ही प्रबन्ध हो तो बड़ा उत्तम हो।

(२) मूविङ्ग पिक्चर बनाने का कारख़ाना—इसका भी यहां बड़ा विस्तार है। कारख़ाने में हाथी, घोड़े, बाग़-बग़ीचे, नदी-नहर, नाव-जहाज़, सभी कुछ हैं। कहानी के अनुसार पात्रों को खड़ाकर तसवीर उतारते हैं। मैं इस स्थान को भी देखने गया था। जिस दिन मैं गया था, उस दिन एक तुर्की कहानी की तसवीर उतारी जा रही थी। तुर्की पोशाक में बहुत से मनुष्य घोड़ों पर चढ़े अभिनय कर रहे थे, और तसवीर उतारनेवाले विशेष यन्त्र-द्वारा तसवीर ले रहे थे।

(३) यहां मैंने एक धार्म्मिक नाटक देखा, जिसको मिशन प्ले कहते हैं। इसमें उस समय का दृश्य दिखाया है जब स्पेन-निवासी पादरियों ने प्रथम प्रथम एक समुद्रतटस्थ ग्राम में पहुँचकर केलिफोर्निया में धर्म-प्रचार करना आरम्भ किया था। धर्म्म के उपदेशकों के साथ सेना भी थी। धर्म्म-प्रचार लालच, धोखा और ज़बरदस्ती से किस प्रकार किया जाता था, इसका दृश्य इस अभिनय में ख़ूब देखने को मिलता है। अनायास ही इसमें उनकी सारी कूट नीति का पता चल जाता है। इसका प्रभाव ईसाइयों पर क्या होता होगा सो तो वे ही जानें; पर मेरे हृदय पर जो प्रभाव पड़ा वह ऊपर वर्णित है।

इसी नगर में मैंने मगरों की एक बस्ती देखी। इसमें मगर रक्खे हुए हैं। अण्डे-बच्चे से लेकर ३०० वर्ष के पुराने मगर मौजूद हैं। यहां उन्हें मारते हैं और उनके चमड़े की वस्तु बनाकर बेंचते हैं। वे चीज़ें लोगों को दिखाते भी हैं। यहां बड़ा ही मनोहर और शिक्षाप्रद सबक़ मिला। यहीं पर प्रथम प्रथम मिर्च का पेड़ देखा। यह आम के बराबर बड़ा होता है। पत्ती हरी, छोटी छोटी, नीम के सदृश होती है। पत्ती भी खाने में मिर्च के स्वाद की होती है। फल पर एक प्रकार का छिलका रहता है जैसे पपीते के बीज पर होता है।

अमेरिका का राष्ट्रीय खेल 'बेस बाल' भी मैंने यहीं देखा। यह खेल बड़ा ही रोचक है। एक पतले, मुग्दर की भांति डण्डे से यह खेला जाता है। खेल मेरी समझ में भली भांति नहीं आता; पर देखने में यह क्रिकेट से अच्छा मालूम पड़ता है।

एक सप्ताह लास-ऍंजिलिज़ में व्यतीत कर मैं सान-फ़्रान्सिस्को पहुँचा। यहां होटेल नार्मण्डी में निवास किया। पूर्व के दो सप्ताह प्रदर्शिनी के देखने तथा पुस्तकों को ठीक कर घर भेजने में लगा दिये। प्रदर्शिनी का वृत्तान्त अन्यत्र दिया गया है।

प्रदर्शिनी के अतिरिक्त यहां, क्लिफ़, बर्कले और ओकलैंड देखने योग्य स्थान हैं। क्लिफ़ गोल्डन गेट के निकट है। यह जगह सानफ़्रान्सिस्को बन्दरगाह के मुहाने पर है, जो संसार में सबसे अच्छा बन्दरगाह है। यह चारों ओर पहाड़ी से घिरा हुआ है इससे यह स्वाभाविक रीति से हवा और तूफ़ान से बचा रहता है। इस क्लिफ़ से समुद्र का दृश्य बड़ा ही मनोहर देख पड़ता है। इसके ठीक सामने कोई २०० गज़ पर एक पहाड़ी का टीला जल से ऊपर उठा हुआ है। उस पर हर समय सील नामी जल-जन्तु खेला करते हैं। उनको देखने से जी नहीं ऊबता।

इस नगर में आते ही देहली-निवासी एक वणिक् से साक्षात् हो गया। आप बड़े साहसी हैं। आठ वर्ष पूर्व आप अपने पिता के जीवन-काल में यहां विद्योपार्जन के लिए आये थे। दो वर्ष पढ़ने के उपरान्त स्वास्थ्य अच्छा न रहने से आप घर लौट गये। घर जाने के थोड़े काल पूर्व आप-की माता और पिता का परलोक-वास हो गया था। आपके तीन छोटे भाई और दो बहिनें हैं। पिता का देहान्त होने के बाद इन्हें फिर अमरीका लौटकर अपने भाई-बहिनों को शिक्षित करने का विचार उत्पन्न हुआ। घर में बात प्रकट करने से कुटुम्ब के लोग आपत्ति करते और बहिनों तथा छोटे भाई का आना असम्भव हो जाता; क्योंकि इनकी आयु अभी छोटी थी। इससे हमारे नायक ने भाई-बहिनों से ही सलाहकर सब खिचड़ी पका ली और एक दिन आबू जाने के बहाने घर से निकल पड़े। आबू में इनके पिता नौकर थे और ये वहां रहे भी थे, इससे यह बहाना चल गया और हमारे नायक जहाज़ पर रवाना हो गये। ये जो कुछ धन घर से लेकर निकले थे वह सब धीरे धीरे व्यय हो गया और जो रोज़गार का विचार था वह भी सफल नहीं हुआ। इससे इनका हाल तङ्ग हो गया। इन्हें यहां आये पांच वर्ष से अधिक हो गये। अब तीनों बड़े भाई काम कर धन कमाने का यत्न करते हैं। ये बहिनों और छोटे भाइयों को पढ़ाते हैं। सबसे छोटा भाई मातृ-भाषा बिलकुल भूल गया है। वह अमेरिकन लड़कों की भांति धड़ाके से अँगरेज़ी बोलता है। छोटी बहिन भी मातृ-भाषा भूल सी गई है। वह भी अँगरेज़ी खूब बोल सकती है। इन छहों भाई-बहिनों के विचार उच्च हैं। स्वदेश-प्रेम इनकी रग रग में कूट कूटकर भरा है। बहिन डाक्टरी की उच्च शिक्षा प्राप्त कर देश-सेवा करना चाहती है। ईश्वर इनके मनोरथ को सिद्ध करे। हमारे देश में ऐसे मनुष्यों की संख्या अधिक होने लगे तो देश के दिन फिर जावें। मैंने १५ महीने इनके यहां दाल-रोटी खाई। परदेश का दुःख बिलकुल भूल सा गया था। छोटे भाई-बहिनों से तो सगे बहिन-भाइयों का सा प्रेम होगया है। चलते समय उनके और मेरे नेत्र भर आये थे।

इस देश के इस प्रान्त में अपने देशी भाइयों की संख्या बहुत है। मुसलमान और सिक्ख भाई प्रायः सभी प्रान्त के हैं। किन्तु इनमें से अधिक मज़दूरी पेशे के हैं और अशिक्षित हैं, ख़ास कर सिक्ख भाई जो बड़ी जटा रखते और साफ़ा बांधते हैं। ये लोग प्रायः गन्दे रहते हैं, इससे इनके विरुद्ध यहां बड़ा बुरा ख़याल फैल गया है। आवश्य-कता है कि पढ़े-लिखे सज्जन आकर इन्हें सुधारें। इनकी आमदनी काफ़ी है। यदि थोड़ी शिक्षा का विचार इनमें आ जावे और ये सफ़ाई से रहने लगें तो बड़ा ही उपकार हो।

बर्कले का विश्वविद्यालय छात्रों के लिहाज़ से इस देश में बहुत बड़ा है। यहां छः हज़ार से अधिक छात्र हैं। अपने देश के विद्यार्थी भी यहां दस-पांच हैं। आब-हवा और सुन्दरता के लिहाज़ से यह स्थान देहरादून के सदृश है। हमारे यहां भी पहाड़ी जगहों में ऐसे शिक्षालयों की आवश्यकता है जहां जल-वायु अच्छी हो और रास्ता भी सुगम हो, जिससे विद्यार्थी और शिक्षक आकर एक कुल की भांति रहें और विद्या की उन्नति करें। आज-कल के शिक्षकों की जाति के शिक्षकों से काम नहीं चलेगा; इनकी तो छात्रों के उत्तीर्ण होने पर छाती फटती है।

इस देश में रामकृष्ण-मिशन बड़ा काम कर सकता है। न्यूयार्क, बोस्टन और फ़्रिस्को में हिन्दू स्वामी लोग भी धर्म का प्रचार करते हैं, परन्तु आवश्यकता है स्वामी विवेका-नन्द तथा स्वामी रामतीर्थ के सदृश त्यागी और विद्वान् महा-शयों की, जो हिन्दू धर्म का सिक्का संसार में बैठा दें। देश के भिन्न भिन्न धार्मिक सम्प्रदायों को इस ओर ध्यान देना चाहिए। उन्हें ऊँची कोटि के विद्वानों को यहां धर्म-प्रचारार्थ

भेजना चाहिए जो दुराग्रह छोड़ निरपेक्ष बुद्धि से वास्तविक ज्ञान का प्रचार करें। यदि भारत के धर्म का प्रचार बाहर करना है तो उसकी दृष्टि से उपयोगी पुस्तकों की रचना भी होनी चाहिए।

यहां लूथर बरबंक (Luther Burbank) एक बड़े वैज्ञानिक पुरुष हैं। आप फल-फूल और वनस्पति के विद्या के पण्डित हैं। आपने अनेक फलों का संस्कार कर उन्हें उत्तम बना दिया है। नागफनी के कांटों को दूर कर उसे पशुओं के खाने योग्य बनाया है। इसी भांति अनेक फूलों तथा वृक्षों का संस्कार कर आपने उन्हें उत्तम बनाया है। मैं इनके बाग़ को देखने गया था। आप बड़े व्यवसायी हैं, अपने भेद को प्रकट नहीं करना चाहते, क्योंकि उसीसे धन प्राप्त होता है। इसी कारण से आप अपनी बड़ी प्रयोगशाला किसीको नहीं देखने देते। मैंने इनकी छोटी बगिया देखी। इसमें नागफनी और दो एक और वस्तुयें देखने योग्य थीं। बाक़ी कुछ भी नहीं था। अपने देश से इस देश में बहुत पदार्थ आते हैं और यहांसे वहां भी जाते हैं। भविष्य में इस सम्बन्ध के बढ़ने की बड़ी सम्भावना है। इस समय यह लेन-देन सीधे नहीं होता, तीसरे की मार्फ़त होता है। इससे लाभ का बड़ा अंश बीचवाले खा जाते हैं। केवल न्यू आरलियन्स में भारत से वर्ष में बीस लाख के क़रीब बोरे आते हैं। यहांसे भी मशीनें तथा अन्य पदार्थ जाते हैं। यदि अपने देश के व्यवसायी जहाज़ चार्टर कर यह लेन-देन सीधे करने लगें तो बड़ा लाभ हो। मैं कलकत्ते के व्यवसायियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया चाहता हूँ।

अमरीका का एक यात्री

विविध विषय।

१—कौंसिल में मध्यमा परीक्षा।

संयुक्त-प्रदेश के लाट साहब की ४ अगस्त १९१९ वाली कौंसिल में आनरेबल मुंशी नारायणप्रसाद ने काशी की मध्यमा परीक्षा के विषय में गवर्नमेंट से कई प्रश्न पूँछे। उत्तर से मालूम हुआ कि गत पांच वर्षों में काशी की संस्कृत परीक्षाओं से नीचे लिखे अनुसार आमदनी हुई—

साल	आमदनी	ख़र्च
१९१४—१५	रु० ७०५४	६१०६
१९१५—१६	रु० ७७१३	७३४१
१९१६—१७	रु० ८५७५	६५४१
१९१७—१८	रु० ९६६०	६१९४
१९१८—१९	रु० १०८५१	६४१८

यह आमदनी शिक्षा-विभाग में ही रह जाती है; किसी विशेष काम में ख़र्च नहीं होती।

मुंशीजी ने अपने प्रश्न द्वारा यह सम्मति भी दी कि जो विद्यार्थी धनाभाव के कारण काशी की परीक्षायें नहीं दे सकते उन्हें सरकार की ओर से शिक्षा-विभाग के अफ़सरों की सिफ़ारिश करने पर सहायता मिलनी चाहिए। परन्तु यह बात मंजूर न की गई। सरकार की तरफ़ से यह कहकर बात टाल दी गई कि ऐसे विद्यार्थियों का ख़र्च प्रायः पाठशालाओं से मिला करता है। मुंशी जी ने फिर यह सम्मति दी कि यदि कोई विद्यार्थी चाहे तो आचार्य्य परीक्षा सब विषयों में एक साथ दे सके। परन्तु यह बात भी स्वीकृत न हुई। हां, इतना अवश्य कहा गया कि मध्यमा परीक्षा के बारे में सरकार विचार करेगी कि यदि कोई विद्यार्थी किसी विषय में उत्तीर्ण न हो सके तो दूसरी बार केवल उसी विषय में परीक्षा दे। इसी सम्बन्ध में मुंशी नारायणप्रसादजी ने यह भी सम्मति प्रकट की कि यदि सरकार ऐसी ही परीक्षायें हिन्दी में भी लिया करे तो अच्छा हो। परन्तु यह बात भी सरकार की तरफ़ से यह कहकर टाल सी दी गई कि इस विषय में प्रथम यूनिवर्सिटी में विचार होना उचित है।

२—प्रथम प्राच्य-सम्मेलन।

इस वर्ष प्रथम प्राच्य-सम्मेलन (First Oriental Conference) पूना में ५, ६ और ७ वीं नवम्बर १९१९ को होना निश्चित हुआ है। इस सम्मेलन के मन्त्री हैं श्रीयुत पी० डी० गुने, श्रीयुत आर० डी० करमर्कर और श्रीयुत एस० बी० उद्गीकर। सम्मेलन का सूत्रपात हुआ है भाण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट की ओर से। इस कान्फ़रन्स या सम्मेलन का प्रबन्ध एक कमेटी के सिपुर्द

कर दिया गया है जिसमें काशी, पूना, बम्बई, अहमदाबाद, कलकत्ता, मैसोर, आदि स्थानों के बड़े बड़े विद्वान् हैं। इस कमेटी की ओर से अनेक संस्थाओं और विद्वानों को निमन्त्रण-पत्र भेजे गये हैं और उनसे प्रार्थना की गई है कि वे स्वयं या प्रतिनिधि-द्वारा सम्मेलन में उपस्थित हों और निम्नाङ्कित विषयों पर निबन्ध भेजें।

(१) संस्कृत भाषा और साहित्य
(२) अवस्ता और उसका संस्कृत से सम्बन्ध
(३) पाली
(४) जैन और प्राकृत
(५) भारतवर्ष की वर्तमान और प्राचीन भाषाओं का विज्ञान
(६) वर्तमान भाषायें और उनका प्राचीन साहित्य
(७) पुराण वस्तु-शास्त्र, मुद्रा-विद्या, शिला-लेख, पुरातन कला इत्यादि
(८) प्राचीन इतिहास, भूगोल और काल-निर्णय-विद्या
(९) प्राचीन आयुर्वेद, सङ्गीत इत्यादि
(१०) प्राचीन शास्त्र
(११) एक-लिपि इत्यादि
(१२) फ़ारसी और अरबी
(१३) नृवंश-विद्या और कथायें
(१४) संस्कृत और अन्य भाषाओं की पठन-पाठन-विधि

प्रत्येक प्रान्त के प्रतिष्ठित विद्वानों से प्रार्थना की गई है कि वे सम्मेलन की सफलता के लिए उद्योग करें और यद्यपि ६०० से अधिक विद्वानों और संस्थाओं को निमन्त्रण-पत्र भेजे जा चुके हैं तथापि जिन सज्जनों को निमन्त्रण न पहुँचा हो वे अपनेको आमन्त्रित ही समझें। सम्मेलन बम्बई के गवर्नर सर जार्ज लायड खोलेंगे और सर आर० जी० भाण्डारकर सभापति होंगे। अभ्यागतों के ठहरने इत्यादि का सुप्रबन्ध रहेगा।

३—हास्य-चित्र-कला (Cartoon drawing).

मनुष्य के विचारों को परिवर्त्तित करने के बहुत से ढङ्ग हैं। कोई गान-विद्या से, कोई वक्तृता से और कोई केवल शारीरिक बल या धन से ही मनुष्य को अपने विचार परिवर्त्तित करने के लिए बाध्य करते हैं। आज-कल के सभ्य समाज ने कुछ और नवीन ढङ्ग इसी सम्बन्ध में निकाले हैं—छाया-चित्र-कला, सिनेमेटोग्राफ़ी इत्यादि। परन्तु जिस विधि ने इस अर्ध-शताब्दी में शायद सबसे अधिक सफलता अर्ध-शिक्षित समाज के विचारों को अनायास ही परिवर्त्तित करने में प्राप्त की है, वह हास्य-चित्र-कला है।

हास्य-चित्र-कला वर्त्तमान युग की सबसे अधिक प्रभावशालिनी अज्ञात शक्ति जान पड़ती है। इस महायुद्ध के समय में इस कला की जितनी उन्नति हुई है, पहले किसीको यह बात स्वप्न में भी ज्ञात न थी। इस कला को यूरोपीय निवासी बहुत दिनों से जानते आये हैं, परन्तु इसको "कला" रूप में परिणत हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए। विशेष कर युद्ध के समय में हास्य-चित्रों ने बड़े बड़े राजनीतिज्ञों के विचार साधारण जनता में फैलाने में बड़ी सहायता की। कुछ समय तक तो राजनीति-विशारदों की, विशेष कर पाश्चात्य देशों में, यह पूरी प्रेम-पात्री बनी रही। कहते हैं कि इस कला के जाननेवालों पर उन्होंने बड़ा व्यय किया और अपने अपने दलों के प्रतिपादक हास्य-चित्र निकलवाये जिनका जनता पर पर्य्याप्त प्रभाव पड़ा।

हमें इसी विषय पर आज कुछ देखना और सोचना है। अभी तक इस कला की गति बड़ी ही बेढङ्गी रही है। साधारण चित्र-कला-विशारदों से लोगों ने यह आशा की कि वे अच्छे अच्छे हास्य-चित्र भी प्रकाशित कर सकें, यह उन लोगों की नितान्त भूल है। प्रायः देखा गया है कि जहां चित्र-कला-विशारद चूक गये हैं वहां पर साधारण से हास्य-चित्र बनानेवालों ने ग़ज़ब कर दिया है।

यूरोप में इस युद्ध से पहले भी इस कला का प्रादुर्भाव था, यहां तक कि इसी विषय के कई मासिक तथा पाक्षिक पत्र निकलते थे, जो अब भी निकलते हैं। "पंच" नामक हास्य-चित्र-प्रकाशक पत्र के प्रचार का अन्दाज़ा लगाना कठिन है। यह पत्र युद्ध के पहले भी यूरोप तथा सारे संसार की प्रायः सामाजिक, राजनैतिक इत्यादि सभी विषयों पर हास्य-चित्र प्रकाशित करता रहा। आरम्भ में इसने बड़े बड़े चित्र-कला-विशारदों से हास्य-चित्र बनवाकर प्रकाशित किये, परन्तु जब वह अपने ग्राहकों तथा पाठकों पर अधिक

प्रभाव न डाल सका, तब उसे अपनी नीति बदलनी पड़ी, और दूसरी प्रकार के कला-विशारद रक्खे। इन कला-मर्मज्ञों ने इस पत्र को अँगरेज़ी समाज में इतना प्रिय बना दिया कि प्रायः हर एक क्लब ने इसकी एक प्रति मँगाना उचित समझा। युद्ध के समय से इस पत्र ने अपने प्रकाशन में और अधिक उत्साह दिखाया। इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई, और बड़े बड़े गम्भीर पत्रों को भी इसकी नीति का अनुसरण करना पड़ा। "रिव्यू आफ़ रिव्यूज़" नामक पत्र ने अपने कई पृष्ठ इसी प्रकार के चित्रों में लगाये। पहले तो उसने भी "पंच" की भांति अच्छे चित्रकला-विशारदों का आश्रय लेना चाहा, परन्तु इससे कुछ काम न चला। अन्त में संसार के सब देशों के हास्य चित्रों में से सङ्कलित करके उसने प्रतिमास हास्य-चित्र छापे, जो शिक्षित समाज में आदरणीय हुए।

अब यह प्रश्न उठता है कि इस कला में बड़े बड़े चित्र-कला-मर्मज्ञ क्यों सफल नहीं हुए? कुछ विचार करने से ज्ञात होता है कि चित्र-कला और हास्य-चित्र-कला, ये दो बिलकुल भिन्न कलायें हैं, इनके उद्देश भिन्न हैं, और इनके जाननेवालों में भिन्न गुण भी होने आवश्यक हैं। यह हास्य-चित्र-कला स्वयं ही बड़ी कठिन कला है और इसका कार्य्य क्षेत्र साधारण चित्र-कला से भिन्न है।

हास्य-चित्रों का उद्देश यह होता है—

(१) दर्शकों में हास्य-भाव उत्पन्न करना

(२) दर्शकों में हास्य-भाव के साथ साथ सूक्ष्म विचार उत्पन्न करना

(३) और इसी भांति क्रमिक विचार-परिवर्त्तन के पश्चात् कार्य्य करने के लिए उत्तेजित करना।

पाठक समझ सकते हैं कि यह उद्देश साधारण सुन्दर चित्र बनानेवाले चित्रकारों के उद्देश से भिन्न है। साधारण चित्रकार का उद्देश न तो सूक्ष्म विचार उत्पन्न करने का होता है और न कार्य्य कराने का। चित्रकार अधिकतर मनुष्य की आँखों को तृप्त करता है, और वह तृप्ति क्षणिक होती है। इन्हीं उद्देशों के अनुसार हास्य-चित्रकार के गुण साधारण चित्रकार के गुणों से भिन्न होने चाहिएँ। सबसे प्रथम आवश्यकता हास्य-चित्रकार में स्वयं हास्य-रस की है; चित्रकार की प्रकृति में हास्य होना चाहिए। यदि इसके बिना चित्रकार हास्य-चित्र बना भी लेगा तो भी वह जनता पर प्रभाव नहीं डाल सकता। चित्रकार में सोचने की शक्ति का होना भी बहुत आवश्यक है। असाधारण हास्यरसावलम्बी चित्रकारों को छोड़कर प्रायः सभी चित्रकारों के लिए बिना पूर्णतया सोचे हास्य-चित्र बनाने की कोशिश करना व्यर्थ है। विलायत के बहुत से ऐसे चित्र देखे गये हैं जिनसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये कृत्रिम चित्रकार के बनाये हुए हास्य-चित्र हैं। बात यह है कि ऐसे चित्र दर्शक पर यथेष्ट प्रभाव उत्पन्न ही नहीं कर सकते।

हास्य-चित्र बनानेवाले में (Sketching from nature) प्रकृति से चित्र बनाने की शक्ति का होना भी आवश्यक है। साधारण चित्रकारों की भांति उसे रंगसाज़ी इत्यादि की आवश्यकता नहीं है, उसका उद्देश आंख को आनन्द पहुँचाने का नहीं है, वरन हृदय को प्रभावित करने का। उसमें चौथा आवश्यक गुण यह है कि हास्य-चित्रकार को संसार में लाभदायक होने के लिए संसार के साथ साथ चलना आवश्यक है। संसार के लोग आज-कल किस विषय में अधिक अनुरक्त हैं, और किस ओर उनको झुकाना आवश्यक है, इस बात का ज्ञान हास्य-चित्रकार को हुए बिना उसका कार्य्य संसार में आदर नहीं पा सकता।

आदर्श हास्य-चित्र अभी तक बहुत कम देखने में आये हैं। यूरोपीय तथा अमेरिकन देशों में जहां यह कला एक पेशा समझी जाती है वहां से भी अब तक आदर्श हास्य-चित्र बहुत ही कम निकले हैं। एक बात इन सब चित्रों को देखने से यह प्रतीत होती है कि उन पेशेवालों ने हास्य उत्पन्न करने की कुछ कृत्रिम विधियां बना रक्खी हैं, वे अपने चित्रों को प्रकृति के विरुद्ध बनाकर हास्य उत्पन्न करते हैं। उदाहरणार्थ किसीका पेट बड़ा कर दिया तो किसीका कान छोटा कर दिया, इत्यादि। ये आदर्श चित्र नहीं कहे जासकते। आदर्श हास्य-चित्र प्रकृति के अनुकूल होने चाहिएँ।

दूसरी बात आदर्श चित्र में यह हो कि उसमें सूक्ष्म विचार की मात्रा अधिक न होनी चाहिए। ऐसा देखा

गया है कि अच्छे अच्छे हास्य-चित्रकारों ने बहुत सोच-विचार के पश्चात् एक चित्र बनाया है और उसका प्रभाव कुछ भी नहीं हुआ। कारण यह था कि चित्र में सूक्ष्म विचार की मात्रा उचित से अधिक होगई और वह चित्र साधारण लोगों की समझ ही में नहीं आया।

एक बात और आदर्श चित्रों में बहुधा पाई गई है। जहां तक हो, उस चित्र का अर्थ बतानेवाले शब्द बहुत थोड़े हों। जिस प्रकार "टाइम्स आफ़ इण्डिया" के Snapshots (स्नेप-शाट्स) दो एक शब्दों में कुल भाव प्रकट कर देते हैं, वैसे ही अन्यत्र होना चाहिए। चित्र और मनुष्य के मस्तिष्क के बीच में यदि अधिक शब्द आ जावेंगे तो भाव मारा जायगा।

ओङ्कारनाथ सकसेना, बी० ए०

४—अफ़ग़ान-युद्ध बन्द।

अँगरेज़ों और अफ़ग़ानों के बीच सन्धि स्थापित करने के लिए रावलपिण्डी में जो सन्धि-परिषद् बैठी थी, उसका काम ८ अगस्त १९१९ को समाप्त होगया। उस दिन सन्धि-पत्र पर दोनों राष्ट्रों के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर होगये। सन्धि की शर्तें ये हैं—

(१) सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर होने की तारीख़ से दोनों राष्ट्रों में सन्धि समझी जायगी।

(२) अँगरेज़ सरकार अफ़ग़ान सरकार के प्रति अपनी अप्रसन्नता प्रकट करने के लिए उसके देश में हिन्दुस्तान होकर सैनिक सामान न जाने देगी।

(३) अमीर को जो १८ लाख रुपये सालाना दिया जाता था वह अब न दिया जायगा और पिछली बाक़ी भी डूबी हुई समझी जायगी।

(४) पूर्व अमीर के समय दोनों देशों की जो सीमा स्वीकार की गई थी, वही अब भी रहेगी।

(५) यदि अफ़ग़ान-सरकार छः महीने के पश्चात् अँगरेज़ सरकार से पुरातन मित्र-भाव स्थापित करने के लिए प्रस्ताव करेगी तो अँगरेज़ सरकार उस पर सहर्ष विचार करेगी।

अच्छा हुआ, सन्धि होगई और भारत दूसरी ख़ून-ख़राबी से बचा।

पुस्तक-परिचय।

१—गोपालन-शिक्षा—यह 'गो-बछड़ों की पहचान, पालन और चिकित्सा की सचित्र पुस्तिका' है। परन्तु चित्र इसमें सिर्फ़ दो ही हैं। तोभी यह गोपालों के लिए बड़े काम की है। लेखक—डाक्टर गदाधरप्रसाद मिश्र, एम० बी० (होमियो)। मुद्रक और प्रकाशक—रामलाल वर्म्मा, वर्म्मन प्रेस, ३७१, अपरचितपुर रोड, कलकत्ता। मूल्य।=)।

※

२—पञ्जाब-केशरी—इसमें महाराजा रणजीतसिंह का संक्षिप्त जीवनचरित है। इसके लेखक और प्रकाशक पूर्वोक्त वर्म्मन प्रेस के मालिक रामलाल वर्म्मा हैं। मूल्य ॥)।

※

३—साहित्य-सुमन।

सत्कविरचनाशूर्पी निस्तुषतरशब्दशालिपाकेन।
तृप्तो दयिताधरमपि नाद्रियते का सुधादासी॥

गोवर्द्धन

स्वर्गीय पण्डित बालकृष्ण भट्ट जी के ललित लेखों को एक स्थान में पढ़ने का सौभाग्य आज उनके सुपुत्र पण्डित महादेव भट्ट की कृपा से प्राप्त हुआ है। भट्टजी के लेखों के पुस्तकाकार छपने की बड़ी आवश्यकता थी। शोक से नहीं, वरन लज्जा से कहना पड़ता है कि हिन्दीप्रदीप की क़दर जितनी होनी चाहिए थी उतनी नहीं हुई। उसके न पढ़नेवाले हमें कृपा कर क्षमा करें। इसका कारण यह था कि भट्टजी के लेखों का रसास्वादन करने के लिए उनकी सूझ को समझने के लिए ज़रा ज़्यादा दिमाग़ ख़र्च करना पड़ता था। अँगरेज़ी साहित्य पढ़नेवालों में जिन्होंने लुई स्टिवेन्सन आदि के लेखों को पढ़ा है वे इन लेखों की क़दर कर सकते थे। परन्तु वे तो बहुधा इस मिथ्या माहात्म्य में चूर रहते हैं

कि क्या हम हिन्दी के लेख पढ़ें ? बेचारे शुष्क हिन्दी पढ़नेवालों की पहुँच अँगरेज़ी तक कहां ! यदि यही लेख अँगरेज़ी भाषा में होते तो अँगरेज़ीवालों में इनकी बड़ी क़दर होती । एक और बात है। जिस प्रकार साहित्य जन-समूह के हृदय का विकाश है इसी प्रकार मेरी समझ में जनता किस दरजे की सभ्यता और विद्वत्ता में अपना स्थान रखती है, यह इस बात से मालूम होता है कि उसमें किस प्रकार की पुस्तकों की क़दर है। अस्तु। हिन्दी का अभ्युदय हो रहा है। मासिक पत्रों तथा समाचार-पत्रों में, जहां बहुत बड़ी भलाई यह है कि उनका प्रचार जनता में बहुत शीघ्र और अधिक होता है वहां उनमें यह बुराई भी है कि उनमें के बहुतेरे लेख पुस्तक के रूप में जनता के सम्मुख नहीं रहते। मासिक पत्रों में रहने के कारण मास बीतने पर वे प्रायः सर्वदा के लिए लुप्त होजाते हैं। पण्डित महादेव भट्ट का यह प्रयत्न सराहनीय है। आशा है कि लोग इसका उचित सत्कार करेंगे। लेखक और प्रकाशक को इसमें पूर्ण सन्तोष होना सम्भव है कि लोग उनके लेखों को पढ़ें और फिर रद्दी में फेक दें। परन्तु उनको यह असंह्य हो जाता है कि वे तो मिहनत से उनको लिखें और संग्रह करें और लोग इतना भी न देखें कि वे भले हैं या बुरे !

चित्र-परिचय ।

इस संख्या का चित्र सरस्वती के प्रसिद्ध चित्रकार बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्म्मा का अङ्कित किया हुआ है। इसमें दीपक के प्रकाश से स्त्री के मुख-मण्डल की आभा, केशों का पवन में उड़ना, अञ्चल की ओट से दीपक को बचाना, आदि भाव बड़ी चतुराई से चित्रित किये गये हैं। दीपक के साथ साथ चित्र में पुस्तक भी है जिससे चित्रकार महाशय के मनोगत भाव और भी स्पष्ट हो जाते हैं। यह दीपक विद्या का वह प्रकाश फैला रहा है जिससे अज्ञान-रूपी अन्धकार का नाश होता है। मन अपनी चञ्चलता-रूपी पवन से दीपक को बुझाना चाहता है, परन्तु भक्ति-रूपिणी शक्ति उसे सँभालकर ज्ञान-रूपी प्रकाश से प्रभु को खोजती है। इस भावपूर्ण चित्र की सुन्दरता स्वयं ही प्रकाशित है और इसके लिए वर्माजी की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोड़ी है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

लेख-सूची । पृष्ठ

चित्र-सूची ।

वालि और सुग्रीव का मल्ल-युद्ध ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

भाग २०, खण्ड २] सितम्बर १९१९—आश्विन १९७६ [संख्या ३, पूर्ण संख्या २३७

नक़ली फूल।

(माया के प्रति जीव की उक्ति)

मालिन, कैसे हैं ये फूल ?
क्या ये मेरे स्वामी को भी होंगे रुचि-अनुकूल ?
होगी कैसी वह फुलवारी, शोभित कैसी होगी क्यारी,
होंगी वहां बिछी सब खिलकर ज्यों सुन्दर मखतूल !
कैसी इनकी ख़ुशबू, देखें, कह दो तो इनको छू देखें,
क्या कहती हो—करते हैं हम पहले दाम वसूल !
बोलो तो, लो दाम बताओ, अपना सौदा तुम्हीं चुकाओ,
'जीवन' अच्छा है जो इन पर गई सभी मति भूल।
जब से मैंने देखा इनको, जीवन का धन लेखा इनको,
क्या इतने सुन्दर स्वामी को होंगे नहीं क़बूल ?
यह क्या ! नेक सुवास नहीं है—इस जग में विश्वास नहीं है,
हाय हाय ! यह क्या कर डाला, जीवन गया समूल।

देवीप्रसाद गुप्त, बी० ए०

——

नवाब आसफ़ुद्दौला।

फ़ारिस में इस्फ़हान नाम का एक मशहूर शहर है। वहां का रहनेवाला अबुलहसनबेग इस्फ़हानी हिन्दुस्तान में आया और नवाब बुरहानुल्मुल्क के मातहत, बहुत दिनों तक, एक अच्छे ओहदे पर रहा। फिर इसने अपने दामाद मुहम्मदबेग को भी हिन्दुस्तान में बुला लिया। अवध के नवाब सफ़दरजङ्ग के वक्त में उसे एक फ़ौजी नौकरी मिली। धीरे धीरे उसकी तरक़्क़ी होती गई और नवाब शुजाउद्दौला के वक्त में वह एक ज़िले का हाकिम हो गया; पर कुछ दिनों में, किसी कारण से, शुजाउद्दौला उससे नाराज़ हो गया और उसकी सारी सम्पत्ति उसने ज़ब्त कर ली। इस पर मुहम्मदबेग मुरशिदाबाद को चला गया।

१७५२ ईसवी में मुहम्मदबेग की बीबी के, लखनऊ में, एक लड़का हुआ। उसका नाम आबू तालिब पड़ा।

शुजाउद्दौला यद्यपि मुहम्मदबेग से नाराज़ था, तथापि आबू तालिब के लिखने-पढ़ने का उसने अच्छा प्रबन्ध कर दिया, और जब उसके बाप ने अपने लड़के को माँगा तब उसने उसे उसके पास मुरशिदाबाद भेज भी दिया। जब मुहम्मद-बेग मर गया तब आबू तालिब लखनऊ को लौट आया। वहाँ उसने नौकरी कर ली और थोड़े ही दिनों में वह घोड़ों का फ़ौजदार हो गया। इस ओहदे पर वह बहुत दिनों तक रहा और जब तक रहा बड़ी ईमानदारी से उसने काम किया। उसने बहादुरी के भी कई काम किये। एक बार वह दस हज़ार बाग़ी राजपूतों के घेरे से निकल आया। जब कर्नल हना को सरवार की सूबेदारी मिली तब आबू तालिब ने उनकी मातहती में उस सूबे का बहुत ही अच्छा बन्दोबस्त किया। इससे उसकी बड़ी नामवरी हुई। बेगमों की जो जागीरें ज़ब्त कर ली गई थीं उनकी मैनेजरी का काम भी उसने बहुत अच्छी तरह से किया। सालारजङ्ग की जागीर में उसने दो लाख साल की आमदनी बढ़ाई और नवाब के बहुत बड़े दुश्मन राजा बलभद्रसिंह को उसने बड़ी भारी हार दी—इतनी बड़ी कि हार जाने के थोड़े ही दिनों बाद उसकी जान ही जाती रही। उसकी सचाई और ईमानदारी से डरकर नवाब वज़ीर के कितने ही अफ़सरों ने अपनी बुरी आदतों को छोड़ दिया। पर ऐसे सत्यप्रिय और स्वामिभक्त सेवक की भी क़दर न हुई। जहाँ अराजकता है; जहाँ गुणों की पहचान करनेवाला ही कोई नहीं; जहाँ स्वयं स्वामी ही दुर्गुणों की खानि हो रहा है वहाँ यदि योग्य और सद्गुणी आदमियों की क़दर न हो तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। अस्तु।

१७८७ ईसवी में आबू तालिब को लखनऊ छोड़कर कलकत्ते जाना और वहाँ अँगरेज़ों की शरण में रहना पड़ा। चार वर्ष तक वह कलकत्ते में रहा। जब लखनऊ में बड़ी ही अराजकता फैली तब लार्ड कार्नवालिस ने एक सिफ़ारिशी चिट्ठी देकर आबू तालिब को फिर लखनऊ भेजा। पर नवाब आसफ़ुद्दौला के नायब, राजा टिकैतराय ने उसे कोई जगह न दी। सिर्फ़ ५०० रुपये महीने पेनशन, जिसे मिलने का उसे कई साल पहले ही हुक्म हो गया था, उसे मिलती रही। जब उसने देखा कि मेरी दाल यहाँ न गलेगी तब वह कलकत्ते लौट गया। १७९९ के फ़रवरी महीने में आबू तालिब कलकत्ते से यूरोप को गया। वहाँ इँगलेंड, फ़्रान्स, टर्की इत्यादि घूमकर बसरा की राह से वह बम्बई को लौट आया। बम्बई से वह फिर कलकत्ते गया, जहाँ वह १४ अगस्त १८०३ को पहुँचा। इसके आगे का उसका हाल नहीं मालूम। उसने अपने प्रवास का वर्णन लिखा है।

१७९७ ईसवी में कप्तान रिचार्डसन ने उससे आसफ़ुद्दौला के समय का इतिहास लिखने के लिए कहा। इसी वर्ष आसफ़ुद्दौला की मृत्यु हुई थी। कप्तान साहब की इस प्रार्थना या सलाह को मानकर आबू तालिब इस्फ़हानी ने फ़ारसी में एक छोटा सा इतिहास लिखा। उसका नाम उसने तफ़ज़ीहुल् ग़ाफ़िलीन रक्खा। उसमें जो कुछ उसने लिखा है सब अपनी निज की जानकारी से लिखा है और अनेक बातें, अनेक घटनायें, अपनी आँखों देखी लिखी हैं। विशेष करके इसी पुस्तक के अँगरेज़ी-अनुवाद की सहायता से आसफ़ुद्दौला पर हम यह निबन्ध लिखते हैं। पर इसके लिखने में कहीं कहीं और और लेखों से भी हमको सहायता लेनी पड़ी है।

आबू तालिब ने आसफ़ुद्दौला के समय का जो इतिहास लिखा है उसमें उसने नवाब और उसके अफ़सरों के काम की बड़ी ही कड़ी समालोचना की है। उनके दुर्व्यसन, दुराचार और दुर्गुणों का वर्णन उसने निडर होकर किया है। पर कहीं कहीं किसी किसी अफ़सर की प्रशंसा भी उसने की है। राज्य-प्रबन्ध के विषय में उसने ऐसी अच्छी टीकायें की हैं कि वे उसकी योग्यता और कार्य-कुशलता का उत्तम परिचय देती हैं। इसीसे उसकी बातों पर विश्वास करने की इच्छा होती है।

शुजाउद्दौला के समय तक अवध के नवाब फ़ैज़ाबाद में रहते थे। पर जब आसफ़ुद्दौला को नवाबी मिली तब उसने लखनऊ को अपनी राजधानी बनाया। इन नवाबों की पदवी "नवाब वज़ीर" थी। परन्तु लोग इनको विशेष करके नवाब ही कहते थे। इस कारण हम भी, जहाँ ज़रूरत पड़ेगी, बहुधा नवाब शब्द का ही प्रयोग करेंगे।

जिस समय शुजाउद्दौला की मृत्यु हुई, उसके तीन बेटे थे—मिर्ज़ा अमानी, मिर्ज़ा सआदत अली और मिर्ज़ा जङ्गली। बड़े होने के कारण मिर्ज़ा अमानी को नवाबी मिली। १७७४ ईसवी में वह अपने पिता की गद्दी पर बैठा और

अवध के नवाब वज़ीर आसफ़ुद्दौला ।
(लखनऊ के प्राविंशल म्यूज़ियम से प्राप्त)

अपना नाम आसफ़ुद्दौला रक्खा। पिता की अन्त्येष्टि-क्रिया भी अच्छी तरह न होने पाई थी कि मिर्ज़ा अमानी ने पिता की मसनद पर बैठना चाहा। लोगों ने उसे बहुत समझाया कि जल्दी करने की ज़रूरत नहीं। आपका विपक्षी कोई नहीं; तीनों भाइयों में ख़ूब प्रेम है; अँगरेज़ों से भी मित्रता है। पर मिर्ज़ा अमानी ने एक न सुनी। जो अमीर-उमरा पिता के जनाज़े के साथ गये थे, उनको फ़ौरन ही बुलाकर उसने अपनी मसनद-नशीनी का प्रबन्ध करने के लिए हुक्म दिया। हुक्म सबको मानना ही पड़ा। सब बातें ठीक हो जाने पर आसफ़ुद्दौला नवाबी मसनद पर बैठा। बैठते ही उसने अपने पिता के नायब को किसी बहाने देहली रवाना करके मीर मुर्त्तज़ा ख़ाँ को अपना नायब बनाया और फ़ैज़ाबाद के रहनेवाले झाऊलाल नाम के एक आदमी को अपने निज के कारोबार का प्रबन्धकर्त्ता नियत किया। कितने ही अयोग्य और दुःशील आदमियों को उसने बड़े बड़े ओहदे दिये; बड़ी बड़ी ख़िलतें दीं; और उनके रहने के लिए बड़ी बड़ी हवेलियाँ दे डालीं। यह देखकर शुजाउद्दौला के समय के पुराने अफ़सरों ने अपने अधिकार की इतिश्री समझी और अपने दिन वे किसी तरह काटने लगे।

जब आसफ़ुद्दौला को नवाबी मिली तब उसकी दादी ज़िन्दा थी। उसे इस नये नवाब की एक भी बात पसन्द न आई। इससे उसने नवाब के कामों का विरोध शुरू किया। यह आसफ़ुद्दौला को असह्य हुआ। इस कारण फ़ैज़ाबाद को छोड़कर उसने लखनऊ में रहना मंज़ूर किया। तब से अवध की राजधानी लखनऊ में उठ आई।

इस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रभुत्व हिन्दुस्तान में बहुत कुछ हो गया था। कम्पनी की तरफ़ से वारन हेस्टिंग्ज़ साहब कलकत्ते में गवर्नर जनरल थे। उनकी वक्र दृष्टि अवध पर पड़ी। इस वक्र दृष्टि के कारण अवध का कितना द्रव्यापहरण हुआ और बेगमों पर कितना अत्याचार हुआ, इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं। ये बातें इतिहास-प्रसिद्ध हैं। इँगलेंड के प्रसिद्ध वक्ता बर्क ने वारन हेस्टिंग्ज़ पर जिन अपराधों का आरोप किया उनमें ये भी शामिल हैं। अतएव जब तक उसकी तद्विषयक वक्तृतायें और काग़ज़-पत्र अस्तित्व में हैं तब तक हेस्टिंग्ज़ साहब की कुटिल नीति की कथा भी कहीं जाने की नहीं। आसफ़ुद्दौला को गद्दी मिलते ही वारन हेस्टिंग्ज़ साहब ने पहले सन्धिपत्र को रद करके उससे एक नई सन्धि की। उसमें और और बातों के सिवा यह भी लिखा गया कि दोनों पक्षों में मित्रता रहे; बिना कम्पनी की आज्ञा के नवाब किसी यूरोप-निवासी को नौकर न रक्खें; कम्पनी कोड़ा और इलाहाबाद के ज़िले नवाब को दे; बनारस, जौनपुर, गाज़ीपुर और राजा चेतसिंह का इलाक़ा नवाब कम्पनी को दे; अँगरेज़ी फ़ौज का ख़र्च २,१०,००० की जगह २,६०,००० कर दिया जाय; और कम्पनी बहादुर नवाब के मुल्क की रक्षा करे। २१ मई १७७५ को आसफ़ुद्दौला ने इस सन्धि-पत्र पर दस्तख़त किये। इसके बाद कम्पनी की फ़ौज, जो अवध में रहती थी, बढ़ा दी गई और उसका ख़र्च नवाब साहब के ज़िम्मे हुआ।

आसफ़ुद्दौला को नवाबी मिलने पर राज्य की सब सम्पत्ति भी उसे ही मिलनी चाहिए थी; परन्तु लखनऊ के रेज़िडेंट ब्रिस्टो साहब को यह बात पसन्द न आई। उन्होंने प्रायः सारी सम्पत्ति आसफ़ुद्दौला की माँ के हवाले कर दी और एक बहुत बड़ी जागीर भी उसके लिए अलग कर दी। यह बात आसफ़ुद्दौला को बुरी लगी। इससे उसने अपनी माँ को तङ्ग करना शुरू किया और उसके पास से ६२ लाख रुपये लेकर कल की। बेगम ने रुपये तो दे दिये, पर इस बात की शिकायत उसने रेज़िडेंट से की। रेज़िडेंट ने इस मामले की तहक़ीक़ात की और बेगम की शिकायत सही पाई। तब उसने आसफ़ुद्दौला से इस बात का इक़रारनामा लिखवा लिया कि अब मैं अपनी माँ की सम्पत्ति और जायदाद में किसी तरह की दस्तन्दाज़ी न करूँगा। इस इक़रारनामे ने यद्यपि ऊपरी तौर से माँ-बेटे का झगड़ा दूर कर दिया, तथापि पेट में वे दोनों एक दूसरे से अन्त तक अप्रसन्न ही रहे। आसफ़ुद्दौला ने तो फ़ैज़ाबाद छोड़कर लखनऊ में रहना मंज़ूर किया। पर उसकी माँ फ़ैज़ाबाद ही में बनी रही और अपने इलाक़े का अलग बन्दोबस्त करके अपने नाम का सिक्का भी चलाने लगी। कोई दो-तीन हज़ार आदमी उसके आश्रय में थे।

शुजाउद्दौला के समय से दो गोसाइयों की बहुत चलती थी। वे बीस बीस-हज़ार सवार रखते थे। उनमें से एक का नाम अनूपगिरि था; दूसरे का उमरावगिरि।

आसफ़ुद्दौला इनसे अप्रसन्न हो गया। इससे उसने इन्हें निकाल दिया और कहा कि कालपी के पास का मुल्क जीतकर, उससे जो कुछ मालगुज़ारी वसूल हो उसीसे तुम अपनी फ़ौज का ख़र्च चलाओ। यह बात उनको नागवार हुई। इससे उन्होंने ख़्वाजा बसन्त अली ख़ां नाम के एक फ़ौजी अफ़सर को मिला लिया और आसफ़ुद्दौला के भाई सआदत अली ख़ां को गद्दी पर बिठाना चाहा। उन्होंने यह सलाह की कि किसी तरह मुख़तारुद्दौला मुर्तज़ा ख़ां और नवाब आसफ़ुद्दौला को मार डालना चाहिए। इससे बसन्त और उसके मित्रों ने नायब वज़ीर मुर्तज़ा ख़ां की बदनामी फैलाना शुरू किया। उन्होंने नवाब को यह सुझाया कि अँगरेज़ों से मिलकर वज़ीरुद्दौला ने बनारस की तरफ़ का इलाक़ा अँगरेज़ों को दिला दिया है और फ़ौज में अँगरेज़ी अफ़सर भी उसीने किसी गुप्त इरादे से रक्खे हैं। इस तरह आसफ़ुद्दौला को उभाड़कर बसन्त ने वज़ीरुद्दौला को मार डालने की आज्ञा उससे ले ली, इसके बाद उसने अपने घर दावत की। उसमें उसने वज़ीरुद्दौला और आसफ़ुद्दौला दोनों को निमन्त्रित किया। वज़ीरुद्दौला तो गया; पर आसफ़ुद्दौला के दिल में कुछ सन्देह पैदा हुआ। इससे बहुत कुछ हाथ-पैर जोड़ने पर भी वह दावत में शरीक न हुआ। बसन्त ने सोचा कि इन दोनों का साथ ही काम तमाम करके मैं सआदत अली को नवाब बना दूँ और खुद उसका नायब वज़ीर, अर्थात् मुख़तारुद्दौला, हो जाऊँ। पर आसफ़ुद्दौला ने, तबीयत अच्छी न होने का बहाना करके, उसकी इस मन्त्रणा के एक अंश को विफल कर दिया। अतएव बसन्त ने आसफ़ुद्दौला को किसी दूसरे मौक़े पर मारने का इरादा करके अपने घर आये हुए मुर्तज़ा ख़ां को मीर फ़ज़ल अली नाम के एक आदमी से मरवा डाला। मौसम गरमी का था। मुर्तज़ा ख़ां एक गर्भ-गृह (तहख़ाने) के भीतर बैठा हुआ एक किन्नरकण्ठी का गाना सुन रहा था कि फ़ज़लअली ने वहीं उस पर वार किया। उसके मारे जाने पर बसन्त ने सआदत अली को ख़बर भेजी कि आप अपनी फ़ौज लेकर मेरी मदद को आइए; मैं आसफ़ुद्दौला को भी मुर्तज़ा ख़ां के साथ दूसरी दुनिया में भेजने जाता हूँ।

जब नवाब वज़ीर की ड्योढ़ी पर बसन्त पहुँचा तब उसे हुक्म हुआ कि वह अकेला भीतर आवे। उसे कोई डर तो था ही नहीं; क्योंकि नवाब ही के हुक्म से उसने मुख़्तारुद्दौला को मारा था। इससे वह अपने साथ सिर्फ़ दो आदमियों को लेकर अन्दर गया। उसे देखकर आसफ़ुद्दौला ने सोचा कि यदि यह ज़िन्दा रहेगा तो मुझे मुख़्तारुद्दौला के मारे जाने की कैफ़ियत रेज़िडेंट को देनी पड़ेगी और मुमकिन है कि इस हत्या में मेरे भी शामिल रहने की बात ज़ाहिर हो जाय। अतएव उसने राजा नेवाज़सिंह की तरफ़ इशारा किया। उसने बसन्त का सिर तलवार की एक ही वार से काट गिराया। इस पर भी उसे सन्तोष नहीं हुआ। उसने बसन्त के गिर जाने पर भी कई वार किये और जूता पहने हुए अपना पैर उसके कटे हुए सिर पर उसने रख दिया। यह अपमान बसन्त के दो साथियों से नहीं देखा गया। इससे उनमें से बड़े मिर्ज़ा नाम के आदमी ने नेवाज़सिंह की गरदन पर अपनी तेज़ तलवार रख दी और देखते ही देखते उसका सिर ज़मीन पर लोटने लगा। यह देखकर नवाब के दो-चार आदमी उसकी तरफ़ झपटे, पर वह ऐसा बहादुर था कि उसके बदन पर कोई हाथ न लगा सका और वह निकल गया।

इस हत्याकाण्ड के समाप्त होने पर नवाब साहब ने पुराने नायब महम्मद हरज ख़ां को नियामत दी। पर थोड़े ही दिनों में उसकी मृत्यु हो गई। उसके समय में पुरानी फ़ौजें सब तोड़ दी गईं। तनख़्वाह न मिलने के कारण उनमें असन्तोष फैल गया था और उन्होंने इधर-उधर लूट-मार शुरू कर दी थी। इसकी दवा यही अच्छी समझी गई कि वे रक्खी ही न जायँ। न्याय इसीका नाम है! इन फ़ौजों ने अपने अँगरेज़-अफ़सरों को क़ैद कर लिया; उनका माल असबाब लूट लिया; और उनमें से दो-एक को मार तक डाला। इसके बाद नये सिपाही भरती किये गये और उनका कमाण्ड कर्नल गोवर को मिला।

इसके बाद हैदरबेग ख़ां नायबे-मुल्क हुआ। राजा टिकैतराय नाम के एक कायस्थ को पेशकार का पद मिला। अबू तालिब ने हैदरबेग ख़ां की बड़ी बुराई की है। उसने लिखा है कि वह महा अन्यायी, लुटेरा, धोखेबाज़, कृतघ्न, निर्दयी और ऐयाश था। जिस किसीने उसके साथ नेकी की उसका बदला उसने बुराई से दिया। रेज़िडेंट ब्रिस्टो

साहब की ही कृपा से उसे नियामत मिली थी। पर उन्हींके साथ उसने बुरा व्यवहार किया। आसफ़ुद्दौला के समय में राज्य की जो दुर्दशा हुई और प्रजा पर जो आपदायें आईं उन सबका कारण वह और ख़ुद नवाब वज़ीर था। इसमें उसका अंश अधिक और नवाब वज़ीर का कम था। उसने गवर्नर जनरल के दफ़्तर के अहलकारों को और कौंसिल के मेम्बरों तक को मिला लिया था, यहां तक कि उनके ख़ानगी नौकरों को भी उसने अपने वश में कर लिया था। इसीसे उसकी दुःशीलता, अन्याय-परायणता और द्रव्यापहार-प्रीति का पता किसी गवर्नर जनरल को नहीं लगा। अपनी कुटिल नीति से उसने वारन हेस्टिंग्ज़ और लार्ड कार्नवालिस के दिल में अपनी तरफ़ से कोई सन्देह नहीं पैदा होने दिया।

नवाब शुजाउद्दौला की सन्तति और बेगमों को हैदर-बेग ख़ां के कारण बेहद तकलीफ़ें उठानी पड़ीं। उसके जितने बेटे थे सबको एक एक हज़ार रुपये महीने मिलने का हुक्म था। वे सब लखनऊ में ही रहते थे। पर हैदरबेग की धोखेबाज़ी और वादेख़िलाफ़ी के कारण उनको भूखों मरना पड़ा। नवाब की बेगमें सब फ़ैज़ाबाद में रहती थीं। उनकी हालत यहां तक ख़राब थी—उनकी विपत्ति यहां तक बढ़ गई थी—कि जब अन्न न मिलने से वे बहुत ही तङ्ग आ जाती थीं तब सौ-सौ दो-दो सौ स्त्रियां एक साथ हरमसरा से निकल पड़ती थीं; बाज़ार लूट लेती थीं; और जो कुछ मिलता था उसे लेकर फिर वे हरम को लौट जाती थीं! उनको हर महीने जो रुपया मिलना चाहिए था वह हैदर-बेग ख़ां के मारे समय पर कभी मिलने ही न पाता था। बहुत दिनों तक शुजाउद्दौला की बेटियों की शादी का भी प्रबन्ध नहीं हुआ। जब रुपया ही नहीं मिलता था तब बिना ख़र्च के शादी हो किस तरह! शुजाउद्दौला की मां, नवाब आलिया बेगम, जब तक ज़िन्दा थी तब तक उसने यथा-सम्भव अपने बेटे के हरम को अपनी देख-भाल में रक्खा और रुपये-पैसे से भी मदद की। पर उसके पास सिर्फ़ एक लाख की जागीर थी। उससे वह कहां तक उनकी मदद कर सकती थी? उसके मरने के बाद नवाबी हरम की हालत बहुत ख़राब हो गई। आसफ़ुद्दौला की मां, अर्थात् नवाब बेगम के पास बहुत बड़ी जागीर थी और रुपया भी ख़ूब था। पर उसे कहां फ़ुरसत थी जो इन बेचारी दीन बेगमों की तरफ़ नज़र उठाकर देखती। उसे अपने ही कामों से फ़ुरसत न मिलती थी। आप पूछेंगे कि वे काम कौन से थे? पर आबू तालिब कहता है कि मैं उनका न बतलाना ही अच्छा समझता हूँ। ऐसी लज्जाजनक बातें न सुनना ही अच्छा है। एक दफ़े, शुजाउद्दौला का एक बेटा ख़र्च से बहुत तङ्ग आ गया। जब वह अधिक दिनों तक भूख-प्यास न बरदाश्त कर सका तब वह कलकत्ते भाग गया और गवर्नर जनरल के सामने जाकर रोया। गवर्नर जनरल ने नवाब वज़ीर को इस विषय में हिदायत लिख भेजी। पर वज़ीर ने जो जवाब भेजा उसे आपको कलेजा कड़ा करके सुनना पड़ेगा! आपने फ़रमाया कि—लड़का ऐयाश है; प्रेम के फन्दे में फँसकर कलकत्ते गया है; उसे कोई तकलीफ़ नहीं; आप उसे वापस भेज दीजिए। भूखों मरना और ऐयाशी!

मुल्क का ठीक बन्दोबस्त न होने और फ़ौज का ख़र्च बढ़ जाने के कारण ईस्ट इंडिया कम्पनी को जो रुपया देना पड़ता था वह नहीं पहुँच सका। धीरे धीरे रकम बहुत बाक़ी रह गई। जितने सूबेदार, फ़ौजदार और चकलेदार थे उन्होंने लाखों रुपये लूट खाये। जो दस रुपये का नौकर था उसका ख़र्च पचास रुपये महीने का था। बड़े बड़े अफ़सरों के यहाँ कभी कभी नवाब साहब दावत खाने और नाच-तमाशा देखने जाया करते थे। उनके लिए ख़ास तरह की तैयारियां करनी पड़ती थीं। उनमें हज़ारों रुपये ख़र्च होते थे। इस बात को नवाब साहब अपनी आंखों देखते थे। पर शायद ही कभी वे इस बात का ख़याल करते रहे हों कि ये लोग इतना रुपया कहां से लाते हैं। जहां प्रभु ऐसे हैं, तहां सेवकों की क्यों न बन आवे? फ़ौज का ख़र्च पहले कोई २५ लाख रुपया कम्पनी को देना पड़ता था। पर आसफ़ुद्दौला के समय में वह ३१ लाख से भी कुछ अधिक हो गया। सात-आठ वर्ष में दो करोड़ रुपये कम्पनी के देने बाक़ी रहे। इससे नवाब साहब घबरा उठे। फ़िज़ूलख़र्ची बन्द होने लगी। नौकर-चाकरों की तनख़्वाह कम कर दी गई। जो रही सो भी मुश्किल से मिलने लगी। पर बाहर सूबों में लोग पहले ही की सी लूट-मार मचाते रहे और जो कुछ रुपया वसूल हुआ उसका अधिकांश वे अपनी ही सन्दूक़ के सिपुर्द करते रहे। सरवार के सूबेदार कर्नल हना ने तीन-चार वर्ष में ३० लाख रुपये पैदा

किये! पर आबू तालिब का कथन है कि उन्होंने अन्याय से यह रुपया नहीं प्राप्त किया। नवाब के ख़ज़ाने में जितनी मालगुज़ारी जानी चाहिए उतनी भेजकर जो बचत हुई उसे ही उन्होंने लिया। यह उनके सुप्रबन्ध का फल था। जब बनारस-नरेश चेतसिंह और वारन हेस्टिंग्ज़ से लड़ाई हुई तब कर्नल हना हेस्टिंग्ज़ की मदद को नहीं आ सके। इससे गवर्नर जनरल ने उन पर बड़ी अप्रसन्नता प्रकट की। इस, या और किसी कारण से उन्हें कलकत्ते जाना पड़ा। वहां उन्होंने अपने ही हाथ अपनी जान ले ली।

मुल्क की ख़राब हालत से घबराकर आसफ़ुद्दौला ने वारन हेस्टिंग्ज़ को लिखा कि कृपा करके अँगरेज़ी फ़ौज कम कर दीजिए और अँगरेज़ी अफ़सरों को भी हटा लीजिए। इस सम्बन्ध में, १७८१ ई० में, आसफ़ुद्दौला ने चुनार में जाकर गवर्नर जनरल से भेंट की। गवर्नर जनरल ने यह फ़ैसला किया कि थोड़ी सी फ़ौज छोड़कर बाक़ी सब अँगरेज़ी फ़ौज अवध से दूसरी जगह भेज दी जाय और जो तअल्लुक़ेदार बहुत प्रबल हो जाने के कारण मालगुज़ारी नहीं देते उनके तअल्लुक़े ज़ब्त कर लिये जायँ।

इस फ़ैसले के मुताबिक़ बहुत कुछ कारखाई हुई। कर्नल हना का ज़िक्र ऊपर आ ही चुका है। उनके साथी डाक्टर ब्लेन, मेजर मेक्डोनल्ड, कप्तान फ्रैंक, कप्तान गार्डन, मेजर लम्सडन इत्यादि और भी अँगरेज़ धीरे धीरे अलग किये गये। कई पल्टनें भी तोड़ दी गईं। कर्नल हना की जगह पहले अब्दुल्लाबेग को, और उसके मारे जाने पर राजा सूरतसिंह को मिली। कुछ दिनों बाद रेज़िडेण्ट ब्रिस्टो साहब की जगह पर मिडिल्टन साहब आये—अर्थात् बहुत से पुराने अफ़सरों की जगह नये नियत हुए।

बनारस के राजा चेतसिंह के साथ अँगरेज़ों का जो युद्ध हुआ उसमें फ़ैज़ाबाद की बेगमों ने अँगरेज़ों की मदद नहीं की और कर्नल हना के साथ भी उन्होंने अच्छा बर्ताव नहीं किया, जिससे वे भी उनकी मदद के लिए नहीं पहुँच सके। यह इलज़ाम बेगमों पर लगाया गया और वारन हेस्टिंग्ज़ का हुक्म हुआ कि उनकी जागीरें ज़ब्त कर ली जायँ। इसके साथ ही गवर्नर जनरल ने नवाब से ७५ लाख रुपये माँगे, क्योंकि कम्पनी के ख़ज़ाने में उस समय रुपये की बेहद कमी थी। इस पर हैदरबेग ने नवाब वज़ीर को सुझाया कि यह रुपया बेगमों से ही लिया जाय। नवाब को यह बात पसन्द नहीं आई। पर जब उस पर बहुत दबाव डाला गया और गवर्नर जनरल के हुक्म से हैदर-बेग और रेज़िडेण्ट दोनों उसके पीछे पड़ गये तब उसने वह बात मंज़ूर की। पर बेगमों ने रुपया देने से साफ़ इन-कार किया। इस पर उनके ऊपर चढ़ाई हुई। आबू तालिब का कथन है कि रेज़िडेण्ट मिडिल्टन साहब और उनके नायब जानसन साहब के साथ नवाब वज़ीर भी चढ़ाई पर गया। पर किसी किसी इतिहासकार का मत है कि वज़ीर नहीं गया। सिर्फ़ इन दो साहबों और हैदरबेग ख़ां ने ही चढ़ाई की। बेगमों के पास कोई चार हज़ार आदमी थे। उन्होंने नवाब की फ़ौज का मुक़ाबला किया। पर अख़ीर में उनकी हार हुई और बेगमों की और उनके वृद्ध ग़ुलाम, ख़्वाजे और नौकर-चाकरों की बेहद दुर्दशा हुई। उन बेगमों तक के पैरों में बेड़ियां डाली गईं। उनका यहां तक अपमान किया गया और उनको यहां तक मानसिक और शारीरिक कष्ट दिया गया कि उसका वर्णन पढ़कर पत्थर का कलेजा भी पिघल जा सकता है। इन बेगमों की बदौलत हैदरबेग ने ख़ूब ऐश आराम किया था। इसका बदला उसने इस निर्दयता से दिया जिसका स्मरण होते ही बदन कांप उठता है। नवाब साहब अपनी मां से लड़कपन ही से नाराज़ थे। इससे इस अवसर पर उन्होंने उसके महल की तलाशी लेकर ५० लाख रुपया नक़द और ५० लाख रुपये का ज़ेवर और जवाहिरात वग़ैरह छीन लिया। जिस समय इँगलेंड में वारन हेस्टिंग्ज़ के अपराधों की जांच हुई है—जिस समय उसे एक मामूली मुजरिम की तरह घुटने टेककर पारलियामेण्ट के सामने जाना पड़ा है—उस समय उसकी आज्ञा से बेगमों पर किये गये इन अत्याचारों का जो वर्णन वाचस्पति वर्क ने अपनी वक्तृता में किया है वह बड़ा ही हृदयद्रावक है।

नायब वज़ीर हैदरबेग के ज़ुल्म से सब तरफ़ हाहाकार मच गया। रेज़िडेण्ट मिडिल्टन साहब भी उसे तुच्छ दृष्टि से देखने लगे। इससे उन दोनों में खटपट हो गई। यह देख-कर वारन हेस्टिंग्ज़ ने फिर ब्रिस्टो साहब को लखनऊ भेजा। परन्तु एक ही वर्ष बाद उनको इस्तेफ़ा देना पड़ा। राज्य की बड़ी ही दुरवस्था होने लगी। जितने आमिल और सूबेदार थे सब स्वतन्त्र से हो गये। उनकी सत्ता की सीमा

ही न रही। वे मन-माने काम करने लगे। नवाब का ज़रा भी डर उन्हें न रहा। "नवाबी" का जो अर्थ इस समय लोग करते हैं वह मूर्तिमान् देख पड़ने लगा। जो मुल्क शुजाउद्दौला के समय में ख़ूब उन्नति पर था, वह इस समय प्रायः उध्वस्त हो गया। फ़ौज के ख़र्च, अधिकारियों की द्रव्यापहार-बुद्धि और नवाब की असावधानी ने मामला इस नौबत को पहुँचाया! ब्रिस्टो साहब के बाद पामर साहब रेज़िडेंट हुए। उनका काम भी हेस्टिंग्ज़ साहब को पसन्द न आया। इससे कर्नल हायर को रेज़िडेण्टी मिली। इतने फेर-फार हुए; पर प्रायः सारी आपदाओं का मूल कारण हैदरबेग ख़ाँ हिमालय की तरह अचल रक्खा गया।

१७८४ में हेस्टिंग्ज़ साहब लखनऊ पधारे। उनकी ख़ूब मेहमानदारी हुई। नवाब के बहुत कहने सुनने पर उन्होंने फ़ौज वग़ैरह का कुछ ख़र्च कम कर दिया। पर उतनी कमी से नवाब को सन्तोष न हुआ। अतएव इस विषय में उसने लिखा-पढ़ी बराबर जारी रक्खी। इस बीच में वारन हेस्टिंग्ज़ साहब अपनी चिर-स्मरणीय राजसत्ता समेटकर अपने घर गये और लार्ड कार्नवालिस उनकी जगह पर आये। ये नये गवर्नर जनरल बड़े ही न्यायी, दयालु-प्रकृति और समझदार थे। इन्होंने १७८७ ईसवी में एक नया सन्धिपत्र लिखा। उसके अनुसार नवाब के लिए सिर्फ़ ५० लाख रुपये फ़ौजी ख़र्च देना निश्चित हुआ। इस सम्बन्ध में हैदरबेग ने बड़ी कारगुज़ारी दिखलाई। वह ख़ुद कलकत्ते गया और वहाँ रहकर बहुत सी बातें नवाब के फ़ायदे की करा लाया। यह सन्धिपत्र भी उसीकी चेष्टा का फल समझा गया। नवाब के ऊपर कम्पनी का जो बक़ाया था वह भी माफ़ कर दिया गया। छावनियों के ख़र्च के लिए जो कर लगाया गया था उसके बन्द कर दिये जाने का भी हुक्म मिल गया। सूबात में जो अँगरेज़ रह गये थे उनको भी बरख़ास्त करने की आज्ञा गवर्नर जनरल ने दे दी। इससे हैदरबेग की महिमा और भी बढ़ गई और उसने पहले से भी अधिक गहरा हाथ मारना शुरू किया।

हैदरबेग के कलकत्ते से लौट आने पर, दो महीने बाद, कर्नल हायर भी अलग किये गये। उनकी जगह पर एक और साहब आये। इसके बाद लार्ड कार्नवालिस ख़ुद लखनऊ पधारे। उनकी अगवानी के लिए हैदरबेग बनारस तक और नवाब वज़ीर इलाहाबाद तक गये। लखनऊ में उनकी ख़ूब ख़ातिरदारी हुई। पर लार्ड साहब ने नवाब की एक भी नज़र मंज़ूर न की। नवाब का एक पैसा भी उन्होंने अपने लिए ख़र्च न होने दिया। उन्होंने नवाब का बड़ा आदर किया; उसके साथ वे बहुत अच्छी तरह पेश आये। पर कुछ दिन रहने के बाद हैदरबेग की धूर्तता और नवाब की अयोग्यता उन पर प्रकट हो गई। इस पर उनको बहुत अफ़सोस हुआ। पर नवाब के साथ जो सुलूक वे कर चुके थे उसमें किसी तरह का ख़लल उन्होंने नहीं आने दिया।

हैदरबेग विषय-लोलुप आदमी था। उसका महल स्त्रियों से भरा हुआ था। ७० वर्ष की उम्र में उसके शरीर में क्षीणता आ गई। इस उम्र में भी आपने दवा से उसे दूर करना चाहा। आपने हकीम शफ़ी ख़ाँ की शरण ली। हकीम साहब ने फ़रमाया कि एक चीज़ के इत्र में सींक डुबोकर उस सींक को पान पर रगड़ दिया कीजिए और ऐसे पान दिन में एक-दो बार खा लिया कीजिए। ख़ाँ साहब को इससे फ़ायदा हुआ। इससे आप ऐसे पान दस-दस बीस-बीस खाने लगे। इसका फल यह हुआ कि आपके बदन में बेहद गरमी बढ़ गई और शीघ्र ही आपने उस मुल्क का रास्ता लिया जहाँ इस तरह की दवाइयाँ खाने की कभी ज़रूरत ही नहीं पड़ती! उसके मरने के बाद उसकी जायदाद, क़ायदे के मुताबिक़, ज़ब्त नहीं की गई। उसने जो अनन्त धन पैदा किया था वह उसकी बीवियों और बेटों के हाथ आया, जिन्होंने उसे थोड़े ही दिनों में बरबाद कर दिया।

हैदरबेग के मरने पर आसफ़ुद्दौला ने टिकैतराय को नायब और हसन रज़ा ख़ाँ को बख़्शी बनाया। आबू तालिब का कथन है कि टिकैतराय यद्यपि बहुत दिनों से एक अच्छे पद पर था; पर वह कुलीन घराने का न था। वह दृढ़-प्रतिज्ञ और गम्भीर भी न था और न लोग उससे डरते ही थे। नवाब ने समझा कि टिकैतराय के नायब होने पर मैं मन-माना काम कर सकूँगा; मुझे रोकने या नेक सलाह देने की उसे हिम्मत न पड़ेगी। हम नहीं कह सकते यह बात कहाँ तक सच है। पर जब तक टिकैत-

राय के हाथ में नियाबत रही उसने यथा-साध्य मुल्क का अच्छा प्रबन्ध किया। तथापि चिरकाल की दुर्व्यवस्था अल्पकाल में नहीं जा सकती। टिकैतराय ने अपने सजातियों और सम्बन्धियों को पहले ही से राज्य के दफ़्तरों में भर रक्खा था। नायब होने पर उनकी और भी अधिक चढ़ती कला हुई। टिकैतराय का बड़ा भाई निर्मलदास फ़ौजदार हुआ। बैजनाथ और धनपतराय ख़ज़ाने में आये। हुलासराय टिकैतराय का पेशकार हुआ। इन लोगों ने बेहद माल मारे और थोड़े ही दिनों में लक्षाधीश हो गये। टिकैतराय में धार्म्मिकता की मात्रा अधिक थी। उसने न मालूम कितने गांव, कितनी ज़मीन और कितना रुपया ब्राह्मणों को दे डाला। कम उम्र के युवकों पर उसकी विशेष कृपा थी। इसलिए उन्हें उसने बड़े बड़े ओहदे दे दिये। उन्हें बे शुमार रुपया और बेशक़ीमती चीज़ें दे देकर उसने ख़ज़ाना ख़ाली कर दिया। कुछ दिनों के बाद दरबार के अधिकारियों में परस्पर विरोध पैदा हो गया। उसका फल यह हुआ कि टिकैतराय की नियाबत छिन गई और वह झाऊलाल को मिली। टिकैतराय ने अपना नाम बना रखने के लिए एक काम किया। उसने बाराबंकी के ज़िले में टिकैतगञ्ज और टिकैतनगर बसाये। इनमें से टिकैतनगर अच्छा क़सबा है। उसे हमने खुद देखा है। उसमें बाज़ार लगता है। बाज़ार अच्छा बना हुआ है। मकानात भी अच्छे अच्छे हैं। उसके नाम से लखनऊ में एक-आध महल्ला भी मशहूर है। झाऊलाल के नाम का भी एक बाज़ार शायद लखनऊ में है। परन्तु झाऊलाल के समय में कोई मशहूर राजकीय काम नहीं हुआ। हां, टिकैतराय के समय में रुहेलों से अँगरेज़ों की लड़ाई हुई। उसमें आसफ़ुद्दौला ने अँगरेज़ों को मदद दी। इससे रुहेलों का आधा मुल्क उसे मिला।

लार्ड कार्नवालिस के बाद सर जान शोर गवर्नर जनरल हुए। वे जब लखनऊ आये तब वहां की बदइन्तज़ामी देखकर सख़्त नाराज़ हुए। उन्होंने झाऊलाल को नियाबत से हटा दिया और तफ़ज़्ज़ुलहुसेन को वह जगह दी। यद्यपि नवाब वज़ीर ने ऊपरी मन से यह फेरफार पसन्द किया; पर दिल से उसे तफ़ज़्ज़ुलहुसेन की नियाबत अच्छी नहीं लगी। सर जान शोर ने मुल्क का अच्छा प्रबन्ध होने के लिए फ़ौज बढ़ा दी और पांच-छः लाख रुपये का ख़र्च नवाब की पीठ पर अधिक लाद दिया। इन सब बातों से उसके चित्त पर ऐसा आघात हुआ कि २१ सितम्बर १७९७ को वह मर ही गया। किसी किसीका मत है कि बीमारी में उसने दवा तक नहीं खाई।

आसफ़ुद्दौला के बाद उसका बेटा वज़ीर अली लखनऊ की नवाबी गद्दी पर बैठा। आसफ़ुद्दौला की बेगम उसके बाद बहुत दिनों तक जीवित रही। सन् १८१३ ईसवी में वह मृत्यु को प्राप्त हुई। जब तक वह जीती रही तब तक उसे ८७,१६३ रुपये वसीक़ा मिलता रहा।

जिसके ख़ज़ाने में रुपये का हमेशा अकाल रहता था; जो फ़ौज का ख़र्च तक नहीं अदा कर सकता था; जिस पर कम्पनी का ऋण बना ही रहता था; ईस्ट इंडिया कम्पनी को रुपया देने के लिए जिसे अपनी मां की सम्पत्ति भी लूट लेनी पड़ी थी, उसकी फ़िज़ूल-ख़र्ची अबू तालिब के मुँह से सुनिए—

नवाब वज़ीर की फ़िज़ूल-ख़र्ची इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि जो रुपया बेफ़ायदा बरबाद किया जाता था उससे एक बहुत बड़ी फ़ौज रक्खी जा सकती थी। होली और मोहर्रम में, ब्याह, शादी और दावतों में, रोशनी और नाच-तमाशे में, हर साल, पांच-पांच छः-छः लाख रुपये फूँके जाते थे। उसके हाथियों, घोड़ों और कुत्तों वग़ैरह में जो ख़र्च होता था उसका अन्दाज़ा सिर्फ़ इस बात से किया जा सकता है कि नवाब साहब ने १२०० हाथी, ३००० घोड़े और १००० कुत्ते पाल रक्खे थे। इनमें से सिर्फ़ ४०० हाथी, ५०० घोड़े और १०० कुत्ते सवारी या शिकार के लायक़ थे! बाक़ी किसी काम के न थे। वे सब नवाब को लूटने के लिए रक्खे गये थे। यदि एक कुत्ता मर जाता तो उसकी जगह पर दूसरा, शहर की किसी गली से, पकड़ लाया जाता था। नवाब ने अनन्त कबूतर, मुर्ग़, भेड़ें, हिरन, बन्दर, सांप, बिच्छू और मकड़े पाल रक्खे थे। यदि कोई अच्छा बन्दोबस्त करनेवाला होता तो वे भी आराम से रहते और बचे हुए रुपये से मृत नवाब शुजाउद्दौला की सन्तति और हरम का ख़र्च भी अच्छी तरह चला जाता। आपके पाले हुए सांप इतने बड़े थे कि उनमें से

कोई कोई एक एक मन मांस खा जाता था! नवाब साहब ने जितने जानवर पाल रक्खे थे, सब अच्छी तरह रक्खे जाते थे; सबके आराम का आपको ख़याल रहता था। आपको रहता किसके आराम का ख़याल न था? आदमियों के! विशेष करके अपने सम्बन्धियों और पुराने आश्रितों के!!! आपके निज के नौकरों का शुमार नहीं था; वे हज़ारों थे। आपके यहां २,००० फर्राश थे, १०० चोबदार और ख़िदमतगार थे; ४,००० माली थे और सैकड़ों बावर्ची थे। आपके बावर्चीख़ाने का ख़र्च दो से लेकर तीन हज़ार रुपये रोज़ाना था। जब आप मुल्क देखने के नाम से बाहर दौरे पर जाते थे तब हज़ारों आदमी आपके साथ आपका माल-असबाब, मेज़-कुर्सी और डेरा-डण्डा वग़ैरह ले जाने के काम पर रहते थे। उनका ख़र्च भी ख़ज़ाने से दिया जाता था नवाब की फ़िज़ूल-ख़र्ची बयान से बाहर है। नवाब ही की नहीं हैदरबेग, टिकैतराय, हसन रज़ा ख़ां वग़ैरह की भी फ़िज़ूल-ख़र्ची बेहद बढ़ी-चढ़ी थी। फ़िज़ूल-ख़र्ची न करने से उस समय लोगों की, विशेष करके अधिकारियों की गिनती भले आदमियों में न होती थी। पर बेहद और बे-हिसाब ख़र्च करने के लिए रुपया दरकार होता था जिसे लोग लूट, मार, रिश्वत, चोरी और बेईमानी से पैदा करते थे।

१७९६ ईसवी में आसफुद्दौला ने अपने बेटे वज़ीर अली की शादी की। उसमें उसने ३० लाख रुपया ख़र्च किया। २० लाख रुपये के रत्नों के आभूषण उसने दूलह को पहनाये। १२०० सजे हुए हाथी बारात में थे। शादी के दिन वज़ीर अली के तख़्तेरवां के सामने आसफुद्दौला पैदल चला। आसफुद्दौला के बाद वज़ीर अली ही को गद्दी मिली। परन्तु नायब वज़ीर तफ़ज़्ज़ुलहुसैन को यह बात पसन्द न आई। इससे रेज़िडेंट च्यरी साहब से मिलकर आसफुद्दौला के छोटे भाई सआदत अली को उसने गद्दी दिलवाई। सआदत अली उस समय काशी में पड़ा हुआ अपने दिन काटता था। बसन्त ख़ां से मिलकर नवाब के ख़िलाफ़ साज़िश करने के अपराध में उसे लखनऊ छोड़ना पड़ा था। पदच्युत होने पर वज़ीर अली उसकी जगह काशी भेजा गया। वहां उसको डेढ़ लाख रुपये पेंशन मिलने लगी। पर पदच्युति के कारण उसने अँगरेज़ों से नाराज़ होकर बग़ावत की। इसलिए पहले वह कलकत्ते में, फिर बेल्लोर में क़ैद रक्खा गया। १८१७ ई० में वह मरा। उस समय उसके कफ़न वग़ैरह में सिर्फ़ ७० रु० ख़र्च हुए। जिसकी शादी में ३० लाख रुपये उड़ाये गये थे उसके दफ़न करने में सिर्फ़ ७० रुपये लगे! ईश्वरी लीला!

जिस वज़ीर अली की शादी में नवाब साहब पैदल चले उससे, कुछ दिनों बाद, जब आप नाख़ुश हो गये तब उसकी सारी जायदाद आपने छीन ली। उस समय आपने फ़रमाया—यह फ़र्राशज़ादा अब अपनी असली हैसियत को पहुँच गया। वज़ीर अली हरमसरा में कबूतर और मुर्ग़ हलाल करके नौकरों से कहता था कि तुम सब लोग मातम करो, और वह ख़ुद काले कपड़े पहनता था। गोया नवाब वज़ीर के मरने पर होनेवाली बातों का, इस तरह, वह पहले ही से अभ्यास करता था। इसी बात पर नवाब उससे नाराज़ हो गया था। आबू तालिब कहता है कि वह सचमुच ही एक फ़र्राश का लड़का था। जब फ़र्राश की बीवी गर्भवती हुई तब उसने उसे, कुछ रुपया लेकर, नवाब साहब को दे डाला। उसी औरत से वज़ीर अली पैदा हुआ। नवाब के सभी लड़के प्रायः इसी तरह के थे। उसके नौकर इसी फ़िराक़ में रहते थे कि कोई गर्भवती स्त्री मिले। उसे वे उसके रक्षकों से मोल ले आते थे और नवाब के हरम में रख देते थे। जब नवाब बाहर हवा खाने निकलता था तब कभी कभी गर्भवती स्त्रियां उसकी पालकी के पास चिल्लाकर कहती थीं—आपको याद न होगा; पर आप अपने बेटे पर रहम करें। वह मेरे पेट में है! नवाब साहब ऐसी स्त्रियों को क़बूल कर लेते थे और अपने हरम में पहुँचा देते थे! नवाब की कितनी ही सन्तति कुरूप और काली थी। नवाब के दोस्तों में भी बहुत से ऐसे थे जो नीच ख़ानदान के थे। उनमें से किसी किसी का प्रवेश नवाब के हरम तक था। आबू तालिब इस्फ़हानी ऐसी ही कहानी कहता है।

दूसरों को आराम से रहते देख आसफुद्दौला को बड़ा क्रोध आता था। उसमें मत्सर की मात्रा बेहद थी। उसने इश्तहार दे रक्खा था कि मेरे सिवा कोई बर्फ़ इस्तेमाल न करे। और भी कई चीज़ों की उसने मनाई कर दी थी। लखनऊ और फ़ैज़ाबाद में नवाब के अनेक बाग़ थे। उनमें इतने फल और फूल होते थे कि उनकी

गिनती नहीं। वे सब बरबाद हो जाने पर फेंक दिये जाते थे, पर किसीको मिलते न थे! आम के जितने अच्छे अच्छे बाग़ थे, मौसिम में, वे सब ज़ब्त कर लिये जाते थे। गुलाब और केवड़ा बेचने की मुमानियत थी। इसलिए अमीर आदमियों को ये दोनों चीज़ें बङ्गाले से मँगानी पड़ती थीं। फूल तक बेचने का हुक्म न था। इससे जब किसीके यहां शादी होती थी तब वह जङ्गल से फूल मँगवाता था और उन्हींकी माला अपने मेहमानों के गले में डालता था। लखनऊ में किसी कारख़ाने की एक छींट नवाब साहब ने पसन्द की। वह जितनी थी सब आपने ले ली। एक दिन एक आदमी को आपने वही छींट पहने देखा। इस पर आपको बेहद ग़ुस्सा आया। आपने उस कारख़ानेवाले को गधे पर चढ़ाकर सारे शहर में घुमाया! घोड़े के सौदागर अपने घोड़े पहले नवाब साहब को दिखलाने लाते थे। बाद में उनको औरों के हाथ बेचने की इजाज़त मिलती थी। नवाब के निज के जितने नौकर और ख़िदमतगार थे सबको स्त्रियों की तरफ़ देखने की सख़्त मनाई थी। अपनी विवाहिता स्त्रियों के यहां भी वे लोग नहीं जाने पाते थे! इसके लिए जासूस मुक़र्रर थे। यदि कोई अभागी इसके ख़िलाफ़ काम करते पकड़ा जाता था तो वह फ़ौरन गिरफ़्तार कर लिया जाता था। इन बातों पर विश्वास नहीं होता; पर आबू तालिब ने अपनी आंखों देखी बातें लिखी हैं। वह कहता है कि नवाब के सब दुराचार और दोषों का मैं वर्णन करूँ तो एक महाभारत ही हो जाय। इससे मैं सिर्फ़ वही दो-चार बातें लिखता हूँ जिनका सम्बन्ध सर्वसाधारण से है। यदि मैं इनको भी न लिखूँ तो आसफ़ुद्दौला के इतिहास का एक अङ्ग ही छूट जाय।

आसफ़ुद्दौला साल में दो दौरे करता था। एक ठीक जेठ में और दूसरा वर्षा के बन्द होते ही। वह अकसर अलमोड़ा और बुढ़बल की तरफ़ जाता था। कुँआर-कातिक के महीनों में वहां जाना मानों "जहन्नुम" में जाना है। हज़ारों आदमी और जानवर मर जाते हैं। एक दौरे में, फ़ैज़ाबाद तक, आबू तालिब भी साथ था। इस दौरे का कुछ हाल उसीके मुँह से सुनिए—

नवाब वज़ीर बुढ़वल जाने के लिए तैयार हुआ। रेज़िडेंट च्यरी साहब ने कहा, कुछ दिन ठहर जाइए; अभी मुमकिन है और बरसात हो। पर आपने एक न मानी। आपने कूच कर ही दिया। दूसरे ही पड़ाव पर पानी बरसा और बहुत तेज़ हवा चली। साथ में हज़ारों हाथी थे। तोपें भी बहुत सी थीं। उनके चलने से इतना कीचड़ हो गया कि रास्ता दलदल-मय हो गया। सबको बेहद तकलीफ़ हुई। दरियाबाद से फ़ैज़ाबाद तक यह जान पड़ता था कि मुर्दा घोड़े, बैल, ऊँट और आदमी कीचड़ के भीतर गाड़ दिये गये हैं। फ़ैज़ाबाद में सबके लिए नवाब वज़ीर के आसफ़बाग़ में जगह काफ़ी न थी। इससे बहुत आदमियों ने बाहर मैदान में ख़ेमे डाले। वहां पर डेढ़ फुट गहरा कीचड़ था। रात को इतना पानी पड़ा और इतने ज़ोर से हवा चली कि लोगों को उसी कीचड़ में डेरों के नीचे रस्से पकड़कर खड़ा रहना पड़ा। १५ दिन तक यह दशा रही! नवाब साहब घबरा गये। उनका धैर्य्य छूट गया। वे वहां पर और न रह सके। कूच का हुक्म हुआ। घाघरा की छाती पर पुल बनाया गया। वह एक ही रात में टूट गया। जो लोग आगे भेज दिये गये थे उन्होंने आकर कहा कि जहां पर गत वर्ष शिकार खेला गया था वहां बांसों पानी है और जिस गांव में नवाब साहब ठहरे थे वहां भी पानी की चादर बिछी हुई है। पर नवाब साहब ने यह सब झूँठ माना। उन्होंने समझा कि हमारे साथियों के सिखलाने से ये लोग ऐसा कह रहे हैं, जिसमें उनको दौरे पर न जाना पड़े। हुक्म हुआ कि पड़ाव का कूच हो। पांच दिन तक बरसते पानी में आदमी, असबाब और जानवर नावों पर उतरते रहे और नायब-वज़ीर ख़ुद खड़े खड़े उतराई की निगरानी करते रहे। उतरने में बहुत सी नावें उलट गईं। कितने ही हाथी डूब गये। कितने ही आदमी डूब मरे। असबाब की बरबादी का तो कुछ हिसाब ही नहीं। बरसात में घाघरा पार करना दिल्लगी नहीं है। पांच दिन में सिर्फ़ आधे आदमी और जानवर उतर पाये। छठे दिन नवाब वज़ीर ने घाघरा पार करने का इरादा किया। पर रात को इतने ज़ोर का पानी आया और इतनी तेज़ हवा चली कि घाघरा के किनारे आपके डेरे के खूँटे ही उखड़ गये। रात भर कहार लोग उनको हाथों से थांभे रहे। दूसरे दिन नवाब ने अपना डेरा दूसरी जगह ले जाना चाहा; पर कहीं

सूखी ज़मीन ही न मिली। इससे मूँड़ मारकर, घाघरा के किनारे से, उसे फ़ैज़ाबाद वापस आना पड़ा। जो लोग उतर गये थे वे फिर वापस बुलाये गये। इस तरह लोगों को जो तकलीफ़ हुई वह बयान से बाहर है। कुछ दिनों बाद जब पानी बन्द हुआ और मौसिम ज़रा अच्छा आया तब नवाब साहब ने घाघरा को पार किया। तब तक आपको फ़ैज़ाबाद ही में पड़े रहना पड़ा।

नवाब के सालाना दौरों में जो लोग उसके साथ रहते थे उनको हुक्म था कि वे घास, भूसा, लकड़ी और घड़े वग़ैरह प्रजा से ले लिया करें। इन चीज़ों का देना प्रजा को न खलता था, क्योंकि उन्हें इन चीज़ों के देने की आदत पड़ गई थी। पर नवाब के आदमी अनाज और रुपया-पैसा तक ज़बरदस्ती ले लिया करते थे—इतना कि दो-तीन महीने, जब तक वे बाहर रहते थे, वही काम आता था और लखनऊ लौटने पर भी कई महीने के लिए काफ़ी होता था। जहाँ नवाब का पड़ाव पड़ता था वहाँ आसपासवाले गाँव ख़ाली हो जाते थे। लूट-मार के डर से लोग अपना अपना घर छोड़कर और कहीं चले जाते थे। इन ख़ाली घरों के छप्परों में नवाब के आदमी आग लगा देते थे! वह आग मानों उनके लिए रोशनी का काम देती थी! पड़ाव में आदमियों की इतनी अधिकता रहती थी कि सबके लिए ईंधन का बन्दोबस्त न हो सकता था। इससे वे लोग प्रजा के मकानों की छत और छप्पर वग़ैरह गिरा देते थे। तब उनकी लकड़ी से उन लोगों का आध सेर आटा पकता था!!! जब टिकैतराय ने नायब वज़ीर से इस ज़ुल्म की शिकायत की, तब यह जवाब मिला कि यदि दौरे के समय, साल में दो-चार महीने, नवाब के आदमियों को इस तरह लूट-मार करने का मौक़ा न मिलेगा तो वे नवाब की नौकरी ही क्यों करेंगे? इससे यदि ये बातें रोकी जायँगी तो दिल बहलाने के लिए नवाब का सैर-सपाटे करना ही रुक जायगा!

आसफ़ुद्दौला के समय तक अवध में दीवानी या फ़ौजदारी की कोई नाम लेने लायक़ कचहरी न थी, बलवान् निर्बल को बेखटके सताता था। जिसमें बल था वही अपने ऊपर अत्याचार करनेवाले को सज़ा दे सकता था। नवाब के अफ़सरों के नौकर और चोबदार क़ाज़ी और मुफ़्ती से मन-माने फ़तवे ले लिया करते थे और जिसके ख़िलाफ़ चाहते थे डिकरी लिखवा लेते थे। नवाब की अरदली में जो राजा और अमीर रहते थे उनमें से राजा भवानीसिंह भी थे। पहले-पहल इन्हींको चीफ़ जस्टिस की कुरसी मिली। पर उनका होना न होना बराबर था; क्योंकि नवाब के आदमियों को यह बात बिलकुल पसन्द नहीं आई। उन्होंने शहर में अपनी ही हुकूमत जारी रक्खी। नवाब को अपनी प्रजा के मरने जीने की बिलकुल परवा न थी। सब्ज़ी मंडी में एक हवाईगर रहता था। उसीके मकान के पास आबू तालिब का भी मकान था। वह लोगों के लड़के चुरा लाता था और कुछ निर्दय जादूगरों के कहने से उन्हें मार डालता था। धीरे धीरे यह बात खुल गई। लोगों ने उसका घर खोदा और बहुत से लड़कों की लाशें निकालीं। उनके कलेजे निकाल लिये गये थे, उनकी ज़बानें काट ली गई थीं; उनके चेहरे जला दिये गये थे। वे सब लाशें नवाब की ड्योढ़ी पर पहुँचाई गईं। पर लोगों के हज़ार रोने और सिर पटकने पर भी नवाब ने इतना तक न पूछा कि ये कौन हैं और क्यों शोरो-गुल करते हैं। उनका न्याय न हुआ। इससे सिर पीटकर वे अपने अपने घर लौट आये। वह हवाईगर कुछ दिनों तक तो छिपा रहा; पर दो-चार महीने बाद उसका सिर अपने महल्ले में उतना ही ऊँचा हो गया जितना पहले था।

न्याय का एक और नमूना सुनिए। झाऊलाल के एक सम्बन्धी ने शुजाउद्दौला के एक सम्बन्धी रज़ाबेग खां को मार डाला। रज़ाबेग की माँ ने हज़ार कोशिशें कीं कि मेरे बेटे के मारनेवाले को सज़ा मिले, पर सब व्यर्थ हुआ। तब रज़ाबेग के भानजे ने अपने मामू के मारनेवाले को नवाब के महल के फाटक पर ही क़त्ल करके अपने मामू के ख़ून का बदला लिया। ऐसे मामले प्रायः रोज़ हुआ करते थे। जिनमें ताक़त थी वह ख़ुद ही अपने अत्याचारियों को सज़ा दे लेते थे।

१७८३-८४ ईसवी में बहुत बड़ा अकाल पड़ा। अनाज इतना मँहगा हो गया जितना सौ वर्ष पहले कभी नहीं सुना गया था। हज़ारों आदमी, भूख के मारे, रोज़ मरने लगे। लखनऊ के इर्द-गिर्द इतनी लाशें इकट्ठी हो गईं कि उनकी बदबू से शहर में रहना मुश्किल हो गया। उस समय लखनऊ में जितने अँगरेज़ थे उन सबने अकाल के कँगलों की बड़ी मदद की। हज़ार पाँच सौ

आदमियों के खाने, कपड़े और दवा-पानी का बन्दोबस्त उन्होंने किया। उसी समय हेस्टिंग्ज़ साहब लखनऊ पधारे। उनके हुक्म से नायब-वज़ीर हैदरबेग ने हज़ार रुपये रोज़ कँगलों को बांटना शुरू किया। पर बांटनेवाले ऐसे लोभी, निर्दयी और चोर थे कि आधा रुपया वे रोज़ बीच ही में उड़ा लेते थे। रुपया बांटने के समय इतनी बदइन्तज़ामी रहती थी कि बेचारे ग़रीब आदमियों के सिर फूट जाते थे और हाथ-पैर टूट जाते थे—यहां तक कि बहुत लोग ज़मीन पर गिरकर कुचल तक जाते थे। उस भीड़ में यदि कोई जवान लड़की देख पड़ती थी तो उसकी जांच होती थी। यदि वह बातचीत करने में चतुर जान पड़ती थी और उसके गले की आवाज़ अच्छी होती थी तो वह हैदरबेग ख़ां के हरम में पहुँचा दी जाती थी। आबू तालिब लिखता है कि हैदरबेग के बहुत से लड़के ऐसी ही लड़कियों से थे।

हैदरबेग के सम्बन्ध की बहुत सी बातें लिखने लायक़ हैं; पर प्रबन्ध बढ़ा जाता है; इससे हम और अधिक न लिखेंगे।

आसफ़ुद्दौला को इमारतें बनाने का बड़ा शौक़ था। इस काम में हर साल दस लाख रुपया ख़र्च होता था। जब एक इमारत बन जाती थी तब दो-चार रोज़ कोई उसमें रहता था। फिर वह ख़ाली हो जाती थी। तब उसमें न कोई चिराग़ जलाता था और न कोई झाड़ू लगाता था। नवाब को इमारतें बनाने की जो सनक थी उससे प्रजा को बेहद तकलीफ़ पहुँचती थी। जहां कोई इमारत बनती थी वहां के रहनेवाले निकाल दिये जाते थे; उनकी ज़मीन छीन ली जाती थी; उनके मकान ज़ब्त कर लिये जाते थे। वे लोग बहुधा अपनी चीज़-वस्तु तक न उठा ले जाने पाते थे—उनको इतना वक़्त ही न दिया जाता था। हुक्म मिलते ही लोगों के मकान गिरा दिये जाते थे और वे अपनी स्त्रियों और बच्चों को मुश्किल से बाहर निकालने पाते थे। नवाब के कारीगर और मिस्त्री बे सिर पैर के बहाने बतलाकर प्रजा के मकान खोद डालते थे, और उनकी ईंट, पत्थर और लकड़ी सरकारी काम में लाते थे। कभी कभी एक खम्भे या एक कड़ी के लिए बड़ी बड़ी आलीशान हवेलियां खोद डाली जाती थीं! नवाब के अफ़सर भी इस इमारती सनक की नक़ल करते थे। वे भी मकान और मक़बरे इत्यादि बनवाकर प्रजा को तङ्ग करते थे। काम इतनी शीघ्रता से होता था कि एक की जगह दस रुपये ख़र्च होते थे। तिस पर भी काम अच्छा न होता था। एक साल की बनी हुई इमारत दूसरे साल गिरने लगती थी। नवाब की बनवाई हुई इमारतों में इमामबाड़ा सबसे अच्छा और सबसे मज़बूत है। इमामबाड़ा बनवाने में बे शुमार रुपया ख़र्च हुआ है। जब से वह बन कर तैयार हुआ तब से हर साल, आसफ़ुद्दौला के समय में उसकी आरायश के लिए चार पांच लाख रुपया साल ख़र्च होता रहा है। इस इमामबाड़े के बनवाने में लाखों अकाल-पीड़ित आदमियों से काम लिया गया था। अतएव अनन्त आदमियों की प्राण-रक्षा हुई थी। सोने और चांदी के हज़ारों ताज़िये नवाब ने इसके लिए बनवाये थे। एक दफ़े एक डाक्टर साहब इँगलैंड जा रहे थे। उन्हें आपने एक एक लाख रुपये की लागत के दो ताज़िये वहां से लाने को हुक्म दिया। उनमें से एक हरे कांच का मांगा गया था और दूसरा लाल कांच का।

ऐशबाग़, चारबाग़, हसनबाग़, दौलतख़ाना, बिबियापुर की कोठी और चिनहुट की कोठी, इत्यादि और भी बहुत सी इमारतें आसफ़ुद्दौला ही के समय में, लखनऊ में, बनी थीं।

यद्यपि आसफ़ुद्दौला ने अपनी मां, दादी, भाई और रिश्तेदारों के साथ अच्छा सुलूक़ नहीं किया; यद्यपि उसने और उसके अफ़सरों ने बेहद फ़िज़ूलख़र्ची करके प्रजा से प्राप्त हुए धन का व्यर्थ नाश कर दिया; यद्यपि उसके समय में किसीको अपने जान-माल के रहने या चले जाने का एक पल भर के लिए भी भरोसा न था; यद्यपि मुल्क का प्रबन्ध बिलकुल ही अच्छा न था; यद्यपि रियाआ को कुछ भी सुख नहीं मिला—तथापि नवाब की आन्तरिक इच्छा यह थी कि मेरे पूर्वजों के किये हुए अच्छे कामों के ख़याल से लोग मेरा आदर करें; जो ज़ुल्म उन पर हों उन सबको गर्दन नीची करके वे बरदाश्त करें; मौत से भी अधिक अन्याय होते देख वे आंखें मूँद लें; और कभी किसी तरह की शिकायत करने के इरादे से वे होंठ न हिलावें!

नहीं मालूम आबू तालिब की कही हुई ये सब बातें कहां तक सच हैं। नवाब और उसके नायब वग़ैरह आबू

तालिब से अच्छी तरह पेश नहीं आये। यह बात उसकी किताब से ज़ाहिर है। इससे मुमकिन है वह नाराज़ हो गया हो और नवाब साहब की नवाबी का वर्णन जो उसने किया है उसमें उसने खूब नमक मिर्च लगाया हो।

कलकत्ता-यूनिवर्सिटी-कमीशन।

जिस कलकत्ता-यूनिवर्सिटी-कमीशन की रिपोर्ट की प्रतीक्षा हम इतने दिनों से कर रहे थे वह प्रकाशित हो गई। कमीशन १९१७ में सितम्बर के महीने में नियुक्त हुई थी। इसके मेम्बर डाकृर सडलर (वर्तमान सर सडलर) सभापति, डाकृर ग्रेगरी, मिस्टर हारटन, प्रोफ़ेसर रामसे म्योर, मिस्टर हारनैल, सर आशुतोष मुकरजी और डाकृर ज़ियाउद्दीन अहमद थे अर्थात् पाँच अँगरेज़ और दो भारतवासी। कमीशन की नियुक्ति के समय जनता को भय था कि इसका भी परिणाम लार्ड कर्ज़न के १९०४ वाले यूनिवर्सिटी-कमीशन का सा होगा। परन्तु इसके अधिकतर मेम्बर धुरन्धर और उदारचित्त विद्वान् थे और उन्होंने कलकत्ता-यूनिवर्सिटी की शिक्षा की छान-बीन में बहुत परिश्रम उठाया। सर सडलर ऐसे निष्पक्ष और उदार विचारवाले अँगरेज़ विरले ही होते हैं। रिपोर्ट के सम्बन्ध में उन्हें और सर आशुतोषजी को जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है। श्री आशुतोषजी से तो हमें ऐसी ही आशा थी, क्योंकि वे सदैव विद्या-प्रचार और विद्योन्नति के पक्षपाती हैं और आप इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए सराहनीय कार्य्य भी करते रहे हैं। सडलर कमीशन की रिपोर्ट चार चार सौ पृष्ठ के पाँच भागों में है और इसके अतिरिक्त आठ भागों में परिक्षिप्त अङ्क और गवाहियाँ हैं। इस लेख में रिपोर्ट के विशेष विषयों का सार संक्षेप में दिये जाने का प्रयत्न किया गया है।

कमीशन ने प्रारम्भिक शिक्षा के प्रश्न पर विचार नहीं किया। शिक्षा की वर्तमान प्रणाली के इतिहास के पश्चात्, उसने सेकण्ड्री शिक्षा के ऊपर विचार किया है, और उसकी सम्मति है कि स्कूलों की दशा अच्छी नहीं है, अध्यापक बहुत कम वेतन पाते हैं; परीक्षायें विद्यार्थी के लिए कठिन भार बन रही हैं, और मेट्रीक्यूलेशन की परीक्षा बड़ी भद्दी है, जिससे न शिक्षा ही की उन्नति होती है और न विद्यार्थी ही किसी योग्य बनता है। स्कूलों का शासन बुरा है, शिक्षा-विभाग और विश्वविद्यालय दोनों के शासन के कारण स्कूलों में पठन-पाठन बड़ा अस्त-व्यस्त होता है; और स्कूलों के काम का एक बड़ा और मुख्य भाग उनमें होता ही नहीं, जिससे वह कालेज में करना होता है। इन दोषों को दूर करने के लिए कमीशन की राय है कि स्कूलों के ढङ्ग में भारी परिवर्तन होना चाहिए। विद्यार्थी एफ़० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् यूनिवर्सिटी में प्रवेश किया करें, और ज़िले ज़िले में एफ़० ए० तक की शिक्षा देनेवाले 'इंटरमीडियेट' कालेजों की स्थापना होनी चाहिए। वर्तमान हाई स्कूल ही इस प्रकार के कालेज बना दिये जायँ। उनमें दो परीक्षायें हुआ करें, एक तो आज-कल के मेट्रिक्यूलेशन के ढङ्ग की और दूसरी एफ़० ए० के बराबर की; परन्तु इस दूसरी परीक्षा के पाठ्य-विषय कई प्रकार के हों और विद्यार्थी के मार्ग में आगे चलकर अनेक सुविधायें देनेवाले हों। 'इण्टरमीडियेट परीक्षा' में उत्तीर्ण होने के पश्चात्, विद्यार्थी चाहे तो आगे साहित्य का अध्ययन करेगा और नहीं तो वह कृषि, विज्ञान, शिल्प-कला, वाणिज्य, आदि किसी भी विषय को सुविधा से ले सकेगा। एक प्रकार से, यह परीक्षा आगे की उच्च पढ़ाई के लिए सोपान का कार्य्य करेगी। कमीशन की सम्मति में यह परीक्षा बड़े महत्त्व की है।

स्कूलों की शासन-प्रणाली में भी बड़े बड़े परिवर्तनों की आवश्यकता है। यूनिवर्सिटी और शिक्षा-विभाग

की चक्की के दो पाटों के बीच में पिसनेवाले और जनता की आवश्यकताओं और प्रभावों से बिलकुल दूर रहनेवाले स्कूलों को कमीशन एक ऐसे शिक्षा-बोर्ड की अध्यक्षता में देना चाहता है, जिसमें १५ से लेकर १८ तक मेम्बर रहेंगे, और जिसमें जनता के विश्वास-पात्र प्रतिनिधियों की अधिकता होगी। शिक्षा-विभाग का अध्यक्ष उसका कार्य्यकर्ता तो नहीं, हाँ, उसका एक सभासद् होगा। हिन्दू, मुसलमान, कौन्सिल और विश्वविद्यालय के भी प्रतिनिधि उसमें होंगे, और बोर्ड का कार्य्य यह होगा कि वह हाई स्कूलों और 'इन्टरमीडियेट कालेजों' का पाठ्य-क्रम निश्चय करे, पूर्वोक्त दोनों परीक्षाओं का प्रबन्ध करे, हाई स्कूलों और इन्टरमीडियेट कालेजों के निरीक्षण के लिए अपने इन्स्पेक्टर नियुक्त करे, और 'सहायता' इत्यादि के विषय में सरकार को उचित सम्मति दे। हाई स्कूलों और इन्टरमीडियेट कालेजों के अध्यापकों का वेतन और पद ऊँचा किया जाय और ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि वे सरकारी विद्यालयों से ग़ैर सरकारी विद्यालयों में सुविधा से जा सकें।

कमीशन की राय में, यूनिवर्सिटी की शिक्षा में निम्नलिखित दोष हैं—बालकों की संख्या की अधिकता है (इन्टरमीडियेट कालेजों के स्थापित हो जाने से यह कठिनाई बहुत कम हो जायगी); कालेजों में अध्यापकों और धन की कमी है (अनेक कालेज तो विद्यार्थियों की फ़ीस ही से अपना काम चलाते देखे गये हैं); शिक्षा केवल साहित्य सिखानेवाली है और साधारण व्याख्यानों ही से उसकी इति-श्री हो जाती है; पाठ्य-क्रम बहुत संकुचित ओर आवश्यकताओं को पूरा न करनेवाला होता है; शिक्षकों का वेतन बहुत कम है और आगे की उन्नति की कोई आशा नहीं होती। एम० ए० की पढ़ाई पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता; इसलिए उससे नीचे की पढ़ाई में समान उन्नति नहीं होती; गवर्नमेंट और यूनिवर्सिटी का, और यूनिवर्सिटी और विद्यालयों का पारस्परिक सम्बन्ध उचित और लाभदायक नहीं है; विद्यार्थियों के स्वास्थ्य, चरित्र और अध्ययन में अनेक त्रुटियाँ हैं। फिर एक यह भाव फैल गया है कि नौकरी के लिए विश्व-विद्यालय की डिग्री का होना आवश्यक है, यहाँ तक कि अब क्लर्की तक के लिए ऐसा माना जाता है और बहुत विद्यार्थी शिक्षा की प्राप्ति के लिए नहीं, वरन नौकरी की प्राप्ति के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं। इन दोषों को दूर करने के लिए कमीशन ने जो उपाय बताये हैं उनमें से मुख्य ये हैं—

यूनिवर्सिटी के शासन के कार्य में बहुत कुछ परिवर्तन किया जाय; डिग्री प्राप्त करने के लिए तीन वर्ष की अवधि रक्खी जाय; भारत-मन्त्री और भारत-सरकार प्रोफ़ेसरों की नियुक्ति न करें; कालेजों के अधिकारी एक कमेटी की सम्मति से उनकी नियुक्ति किया करें; विद्यार्थियों की स्वास्थ्य-रक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाय, और इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए प्रत्येक विद्यालय में एक बोर्ड रहे जिसमें अनुभवी चिकित्सक भी हों।

कमीशन मुसलमान छात्रों को कुछ विशेष सुविधायें देने के पक्ष में है, क्योंकि मुसलमानों में शिक्षा की कमी है और वह इस प्रकार की उत्तेजना से शीघ्र ही मिट जायगी। कमीशन की राय है कि ढाका-विश्व-विद्यालय, जिसे सरकार १९१२ से स्वीकार कर चुकी है, शीघ्र ही स्थापित कर दिया जाय और उसमें छात्रों को सब प्रकार की ऐसी शिक्षा दी जाय जो एक विश्व-विद्यालय में होनी चाहिए। ढाका-विश्वविद्यालय का अन्य बाहरी कालेजों से कोई सम्बन्ध न हो।

कमीशन ने कलकत्ता-विश्व-विद्यालय के सुधार के लिए कई उपयोगी बातें बतलाई हैं। जो कालेज कलकत्ते में हैं उनको उन्नत करने और यूनिवर्सिटी से उन्हें पूरा लाभ उठाने का अवसर देने के लिए उनका यूनिवर्सिटी के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए।

वे सदा एक दूसरे के सहायक हों और परस्पर बहुत सी बातों का निर्णय कर लिया करें। अभी तक उनमें स्वामी और सेवक का सा जो सम्बन्ध है वह दूर हो जाय और वे सङ्गठित शक्ति से उच्च शिक्षा की गाड़ी को चलावें। पारस्परिक मत-भेद वायस चान्सलर के निर्णय से निपट जाया करे। कमीशन के मत में यह परम आवश्यक है कि ६०० अध्यापक प्रति वर्ष तैयार किये जायँ और उनके लिए बहुत सी सुविधायें दी जायँ।

स्त्री-शिक्षा की गति बहुत धीमी है; कमीशन उसे तीव्र रूप में परिणत करना चाहता है और इस उद्देश्य की पूर्त्ति के निमित्त वह एक ऐसे बोर्ड की रचना चाहता है जिसमें स्त्रियाँ भी हों और जो अन्य परदानशीन स्त्रियों से भी समय समय पर सम्मति लेता रहे। बोर्ड ऐसे परदा-स्कूल स्थापित करे जिनमें १५-१६ वर्ष तक की लड़कियाँ पढ़ सकें और वह स्त्रियों के लिए उपयोगी सिद्ध होनेवाले पाठ्य-क्रम का भी निश्चय करे।

संस्कृत, फ़ारसी और अरबी की शिक्षा की उन्नति के लिए कमीशन ने कुछ विशेष बातें कही हैं। कमीशन का कहना है कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का यह बड़ा भारी दोष है कि वह छात्रों को क़ानून और चिकित्सा छोड़कर अन्य किसी धन्धे के योग्य नहीं बनाती। कमीशन इस त्रुटि को दूर करना अत्यावश्यक समझता है और क़ानूनी कालेज में सुधार और मेडिकल स्कूलों की वृद्धि की बात कहता हुआ, इञ्जीनियरी, खनिजविद्या, चित्रकारी, कृषि, शिल्पकला, वाणिज्य, आदि की शिक्षा का विशेष प्रबन्ध करने के लिए, ब्योरे के साथ, सम्मति देता है। इस काम में धन का अधिक व्यय होगा, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि केवल साहित्य-शिक्षा से इस प्रकार की शिक्षा देश के लिए अधिक हितकर अवश्य सिद्ध होगी।

शिक्षा के माध्यम के विषय में, कमीशन की सम्मति है कि कालेजों में वह अँगरेज़ी रहे, और स्कूलों में अँगरेज़ी और गणित को छोड़कर, वह देशी भाषा ही रहे।

परीक्षाओं के सम्बन्ध में कमीशन की बड़ी कड़ी राय है। उसके मत से परीक्षायें विद्यार्थी को रट्टू बना देती हैं। विद्यार्थी बुद्धि से काम नहीं लेता, किन्तु रटता है और रट रटकर परीक्षा पास और बुद्धि का नाश करता है। इस विषय में आगे क्या करना चाहिए, इसका निर्णय ऐसी परीक्षा-समितियों के हाथ में रहेगा जो इस बात का ध्यान रक्खेंगी कि परीक्षाओं से अध्ययन और शिक्षा पर बुरा प्रभाव तो नहीं पड़ता। कमीशन पाठ्य-क्रम में कुछ ऐसे विषयों के भी रखने के पक्ष में है जिनमें परीक्षायें न ली जायँ।

कमीशन का विचार है कि इन सिफ़ारिशों के अनुसार तीन वर्ष में काम किया जा सकता है। उसका स्पष्ट रूप से कहना है कि यदि गवर्नमेंट हमारी सब बातें स्वीकार न कर सके तो, कम से कम, भविष्य में विश्वविद्यालय-सम्बन्धी जो सुधार करे उसमें इतना अवश्य ही करे कि छात्रा-वास और बढ़ाये जायँ, विद्यालयों के लिए स्थान भी बढ़ाया जाय, अध्यापकों को ट्रेण्ड करने के लिए अधिक सुविधायें उत्पन्न की जायँ, और विद्यार्थियों के स्वास्थ्य को ठीक और उन्नत करने के उपाय निश्चित किये जायँ।

यदि कमीशन की सिफ़ारिशें कार्यरूप में परिणत की जायँगी तो कलकत्ते की सेकण्डरी और उच्च शिक्षा के लिए कई करोड़ रुपये का व्यय करना होगा। दूसरी यूनिवर्सिटियाँ भी अपने यहाँ सुधार उसी भाँति करना चाहेंगी। समय की गति और जनता में विद्यावृद्धि के लिए प्रेम और उत्सुकता को दृष्टिगोचर कर यह आशा करना असङ्गत न होगा कि सरकार शिक्षा-विभाग में अधिक धन व्यय करने को हर्षपूर्वक उद्यत होगी। मांटेगू-चेम्सफ़र्ड-

सुधार स्कीम के अनुसार प्रान्तीय शिक्षा-विभाग भारतीय सचिव (Indian minister) के अधिकार में रहेगा; और सडलर महाशय ने पार्लमेंट कमेटी के सम्मुख गवाही देते हुए कहा भी है कि मेरी सम्मति में भारतवासियों ही के अधिकार में प्रान्तीय शिक्षा-विभाग दे देना और शिक्षा का रूप राष्ट्रीय कर देना उचित है। उनके विचार में ये बातें कम से कम बङ्गाल में अवश्य होनी चाहिएँ। सर जेम्स मेस्टन ने पार्लमेन्ट-कमेटी के सामने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि वर्तमान भारतीय शिक्षा-प्रणाली दोष-रहित नहीं है। हर्ष की बात है कि एक गवर्नमेंट कर्मचारी ने ऐसा मान तो लिया। यदि ऐसा ही है तो भविष्य में गवर्नमेंट को ऐसी त्रुटियों से सचेत रहना चाहिए। भारतवर्ष में कई नवीन यूनिवर्सिटियाँ ढाका, अवध, आगरा और नागपुर में जल्दी ही खुलनेवाली हैं। लार्ड चेम्स्फ़र्ड ने सितम्बरवाली कौन्सिल की बैठक में तो ढाका-यूनिवर्सिटी की उत्पत्ति और अन्य यूनिवर्सिटियों में शीघ्र सुधार करने का वचन दिया है। देखना है कि वह कहाँ तक अपनी प्रतिज्ञा कार्यरूप में परिणत करते हैं।

सडलर कमीशन ने दो वर्ष के परिश्रम के पश्चात् रिपोर्ट प्रकाशित की है। इसमें जनता के सहस्रों रुपयों का व्यय हुआ है। आशा है कि सरकार इसकी सिफ़ारिशों की अवहेलना न करेगी और शिक्षा-विभाग में शीघ्र सुधार कर भारतीय विद्यार्थियों का उद्धार करने का प्रयत्न करेगी, जिससे वह भारतवासियों की कृतज्ञता की भागी बनेगी। रिपोर्ट में अनेक अच्छी बातें कही गई हैं, परन्तु हम यह स्वीकार करने को उद्यत नहीं हैं कि यदि उनके अनुसार कार्य्य किया जाय तो हमारे शिक्षा-सम्बन्धी सब दोष दूर हो जायँगे। खेद की बात है कि शिक्षा के माध्यम की ओर कमीशन ने यथेष्ट ध्यान नहीं दिया। कालेजों में विदेशी भाषा—अँगरेज़ी द्वारा ही शिक्षा दी जायगी। अँगरेज़ी को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देना जातीयता की हानि और भारतीय मानसिक क्षय का कारण होता है। सम्भव है कि भविष्य में दूसरा कमीशन जो दस-पन्द्रह वर्ष पश्चात् शिक्षा की जाँच-पड़ताल करने को बैठे इस त्रुटि को दूर कर सके। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि यदि कमीशन के विचारों के अनुसार शिक्षा-विभाग में परिवर्तन किये जायँ तो दशा आज-कल से कहीं अच्छी अवश्य हो सकती है, शिक्षा का रूप बहुत कुछ राष्ट्रीय हो सकता है और रोटियों का प्रश्न भी किसी अंश में सरल हो सकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा की उपयोगिता बढ़ सकती है और देश की शक्तियों का विनाश घट सकता है।

आशा है कि विद्यार्थियों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए सरकार विशेष प्रयत्न करेगी, क्योंकि बालक जाति के अमूल्य रत्न हैं और उनकी ही शारीरिक और मानसिक उन्नति से जाति उन्नत दशा को पहुँच सकती है।

गुरुनारायण मेहरोत्र, बिलग्रामी, बी० ए०

द्विजेन्द्र-नाटकावली।

हिन्दी के कुछ प्रकाशकों और अनुवादकों के अदम्य उत्साह से अब हमारे साहित्य में उच्च कोटि के अनुवादित नाटकों की कमी नहीं रही। साहित्य के इतिहास में अनुवाद के बाद ही मौलिकता आती है, इसलिए आशा है कि इन नाटकों के पढ़े जाने और अभिनीत होने पर हिन्दी-साहित्य में उच्च कोटि के मौलिक नाटक लिखे जाने लगें। अब तक द्विजेन्द्र बाबू के लगभग बारह बँगला नाटक हिन्दी में प्रकाशित हो चुके हैं और इस लेख में इन्हीं नाटकों की आलोचना करनी है।

विदेशी भाषा से अनुवाद करने में जो कठिनाइयाँ पड़ती हैं, वे इन नाटकों में अधिक प्रकट नहीं होतीं।

इसके कई कारण हैं। एक तो द्विजेन्द्र बाबू हमींमें से हैं; बङ्गाल हमारे ही देश का एक प्रान्त है। हमारे ही देश के इतिहास को लेकर द्विजेन्द्र बाबू ने अधिकतर नाटक रचना की है। हिन्दू समाज की कुरीतियाँ, जिनका उन्होंने अपने नाटकों में दिग्दर्शन किया है, देश भर में थोड़ी-बहुत सभी जगह पाई जाती हैं। जाति के अधःपतन के घाव से जैसे वे पीड़ित हैं वैसे ही प्रत्येक विचारवान् भारतवासी दुखी है। दूसरी बात यह है कि उनके पात्र अधिकतर गद्य में बोलते हैं; और बङ्गाली भाषा हिन्दी से बहुत कुछ मिलती है। फिर, नाटकों के अनुवादक भी योग्य लेखक हैं। यदि कहीं दोष झलकता है तो वह 'सीता' ऐसे 'गीतनाट्य' को गद्य में अनुवादित करने में, या बँगला गीतों का हिन्दी रूपान्तर करने में है। इसका कारण यह है कि पिङ्गल तथा हिन्दी रङ्ग-मञ्च के बन्धन अनुवादक को इतना जकड़ देते हैं कि न तो वह अपने ही कवित्वरस की पुट दे सकता है, न मूल के ही भाव को पूर्णतया दिखा सकता है। क्या ही अच्छा होता यदि टिप्पणी या भूमिका में एक से अधिक गीत अपने ही (मूल) स्वरूप में दिखा दिये जाते। पाठकों के सामने मेवाड़-पतन ही का अन्तिम गीत है—'किसेर शोक करिस भाई। आवार तोरा मानुष हे'—'तुम शोक काहे को करौ, फिर से मनुष्य सबै बनौ'। इसमें चाहे आप स्वाद का वर्णन न कर सकें, क्योंकि भाषा अपनी नहीं है, पर इस कारण से इसमें कुछ भाव की कमी नहीं होती। इस सम्बन्ध में यह कहना अनुचित न होगा कि 'तारा' को अनुप्रास-हीन पद्य (Blank verse) में अनुवादित करके अनुवादक ने उसकी शोभा को बहुत कुछ बढ़ा दिया है। इससे कदाचित् अभिनय करने में कठिनता हो, परन्तु पढ़ने में 'तारा' से बढ़कर कर्ण-रोचक नाटक इस श्रेणी में कोई नहीं है। क्या अच्छा हो यदि 'सीता' भी यों ही अनुवादित की जाय। इस रूप में तो यह 'उत्तर-राम-चरित' ऐसे काव्य के सामने बिलकुल फीकी मालूम पड़ती है।

अनुवाद करने में यदि पण्डित कामताप्रसाद गुरुजी के विचारानुसार पात्रों की भाषा में थोड़ा बहुत अन्तर रहता तो कदाचित् रोचकता बढ़ जाती। परन्तु इसमें अनुवादकों का दोष बहुत कम है। द्विजेन्द्र बाबू आपही इस भेद को बहुत कम दिखाते हैं। उनके लिए राजा से लेकर रङ्क तक, रानी से लेकर दासी तक, सभी कवि हैं; सभी के लिए आकाश नीला, गहरा और स्वच्छ है। जब कोई दुर्घटना होनेवाली होती है सभी अन्धकार, बिजली और तूफ़ान से विचलित होते हैं। अनुवाद में भाषा को पात्र के योग्य बनाने का प्रयत्न केवल शाहजहाँ में किया गया है। भाषा फ़ारसी-मिश्रित है और सरल है; परन्तु उर्दू भाषा से परिचित समाज को 'खर्च', 'लायक', 'बागी' कुछ खटकते हैं। जब 'मुहब्बत', 'कोशिश', 'वालियेमुल्क' ऐसे शब्द ठीक लिखे गये हैं तब हलक़ से निकलनेवाले शब्दों ही ने क्या अपराध किया है! ऊँचे दर्जे के मुसलमान पात्रों के मुँह से अशुद्ध उर्दू के शब्द कहलाना वैसा ही है जैसे उच्च जाति के हिन्दू पात्रों से देहाती हिन्दी के शब्द कहलाना। ग्रामीण हिन्दी भी हो, और बे मुहाविरा उर्दू भी हो; परन्तु पात्रापात्र का विचार करके।

इन सब बातों को मानते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हिन्दी भाषा में अभिनय करने और पढ़ने, दोनों के योग्य यदि कोई नाटकमाला है तो द्विजेन्द्र बाबू की। कालिदास के समय में यवनिका को छोड़कर शायद ही और कोई परदे रहे हों। शेक्सपियर के समय में भी रङ्ग-मञ्च ने बहुत ही कम उन्नति की थी। पात्रों के लिए कोई आड़ न थी। दिन को नाटक हुआ करते थे। ओस या धूप से बचाव न था। ऐसी दशा में नाटक की सफलता के लिए बहुत कुछ कल्पना की आवश्यकता पड़ती थी। परन्तु आज-कल नाटक-कम्पनियों ने बहुत उन्नति की है; हर तरह के दृश्य दिखलाने के लिए परदों से, और हर एक घटना को दर्शाने के लिए करामातों से, ऊँचे वर्ग के थियेटर सुसज्जित हैं। जितना बढ़िया सामान हो नाटककार को नाटक दिखाने में उतनी ही कठिनाई पड़ती है; रङ्ग-मञ्च की आवश्यकताओं को नाट्य-कल्पना से मिलाये रखने की आवश्यकता पड़ती है। शेक्सपियर के समय में हैम्लेट के हत्याकाण्ड में खून नहीं बहता था; 'टेम्पेस्ट' में रङ्ग-मञ्च पर तूफ़ान नहीं आता था; और इसी कारण शेक्सपियर का यश अभिनय के समय से नहीं, पढ़ने के समय से फैला। परन्तु इस समय जो दृश्य नाटककार लिख देगा उसके दर्शाने में थियेटर के मैनेजर कोई कसर बाक़ी नहीं

रक्खेंगे। साधारण नाटककार रङ्ग-मञ्च ही का विचार करके नाटक लिखते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि उस पुस्तक के छपने की नौबत ही बहुत कम आती है। दर्शकों की वाह वाह ही तक उनका जीवन रहता है। रङ्ग-मञ्च से अनभिज्ञ कवि के नाटक में भी प्रतिभा का विकास नहीं होता, और उसके नाटक साधारणतः चिरजीवी नहीं होते। टेनीसन के नाटक कहां अभिनय किये जाते हैं ?

द्विजेन्द्र बाबू के नाटकों के चिरजीवी रहने में कोई सन्देह नहीं मालूम होता। वे पढ़ने, और अभिनय करने, दोनों में समाज को आनन्दित करते हुए शिक्षा देते हैं। उनके पात्र मनोविचार की सूक्ष्म से सूक्ष्म तरङ्गों में जा मिलते हैं और उनके मानसिक भाव हृदय में मिलकर पुनर्जीवन प्राप्त करते रहते हैं। हैम्लेट, आथेलो, और कार्डेलिया अभी तक जीवित हैं। द्विजेन्द्र बाबू के पात्रों को जन्म लिये अभी बहुत समय नहीं हुआ। परन्तु भविष्य की ओर देखते हुए यह विश्वास होता है कि जब तक देश में जातीय जोश रहेगा तब तक सत्यवती, महामाया, और गोविन्दसिंह जीवित रहेंगे; जब तक ब्रह्मचर्य्य का आदर्श इस देश में जीता रहेगा, तब तक भीष्म की पूजा होगी; जब तक स्वामि-भक्ति, पिता-भक्ति और पति-प्रेम के माननेवाले इस देश में रहेंगे तब तक क़ासिम, विजयसिंह, लीला और सीता जीवित रहेंगे। 'सीता' के लिए तो द्विजेन्द्र बाबू ने अधिक नहीं किया; उन्हें तो भवभूति और तुलसीदास ही अमर कर गये हैं। हमारे नाटककार ने उनको केवल बीसवीं सदी की साड़ी पहना दी है। नूरजहां, औरङ्गज़ेब, शाहजहां ऐसे ऐतिहासिक पात्र भी इतिहास में अवश्य अमर हैं, परन्तु मनुष्य-हृदय में उनको जगह द्विजेन्द्र बाबू ही ने दी है। जब तक प्रेम और गौरव के बीच सङ्कट रहेगा तब तक नूरजहां हृदय में प्रस्तुत रहेगी; जब तक हृष्ट-पुष्ट होकर भी मनुष्य का हृदय दुर्बल रहेगा, तब तक औरङ्गज़ेब और सिंहबाहु से सहानुभूति रखनेवाले बहुत मिलेंगे। जब तक विषयी मनुष्य बुढ़ापे तक जीवित रहेंगे तब तक शाहजहां और धीवर-राजसुता सत्यवती की हाय के साथ हाय करनेवाले भी रहेंगे।

निवेदन किया जा चुका है कि ये सब नाटक पढ़ने ही के योग्य नहीं, अभिनय करने के योग्य भी हैं। अँगरेज़ी समाज को किसी समय में चाहे ख़ून से प्रेम रहा हो, परन्तु भारतवर्ष में बुद्ध के समय से समाज के विचार प्रेम ही की ओर अधिक झुकते गये हैं। द्विजेन्द्र बाबू ने इस बात का बहुत विचार रक्खा है। उनके रङ्ग-मञ्च पर कहीं ख़ून नहीं बरसता। तलवारें झनकती अवश्य हैं, और दर्शकों को इसमें आनन्द भी आता है; परन्तु हत्या होने के पूर्व कोई न कोई आकर उसे अवश्य बचा लेता है। सिंहबाहु निरन्तर तलवार लिये अपने पुत्र के सिर पर सवार रहते हैं। चन्द्रगुप्त के आरम्भ में और मेवाड़-पतन के अन्त में दो वीरों की तलवारें खटकती हैं, परन्तु वार होने के पहले सिकन्दर और मानसी—एक विश्वविजयी वीर, दूसरी विश्वप्रेमिणी नारी—बीच-बचाव कर देते हैं। सोचिए तो, इनको देखकर दर्शकों के उछलते हुए हृदय को कितनी शान्ति पहुँचती होगी! द्विजेन्द्र बाबू ने बहुत से पात्रों को, जिनकी उन्होंने आवश्यकता नहीं समझी, या जिनको अपने नाटक के अन्त तक ले जाने में कठिनता समझी, गोली से अन्त कर दिया। इस गोली का शब्द दर्शकों को चौकन्ना अवश्य कर देता है, पर वह ख़ून नहीं गिराती। औरङ्गज़ेब के सामने दारा का कटा हुआ शिर ही आता है; दारा रङ्ग-मञ्च पर क़त्ल नहीं किया जाता। तथापि अम्बा रङ्ग-मञ्च ही पर शाल्व का ख़ून कर देती है, और लीला भी दर्शकों के सामने ही अपने पेट में छुरी भोंक लेती है। यही दशा तारा की होती है; पर दरबारी, पहरेदार या पृथ्वी तुरन्त ही घटना को दर्शकों की दृष्टि से छिपा देती है। स्टेज-मैनेजर को अपनी करामात दिखाने का अवसर यहां भी नहीं मिलता।

इन नाटकों में परदों की कमी नहीं है। दर्शकों को परदों की शान में द्विजेन्द्रजी की कल्पना का आनन्द नहीं मिलता, परन्तु अभिनय के समय साधारण दर्शकों के लिए 'सिंहल-विजय' में तूफ़ान और 'पाषाणी' में कैलाश-शिखर कुछ कम रोचक नहीं हैं।

द्विजेन्द्र बाबू ने दर्शकों को 'स्वगत' के उच्च स्वर से बचा लिया है; परन्तु इससे पात्रों की कठिनता में कुछ कमी नहीं हुई है। 'अर्ध स्वगत' और 'अर्थ-पूर्ण नज़र' 'स्वगत' से कहीं कठिन है। सुना है कि द्विजेन्द्र बाबू के ही

तैयार करने पर उनके कुछ कठिन नाटक खेले जा सके थे। जो कुछ हो, इतना ज़रूरी है कि जब तक पात्रों के भावों की अच्छी परख न हो, तब तक वे रङ्ग-मञ्च पर ठीक ठीक न दर्शाये जा सकेंगे। सीधी भाषा में भाव दर्शाना बहुत कठिन है—

"राणा—नहीं तो और क्या करेंगे? चुपचाप सहन न करेंगे तो रो लेंगे। देखो, भोजन बना कि नहीं? डर की कोई बात नहीं है। अबकी बार सर्वस्व नष्ट हो जायगा। जिस जाति में इतनी क्षुद्रता हो उसकी रक्षा स्वयं परमेश्वर नहीं कर सकते; मनुष्य की तो बात ही क्या है।"

रानी के सामने राणा रो नहीं सकते। उनके चेहरे पर केवल सूखी मुस्कराहट है और हृदय में निराशा का समुद्र उमड़ रहा है। रानी गृहिणी हैं, राज-नीति नहीं समझतीं, इसलिए उनसे यही पूछा गया कि 'भोजन बना कि नहीं'?

इतिहास में सङ्ग का बड़ा नाम है, परन्तु नाटककार ने उनकी कुछ ही झलक दिखाई है। इतने ही से वह द्विजेन्द्र के कठिन पात्रों में गिनने योग्य हो गया है—

सङ्ग—(तारा का हाथ पकड़कर) तारा!

तारा—क्या मोहित! कहो।
यह क्या! यह क्यों सहसा भर आया गला!

सङ्ग—(हाथ छोड़कर) क्षमा करो। कल दूर देश को जा रहा हूँ मैं, तारा।

तारा—यह क्या? जाओगे कहाँ?
—बहुत दूर?

सङ्ग—मालूम नहीं—जिस ओर को
चल दूँ।

तारा—क्यों? किसलिए? कहो तो।

सङ्ग—"किसलिए"—
तारा तुम हो सुखी! न पूछो "किसलिए?"

यह सब कोई कविता नहीं है, बहुत ही सीधे सादे शब्द हैं। परन्तु इनके भीतर बहुत गहरा भाव है, जिसका दर्शाना बहुत कठिन है। सङ्ग देश से निकाला हुआ है। तारा का नौकर है, पर वह प्रेम के प्रवाह को नहीं रोक सका। इसलिए उसने सहसा तारा का हाथ पकड़ लिया; परन्तु निराशा ने फिर गला धर दबाया। "क्षमा करो"—कविता के लिए गले में ताक़त नहीं है। गम्भीरता और धैर्य ऊपर है, परन्तु हृदय जल रहा है।

नूरजहाँ के आन्तरिक क्लेश के दिग्दर्शन के लिए थोड़ासा वार्तालाप—

शेर०—मेहर,—बहुत अच्छी ख़बर है।

नूर०—क्या स्वामी?

शेर०—सम्राट् जहांगीर ने मुझे पाँच हज़ारी का पद देकर आगरे में बुला भेजा है।

नूर०—सर्वनाश!

शेर०—यह क्या कहती हो! यह तो हमारे लिए बड़े सम्मान की बात है।

नूर०—जाओगे?

शेर०—जाऊँगा क्यों नहीं!

नूर०—मैं कहती हूँ, मत जाना।—ख़बरदार!

शेर०—इतनी उत्तेजित क्यों हो रही हो? यह तो बड़े आनन्द की बात है।

नूर०—बात सुनो—कहती हूँ, मत जाओ—सावधान।
(तेज़ी से जाना)

ऊपर से पति-प्रेम, भीतर गौरव और लालसा के पूर्ण होने की आशा। इसीलिए इतनी उत्तेजना है।

द्विजेन्द्र बाबू के हाथ में औरङ्गज़ेब उतना बुरा नहीं है जितना कि इतिहासज्ञों ने उसको दर्शाया है—

औरङ्ग०—आज ही!

शायस्ता०—(मृत्युदण्ड का आज्ञापत्र औरङ्गज़ेब के हाथ से लेकर) जितनी जल्दी बला टले उतना ही अच्छा।

जिहन०—बन्दगी, जहाँपनाह।

औरङ्ग०—ठहरो देखूँ। (दण्ड की आज्ञा को लेना, पढ़ना और फेर देना) अच्छा, जाओ। (जिहन ख़ां जाता चाहता है; औरङ्गज़ेब फिर उसे बुला लेता है।)

औरङ्ग०—ठहरो। (दण्ड की आज्ञा को फेर लेना और फिर फेर देना) अच्छा, जाओ। (जिहन ख़ां का प्रस्थान)

(औरङ्गज़ेब जिहन ख़ां की ओर बढ़ता है, फिर लौटकर सोचता है)

औरङ्ग०—ना, ज़रूरत नहीं है!—जिहन ख़ां! जिहन ख़ां! नहीं, चला गया।—शायस्ता ख़ां!

शायस्ता०—ख़ुदाबन्द!

औरङ्ग०—मैंने यह क्या किया!

शायस्ता०—जहांपनाह ने समझदारों का ही काम किया।

औरङ्ग०—ख़ैर, जाने दो।

भाई से प्रेम है; परन्तु दृढ़ नहीं, क्योंकि हृदय दुर्बल है; और इसीलिए वह कभी शायस्ता ख़ां और कभी गुलनार की चाल में आजाता है। शरीर से कोई भाव नहीं मालूम होते; रुकते हुए शब्द ही क्लेश को सूचित करते हैं।

द्विजेन्द्र बाबू के नाटकों में विदूषक के लिए तो कोई ख़ास जगह ही नहीं है; पर हँसी से एकदम विरोध भी नहीं है। विचार-मग्न पात्र कम हँसते हैं, और हलके हृदय के पुरुष और स्त्री खूब हँसते हैं; परन्तु इन नाटकों में हास्य-पूर्ण कोई भी नहीं। हास्य की रोशनी केवल दुःख के अन्धकार को दर्शाने के लिए कहीं कहीं दिखाई देती है। इनके पुरुष पात्रों में नीचता और जाति-विद्रोह के लिए अधिकतर व्यङ्गही का दण्ड ठीक समझा गया है।

हिदायत हुसैन शेख़ी बघारना ख़ूब जानता है, परन्तु हृदय का कच्चा है। सगरसिंह मुग़ल सम्राट् की शरण में रहते रहते बूढ़े हो गये हैं; वे अपनी कमज़ोरी का हाल आप ही बतलाते हैं। उन्हें यह ख़बर नहीं कि वाल्मीकि कौन थे—"महर्षि वाल्मीकि कौन? तुलसीदास के लड़के?" श्यामसिंह जाति-विद्रोही हैं, पर केवल क़ासिम की स्वामि-सेवा को दर्शाने के लिए। दिलदार विदूषक बना हुआ है; पर उसकी बात में हँसी नहीं आती। औरङ्गज़ेब उसको पहचान जाते हैं—तुम कौन हो, ठीक बतलाओ, तुम तो कोई मसख़रे नहीं हो। हँसी केवल मुराद की मूर्खता पर आती है। 'चन्द्रगुप्त' में नन्द के सालों ही पर हँसी की बौछार है। 'तारा' में याभूराव की दुर्गति उसके दर्बारी ही करते हैं। 'भारत-रमणी' में उपेन्द्र के भक्त ही अपने गुरु की नीचता दर्शाते हैं। 'पाषाणी' में विश्वामित्र के घमण्ड की ख़बर चिरञ्जीव ही लेता है।

स्त्री-चरित्र को जितना अच्छा द्विजेन्द्र बाबू अङ्कित कर सके हैं, कदाचित् कोई नाटककार अभी तक नहीं कर सका। उन्हें कुछ भारतीय स्त्री-जाति पर विशेष श्रद्धा थी। वे अपने गार्हस्थ्य-जीवन में उसका अनुभव कर चुके थे; इसीलिए उनके स्त्री-पात्रों में घृणित कोई नहीं है। गुलनार और सिंहबाहु की रानी तक में परस्पर घृणा उत्पन्न नहीं होती। स्त्री का शरीर कमज़ोर है, परन्तु उसके हृदय में असीम बल है। जब वह उग्र रूप धारण करता है, संसार हिल जाता है। बड़े बड़े अभिमानी वीर उसकी उँगली पर नाचने लगते हैं। उस समय उनमें हँसी का नाम भी नहीं रहता। पतित अहल्या के लिए भी घृणा-सूचक कोई शब्द नहीं है, और अन्त में द्विजेन्द्र बाबू उसका भी उद्धार कर देते हैं। जब तक उनका हृदय किसी विशेष कामना से विचलित नहीं होता, उसके दिव्य रूप पर मुसकराहट ही झलका करती है। 'भीष्म' में अम्बिका और अम्बालिका हँसती ही रहती हैं; उनके हृदय हलके हैं; उन्हें वैधव्य भी नहीं सताता। शुजा पर मुसीबतों का बोझ लदा हुआ है, परन्तु पियारा को गाना ही सूझता है! "सूबा छीन लिया जायगा! यही न? जाने दो। अब और तो कुछ कहने को नहीं है; अब मैं गाना गाऊँ?" 'सिंहल-विजय' में लीला पर बड़ी बड़ी विपदायें पड़ती हैं; परन्तु वह हँसती ही रहती है, क्योंकि उसके हृदय में प्रेम को छोड़ कोई और वासना ही नहीं है। इसीलिए उसके हृदय में शान्ति है, और चेहरे पर हँसी है। "उसके जले हुए चमड़े को देखकर वे हट गये"; "चलो अच्छा ही हुआ। मेरे प्रेम का मोह दूर हो गया। अग्नि-परीक्षा में मलिनता जल गई"। माधुरी भी पति-प्रेम में मग्न रहती है, चिरञ्जीव उसको चाहे जितना पीटे।

कहीं कहीं स्त्रियों का भोलापन आनेवाली घटनाओं को और भी अधिक हृदयद्रावक बना देता है। मेवाड़ की रानी सरल गृहिणी है; उसको मेवाड़ के ऊपर आनेवाली विपदाओं का ज्ञान नहीं। सरस्वती की सास एक भोली-भाली मां है। उसको यह नहीं मालूम कि चांद ऐसी बहू का रूप लड़के से उसको छुड़ा देगा। 'भारत-रमणी' में कामिनी बेचारी एक पुराने ख़याल की, समाज के बन्धनों से जकड़ी हुई, गृहिणी है। उसे 'सुशीला' की बातें कुछ समझ ही नहीं पड़तीं। वह चोरी के इलज़ाम को भी चुपचाप सहन कर लेती है।

इस नाटकावली में कोई फ़ैल्स्टाफ़ (गृह-शूर) नहीं है, परन्तु 'हैम्लेट' 'आथेलो' 'मेकबेथ' या 'लियर' की टक्कर के करुणा-जनक पात्रों की कमी नहीं है। इन नाटकों में करुणारस

की प्रधानता के कई कारण हैं। प्रहसन यौवन का स्वप्न है। मनुष्य-जीवन की प्रौढ़ता तथा वृद्धावस्था अधिकतर दुःखमय है। शेक्सपियर के प्रहसन भी जवानी के हैं, और दुःखान्त नाटक प्रौढ़ावस्था के। दूसरे, जिस देश में हमारे नाटककार ने जन्म लिया है, उसकी अवस्था बहुत हीन है। समाज सैकड़ों रोगों से ग्रसित है; और इतिहास भी हमारे पतन ही का है, उन्नति का नहीं। द्विजेन्द्र बाबू की लेखनी पर उस जातीयता की पश्चिमी वायु का अवश्य असर पड़ा है, जो मेकाले के प्रस्ताव के साथ जन्म लेकर अब सारे भारतवर्ष में व्याप रही है। इस कारण उनके उन्हीं पात्रों में जीवन अधिक है, जो उनकी जातीयता के भाव को प्रकट करते हैं। राणा अमरसिंह, महावत खाँ, सत्यवती, महामाया, हेलन, केदारनाथ, ये सब अपने अपने रूप में समय समय पर देश-प्रेम, जाति-प्रेम प्रकट करते हैं। एक बात और भी है। द्विजेन्द्र बाबू को अपने गार्हस्थ्य-जीवन में पत्नी-वियोग का एक बड़ा भारी दुःख उठाना पड़ा। इस घटना ने इनकी स्त्री-परम्परा को विशेषतः दिव्य बना दिया है। लीला, अम्बा, महामाया, नूरजहाँ, लैला, जहाँ-आरा, हेलन, मानसी, मुन्नी, सुशीला, कुवेणी, अहल्या ऐसे चित्र किसी दूसरे नाटककार की क़लम से नहीं निकले हैं। तारा से डेस्डिमोना की कोई समता नहीं। लीला बालक-वेष धारण करने पर भी रोज़ेलिंड से कहीं बढ़कर है। हेलन और मानसी के विश्वप्रेम से शेक्सपियर स्वयं अनभिज्ञ थे। अम्बा, नूरजहाँ, कुवेणी और सुशीला के आत्मिक बल की बराबरी लेडी मेकबेथ हीं कर सकती है।

इन नाटकों में करुणा और हास्यरस दोनों विद्यमान हैं, और करुणा की मात्रा हास्य से अधिक है; परन्तु 'तारा' और 'सीता' को छोड़कर और किसीका अन्त हृदय-द्रावक नहीं होता। 'तारा' के अन्त में अन्धकार ही अन्धकार है। हैम्लेट, लियर और आथेलो के भयङ्कर दृश्य आँखों के सामने फिर जाते हैं। 'सीता' के अन्त का इससे अधिक हृदय-द्रावक दृश्य पहले ही से हृदय में अङ्कित है। और सब नाटकों के अन्त में दर्शकों को शान्ति की झलक मिल जाती है, तथा निद्रा-भङ्ग नहीं होती। भीष्म का अन्त भी शान्तिमय है और उसको कृष्ण दिव्य भी बना देते हैं। 'दुर्गादास' के अन्त में नाटक के सब आदर्श इकट्ठे हो जाते हैं। 'सिंहलविजय' बहुत अधिक हृदय-द्रावक है, परन्तु उसके अन्त में भी बौद्ध-धर्म के प्रचार का भार लेकर, विजयसिंह दर्शकों के भार को हलका कर देते हैं। 'पाषाणी' में गौतम अहल्या को क्षमा कर देते हैं; परन्तु इससे भी द्विजेन्द्रजी को शान्ति नहीं मिलती; वे फिर उसको रामचन्द्रजी से शुद्ध कराते हैं। यदि 'उस पार' गार्हस्थ्य-जीवन को प्रलय में लीन कर देता है, तो 'मेवाड़-पतन' भारतवर्ष की स्वाधीनता के इतिहास का अन्तिम अध्याय है। यों ही इन दोनों में कम दुःख नहीं है, परन्तु देशपतन के बाद 'मानसी' हमको आशा की झलक दिखा देती है; और भाई भाई—अमरसिंह और महाबत, हिन्दू और मुसलमान—फिर गले मिलते हैं; देश की आशा भी इसीमें है। 'चन्द्रगुप्त' के अन्त में छाया और हेलन के मिलन में पूर्वीय और पश्चिमीय सभ्यता के संयोग का दृश्य है। नूरजहाँ का पतन होने पर भी वह लैला से मिलती है। बाहर मेघगर्जन अवश्य है, पर इन मा-बेटी के हृदय में शान्ति है। शाहजहाँ का पुत्र-प्रेम और इतिहास की आवश्यकता, दोनों मिलकर औरङ्गज़ेब को भी अपने पिता से आशीर्वाद दिला देते हैं। इतिहास के बन्धन ने 'शाहजहाँ' में बहुत जगह त्रुटियाँ डाल दी हैं, परन्तु ऐसे तूफ़ान के बाद इतनी जल्दी शाहजहाँ को पानी पानी कर देना द्विजेन्द्रजी ही का काम था। सामाजिक नाटकों में भी वैराग्य और शान्ति का मिलन है। 'उस पार' में भगवानदास और मुन्नी के अन्तिम मिलन में प्रथम मिलन की लालसा के बदले उदासीनता और वैराग्य के ही भाव अधिक हैं। 'भारत-रमणी' में उपेन्द्र का उद्धार किया गया है, परन्तु यदि इन सामाजिक नाटकों के अन्त में किसी तरह कुछ भविष्य की आशा का चित्र भी अङ्कित किया जाता, तो हृदय को अधिक सान्त्वना मिलती। नाटक से उपन्यास की तुलना नहीं की जा सकती, परन्तु कहने में अत्युक्ति न होगी कि इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द्र जी ने 'सेवा-सदन' में समाज के भविष्य का जो चित्र खींचा है, यदि वह स्वप्न भी हो तो भी आदर्शरूप में समाज का बहुत हित कर सकता है।

जीवन में सुख के साथ दुःख का सम्बन्ध है। यदि

नाटक उसका अच्छा चित्र है, तो उसमें भी दोनों भाव परस्पर मिले रहना चाहिए। प्रस्तुत नाटकों को आप यूनानी नाटकों की तरह या शेक्सपियर के कुछ नाटकों के समान ट्रैजिडी (Tragedy) वियोगान्त और कमेडी (Comedy) संयोगान्त में विभक्त नहीं कर सकते। कहानी के आधार के हिसाब से इनको सामाजिक, ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों में विभक्त किया गया है; 'पाषाणी' 'सीता' और 'भीष्म' पौराणिक नाटकों की श्रेणी में हैं, क्योंकि अहल्या का उल्लेख रामचरितमानस में भी है। सीता की अन्तिम कथा वाल्मीकीय रामायण तथा उत्तर-रामचरित से ली गई है; और भीष्म महाभारत की कथा के प्रधान पात्र हैं। परन्तु ये नाटक कथा के बन्धन से नहीं बँधे हैं। अहल्या को पतित करने पर भी इन्द्र साफ़ बचा दिये जाते हैं। 'सीता' में राम के चरित्र को रामायण के उच्च पद से गिरा दिया है। केवल भीष्म का चरित्र कथानुसार अङ्कित किया गया है। 'उस पार' और 'भारतरमणी' सामाजिक नाटक हैं। इनको यह पदवी इसलिए दी गई है कि इनमें हिन्दू समाज की प्रचलित कुरीतियों का दिग्दर्शन गार्हस्थ्य-जीवन के पतन-द्वारा कराया गया है। इनकी कथा के लिए कोई पुस्तक देखने की आवश्यकता नहीं है; घर घर इनका अभिनय हो रहा है।

द्विजेन्द्रलाल के अधिकतर नाटक ऐतिहासिक हैं, क्योंकि इनकी कथा प्राचीन हिन्दू इतिहास और आधुनिक मुग़ल तथा राजपूत इतिहासों से ली गई है। 'चन्द्रगुप्त' और 'सिंहलविजय' में इतिहास का तो एक बहाना ही है; उनमें अधिकतर कल्पना का समावेश है। 'तारा', 'मेवाड़पतन', और 'दुर्गादास' के लिए नाटककार को सामग्री ही अच्छी मिली है। सच पूछिए तो भारतीय नाटक तथा काव्य-साहित्य के आधार तीन ही पुस्तकें हैं—रामायण, महाभारत और टाड का राजस्थान। 'तारा' राजपूताने के उत्थान, 'मेवाड़पतन' उसके पतन और 'दुर्गादास' उसके उद्धार के सूचक हैं। राजस्थान में इनकी कहानी ही कम रोचक नहीं है; पर नाटककार ने भी अवसर को हाथ से नहीं जाने दिया। 'नूरजहाँ' और 'शाहजहाँ' मुग़ल इतिहास के बन्धनों से जकड़े हुए हैं; तो भी जहाँ कल्पना को अवसर मिला है, वहाँ वह बन्धनों से भाग निकली है। लैला, और पियारा द्विज बाबू ही के हैं, इतिहास के नहीं। औरङ्गज़ेब के चित्र ने भी इतिहास को बहुत कुछ धोखा दे दिया है।

परन्तु क्या इन नाटकों को कथानुसार ही विभक्त करना ठीक होगा? क्या इनको विषयानुसार वा विचार-धारानुसार, श्रेणीबद्ध नहीं कर सकते? सबमें प्रेम का प्रवाह आदि से अन्त तक है। कहीं वह दूसरी कामनाओं से टक्कर खाकर उबल पड़ता है, और महा विप्लव कर देता है, जैसे 'नूरजहाँ', 'शाहजहाँ' में; कहीं वह शान्तिपूर्वक उमङ्गें लेता हुआ यवनिका में लीन हो जाता है, जैसे 'मानसी', 'विजयसिंह' या 'तारा' में; परन्तु वह जाति और गृह—दो धाराओं में बहता है। जाति-सेवा और पत्नी-प्रेम—यही दो द्विजेन्द्र बाबू के आन्तरिक जीवन के प्रधान अङ्ग थे। वे एक दूसरे से न जीवन में अलग थे, न नाटकों में ही हैं; परन्तु यह मानना पड़ेगा कि कहीं एक प्रधान है, और कहीं दूसरा। यदि इस प्रकार श्रेणीबद्ध करने का और साहस किया जाय तो 'मेवाड़-पतन', 'दुर्गादास', 'चन्द्रगुप्त', 'भीष्म' और 'तारा' जातीय नाटक हैं; 'सीता', 'पाषाणी', 'उस पार', 'सिंहल-विजय', 'नूरजहाँ', 'शाहजहाँ', और 'भारत-रमणी', गार्हस्थ्य नाटक हैं।

निवेदन यह है कि नाटक की परख प्रधान पात्र और उनसे मिले हुए कथा के स्रोत के ढूँढ़ निकालने से होती है। उसी स्रोत से अन्य पात्रों को अपना अपना रूप-रस मिलता है; और उनका भाग्य प्रधान पात्र के भाग्य के साथ बदलता रहता है। 'मेवाड़पतन' और 'दुर्गादास' के विषय में तो अधिक सन्देह नहीं है। कथा का स्रोत मुग़ल और राजपूत के विद्रोह से बहता है। अमरसिंह और महावत खां उस विद्रोह के नेता हैं, और विश्वप्रेमिणी मानसी उनकी समालोचक है। 'दुर्गादास' बहुत ही सरल है। दुर्गादास और महामाया उसके प्रधान पात्र हैं, और राजपूत जाति का उद्धार कथा का प्रधान उद्देश्य है। 'चन्द्रगुप्त', 'तारा' और 'भीष्म' के विषय में कुछ अधिक विचार करने की आवश्यकता है। 'भीष्म' के प्रधान पात्र साफ़ प्रकट हैं। यह रचना मानों नाटकरूप में भीष्म-चरित है। इसकी प्रधान घटना भीष्म-प्रतिज्ञा है। यह प्रतिज्ञा पिता को प्रसन्न करने के लिए ही भीष्म ने की है। परन्तु ब्रह्मचर्य्य के प्रण के पश्चात् अम्बा की प्रेमभिक्षा को तिरस्कार करके ही वे अपने को गार्हस्थ्य-जीवन से मुक्त कर लेते हैं। उनका उद्देश्य आदि

से अन्त तक एक राजा की लालसा से उत्पन्न अशक्त सन्तान के राज्य को अपने कठिन व्रत से सँभालना ही है। यदि ध्यान से देखा जाय तो भीष्म महाभारत के राजनैतिक पात्र हैं। गार्हस्थ्य-प्रेम का उनमें लेश भी नहीं।

चन्द्रगुप्त के प्रधान पात्र चाणक्य और हेलेन हैं। चाणक्य का उद्देश्य नन्द-वंश को नाश कर, चन्द्रगुप्त के छत्र के नीचे, देश को सङ्गठित करना है। वह प्रधानतः राजनैतिक ही पुरुष है; यद्यपि कभी कभी गार्हस्थ्य-जीवन के सुख-स्वप्न की लहर आकर उसके शून्य हृदय को विचलित कर देती है। हेलेन, मानसी की सगी बहिन है। उसका विवाह चन्द्रगुप्त के साथ एक गार्हस्थ्य-घटना नहीं है। यह एक विश्वप्रेम के लिए बलिदान है। इस विवाह में उत्सव मनानेवाले साधारण गृहस्थ नहीं हैं। यहाँ हिरोडोटस और व्यास, सुक़रात और बुद्ध, एकिलिस और भीष्म, पैन्थियन और पुराण एक हो गये। इस विवाह से पूर्व और पश्चिम, स्वर्ग और मर्त्य, इहकाल और परकाल, एक दूसरे में लीन हो गये, और इस विवाह का अभिनय लेखक की ओर से कालिदास और शेक्सपियर इस शताब्दी में कर रहे हैं। अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं, देश के अधिपतन के साथ जो विश्वप्रेम अङ्कुरित हुआ है, उद्धार के साथ उसका पूर्ण विकास होता है।

'तारा' के मुख्य पात्र पृथ्वीराज और तारा हैं। एक दूसरे से मिलन, प्रेम का उद्गार, विवाह, भ्रम और अन्त में एक का अपने बहनोई के हाथ मरना और दूसरी का सती होना गार्हस्थ्य-जीवन की ही घटनायें मालूम होती हैं। परन्तु उनके नीचे जातीय प्रेम की एक तीव्र धारा बह रही है। तारा जयमल को लौटा देती है।

इधर जयमल तारा को कुछ और समझे हुए था, इसलिए शूरतान के हाथ उसको प्राणदण्ड मिलता है। पृथ्वीराज ही टोड़ा के उद्धार से अनुज की विफल प्रतिज्ञा पूर्ण करता है, और तारा को वरता है। गार्हस्थ्य-प्रेम तारा पृथ्वीराज ही से सीखती है। तारा देश के लिए अर्पण हो चुकी थी, पृथ्वीराज के शव पर तो अन्त में अर्पण हुई।

जिन नाटकों को गार्हस्थ्य-प्रेम की दर्शक श्रेणी में रक्खा गया है उनमें 'सीता' के विषय में विशेषतः कुछ नहीं कहना है। द्विजेन्द्र बाबू भवभूति की क़लम लेकर कुछ अपनी प्रतिभा दिखा नहीं पाये, या अनुवाद ठीक तरह से नहीं हुआ। गार्हस्थ्य-प्रेम की स्वर्गीय धारा के साथ प्राचीन सामाजिक कुरीतियों की पुट देना ही कुछ शोभाजनक नहीं है; राम के गले उनको मढ़ना और भी अधिक पीड़ा-जनक है। मुँह से दुर्मुख के प्रति दुर्वचन कहलाना, और हाथ से शूद्रक का सिर कटाना—इन दोनों कर्मों से लेखक इतने अशुद्ध हो गये हैं, कि हम उनकी चरण-रज अपने मस्तक पर नहीं लगा सकते।

'पाषाणी' के पात्र अहल्या और इन्द्र हैं। लालसा के वश पतित होना और क्षमा द्वारा पतित का उद्धार कराना इस नाटक का उद्देश्य है। बे-जोड़ विवाह से गार्हस्थ्य-जीवन को कैसी गहरी चोट पहुँचती है! द्विजेन्द्र बाबू ने अपनी लेखनी की शक्ति से, दर्शकों को शब्दों की झड़ी का भुलावा देकर, इन पतितों को क्षमा करा दिया है; पर मनुष्य-शक्ति के तो बाहर ही है।

'उस पार' और 'भारतरमणी' बङ्गाल की वर्तमान सामाजिक दशा का दिग्दर्शन कराते हैं। और इनके पात्र भी उसी समाज के हैं।

'उस पार' के मुख्य पात्र भोलानाथ, भगवानदास और मुन्नी हैं। भोलानाथ का सरलता से लसा हुआ पौत्री-प्रेम, भगवानदास की रूप-लालसा, और मुन्नी का अपूर्व नैसर्गिक प्रेम—इन्हीं के सङ्गठन से नाटक का जन्म हुआ है। सामाजिक नाटक एक ही देश काल के लिए होते हैं। इनका अनुवाद होने से या सामाजिक जीवन में परिवर्तन हो जाने से इनमें उतना बल नहीं रहता। 'उस पार' कुछ हद तक ऐसा ही नाटक है। बङ्गाल में इसका बड़ा आदर है, परन्तु हिन्दी भाषा में मूलनाटक का परिवर्तन होने पर भी, वह उतना ग्राह्य नहीं है जितना बँगला में। भोलानाथ को लीजिए। आप अपनी पौत्री को प्रेम करना सिखाते हैं। जैसी बातें हमारे समाज में नई बहू की ननदें या भावजें किया करती हैं, वैसी बातें बूढ़े भोलानाथ के मुँह से हमारे हिन्दी रङ्ग-मञ्च पर तो शोभा न देंगी।

स्वयं द्विजेन्द्र बाबू को छोड़ भोलानाथ की सरलता किस मनुष्य के हृदय में पाई जाती है? वह बङ्गाली आथेलो है, और गौरीनाथ उसका आयागो है। उसकी

समझ ही में नहीं आता कि मनुष्य इतना नीच हो सकता है जितना गौरीनाथ है। उसने कभी सोचा ही नहीं कि सरस्वती को छोड़ भगवानदास कभी किसी पर-स्त्री से भी प्रेम कर सकता है। बूढ़े का विश्वास टूटने के साथ ही गार्हस्थ्य-जीवन का विप्लव है। जगह जगह पर भोलानाथ का चरित्र हृदय को पीड़ा पहुँचाता है। 'मेरा सर्वस्व ले लो, परन्तु मुझे प्यार करो'; इस पीड़ा को पहुँचाना ही इस नाटक का उद्देश्य है।

'उस पार' में गार्हस्थ्य-जीवन के टुकड़े टुकड़े उसके पात्र ही करते हैं; परन्तु 'भारतरमणी' की दुःख-कथा के लिए समाज की एक विशेष कुप्रथा ही उत्तरदाता है। यह कुप्रथा हिन्दू-समाज भर में व्याप्त है, परन्तु बङ्गाल में इसका प्रचार बहुत अधिक है। सामाजिक प्रश्नों पर इसके पात्रों द्वारा नाटककार ने अपने बड़े गम्भीर विचार प्रकट किये हैं, और इसीलिए यदि कोई भी नाटक सामाजिक कहा जा सकता है, तो वह यही है। यदि नाटक के पात्रों की ही ओर देखा जाय तो समाज के अत्याचार से गार्हस्थ्य-जीवन ही नष्ट होता है। देवेन्द्र की एक लड़की को वैधव्य का रोना है। दूसरी औषध के न पहुँचने से असमय ही माँ की गोद को सूना करके चल देती है। तीसरी ने पढ़ी-लिखी होने के कारण समाज की कुरीतियों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया है; वह ब्याह ही न करेगी और द्विजेन्द्र बाबू उसकी सहायता के लिए भी तैयार हैं। चौथा पुत्र कुसङ्गति में पड़कर जेल की हवा खाता है। ऐसे में पिता क्यों न पागल हो जाय और माता घर से भाग निकले? 'भारतरमणी' नाटक-कला के विचार से प्रतिभाशाली न होने पर भी नाटककार के सब नाटकों से अधिक उपयोगी है। जो काम सामाजिक कानफ़्रेन्सों के प्रस्ताव नहीं कर सकते, वह इस नाटक के अभिनय से हो सकता है।

'सिंहलविजय', 'नूरजहाँ' और 'शाहजहाँ' ऐतिहासिक नाटकों की श्रेणी में रक्खे गये हैं। 'सिंहलविजय' का बीज इतिहास में अवश्य है; परन्तु चरित्र-चित्रण में नाटककार ने पूर्ण स्वतन्त्रता ली है, और इसीलिए यह नाटक शाहजहाँ और नूरजहाँ से अधिक पूर्ण है। तथापि बङ्गाली समालोचकों ने 'नूरजहाँ' और शाहजहाँ ही के प्रति विशेष भक्ति दिखाई है। इस नाटक के प्रधान पात्र विजयसिंह और कुवेणी हैं। उन्हींके चरित्र के चारों ओर बङ्गाल और सिंहल की घटनायें घूमती हैं, और उन्हींके मिलन तथा विच्छेद से नाटक के परदे बदलते हैं। सौत के पितृ-भक्त पुत्र के साथ दुर्बल-हृदय पिता का बर्ताव ही इस नाटक की कथा का केन्द्र है। पात्रों के नाम राजसी हैं, नाटक का नाम 'राजनैतिक' है, परन्तु घटनायें एक साधारण गृहस्थ ही के घर की हैं।

'सिंहलविजय' और नूरजहाँ, तथा शाहजहाँ में अन्तर यह है कि एक में तो मानुषिक हृदय की प्रत्येक कामना का निष्कण्टक उद्गार दिखाया गया है; और दूसरे में एक कामना का दूसरी कामना से युद्ध दिखाने का प्रयत्न किया है। द्विजेन्द्र बाबू ऐसे सरल-हृदय नाटककार ने एक को तो बिना विशेष प्रयत्न के अपूर्व रूप दे दिया है, परन्तु दूसरा काम बहुत कठिन है। विशेष प्रयत्न करने पर भी चित्र त्रुटिमय है, और यदि बहुत कहा जाय तो यह कहना होगा कि शेक्सपियर की खूब नक़ल की गई है।

लीला, सिंहबाहु, विजयसिंह, कुवेणी और सूरमा के चित्रों की ओर देखिए। एक एक चरित्र में एक ही कामना का उद्गार है। अपने अन्धे न्याय-प्रेम के कारण सिंहबाहु का पतन होता है। विजयसिंह अपने पितृ-प्रेम के कारण निर्वासित किये जाते हैं। लीला अपने पति-प्रेम में मग्न है; उसका प्रेम स्वच्छ है; वह प्रत्युपकार नहीं चाहती। कुवेणी लालसा के तूफ़ान में लीन हो जाती है। सूरमा गार्हस्थ्य-सङ्गठन में विच्छेद होने देना पसन्द नहीं करती; परन्तु वासनाओं का रोकना अबला कन्या की शक्ति के बाहर है। नाटक का अन्त सिंहबाहु की मृत्यु से होता है; परन्तु परदा गिरने के पहले हमको आश्वासन हो जाता है कि सिंहल का उद्धार करने के लिए विजयसिंह ही इस तूफ़ान में बचे हैं।

'नूरजहाँ' और 'शाहजहाँ' में कथा के इतिहास की शृङ्खला से बँधे होने पर भी कवि ने मनोविकार के पारस्परिक युद्ध को दिखाने का प्रयत्न किया है। ये नाटक उद्देश्य-हीन हैं। कहा जाता है कि 'शाहजहाँ' का जितना आदर बँगला रङ्ग-मञ्च पर हुआ उतना द्विजेन्द्र बाबू के और किसी नाटक का नहीं हुआ। द्विजेन्द्र बाबू ने 'नूरजहाँ'

की विशेषताओं को स्वयं नाटक की भूमिका में लिखा है। धुरन्धर विद्वानों की राय में राय मिलाना सहज है; परन्तु अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट करना भी लेखक का कर्त्तव्य है, पाठक उससे सहमत हों या न हों। 'नूरजहाँ' और 'शाहजहाँ' द्विजेन्द्र बाबू के श्रेष्ठ नाटकों में हैं, परन्तु यह कहना कठिन है कि सब पहलुओं की तरफ़ देखते हुए 'मेवाड़-पतन' और 'उस पार' से इनका पद कहाँ तक ऊँचा है।

शाहजहाँ और नूरजहाँ के नाम से भारत का शिक्षित समाज अच्छी तरह परिचित है। उनका चित्र बचपन ही से हमारे हृदय में अङ्कित है। यदि कथा से कुछ हद तक परिचय हो तो नाटक के दर्शकों की भीड़ और भी अधिक हो जाती है। इन नाटकों की कथा से हिन्दू, मुसलमान, सभी परिचित हैं। भीष्म, अहल्या, अमरसिंह, चन्द्रगुप्त से, मुसलमान बालकों की कौन कहे, हिन्दू बालक भी इतने परिचित नहीं जितने नूरजहाँ, शाहजहाँ और औरङ्गज़ेब से। सीता से इतना अधिक परिचय है कि उनके चरित्र-अभिनय में कोई विशेषता नहीं मालूम पड़ती। फिर इन पात्रों का समय भी इतना दूर नहीं है कि साधारण जन-समाज की समझ में न आ सके, और न इतना निकट ही है कि उसमें कोई कौतूहल-जनक बात न मालूम पड़े। मुग़ल-साम्राज्य का विनाश हुए अभी बहुत समय नहीं हुआ। उसके भग्न गौरव के चिह्न अब भी आगरे और दिल्ली में शान के साथ खड़े हुए हैं। भीष्म, अहल्या, सिंहबाहु और चन्द्रगुप्त के समय को समझने के लिए कुछ कल्पना की मात्रा होनी चाहिए, जिसके लिए साधारण दर्शकों से आशा नहीं की जा सकती। नूरजहाँ की सज-धज से बेचारी अहल्या क्या मुक़ाबला करेगी? एक हीरे और मोतियों की चकाचौंध से घिरी हुई भारत-साम्राज्ञी, दूसरी साधारण वस्त्र पहने हुए तपस्विनी! तब पाठक जान सकते हैं कि किस पर अधिक करतल-ध्वनि होगी। कुछ लोगों के विचार से इतिहास शाहजहाँ के अभिनय में रुकावटें डालता है; पर हम समझते हैं कि वह नाटक ही में भले ही रुकावटें डालता हो; पर अभिनय में तो सहायता ही पहुँचाता है।

इतिहास के साथ साथ पश्चिमीय शिक्षा के प्रभाव से भी इन नाटकों की कीर्त्ति को सहायता मिली है। अँगरेज़ी नाव्य-साहित्य में—कदाचित् संसार के नाट्य-साहित्य में भी शेक्सपियर से बढ़कर कोई दूसरा नाटककार नहीं हुआ। वह कोई दार्शनिक न था; और न मानवशास्त्र का अध्ययन किये हुए था। वह उस समय के रङ्गमञ्चों पर अभिनय करनेवालों में एक भी था। उसने जान बूझकर नहीं—अपने अपूर्व मानवीय हृदय से परिचित कल्पना की तरङ्ग में ही मानसिक जीवन के जो चित्र 'आथेलो', 'हेम्लेट', 'लियर' और 'मेकबेथ' में खींच दिये हैं, उनकी बराबरी करनेवाले अब भी कोई नाटक नहीं हैं। द्विजेन्द्र बाबू ने पश्चिमी शिक्षा के भार से उऋण होने के लिए ही इन नाटकों में मानसिक क्लेश का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया है। 'हेम्लेट' और 'आथेलो' के चरणों तक पहुँचने ही में 'नूरजहाँ' और 'शाहजहाँ' का गौरव है।

शाहजहाँ की तुलना लियर के साथ की गई है, परन्तु समालोचक स्वयं ही स्वीकार करते हैं कि वह लियर के आदर्श तक नहीं पहुँच सका। यदि नाटककार इतिहास की शृङ्खला से न बँधे होते, तो कदाचित् शाहजहाँ को महल के बाहर ले जाकर यमुना के श्मशान पर समाप्त कर देते; या नूरजहाँ को इतने उच्च शिखर पर से एक-दम गिरने पर क्लियोपाट्रा की दशा तक पहुँचा देते। परन्तु नूरजहाँ तो इतिहास में पतन के पश्चात् भी बीस वर्ष तक जीवित रहती है; फिर वे उसको अन्त में लैला से मिलाकर क्यों न शान्त कर देते।

इतना होने पर भी द्विजेन्द्र बाबू के महत्त्व में कोई कमी नहीं आती। बहुत सम्भव है कि यदि वे किसी दूसरी कथा को लेकर, जिसमें उनको अपनी कल्पना से अधिक सहायता मिलती, मानसिक क्लेश के दिखाने का प्रयत्न करते, तो नाटक को 'हेम्लेट' या 'आथेलो' की बराबरी तक पहुँचा देते। अपने काल्पनिक पात्रों में वे इस मानसिक क्लेश का दिग्दर्शन करा चुके हैं। अहल्या के कर्तव्य और लालसा के युद्ध पर दृष्टि डालिए; सूर्य्यमल में मेकबेथ की झलक देखिए; भोलानाथ में आथेलो के दर्शन कीजिए। गौरीनाथ आयागो के सगे भाई बनने का दावा कर रहे हैं। परन्तु जिन नाटकों के ये पात्र हैं उनको मानसिक क्लेश दिखाने के उद्देश्य से नहीं, कदाचित् किसी दूसरे—और अधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य से—नाट्यकार ने लिखा है; इसलिए वे नाटक हमारे बङ्गाली समालोचकों की दृष्टि में 'नूरजहाँ' और 'शाहजहाँ' से समता नहीं कर सकते।

मानसिक क्लेश का दुर्बोध होना ही उसका एक गुण है। द्विजेन्द्र बाबू बात यह समझे हुए थे, और इसीलिए उनके विचार में नूरजहाँ का चरित्र विशेष प्रकार से जटिल और दुर्बोध हो गया है। सम्भव है कि नाटककार की सरल प्रकृति ने ही अपने से उत्पन्न चरित्र को जटिल समझा हो; परन्तु बात ऐसी नहीं है। 'नूरजहाँ' के अपने मुँह से कहने पर भी—आत्म-प्रतारणा करने पर भी—यह बात सहज ही समझी जाती है कि उसने बदला लेने के लिए सम्राट् से विवाह नहीं किया था। उसके मन में ममता और गौरव की आकांक्षा के साथ साथ भोग-लालसा ही गुप्त रूप से बलवती थी। द्विजेन्द्र बाबू की सरलता और कला-कुशलता ने इस बात को समझने का मार्ग सर्वत्र ही सुगम कर दिया है। नूरजहाँ कुछ हेम्लेट नहीं है जिसके विषय में अभी तक यही निर्णय नहीं हुआ कि वह वास्तविक पागल था या बना हुआ।

'नूरजहाँ' और 'शाहजहाँ' के सम्बन्ध से मानसिक क्लेश के विषय में चाहे जो कुछ कहा जाय, पर द्विजेन्द्र बाबू की वृत्ति दूसरी ही ओर थी। उनका धर्म न सनातन है न आर्य, न हिन्दू न मुसलमान। उनका धर्म है प्रेम। इस प्रेम का स्रोत माता की गोद से उमड़कर पति-पत्नी के जीवन को सींचता हुआ देश-भक्ति में व्याप्त हो जाता है। परन्तु उसकी सुगन्ध देश ही के भीतर नहीं रहती; वह विश्वप्रेम के रूप में सर्व-व्यापी हो जाती है। गार्हस्थ्य-जीवन के अन्त से, या देश के पतन से, उसका नाश नहीं होता। वह अमर और निर्विकार है। उसीके दिग्दर्शन में द्विजेन्द्र बाबू का महत्त्व है, उसीमें उनका गौरव है। यदि संसार को दिखाने योग्य द्विजेन्द्र के कोई भी पात्र हैं तो वे नूरजहाँ, शाहजहाँ नहीं—मानसी, हेलेन और भोलानाथ हैं।

विषय विस्तृत है और समय तथा सामग्री की कमी है इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि इस लेख में बहुत कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं। लेखक अब यही चाहता है कि आगे इन नाटकों के महत्त्व के योग्य विस्तृत समालोचना हो, जिसको पढ़कर हमारे साहित्य में भी किसी द्विजेन्द्र का जन्म हो।

कालिदास कपूर

——

स्त्री के विषय में नीटशे के विचार।

जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक नीटशे पर सरस्वती के किसी गताङ्क में एक लेख निकल चुका है। आज हम उसी तत्त्ववेत्ता के स्त्री-सम्बन्धी विचार पाठकों की भेंट करते हैं। नीटशे को अनेक लोग स्त्री-निन्दक समझते हैं; पर यह उनकी भूल है। वह सामूहिक रूप से स्त्री-जाति की कभी निन्दा नहीं करता, वरन जगह जगह पर उसकी प्रशंसा, और उसके प्रति सम्मान और पूजा का भाव प्रदर्शित करता है। उसे आपत्ति है केवल आधुनिक सभ्यता की उपज, एक विशेष नमूने की सदोष स्त्री पर। "पुण्य और पाप से परे" नामक पुस्तक में नीटशे ने इस विषय में जो कुछ लिखा है उसका सारांश आगे दिया जाता है—

स्त्री स्वतन्त्रता चाहती है, इसीलिए वह पुरुष को अपने "वास्तविक स्वरूप" का ज्ञान कराने चली है—यूरोप के मुख को जितनी बातें कुरूप बना रही हैं उनमें सबसे बड़ी बात स्त्री है। स्त्री में अनेक ऐसी बातें हैं जिन पर उसे लज्जित होना चाहिए। उस में पाण्डित्य-प्रदर्शन, दिखलावा, दूसरों को शिक्षा देने का स्वभाव, क्षुद्र धृष्टता, मुँह-ज़ोरी, और गुप्त अविवेक भरे पड़े हैं। यदि वह अपनी बुद्धिमत्ता, वशीकरण-विद्या, क्रीड़ा, शोक को डराकर दूर भगा देने की शक्ति, प्रत्येक कठिन से कठिन काम को भी नरम कर देने और सुगम समझने की योग्यता, इत्यादि गुणों को जान-बूझकर भूलना आरम्भ कर दे, यदि वह रुचिर कामनाओं के लिए अपनी कोमल प्रवृत्ति को भूल जाय, तो न मालूम क्या हो! अभी से स्त्रियों के शब्द सुनाई देने लगे हैं। इन्हें सुनकर डर लग रहा है। वे धमकी के साथ स्पष्ट रीति से कह रही हैं कि स्त्री पुरुष से पहले यह और उसके उपरान्त वह लेना चाहती है।

स्त्री का इस प्रकार अपने वैज्ञानिक होने का अभियोग करना क्या रसिकता की अतीव भ्रष्टता नहीं? सौभाग्य से ज्ञान अब तक पुरुषों का व्यापार, पुरुषों का दान रहा है—इसको पाकर हम "अपने आपे में" रहे हैं। स्त्रियाँ जो कुछ 'स्त्री' के विषय में लिख रही हैं उस सारे का विचार करके हमें इस बात में सन्देह होता है कि क्या स्त्री को वस्तुतः अपने विषय में ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा है भी—क्या उसे इस की इच्छा हो सकती है? यदि स्त्री इस आत्मज्ञान के रूप में अपने लिए कोई नया आभूषण नहीं ढूँढ़ रही—मैं समझता हूँ आभूषणों की इच्छा स्त्री का सहज गुण है—तो वह फिर क्यों चाहती है कि लोग उससे भयभीत रहें? शायद वह इसके द्वारा आधिपत्य प्राप्त करना चाहती है। परन्तु उसे सत्य का प्रयोजन नहीं—स्त्री सत्य की क्या परवा करती है! आरम्भ से ही सचाई से बढ़कर स्त्री के प्रतिकूल, अयोग्य, और विरुद्ध और कोई चीज़ नहीं—उसकी सबसे बड़ी माया झूठ है, उसका प्रधान व्यापार दिखलावा और सौन्दर्य है। हम पुरुषों को यह स्वीकार करना चाहिए; हम स्त्री की इसी माया का, उसकी इसी सहज बुद्धि का सम्मान और इसीसे प्रेम करते हैं। हम लोगों को घोर परिश्रम करना पड़ता है; इसीलिए हम प्रसन्नता-पूर्वक ऐसे प्राणियों की संगति ढूँढ़ते हैं जिनके हाथों, कटाक्षों और कोमल मूर्खताओं के नीचे हमारी गम्भीरता, हमारा धैर्य और हमारी गुरुता प्रायः मूर्खता के समान जान पड़ती है। अन्ततः मैं एक प्रश्न पूछता हूँ—क्या कभी किसी स्त्री ने 'स्त्री' के मन में गम्भीरता अथवा स्त्री के हृदय में न्याय का होना स्वीकार किया है? क्या यह सत्य नहीं कि सर्वतोभावेन अब तक "स्त्री" से अत्यन्त अधिक घृणा स्त्री ही करती रही है? हमने उससे बिलकुल घृणा नहीं की।

स्त्री से पुरुष आज तक उन पक्षियों का सा व्यवहार करता रहा है जो अपना मार्ग भूलकर किसी ऊँचे स्थान से उसके पास आ गये हैं। वह उसे एक कोमल, भङ्गुर, जङ्गली, मीठी, विलक्षण और उल्लासजनक वस्तु समझता रहा है जिसे, उड़ जाने के डर से, पिंजरे में बन्द रखने की आवश्यकता है।

स्त्री-जाति का जैसा आदर इस समय है वैसा पहले किसी भी युग में न था। क्या आश्चर्य है कि शीघ्र ही इस आदर का दुरुपयोग होने लगे! वे और माँगती हैं—वे अधिकार माँगना सीख रही हैं। अतः सम्भव है कि यह आदर-रूपी कर अन्त को दुःखदायक सिद्ध हो। अधिकारों के लिए स्पर्धा (वस्तुतः कलह) इससे अच्छा कर मालूम होगा। सारांश यह कि स्त्री विनय खो रही है; उसमें, साथ ही, रसिकता भी कम हो रही है। वह पुरुष का डर भुला रही है। जो स्त्री "डरना भूल रही है" वह अपनी स्त्री-सुलभ सहज बुद्धि का परित्याग कर रही है। यह बात तो समझ में आने योग्य और युक्तिसंगत है कि जब मनुष्य में भयोत्पादक गुण—या अधिक निश्चित-रूप से कहें तो पुरुषत्व—का प्रयोजन न हो अथवा वह पूर्णरूप से विकसित न हुआ हो, तब स्त्री को आगे आना चाहिए। परन्तु अधिक दुर्बोध बात यह है कि ठीक इसीसे स्त्री का ह्रास हो जाता है और यही आज हो रहा है। हमें अपने आपको इस विषय में धोखे में नहीं रखना चाहिए। जहाँ कहीं औद्योगिक भाव ने सैनिक और सनातन भाव पर विजय प्राप्त की है वहाँ स्त्री क्लार्क बनकर आर्थिक तथा क़ानूनी स्वाधीनता पाने का यत्न करती है। जो आधुनिक समाज बन रहा है उसकी ड्योढ़ी पर "स्त्री-क्लार्क" लिखा हुआ है। इस प्रकार जहाँ वह एक ओर नये अधिकार प्राप्त कर रही है, स्वामिनी बनने की अभिलाषिणी है, और अपने झण्डों तथा पताकाओं पर स्त्री की "प्रगति" लिख रही है, वहाँ दूसरी ओर इसका ठीक उलटा दृश्य स्पष्टता के साथ

दिखाई दे रहा है—स्त्री का अधःपतन हो रहा है!

फ्रान्स की राज्यक्रान्ति से लेकर अब तक स्त्री ने अपने स्वत्वों तथा अधिकारों को जितना बढ़ाया है उतना ही उसका प्रभाव कम हो गया है। "स्त्री की मुक्ति", जिसे केवल उथले मस्तिष्कवाले पुरुष ही नहीं, बरन स्वयं स्त्रियाँ चाहतीं और माँगती हैं, स्त्री-सुलभ सहज बुद्धि के अधिक निर्बल और निर्जीव हो जाने का स्पष्ट चिह्न है। इस नई लहर में ऐसी मूर्खता है जिस पर एक कुलीन समझदार स्त्री को हार्दिक लज्जा हो सकती है। उस आधार को खो देना जिसके आश्रय में वह निश्चयपूर्वक विजय प्राप्त कर सकती है, अपने विशेष अस्त्रों का प्रयोग छोड़ देना, प्रत्येक बात में पुरुष के आगे दौड़ना, जब कि पूर्वकाल में वह अपने आपको मर्यादा और नम्रता में रखती थी; स्त्री के लिए कोई गौरव की बात नहीं।

निश्चय ही पुरुष-जाति के पढ़े-लिखे मूर्खों में 'स्त्री' के बहुत से ऐसे मूढ़ मित्र और उसे बिगाड़नेवाले हैं जो उसे इस प्रकार अपने आपको स्त्रीत्व-हीन बना लेने और उन सब मूर्खताओं का अनुकरण करने का परामर्श दे रहे हैं, जिनसे यूरप में 'पुरुषत्व' दुःख पा रहा है; और जो स्त्री को राजनीति में हाथ-पैर मारने की दशा तक गिरा देना चाहते हैं। कहीं कहीं तो वे स्त्रियों को स्वतन्त्र आत्मायें और साहित्य-सेविकायें बनाना चाहते हैं, मानों भक्ति-विहीन स्त्री एक गम्भीर और नास्तिक पुरुष के लिए पूरी पूरी प्रिय अथवा गौरव-जनक वस्तु हो जायगी! प्रायः सब कहीं स्त्री की नाड़ियों को एक अतीव दूषित और विषम प्रकार के सङ्गीत से नष्ट करने का उद्योग किया जा रहा है, और वह दिन पर दिन गर्भोन्माद (हिस्टीरिया) का अधिक शिकार होती जाती है, तथा अपने मुख्य धर्म्म का पालन करने—नीरोग और बलवान् सन्तान उत्पन्न करने—में अधिक असमर्थ हो रही है। ये लोग स्त्री को सामान्यतः और भी अधिक "संस्कृत" करना चाहते हैं। वे कहते हैं कि हमारी इच्छा "अबलाओं" को संस्कृति (कलचर) द्वारा सबला बना देने की है। पुरुष भय और सहानुभूति—इन दो भावों के साथ ही आज तक स्त्री के सम्मुख खड़ा होता रहा है। परन्तु अब इन सब बातों की समाप्ति होनेवाली है। स्त्री का सम्मोहन अब दूर हो रहा है। स्त्री की क्लेशकारिता (tediousness) अब क्रमशः बढ़ रही है। हा यूरप! हा यूरप!

'ज़र्दुश्त', 'प्रफुल्ल ज्ञान' और "Human, All Too-Human" नामक पुस्तकों में नीटशे ने यह लिखा है—

स्त्री की प्रत्येक बात एक पहेली है, और स्त्री की प्रत्येक बात का एक ही समाधान है। उसका नाम है गर्भधारण। पुरुष स्त्री के लिए एक साधन है; इस का उद्देश्य सदा सन्तान है। पुरुष को युद्ध के लिए और स्त्री को योद्धा के मनोरञ्जन के लिए तैयार होना होगा; शेष सब मूर्खता की बातें हैं। आनन्द मेरे पीछे दौड़ता है; इसका कारण यह है कि मैं स्त्री के पीछे नहीं दौड़ता।

इस संसार में पुरुषत्व बहुत थोड़ा है, इसीलिए लोगों की स्त्रियाँ अपने आपको पुरुष बना रही हैं। इस दशा का कारण यह है कि केवल वही मनुष्य स्त्री के स्त्रीत्व की रक्षा करेगा जिसमें पर्याप्त पुरुषत्व है। माता और पुत्री की अपेक्षा पिता और पुत्र में बहुत कम झगड़ा होता है। सब सचाइयों से (जहाँ तक उनका सम्बन्ध पुरुष, प्रेम, सन्तान, समाज, और जीवनोद्देश्य से है) घृणा करना स्त्री का एक स्वाभाविक गुण है। जो व्यक्ति उसकी आँखें खोलता है उससे वह बदला लेने का यत्न करती है।

पुरुष के लिए स्त्री ऐसी ही है जैसी कि मनुष्य-समाज के लिए निद्रा। जिस प्रकार दिन भर की

थकावट से मनुष्य-शरीर में उत्पन्न होनेवाली कमी को निद्रा दूर कर देती है वैसे ही मनुष्य-समाज में युद्ध-जन्य घाटे को स्त्री पूरा करती है।

कुछ लोग किसी युवक को पकड़कर एक विज्ञानी के पास ले गये और कहने लगे—देखिए, जी, स्त्रियाँ इस युवक का नाश कर रही हैं। विज्ञानी ने सिर हिलाकर कहा—नहीं, पुरुष ही स्त्रियों को बिगाड़ते और उनका नाश करते हैं। जिन बातों की स्त्रियों में कमी पाई जाय, पुरुषों को उन्हें पूरा करना और सुधार देना चाहिए, क्योंकि पुरुष ने अपने लिए स्त्री का एक चित्र बना रक्खा है और स्त्री अपने आपको उस चित्र के अनुरूप बनाती है। तब जन-समूह में से एक पुरुष बोला—आप स्त्रियों के पक्ष में बहुत अधिक झुके हुए हैं! ज्ञानी ने उत्तर दिया—तुम उन्हें नहीं जानते। पुरुष का गुण सङ्कल्प है और स्त्री का स्वीकृति। स्त्री-पुरुष का ऐसा ही नियम है और सचमुच, स्त्रियों के लिए यह बड़ा कड़ा नियम है!

सन्तराम, बी० ए०

हिन्दी-गुण-गान* ।

करें सब हिन्दी का गुण-गान।
आओ, भ्रात! छेड़ दें हम सब, मिल हिन्दी की तान ॥१॥

हिन्दी तन है, हिन्दी मन है,
हिन्दी धन है, हिन्दी जन है,
कहें आज हम कोटि कण्ठ से,—हिन्दी जीवन-प्राण ॥ २ ॥

हिन्दी है अभिमान हमारा,
हिन्दी है सम्मान हमारा,
हिन्दी विद्या, विभव, बड़ाई, ज्ञान और विज्ञान ॥ ३ ॥

हिन्दी योग, याग, जप, तप है
हिन्दी वाञ्छा-कल्प-विटप है,
हिन्दी तन्त्र-मन्त्र है, हिन्दी पूजन-भजन-विधान ॥ ४ ॥

हिन्दी दुख में, हिन्दी सुख में,
हिन्दी निशि दिन हो बस मुख में,
हिन्दी भुक्ति-मुक्ति है, हिन्दी ऋद्धि-सिद्धि की खान ॥ ५ ॥

मरते-जीते, हँसते-रोते,
हिन्दी कहें जागते-सोते,
कहते-सुनते, करते-धरते, हिन्दी का हो ध्यान ॥ ६ ॥

हिन्दी भारत का सम्बल है
हिन्दी पुण्य-प्रेम का फल है,
हिन्दी सङ्घ-शक्ति है अद्भुत, अविजित, त्रिभुवन-त्राण ॥७॥

हिन्दी सरस सुधा-सरिता है,
भक्ति और श्रद्धा-भरिता है,
जिसके अमर सुकवि जग-वन्दित, तुलसी, सूर समान ॥८॥

हिन्दी पाप-ताप-दुख-हरणी,
हिन्दी सकल शान्ति सुख-करणी,
हिन्दी धर्म-धाम है अनुपम, हिन्दी तीर्थ-महान ॥ ९ ॥

आओ, प्यारे, बन्धु हमारे,
हिल मिलकर सब कपट बिसारे,
करें स्नान हिन्दी-सुरसरि में, हों भव-दुख-अवसान ॥ १० ॥

—मुरली-मुकुटधर।

* मध्य-प्रान्तीय द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में पठित। ले०।

अपमान ।

(अरुणकुमार की कहानी।)

मेरा नाम श्रीअरुणकुमार मित्र है। आप मेरे पिता का नाम पूछते हैं? वह मैं नहीं बतलाऊँगा—घर-जमाई को पिता का परिचय देने की आवश्यकता नहीं। श्वशुर का नाम?—उस नाम को भी मैं इस जीवन में कभी न लूँगा—उस वंश का नाम-धाम नहीं बतलाऊँगा। उनके गुणों की जो कुछ कहानी मैं सुनाऊँगा, उसे सुनकर ही उस भद्रनामधारी, धनवान् घोषपुङ्गव का नाम सुनने की किसीकी इच्छा न रहेगी।

मेरे श्वशुर बहुत बड़े आदमी हैं,—धन में बड़े, मान में बड़े, ज़मींदारी में बड़े, सरकार से प्राप्त सम्मान में बड़े। और छोटे कितने हैं ?—यह भाषा में नहीं बताया जा सकता। हृदय अतिक्षुद्र,—क्षुद्र से भी क्षुद्र। अहङ्कार कितना ? उसका कोई विशेषण ही नहीं—विशेषण खोजने पर भी नहीं मिलता।

मैं गुरु-निन्दा कर रहा हूँ! हाँ, पर मैं बड़ों की बातें बतला रहा हूँ, बड़ों का परिचय दे रहा हूँ, निन्दा नहीं करता। क्या उन्होंने मेरा उपकार किया है ? यह मैं किस तरह अस्वीकार करूँगा! किन्तु जो कुछ उपकार उन्होंने किया है, उस ऋण से यदि जान दे देने पर भी मैं मुक्त हो सकता, तो इसी समय उस गुरु भार से मुक्त होकर अन्तिम श्वास लेने में अपना सौभाग्य समझता।

आप मेरी कुछ बातें सुन लीजिए। मेरा शरीर बहुत दुर्बल—रोग से जीर्ण—है। मैं मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ बड़े दुःख से, बड़े कष्ट से यह कहानी कहता हूँ।

मैं ग़रीब का लड़का हूँ। पिता ने बड़े कष्ट से मेरे पढ़ने का ख़र्च उठाया था। गाँव में ही एक अँगरेज़ी स्कूल था, इसी कारण मैं एन्ट्रेन्स का इम्तिहान दे सका था। एन्ट्रेन्स से आगे मैं न पढ़ सकूँगा, यह मैं अच्छी तरह जानता था; किन्तु भाग्य मुझे किसी और ही मार्ग पर ले जाने के लिए तैयार था। गाँव के स्कूल से फर्स्ट डिवीज़न (पहली श्रेणी) में पास करके मैंने पन्द्रह रुपये मासिक की छात्र-वृत्ति प्राप्त की। फिर क्या मैं पढ़ना छोड़ सकता था ? पिता ने भी कहा, जब पन्द्रह रुपये वज़ीफ़ा मिल गया है तब फिर क्या है ? जिस तरह होगा महीने में पाँच रुपये मैं और दे दूँगा; तुम आगे पढ़ो। पिता की आज्ञा हुई; मैं पढ़ने के लिए हुगली चला गया।

जब मैं सेकन्ड इयर में पढ़ रहा था, उसी समय पिता की मृत्यु हो गई। अब माता के सिवा मेरा कोई न रहा। ज़मींदारी के सरिश्ते में पिता एक साधारण नौकरी करते थे। उन्होंने अन्याय से कभी एक पैसा पैदा नहीं किया था। कुछ थोड़ी सी घर की ज़मीन थी, उसकी आमदनी तथा नौकरी की तनख़ाह से किसी तरह घर का ख़र्च चलता था।

पिता की मृत्यु के बाद घर का भार मेरे ऊपर पड़ा। एक बार सोचा, पढ़ना छोड़ दूँ। फिर सोचा पन्द्रह रुपये तो मिलते ही हैं, एफ़० ए० और पास कर लूँ, फिर आगे नहीं पढ़ूँगा। एफ़० ए० पास करके एक नौकरी कर लूँगा, और माता की सेवा करूँगा। माता ने कहा, पढ़ना छोड़ना ठीक नहीं। यदि तू अपना ख़र्च चला सके तो सब ठीक है। जो कुछ ज़मीन है, उसकी आमदनी से एक विधवा के मुट्ठी-भर दानों का काम चल ही जायगा। बेटा, मेरी कुछ चिन्ता न कर। मन लगाकर पढ़े जा। तब मैंने ऐसा ही किया, और एक वर्ष बाद एफ़० ए० का इम्तिहान दे दिया। फ़र्स्ट डिवीज़न में पास हुआ, किन्तु वज़ीफ़ा नहीं मिला।

उस समय भी यदि पढ़ना छोड़ देता, तो क्या इतना कष्ट, इतना अपमान भोगना पड़ता। किन्तु उस समय तो और इम्तिहान पास करने का ख़ब्त सवार था। मैंने सोचा, यदि किसी तरह सहायता मिल जाय तो अनायास ही एम० ए० पास कर सकता हूँ, क़ानून की परीक्षा देकर वकील बन सकता हूँ। उस समय मैं अपने भविष्य का उज्ज्वल चित्र अपने सामने देख रहा था। परीक्षा पास करके बड़ा आदमी बनूँगा, ख़ूब पैदा करूँगा, दस आदमी इज़्ज़त करेंगे। इसी उच्चाभिलाषा ने मुझे उन्मत्त बना दिया था। मैंने सोचा, जिस तरह होगा, विश्वविद्यालय की ऊँची डिग्री लेनी ही होगी। माता ने भी मेरे इस सङ्कल्प की पुष्टि की—बेटा, जिस तरह होगा उस तरह मैं चार-पाँच बरस और काट लूँगी, तू आगे को पढ़ने की फ़िक्र कर।

उपाय उपस्थित होगया—बड़ा ही सहज उपाय था। एक ज़मींदार अपनी एकलौती लड़की के लिए वर की तलाश में थे। मुझ सा ही ग़रीब लड़का चाहते थे। उनका विचार था कि अपने ख़र्च से लड़के को पढ़ा-लिखाकर अपनी ज़मींदारी और कुल रुपया जमाई और लड़की को दे देंगे। मैं बहुत कुलीन था। प्रथम श्रेणी में एफ़० ए० पास किया था। कालेज के प्रोफ़ेसर कहा करते थे कि यह ख़ूब तेज़ है; देखते-देखते बड़े अच्छे नम्बरों से एम० ए० पास कर लेगा। मेरा स्वभाव और चाल-चलन भी अच्छा था। ज़मींदार महाशय जो जो चाहते थे, सब एक ही बार मिल गया। इधर मैंने भी देखा, मेरी उच्चाभिलाषा पूरी होने में और कोई विघ्न ही नहीं है। पर क्या घर-जमाई होना पड़ेगा? नहीं, उस समय इस बात का कुछ ज़िक्र नहीं हुआ था। और यदि होता भी तो मैं अस्वीकार न करता। सब बातें सोचने का उस समय अवकाश कहाँ था? पढ़ने का सुयोग उपस्थित है; बस, मैंने और कुछ नहीं सोचा। माता भी पुराने ख़यालात की थीं; उन्होंने भी बिना कुछ सोचे-विचारे अपनी सम्मति दे दी। मैं ज़मींदार महाशय की रूपवती, विदुषी, षोडशी कन्या से विवाह करके एक रात में ही ग़रीब विधवा की सन्तान से एक-दम बड़े ज़मींदार का 'जमाई बाबू' बन गया। उस समय क्या मैंने यह सोचा था कि मैंने ज़मींदार को ग़ुलामी का पट्टा लिख दिया है! हाय आत्म-सम्मान-वर्जित, नीच युवक!

श्वशुर ने जब कलकत्ता प्रेसिडेन्सी कालेज में मेरे पढ़ने की व्यवस्था की तब मैं मारे ख़ुशी के फूला न समाया। विवाह के बाद ज़मींदार महाशय ने अपनी कन्या को मेरे मकान पर नहीं भेजा। आदमी भेजकर मेरी माता को चार-छः दिन के लिए अपने घर बुलवा लिया; और इस तरह उनकी पुत्र-वधू को देखने की आशा पूरी कर दी। इससे भी मेरे आत्म-सम्मान में धक्का न लगा। इसके बाद मेरे श्वशुर जब माता को पुत्र-विक्रय के बदले में १५) मासिक देने लगे, तब भी उन रुपयों को हाथ फैलाकर लेने में मुझे ज़रा भी शर्म या घृणा न मालूम हुई। हाय एम० ए० पास! हाय मान और यश का नशा!

मैंने कलकत्ते के प्रेसिडेन्सी कालेज में पढ़ना आरम्भ कर दिया। बड़ी छुट्टी होने पर ससुराल ही जाना पड़ता था, नहीं तो ससुर नाराज़ होते और कहते थे, ग़रीब आदमी के घर बार बार जाने आने से मन और चाल-चलन बहुत छोटा हो जाता है। यह बात सुनने से मुझे बड़ी व्यथा होती थी, पर बड़ा बनने की आकाङ्क्षा हृदय की वेदना को फाड़कर अलग फेंक देती थी! न मालूम तब मैं कितना नीच हो गया था!

सास-ससुर से छिपकर मैं शनिवार को घर जाता, और रविवार को ही चोर की तरह वापस आ जाता था। यदि कोई होस्टल का लड़का पूछता तो कभी कह देता कि किसी रिश्तेदार के यहाँ गया था और कभी कह देता कि ससुराल गया था। मैं माता की एक ही सन्तान हूँ—विधवा का मेरे सिवा और कोई नहीं है।

एक ही वर्ष के बाद मुझे एक पुत्र प्राप्त हुआ। तब मैंने बी० ए० भी पास नहीं किया था। पोते को देखने के लिए माता बहुत व्याकुल हुईं। एक दिन मैंने इसके विषय में सास से कहा। उन्होंने उत्तर दिया, तुम्हारे घर में लल्ला को किसी तरह भेज ही नहीं सकती, और न उनसे ही इसके लिए कह सकती हूँ। तुम्हारी मा यहाँ आकर देख सकती हैं। यहाँ आने के लिए तो मैं उन्हें मना नहीं करती। खाने के लिए भी कुछ मनाई नहीं है। मेरे घर इतने आदमी खाते हैं; क्या तुम्हारी माँ को दो रोटियाँ भी नहीं दे सकूँगी? बात सुनते ही मेरी आँखों के आगे अँधेरा छा गया। बहुत सुन चुका था, बहुत सह

चुका था, किन्तु यह बात एकदम असह्य मालूम हुई। क्या मेरी दुःखिनी माँ दो रोटियों के लिए इनके यहाँ आयगी! बड़े आदमी की स्त्री का इतना नीच हृदय! मैं रोने लगा। मुझे रोता देखकर मेरी सास ने—उसी ज़मींदार की स्त्री ने—कुछ कड़ी आवाज़ में कहा, मैंने ऐसी क्या बात कह दी है जिस से तुम्हारे आँसू ढलकने लगे! मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं, यह कहकर वह चली गई। सौभाग्य की बात थी, उस घर में उस समय और कोई न था। मैं आँसू पोंछकर बाहर चला आया। किसीसे भी कुछ न कहा—अपनी स्त्री से भी नहीं। अब तक बीसियों बातें सुन चुका था, किन्तु आज तक अपनी स्त्री से एक बात का भी ज़िक्र नहीं किया था। सोचता था, बड़े आदमी की लड़की है, कहीं अपनी माँ की तरह दस बातें कह दीं तो मेरी यन्त्रणा असह्य हो उठेगी। उस दिन बाहर बैठकर मैंने बहुत कुछ सोचा। तब दिल में यह आया कि अब इनके यहाँ नहीं रहना चाहिए; एक ट्यूशन कर लेने से क्या मेरा ख़र्च नहीं चलेगा? परन्तु उसी वक्त यह भी ख़याल हुआ कि परीक्षा निकट है, और इस समय ट्यूशन ही कहाँ मिलेगी? फिर यदि मिल भी जाय तो समय का नष्ट करना भी तो ठीक नहीं। जहाँ इतने दिन सहा है, वहाँ कुछ दिन और भी सही। ठीक ठीक ख़याल नहीं, उस वक्त मैंने क्या क्या सोचा था। आख़िरकार इस अपमान को सहने का ही निश्चय किया—मैं इसी योग्य हो गया था।

कलकत्ते जाकर अगले शनिवार को ही घर गया। माता लड़के को देखने के लिए ज़िद करने लगीं। मैंने एक ही बात कही, तुम्हारे वहाँ जाने का काम नहीं है। आख़िरकार माता ने कहा, अरुण, क्या मैं तेरी बात नहीं समझती? समझती हूँ! बेटा! सब समझती हूँ! हम ग़रीब आदमी हैं, हमारा अपमान से क्या होगा? ग़रीब आदमी का मान-अपमान ही क्या? मैंने आज तक जितना अपमान सहन किया है, क्या तुझसे उसका कभी एक बार भी ज़िक्र किया है? क्या करूँ, यदि भगवान् दिन दिखायेंगे तो सब भूल जाऊँगी। मैं एक बार बच्चे को देखना चाहती हूँ। मैंने फिर वही कहा, नहीं मा, तुम्हारा वहाँ जाने का कुछ काम नहीं। जब वह बड़ा हो जायगा, तब मैं उसे यहीं ले आऊँगा। माता ने एक गहरी साँस लेकर कहा, समझ गई बेटा! भगवान् ने मेरे भाग्य में यह सुख ही नहीं लिखा। जाओ, लल्ला अच्छा रहे, मैं यही आशीर्वाद देती हूँ। माता की इस बात से मेरा कलेजा फटने लगा। किन्तु मैं का-पुरुष, माता की उस गभीर वेदना को दूर करने का उस समय कोई उपाय न सोच सका।

छः महीने बीत गये। मेरे पुत्र के—नहीं नहीं ज़मींदार महाशय के एकलौते धेवते (नाती) के अन्न-प्राशन का समय आया। जानते हैं, कौनसा दिन निश्चित हुआ?—मेरी बी० ए० परीक्षा का दूसरा दिन! सुना कि इससे पहले पत्रे में कोई और अच्छा मुहूर्त्त ही नहीं निकलता; बाद को चार महीने तक दिन ख़राब हैं। इस कारण मेरी उपस्थिति के लिए कोई और तिथि नहीं बदली जा सकती। बात भी ठीक है! यह दरिद्र अरुणकुमार मित्र के पुत्र का अन्न-प्राशन थोड़े ही है—यह बड़े ज़मींदार के धेवते का अन्न-प्राशन है! उसमें लड़के के दरिद्र तथा घर-जमाई पिता के मौजूद रहने की ऐसी आवश्यकता ही क्या है?

इस मौक़े पर उन्होंने मेरी माता को भी याद किया था। अपने एक नौकर को मेरे घर भेजा था। माता जाने के लिए तैयार न हुईं, उन्होंने उस आदमी से कहला भेजा कि मैं यहीं से बच्चे को आशीर्वाद देती हूँ। बड़े ही दुःख से माता ने इस निमन्त्रण को फेरा था। ऐसी माता के पेट से ऐसे पुत्र ने क्यों जन्म लिया, क्या आप लोगों में से कोई कह सकता है?

यथासमय बड़ी धूमधाम के साथ ज़मींदार के धेवते का अन्न-प्राशन होगया। जिस दिन परीक्षा समाप्त हो, उसी दिन ससुराल पहुँचने का मुझे आदेश मिल चुका था, किन्तु वह पाला नहीं गया। जिस दिन परीक्षा समाप्त हुई, उसी दिन ख़बर मिली कि माता को भयानक ज्वर आगया है। मैं और अधिक विलम्ब न करके सीधा मकान को चल दिया।

घर जाकर देखा, माता की अवस्था अच्छी नहीं है। जिस दिन बच्चे का अन्न-प्राशन था, उस दिन वह दिन भर रोई थीं, और उसी रात उन्हें ज्वर आगया था। वही बढ़ते बढ़ते इस दशा पर पहुँच गया था। मेरी परीक्षा में विघ्न पड़ने के ख़याल से, माता के आदेशानुसार, पड़ोसियों ने मुझे पहले सूचित नहीं किया।

डाक्टर से पूछने पर मालूम हुआ कि माता की अवस्था अच्छी नहीं है, इस दशा से रक्षा पाना कठिन है। सबसे कठिन यह बात थी कि वह कोई औषध नहीं खाती थीं। मैंने भी बहुत चेष्टा की, किन्तु वे बराबर यही कहती थीं कि मेरा समय आगया है, दवा से क्या होगा ?

उसी दिन तीसरे पहर माता ने मुझसे कहा, अरुण, मेरी एक चाह पूरी न हुई। लल्ला का मुँह देख लेती तो सुख से मरती।

मैंने कहा, माँ, तुम कुछ चिन्ता मत करो। लल्ला को बुलाने की मैं अभी व्यवस्था करता हूँ। यह कहकर मैं बाहर आया और पड़ोसियों से परामर्श किया। किसीने कहा एक पालकी भेज दो, किसीने कहा, एक आदमी भेज दो; किन्तु स्कूल के वृद्ध हेड मास्टर बाबू ने कहा, ना, ना, इससे काम नहीं चलेगा। अरुण, जब तक तुम स्वयं नहीं जाओगे तब तक वह कभी नहीं भेजेंगे। तुम्हारे जाने पर भी भेजदें, इसमें भी सन्देह है। तब भी मेरी राय में तुम्हारा ही जाना उचित है। तुम्हारी माँ की जैसी अवस्था है, इससे दो एक दिन तक कुछ भय की बात नहीं है। तुम एक काम करो, अभी जाने आने के लिए एक गाड़ी किराया करके ससुराल चले जाओ। सात कोस तो है ही, रात को आठ बजे तक पहुँच जाओगे, और उन्हें लेकर यदि वहाँ से खब तड़के चल दोगे तो आठ-नौ बजे तक यहाँ आ पहुँचोगे। यही करो, जाओ, अभी प्रबन्ध करो। हेड मास्टर बाबू मेरे गुरु थे, उन्हीं की राय के अनुसार मैंने स्वयं जाने का निश्चय किया। गाँव में कुल तीन किराये की घोड़ा-गाड़ियाँ थीं; सौभाग्य से उनमें से एक उसी समय मिल गई। पड़ोसियों ने पहले की तरह उस दिन भी माता की सेवा का भार अपने ऊपर ले लिया। डाक्टर बाबू भी रात को मेरे घर ही रहने के लिए राज़ी होगये। मैं स्त्री तथा पुत्र को लेने के लिए चल दिया।

रास्ते में बीसियों बातें सोचता जाता था। न जाने क्यों, रह रहकर यही ख़याल होता था कि जाना बेकार है; वे कभी न भेजेंगे। सम्भव है, मुझे भी दस-पाँच उल्टी सीधी सुननी पड़ें। एक बार सोचा, घर को लौट चलूँ। किन्तु उसी समय मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई माँ के वे वेदनापूर्ण शब्द याद आ गये। मैं अपनी माता का इतना कर्महीन पुत्र हूँ कि उनकी कोई वासना ही पूर्ण न कर सका। क्या अब उनकी इस अन्तिम वासना को पूर्ण करने के लिए एक बार चेष्टा भी न करूँ? क्या उसके लिए अपमान से डरना कर्त्तव्य है? नहीं—जाना ही होगा।

रात को आठ बजे ससुराल पहुँच गया। मुझे इतने बे वक्त वहाँ देखकर सभी को आश्चर्य हुआ। मेरे ससुर ने कहा, ख़बर भी नहीं भेजी; स्टेशन पर गाड़ी भेज देते। कैसे आये ? मैंने कहा, मैं कलकत्ते से नहीं आरहा हूँ। माता की बीमारी का समाचार

पाकर आज प्रातःकाल ही मकान पर पहुँचा था। देखा कि उनके बचने की आशा नहीं है; इसी—

बीच ही में मेरी बात काटकर ससुर महाशय ने कहा, क्या उन्हें यहाँ ले आये हो ?

मैंने कहा, नहीं, वे इस योग्य नहीं हैं। उनकी बड़ी इच्छा है कि मरने से पहले एक बार लल्ला को देखें। इसी—

फिर मेरी बात को बीच ही में काटकर उन्होंने बड़े ताने के साथ कहा, मालूम पड़ता है, इसीलिए 'लोक-लस्कर' साथ लेकर लल्ला को लेने आये हो ?

मैं कुछ उत्तेजित हो गया था; बड़ी कठिनता से उत्तेजना को संवरण करके कहा, जी हाँ।

ज़मींदार महाशय ने कहा, क्या तुम्हारी बुद्धि ठिकाने नहीं है! हमारी लड़की तुम्हारे घर जायगी! बराबरी भी कुछ कम नहीं है! जाओ, जाओ, लड़कपन न करो। आये हो, अच्छी बात है। कहो तो तुम्हारी माँ के यहाँ आने का प्रबन्ध कर दें।

मैं और स्थिर न रह सका, कड़ककर कहा, आप ज़रा सोच समझकर मुँह से शब्द निकालिए। मैं अपनी स्त्री तथा पुत्र को अवश्य ले जाऊँगा। मुझे कौन रोकनेवाला है ?

ससुर महाशय ने कहा, सच! देखते हैं, बड़े मर्द हो गये हो! इतनी तेज़ी कब से आगई ?

मैंने भी कहा, "मैं आपका गुलाम नहीं हूँ, ज़रा होश सँभालकर बोलिए। मैं अपनी स्त्री को लेकर ही जाऊँगा। कहिए, अभी भेजिएगा या नहीं ?"

ज़मींदार महाशय गरजकर बोले, नहीं, हरगिज़ नहीं भेजेंगे। बस ज़्यादा मत बको, अभी कान पकड़कर निकाल देंगे।

क्या, कान पकड़कर ?—गुस्से के मारे मेरे मुँह से आवाज़ न निकली। मैं झपटकर अन्दर की ओर जाने लगा।

ज़मींदार महाशय ने कहा, ख़बरदार, उस तरफ़ मत जाना। कहे देता हूँ, अपमान होगा।

मैं क्रोध के मारे अधीर हो गया; अच्छे बुरे का ज्ञान न रहा। मैंने कहा, कौन अपमान करेगा, आवे न ?

यह सुनकर वे स्वयं उठे और मेरी गर्दन पकड़कर बोले, रास्केल, जितना बड़ा मुँह नहीं, उतनी बड़ी बात! मुझमें उस समय चिल्लाने तक की शक्ति न थी।

मुझे घर से बाहर निकालकर उन्होंने स्वयं दरवाज़ा बन्द कर लिया। मैं दरवाज़े पर ही बैठ गया। कह नहीं सकता, उस वक़्त मुझे क्या हो गया था।

कुछ देर के बाद मुझे होश हुआ। मैं दरिद्र हूँ, असहाय हूँ, निराश्रय हूँ! और उपाय ही क्या है ? सिर पकड़े कुछ देर तक वहीं बैठा रहा। बाद को धीरे धीरे चलकर गाड़ी तक पहुँचा। गाड़ी में बैठकर गाड़ीवान से उसी वक़्त घर को चलने के लिए कहा। उसके बाद क्या हुआ, मुझे मालूम नहीं।

जब मुझे होश हुआ तब आँख खोलकर देखा कि मैं अपने उसी टूटे मकान में मैले बिछौने पर पड़ा हूँ। और देखा—क्या देखा—मेरे पास ही मेरी स्त्री 'सुषमा' लड़के को गोद में लिये उदास-मुँह बैठी है। यह दृश्य मैं न सह सका, फिर बेहोश हो गया।

× × × × × ×

(सुषमा की कहानी)

इस कहानी का बाक़ी अंश कहने के लिए स्वामी मुझे छोड़ गये हैं। जब तक वे बीमार थे, तब तक जिस दिन तबीयत ज़रा भी सावधान होती थी, उसी दिन लिखते थे। उसके बाद और लिखना नहीं हुआ—सब ज्वाला, सब यन्त्रणा, सब अपमान को इस पार छोड़कर वे उस पार चले गये! मैं आज रो रोकर इस शोकप्रद कहानी का उपसंहार करती हूँ।

मेरे पिता ने जब मेरे स्वामी का अपमान किया,

अपने हाथ से गर्दन पकड़कर घर के बाहर कर दिया, उस समय यह ख़बर मुझे नहीं मिली। ख़बर मिलने पर क्या होता, भगवान् ही जानें! कुछ देर बाद ही यह बात अन्दर फैल गई, सब ने सुनी, मैंने भी सुनी। उस समय मेरी क्या दशा हुई, यह ईश्वर ही जानते हैं। मेरी इच्छा हुई कि अभी गले में फाँसी लगाकर मर जाऊँ। आँखों से एक बूँद भी न निकली, जल मानो सूख गया था; छाती जैसे फटने लगी। कभी तबीयत चाही कि दुमंज़िले के बराम्दे से कूद पड़ूँ। इन प्राणों को रखकर क्या होगा। किन्तु लल्ला—

अन्त को मैं न मर ही सकी, न क्रोध ही कर सकी। किसके ऊपर क्रोध करूँगी? ये मेरे कौन हैं? कोई नहीं हैं—कोई नहीं हैं! जो मेरे स्वामी का अपमान कर सकते हैं, जो गर्दन पकड़कर उन्हें मकान से निकाल सकते हैं, वे मेरे कोई नहीं हैं; उनके साथ मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है!

एक बार जी चाहा कि घर का दरवाज़ा बन्द कर लूँ, किसीको आने न दूँ। किन्तु लल्ला तो बाहर दासी के पास था। मैं उसी वक्त बाहर गई और लल्ला को लाकर अपनी छाती से चिपटा लिया। मैंने उसी छः महीने के बच्चे से कहा, लल्ला रे, बता तो सही, क्या करूँ! उसने रो दिया।

अपने कमरे का दरवाज़ा बन्द करके मैं बहुत कुछ सोचती रही। लल्ला मेरी गोद में ही सो गया। मैं जितना उसका मुँह देखती थी, उतना ही उनकी सूरत का ध्यान आता था। वे यहाँ से कितनी व्यथा पाकर गये हैं, कितना मनःकष्ट भोगते होंगे! फिर ख़याल हुआ, वे कहीं चले तो नहीं गये! नहीं, वे कहीं नहीं गये होंगे; घर पर माँ जो बीमार हैं।

फिर यही स्थिर किया कि रात को सब आदमियों के सो जाने पर, किसीसे बिना कुछ कहे, लल्ला को लेकर श्यामनगर चली जाऊँगी। जाना ही होगा—जहाँ वे हैं वहीं मैं भी जाऊँगी। माता-पिता मुझे किसी तरह नहीं रोक सकते।

किन्तु रात में सात कोस चलूँगी कैसे? किसके साथ जाऊँगी? रास्ता तो मालूम नहीं, अकेली जाऊँगी किस तरह? फिर सोचा वामा को साथ ले जाऊँगी। उसीने मुझे इतना बड़ा किया है, वही लल्ला को पाल रही है, उसे ही साथ ले जाऊँगी। क्या वह जाने को राज़ी नहीं होगी? जिस तरह होगा हाथ जोड़कर, पैर पकड़कर राज़ी ही करूँगी, वह ज़रूर मान जायगी। अब मैं इस मकान में नहीं रहूँगी, सास की मृत्युशय्या के पास रहूँगी। और वे—उनके चरण पकड़कर कहूँगी, मेरा कुछ अपराध नहीं है। नाथ, मैं बिलकुल निरपराध हूँ। मैं सब सुख को लात मारकर तुम्हारा अपमान बटाने के लिए आई हूँ। क्या वे मुझे क्षमा नहीं करेंगे? अवश्य करेंगे। इस नन्हे का, इस दुधमुँहे का ख़याल करके वे मुझे अपने चरणों में अवश्य स्थान देंगे। यदि नहीं देंगे तो, लल्ला को उन्हें देकर, उनके चरणों में लोट कर मर जाऊँगी!

उसी समय वामा को बुलाकर उससे सब बातें खोलकर कह दीं। पहले तो वह राज़ी न हुई। किन्तु बाद को जब मैंने बहुत ख़ुशामद की, बहुत हाथ-पैर जोड़े तब राज़ी हो गई। किन्तु एक बात और थी। क्या मैं रात में सात कोस पैदल चल सकूँगी? और कहीं ठण्ड लग जाने से लल्ला को कुछ असुख हो गया तो? तब न मालूम हृदय के भीतर से कौन बोल उठा, कोई डर की बात नहीं है। इस पर मैंने सोचा, भय किसका?—सात कोस अच्छी तरह चल सकूँगी। वे पागल की तरह रात में ही सात कोस अकेले चले गये हैं—मैं क्यों नहीं चल सकूँगी? ख़ूब चल सकूँगी। लल्ला को भी कुछ न होगा, उसका बाल भी बाँका न होगा। मैं जाऊँगी ही। वामा को भी हिम्मत दिलाई, वह बिलकुल तैयार हो गई।

रात को ग्यारह बजे सब आदमियों के सो जाने

पर, वामा के साथ मैं खिड़की से उतर पड़ी। जो कुछ गहना मैं पहन रही थी, सब उतारकर वहीं रख दिया। मैंने सोच लिया कि इनकी कोई वस्तु साथ न ले जाऊँगी। मैं ग़रीब की स्त्री हूँ, मुझे सोने-चाँदी की ज़रूरत नहीं। एक मोटी चादर से बच्चे को ढककर, केवल एक वस्त्र पहने हुए, मैं अपने धनवान् बाप के घर से चल पड़ी। रास्ते में शरीर काँपने लगा। कभी घर से तो बाहर निकली ही नहीं थी, न कभी दस क़दम पैदल ही चली थी, और आज रात में सात कोस चलने के लिए निकल पड़ी हूँ! एक कोस चलने के बाद ही पिंडलियाँ टूटने लगीं। लल्ला उस वक़्त भी वामा के ही पास था। मैंने गिड़गिड़ाकर कहा, वामा, मैं अब और नहीं चल सकती। वामा ने कहा, बीबीजी, मैंने तो तुम से तभी कहा था, पर तुमने एक न सुनी। सड़क पर इस समय रात में कोई आदमी भी नहीं दिखाई देता, बताओ, अब मैं क्या करूँ? मैंने कहा, वामा, इधर आ, ज़रा बैठ लूँ। ज़रा सुस्ताकर फिर चल सकूँगी। यह कहकर मैं बैठ गई।

किन्तु मैं तो बैठकर फिर उठ ही नहीं सकी। पिंडलियाँ मानों बिलकुल बेजान हो गई थीं। मैं एकाग्र-चित्त हो भगवान् से प्रार्थना करने लगी, आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। एकाएक कुछ दूर पर एक गाड़ी का शब्द सुनाई दिया। ऐसा मालूम पड़ा कि जिधर से हम आ रहे थे, उधर ही से गाड़ी भी आ रही है। मेरी जान में जान आई। मैंने वामा से कहा, वामा, भगवान् ने हमारी प्रार्थना सुन ली। यह देख, एक गाड़ी की आवाज़ सुनाई देती है।

हम सड़क के किनारे बैठकर गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगे। जब गाड़ी हमारे सामने आई तब वामा ने गाड़ीवान से कहा, अरे, गाड़ी किराये पर ले चलेगा? जब गाड़ीवान् को मालूम हुआ कि ये श्यामनगर जायगी तब वह राज़ी हो गया और बोला, मेरी गाड़ी भी श्यामनगर की ही है और मेरा मकान मित्र बाबू के नज़दीक ही है। अच्छा, बारह आने किराया देना होगा। हम लोग वहीं स्वीकार करके गाड़ी में बैठ गईं। तब दम में दम आया।

जिस वक़्त हम लोग घर पहुँचीं, कोई दो घंटे रात बाक़ी थी। मैंने भीतर जाकर देखा, वहाँ उस समय सब हो चुका था। सास का शव अर्थी पर रखा जा रहा था, और श्मशान जाने की तैयारी हो रही थी। मैं स्थिर न रह सकी। सास की छाती पर सिर रखकर रोने लगी, माँ, एक बार तो आँख खोलकर देखो, मैं तुम्हारे लल्ला को लेकर आई हूँ। मैं सब कुछ छोड़कर आई हूँ। माँ! एक बार लल्ला को गोद में ले लो! दो-एक बातें कर लो—मा! दो एक—

और स्त्रियों ने पकड़कर मुझे बरामदे में बिठला दिया। एक पड़ोसिन बोली, बहू, यदि तू कल शाम भी आ जाती तो सास का मुँह देख लेती। आहा! बेचारी का लल्ला लल्ला ही कहते कहते दम निकल गया! केवल "अरे लल्ला, अरे लल्ला" यही धुन थी। इन हृदयविदारक बातों को सुनकर मेरी छाती दहलने लगी।

पड़ोसिन ने कहा, बहू, अब रोने से क्या होगा! एक के ऊपर एक आफ़त है। अरुण जिस दिन तुझे लेने गया था, उसी रात को वापस आ गया। आदमियों ने देखा कि वह गाड़ी में बेहोश पड़ा है। उसे अब भी होश नहीं है।

यह सुनते ही मानों मेरे सिर पर पहाड़ टूट पड़ा! मैंने घबड़ाकर पूछा, क्यों, वे कहाँ हैं? मुझे उस वक़्त कुछ लाज-शर्म न रही। पड़ोसिन मुझे एक कमरे में ले गई। मैंने देखा, वे बेहोश पड़े थे।

तीन दिन तक वे उसी तरह पड़े रहे। बाद को धीरे धीरे बहुत कुछ स्वस्थ हो गये। इसी बीच में उन्होंने मुझसे कहा, सुषमा, क्या इतना कष्ट सहकर तुम यहाँ रह सकोगी?

मैंने कहा, बहुत अच्छी तरह और सुनो, मैं

तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करती हूँ कि उस घर का नाम ज़बान पर कभी न लाऊँगी। तुम ते कभी वहाँ जाओगे ही नहीं, लल्ला को भी कभी नहीं जाने दूँगी। चाहे भीख माँगकर खाना पड़े, चाहे भूख से प्राण निकल जायँ, किन्तु उनसे कभी एक दाने की सहायता न लूँगी। यदि लल्ला बड़ा होकर उन की मदद चाहेगा तो—तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करती हूँ, उसे—उन्होंने मेरा मुँह बन्द कर लिया।

दो-एक दिन बाद ही उनकी तबीयत फिर बिगड़ गई, और फिर अच्छी न हुई; उसीमें वे चल बसे। मरने के पहले दिन उन्होंने बड़े क्षीण स्वर में मुझसे कहा, सुषमा, मैं तो चलता हूँ; तुम अपमान को भूल जाओ। इस लड़के को रास्ते का भिखारी मत बनाओ। मेरा तो कोई है नहीं, मैं तुम्हें किसे सौंप जाऊँ? सब भूल जाओ, मैं भी भूल गया हूँ। बच्चे को लेकर अपनी मा के यहाँ चली जाओ; पहली सब बातें दिल से निकाल दो।

मैंने कहा, इस जन्म में नहीं। क्षमा!—इस जन्म में नहीं। तुम देवता हो—तुम क्षमा कर सकते हो—तुम भूल सकते हो, किन्तु मैं स्वामी के अपमान को किसी तरह नहीं भुला सकती। यदि पिता मेरा अपमान करते तो मैं भूल जाती, किन्तु उन्होंने तुम्हारा अपमान किया है! उन्हें क्षमा! यह बात मत कहो। इस पर वे, न मालूम क्या कहना चाहते थे, किन्तु कह न सके। अगले ही दिन सब खेल बिगड़ गया।

× × × × ×

उनकी कहानी पूरी होगई। अब कुछ कहने की क्या आवश्यकता है। मेरे दुख-दर्द की कहानी सुनने का अब क्या काम है! वह सर्वव्यापी ईश्वर ही जानता और सुनता है। माता-पिता ने आकर कितना विलाप किया, चलने के लिए कितना अनुरोध किया, किन्तु मैं नहीं गई—जाऊँगी भी नहीं। इस टूटे मकान में पड़ी हूँ—भीख माँगकर खाऊँगी, तब भी यहीं रहूँगी। यह मेरे स्वामी का मन्दिर है, मैं इसी तीर्थ में मरूँगी।

क्या कहते हो?—मेरे हृदय में बड़ी चोट पहुँची है, इसलिए यह कह रही हूँ? नहीं, नहीं, मेरे हृदय में बड़ी चोट क्या पहुँची है! चोट पहुँची थी उस दक्ष राजा की लड़की सती के हृदय में, जिसने पति की निन्दा सुनते ही प्राण त्याग दिये! और मैं—पति-निन्दा नहीं—पति का अपमान और उसी वेदना में पति का देहान्त देखकर भी जीवित हूँ! माँ शिव-सोहागिनि, यदि तुम उस दिन अपनी इस हतभागिनी पुत्री को अपना थोड़ा सा सती-तेज दे देतीं तो, उनके अपमान-विष को पीकर, उनके सामने ही पार होकर अपना नारी-जन्म सफल करती। करुणामयि, तुम्हें इतनी भी दया नहीं आई!*

कैलासचन्द्र गुप्त

पवन-दूत।

मेघदूत के ढङ्ग का एक दूसरा अवतरण पवन-दूत नाम से प्राप्त हुआ है। इसके आदि-उद्धारकर्ता हरिप्रसाद शास्त्री ने इसे १८९८ ई० में बङ्गाल एशियाटिक सोसायटी के सम्मुख लाने का यत्न किया और यह उन्हीं शास्त्रीजी का काम है, जो संस्कृत-साहित्य का एक अनूठा रत्न आज खोते खोते बच गया।

इसके मूल-लेखक धोयी कविराज बङ्गाल के सेनवंशीय राजा लक्ष्मणसेन के राजकवि थे। गीतगोविन्द को देखने से विदित होता है कि वे भी जयदेव के ही समकालीन थे। किन्तु दुःख है कि जयदेव का कालनिर्णय अभी तक नहीं हो सका है। इधर जाल्हंस की सुभाषित-मुक्तावली में उद्धृत धोयी के पदों से यह स्थिर होता है कि इनका काल भी १२०५ ई० के लगभग ही है। इनका समय

* जलधर बाबू की एक बँगला कहानी का अनुवाद।

जालहंस से इधर का हो सकता है; क्योंकि प्रस्तुत पुस्तक में लक्ष्मणसेन ही को कवि ने अपना नायक माना है और लक्ष्मणसेन के ११७० से १२०० ई० तक राज्य करने का पता इतिहासों से चलता है। ऐसी अवस्था में यह मानना पड़ेगा कि लक्ष्मणसेन ने कुछ काल शासन करने के बाद ही भूमण्डल-विजय का सङ्कल्प किया होगा, जिसका वर्णन कवि ने अपनी पुस्तक में किया है।

अतः कवि का जीवन-काल ११८० ई० के लगभग मान लेना सर्वथा ठीक होगा।

कवि ने पवन-दूत की रचना ठीक मेघदूत की छाया पर की है। छन्द, अलङ्कार, कथा, प्रायः सभी बातें उसी ढङ्ग की हैं। केवल विशेषता इतनी ही है कि मेघदूत में जहाँ कालिदास ने एक विरही के मुख से वियोगवार्ता भिजवाई है, और मेघ को अपना दूत माना है वहाँ धोयी ने एक विरहिणी के मुख से वियोग-संवाद भिजवाया, तथा पवन को अपना दूत माना है। कवि के इस चुनाव में चमत्कार तो अवश्य है, क्योंकि कवि के लिए विरहवार्ता-वाहन का कार्य्य मेघ की अपेक्षा पवन कहीं अच्छे प्रकार कर सकता है। पवन की तरल गति, उसकी व्यापकता, उसका आलिङ्गन-गुण इस बात के स्वतः प्रमाण हैं कि पवन दूत का काम कहीं अच्छी तरह कर सकता है। और कदाचित् यही कारण है कि उर्दू के अनेक कवियों ने इस साधन का आश्रय लिया है।

कवि ने विरहिणी को अपनी नायिका चुनने में भी कमाल किया है। वियोग-वेदना-वर्णन जितना अच्छा विरहिणी के मुख से हो सकता है उतना एक विरही के मुख से नहीं। अब रही कवि की कल्पना की बात। इसके लिए यह मानना पड़ेगा कि कालिदास मेघ को अपना दूत और विरही यक्ष को अपना नायक मानकर जितना प्रतिभा-प्रदर्शन कर सके हैं उतना उपयुक्त नायकों के होते हुए भी धोयी ने नहीं कर पाया है। फिर भी धोयी कवि कोई ऐसे-वैसे आदमी नहीं थे। उनकी इस रचना को पढ़कर यह पहचानना कुछ कम कठिन नहीं है कि प्रतिभा-विकास किस कवि में अधिक योग्यता से हो सका है।

यद्यपि पुस्तक का ढङ्ग लेखक की मूल कल्पना नहीं ठहरी, फिर भी अवतरण इतना अच्छा है कि यदि इसे कालिदास का दूसरा दूत कहें तो अत्युक्ति न होगी। पुस्तक बहुत अंशों में ऊँचे दर्जे की है। इसका वर्णन उतना ही रोचक और भावपूर्ण है, जितना कि मेघदूत का।

अब हम हिन्दी-पाठकों के विनोदार्थ उसका कुछ पद्यानुवाद देते हैं। आशा है कि हिन्दी के सुबोध विद्वान् इधर अपनी रुचि दिखलावेंगे।

[पूर्व 'पवन']

अस्ति श्रीमत्यखिलवसुधासुन्दरे चन्दनाद्रौ,
गन्धर्व्वाणां कनकनगरी नाम रम्यो निवासः।
हैमैर्लीलाभवनशिखरैरम्बरं व्यालिखद्भि-
र्धत्ते शाखानगरगणनां यः सुराणां पुरस्य॥

अखिल जगत में सबसे सुन्दर मलयाचल है जिसका नाम।
उस पर एक कनकनगरी थी जो था गन्धर्वों का धाम॥
कनक-भवन पर अम्बर-चुम्बी लगे हुए थे कलश-ललाम।
जिससे अमरपुरी का शाखा-नगर हो रहा था वह ग्राम॥१॥

× × ×

त्वत्तः प्राणाः सकलजगतां दक्षिणस्त्वं प्रकृत्या
जङ्घालं त्वां पवन मनसोऽनन्तरं व्याहरन्ति।
तस्मादेव त्वयि खलु मया संप्रणीतोऽर्थिभावः
प्रायो भिक्षा भवति विफला नैव युष्मद्विधेषु॥

सहज उदार सकल जीवों का तू ही जीवन-दाता है।
मन के बाद दौड़ने में तेरा ही नम्बर आता है॥
अतः आपसे मुझ भिखारिनी की है विनती, देव समर्थ।
प्रायः तुम ऐसे पुरुषों से जाती नहीं याचना व्यर्थ॥४॥

तीक्ष्णावस्थां विरहविधुरां रामचन्द्रस्य हेतो—
र्यातः पारं पवन सरितां पत्युरप्याञ्जनेयः।
तत्तातस्याप्रतिहतगतेर्यास्यतस्ते मदर्थे
गौडी क्षोणी कति नु मलयक्ष्माधरायोजनानि॥

देख विरह में अतिशय व्याकुल बनकर धावन पवनकुमार।
तेरे सुत ने रामचन्द्र के हित जब किया उदधि को पार॥
फिर यह मेरे लिए तुम्हें हे अप्रतिहतगति! उसके तात।
मलयभूमि से गौड़ देश का जाना कौन बड़ी सी बात॥५॥

× × ×

श्रीखण्डाद्रेः परिसरमतिक्रम्य गव्यूतिमात्रं
गन्तव्यस्ते किमपि जगतीमण्डनं पाण्ड्यदेशः।
तत्र ख्यातं पुरमुरगमित्याख्यया ताम्रपर्ण्या-
स्तीरे मुग्धक्रमुकतरुभिर्ब्बद्धरेखैर्भजेथाः॥

मलयाचल के आस-पास केवल दो कोस भूमि कर पार।
तुम्हें मिलेगा पाण्ड्यदेश जो जगतमुकुट है सुखमागार॥
क्रमुक-वृत्त-आच्छन्न ताम्रपर्णी पर उरग-नगर सरनाम।
जाकर उसी राजधानी में कर लेना कुछ काल विराम॥८॥

सम्भोगान्ते श्लथभुजलतानिःसहानां बधूनां
(१) व्याधुन्वन्तोऽनुचितकवरीभारमव्याजमुग्धम्।
अस्मिन् सद्यः श्रमजलनुदः सौधजालैरुपेत्य,
प्रत्यासन्ना मलयमरुतस्तालवृन्तीभवन्ति॥

रति के बाद हारकर बैठी होंगी बधू झरोखे पर।
उनकी बिथुरी लटें हवा में उड़ती होंगी फर फर फर॥
ऐसे समय पसीने से जब भींग रहा हो देह तमाम।
मारुत! जाकर तुम्हीं वहाँ दोगे उनको पंखे का काम॥६॥

× × ×

लीलागारैरमरनगरस्यापि गर्व्वं हरन्तीं
गच्छेः काञ्चीपुरमथ दिशो भूषणं दक्षिणस्याः।
नक्तं यत्र प्रहरिक इवोज्जागरं नागराणां
कुर्व्वन् पाणिप्रणिहितधनुर्जायते पञ्चबाणः॥

दक्षिण-दिग्भूषण कांचीपुर जो है सुरपुर से बढ़ कर।
ऐसे लीलागार नगर को शीघ्र देखना तुम जाकर॥
नागरिकों का रात्रि-जागरण जहाँ यही बतलाता है।
कामदेव प्रहरी बन मानो लेकर धनुष जगाता है॥१२॥

मन्ये मोचः कठिनसुरतायासलब्धस्य तूर्णं
दुष्प्रापस्ते पवन भविता चोल-सीमन्तिनीभ्यः।
के वा तासामलकरचनानीललीलासनाथे
गण्डाभोगे मलयजपयःपिच्छिले न स्खलन्ति॥

थकी हुई रति-श्रम के मारे चोल-नारियों के द्वारा।
समझ रही हूँ जल्दी दुर्लभ होगा तेरा छुटकारा॥
उनकी श्याम गुथी अलकों पर, चिकने गोल कपोलों पर।
मलय पवन! क्यों नहीं फिसल जाओगे तुम सहसा जाकर १४

[उत्तर 'पवन']

श्रीखण्डाद्रेर्वसति शिखरे कोऽपि गन्धर्वलोक-
स्तत्रास्त्येका कुवलयवती नाम धन्याङ्गनानाम्।

दूतं तस्याः कलय मलयोपत्यकामारुतं मां
कामिद्वन्द्वं घटयति मिथो विप्रयुक्तं य एकः॥

कह देना मलयाचल पर गन्धर्वलोक है एक महान,
वहाँ एक धन्या है कुवलयवती नाम की रूप-निधान॥
राजन्! मैं हूँ मलय-पवन तुम मुझे दूत उसका जानो।
युगल प्रेमियों को आया हूँ यहाँ मिलाने, पहिचानो॥६२॥

× × ×

मुष्टिग्राह्यं किमपि विधिना कुर्व्वता मध्यभागं
मन्ये बाला कुसुमधनुषो निर्मिता कार्म्मुकाय।
राजन्नुच्चैर्व्विरहजनितक्षामभारं वहन्ती
जाता संप्रत्यहह सुतनुः सा च मौर्वीलतेव॥

ब्रह्मा ने जो उस बाला की मुट्ठी भर की रची कमर।
काम-धनुष के लिए बनाई मानों सामग्री सुन्दर॥
राजन्! दबकर विरह-भार से दुबली होती जाती है।
सोने की वह देह शोक में मिट्टी होती जाती है॥६६॥

× × ×

धत्ते द्वेषं शशिनि कुरुते न ग्रहं केशहस्ते
दूरे हारं क्षिपति रमते निन्दया चन्दनस्य।
वक्तुं देव त्वयि परमसौ नामवस्थां कथञ्चि—
द्राघोद्वेगा नयति कविताचिन्तया वासराणि॥

चन्दन की निन्दा करती है छूती तक न हाथ से केश।
हार फेंक देती है उर से रखती शीतद्युति से द्वेष॥
राजन्! फिर भी मैंने जाकर देखा उसका ऐसा हाल।
कविता की रचना कर करके काट लिया करती है काल॥७३॥

आदौ याते नयनपदवीं स्तम्भयन् पक्ष्ममालां
चुम्बन् गण्डस्थलभुवमथो पीतबिम्बाधरोष्ठः।
कुर्व्वन् कण्ठग्रहमपि कुचोत्सङ्गशय्याशयान-
स्तस्या वासः (वाष्पः?) किमिव न खलु त्वद्वियोगे करोति॥

पहले तुम्हें देखकर उसके कमल-नेत्र पर जा पौढ़े।
चुम्बन कर कपोल का सहसा अधरपान करने दौड़े॥
कंठ पकड़कर, स्तनशय्या पर लेटे जाकर तत्पश्चात।
तेरी बिछुड़न में की उसके आँसू ने न कौनसी बात॥७४॥

शारङ्गाक्ष्या जनयति न यद्गसमादङ्गकानि
त्वद्विश्लेषे स्मरहुतवहः श्वाससङ्घुक्षयेऽपि।

---

(१) इसका पाठ यों होता तो अच्छा होता—
व्याधुन्वन्तोऽविचितकवरीभारमव्याजमुग्धम्।

जाने तस्याः स खलु नयनद्रोणिवारां प्रभावो
यद्वा शश्वन्नपतपमनोवर्त्तिनः शीतलस्य ॥

तेरी विरह-काम-ज्वाला पाकर भी गर्म सांस का जोड़ ।
उसे भस्म क्यों नहीं कर सकी, कोर-कसर क्यों रक्खी छोड़ ॥
या तो इन्हीं आंसुओं का यह जाना जाता प्रचुर प्रभाव ।
अथवा शीतल चन्द्रकान्त बन तूने उसका किया बचाव ॥७५॥

शान्तप्राये रजनिसमये किञ्चिदामीलिताक्षी
प्राप्य स्वप्ने कथमपि पुरस्त्वामतिप्रौढरागा ।
श्लिष्यन्ती त्वां तनुमनुपदं विप्रबुद्धाथ बाला
लज्जालोलं वलयति दृशं सा सखीनां मुखेषु ॥

शेष हुई रजनी में आंखों पर निद्रा का पर्दा डाल ।
तुम्हें स्वप्न में प्रमुख देखकर होती है वह अधिक निहाल ॥
आलिंगन करती है, पर जाती है निद्रा शीघ्र उचट ।
लज्जित नयनों से सखियों का मुख लखने लगती है झट ॥

× × ×

त्वद्वक्त्रानुस्मरणरसिका कातरा च प्रकामं
ज्योत्स्नासेकैर्द्विजपतिमधिक्षेपपात्रं करोति ।
किञ्चिद् द्वेष्टि त्रिदशभिषजो सुन्दर त्वां विचिन्त्य
प्रायेणैवं भवति विधुरासन्नमृत्योर्म्मनीषा ॥

कभी चांद की ओर देखती करके तेरा मुख-शशि याद ।
शीतलता के कारण करती है उसका भी निन्दावाद ॥
तेरी सुन्दरता के आगे आश्विन पर करती बौछार ।
प्रायः मरणासन्न जीव के ऐसे होते बुद्धि-विचार ॥८६॥

सा वैरस्यादसितनयना हेमतन्त्रीं दधानां
प्रश्नाख्यानात् प्रकृतिसुभगं केशपाशं बिभर्त्ति ।
तद्गात्राणां किमपि सहसा दुर्बलत्वं विचिन्त्य
त्यक्तं त्रासाद्गुणमिव मनोजन्मना कार्म्मुकस्य ॥

अलि-नयनी ने विरस भाव से धारा है अति दुर्बल वेष ।
बात पूछने पर छूती है सहज सलोने कुंचित केश ॥
मानों कामदेव ने पहले संधाना था उस पर बान ।
पर अब उसे उतार लिया है बेचारी को दुबली जान ॥८७॥

शिवदास गुप्त

क्षय-रोग की प्राचीन और अर्वाचीन चिकित्सा ।

डाक्टर चौरी मुत्थू (Chowry Muthu) क्षय-रोग के एक अच्छे डाक्टर माने जाते हैं। हिन्दुस्तानी (मदरासी) होकर भी उन्होंने विलायत में एक नवीन ढङ्ग का आरोग्याश्रम (Sanatorium) खोल रक्खा है। कुछ दिन हुए उसे देखने के लिए मैं उनके साथ ठहरा था। यद्यपि पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान में डाक्टर मुत्थू की अच्छी पहुँच है और उन्होंने अपने जीवन के ३५ वर्ष विदेश में व्यतीत किये हैं, तथापि हृदय से वे सच्चे हिन्दुस्तानी हैं और भारतीय विज्ञान, कला, दर्शन और धर्म का उन्हें बड़ा अभिमान है। उन्होंने भारतीय वैद्यक शास्त्र का भी अध्ययन किया है और इसीलिए वे यह भी बता सकते हैं कि क्षय-रोग के लिए प्राचीन और अर्वाचीन में से कौन सी चिकित्सा अधिक उपयोगी है। इन्हीं सब कारणों से मैंने उनसे पूछा कि डाक्टर साहब, हमारे पूर्वज क्या इस रोग के निदान को जानते थे और यदि जानते थे तो क्या उन्हें इसकी चिकित्सा भी मालूम थी ?

मेरे इस प्रश्न का जो उत्तर डाक्टर महोदय ने दिया उसे उन नवयुवक विद्यार्थियों को ध्यान में रखना चाहिए जो स्कूलों और कालिजों से परीक्षोत्तीर्ण होकर निकलने पर नवीन बातों को तो बड़े प्रेम की दृष्टि से देखते हैं; परन्तु प्राचीन बातों को सुनकर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। डाक्टर मुत्थू ने कहा कि यूरोपीय चिकित्सा के जन्मदाता हिपोक्रेटीज़ (Hippocrates) के शताब्दियों पहले क्षय-रोग और उसके भिन्न भिन्न लक्षण भारत-निवासियों को ज्ञात थे। वे उसे क्षय-रोग (wasting disease) कहते थे। क्षय-रोग (wasting disease) शब्द की उत्पत्ति भारत में हुई, ग्रीक देश में नहीं। चरक और सुश्रुत दोनों ने एक एक अध्याय इस विषय पर लिखा है।

हिन्दुओं का कहना है कि यह रोग चिन्ता, शोक, काम की अधिकता, तथा अधिक वीर्य्यपात से और दूषित वायु के श्वास लेने से उत्पन्न होता है। उनकी समझ में खांसी का आना, कुछ पीले कफ (yellowish phlegm) का

डाक्टर चौरी मुत्थू।

गिरना, ज्वर का चढ़ना, शरीर का क्षीण होना (emaciation), मुँह से रुधिर का बहना (hemorrhage) और आगे चलकर अँतड़ियों में फफोले पड़ जाना और फिर दस्त लगना इस रोग के लक्षण हैं।

सभ्यता के बढ़ने के साथ साथ जब नगरों में जन-संख्या के बढ़ने से बस्ती घनी हो जाती है तभी क्षय का प्रादुर्भाव होता है। प्राचीन समय में इस रोग का होना इस बात का प्रमाण है कि भारतवासी सभ्यता के उच्च शिखर तक पहुँच चुके थे।

उस समय के हिन्दू इस रोग में निम्न-लिखित ओषधियों का प्रयोग करते थे—
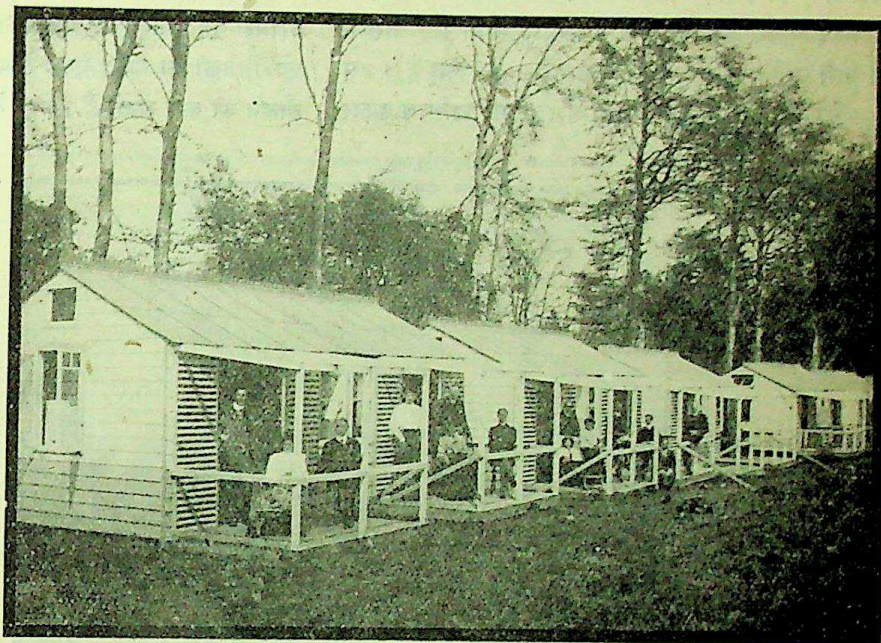
(१) बकरी और गदही का दूध।

(२) हाथी, हिरन और अन्य जङ्गली जानवरों का कड़ा मांस।

(३) जङ्गली जानवरों के मांस का बना हुआ और शीघ्र पचनेवाला शोरबा (broth)।

(४) लहसुन।

(५) मिर्च।

(६) बकरियों के साथ रहना।

(७) प्राणायाम (breathing exercises), मन की शान्ति, साधना (contemplation) और प्राकृतिक सौन्दर्य्य का निरीक्षण।

ओषधियों की इस सूची से जाना जाता है कि प्राचीन समय के हिन्दुओं की बुद्धि बड़ी तीव्र थी। प्रकृति के जिन जिन गूढ़ तत्त्वों का अनुसन्धान वर्तमान वैज्ञानिकों ने अभी किया है उनमें से बहुतों को हिन्दुओं ने अपने अनुभव द्वारा पहले ही मालूम कर लिया था। अच्छा, बकरियों के साथ रहने और बकरी और गदही के दूध पीने ही की बात को लीजिए। वैज्ञानिकों का मत है कि

वेल्स, समरसेट में स्थित, डा० चौरी मुव्यू के आरोग्याश्रम के रोगी।

बकरी के मूत्र में अमोनिया (नौसादर) होता है; इसीलिए क्षय के रोगी बकरियों के साथ रक्खे जाते थे। बकरी और गदही का दूध पौष्टिक है और जल्द पचता है। मिर्च पाचन-क्रिया को उत्तेजित करती है। लहसुन से आयलैंड के डाक्टर मिनचन (Dr. Minchen) एक प्रकार का तेल बनाते हैं और दूसरे डाक्टर उसे भोजन के साथ खाने का निर्देश करते हैं। मन की शान्ति, साधना और प्राकृतिक सौन्दर्य्य के निरीक्षण को अब आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सक भी क्षय के लिए उपयोगी मानने लगे हैं।

डाक्टर मुव्यू का सैनीटोरियम विज्ञान के सर्वोच्च नियमों के अनुकूल अपना काम कर रहा है। इतने दिनों के अनुभव के पश्चात् उन्होंने यह नतीजा निकाला है कि रोगी को रहने के लिए यदि शान्त, आरोग्यवर्द्धक और

स्वच्छ स्थान मिले; उसे खाने को पौष्टिक पदार्थ दिये जायँ; उसका चित्त हमेशा प्रसन्न रक्खा जाय और उसकी देखरेख के लिए विचारशील, दयालु और हँसमुख डाक्टर मिलें, तो प्रकृति इस बीमारी को, जो पाश्चात्य और पूर्वीय देश-निवासियों को इतनी अधिक संख्या में उदरस्थ कर रही है, जल्द अच्छा कर सकती है। उन्होंने अपने सैनीटोरियम का नाम पर्वतीय कुञ्ज (Hill-grove) रक्खा है। इस नाम का कारण यह जान पड़ता है कि सैनीटोरियम हज़ार फुट ऊँची पहाड़ी पर बना है, नगर के चहल-पहल और शोर-गुल से कहीं दूर है और चतुर्दिक् कुछ अधिक ऊँची पहाड़ियों से घिरा है जो उसे पूर्व की ठण्ढी हवाओं से सुरक्षित रखती हैं। सैनीटोरियम की मुख्य मुख्य इमारतें जिनमें परामर्श-गृह (consulting room), भोजनालय, क्रीड़ा-स्थान और काठ के छोटे छोटे घर बने हैं, बीच में जङ्गल पड़ जाने के कारण नगरों से बिल्कुल अलग हो जाती हैं। ये जङ्गल इसी जायदाद के अधिकार में हैं और शिशिर और ग्रीष्म, दोनों ऋतुओं में हरे-भरे रहते हैं।

आरोग्याश्रम का प्रबन्ध-भवन।

इनको बीच से काटकर रास्ते बनाये गये हैं और ऊपर वृक्ष की शाखायें एक दूसरे से मिला दी गई हैं। इन रास्तों में रोगी स्वच्छ हवा के लिए हर समय घूम सकता है, मौसिम चाहे कैसा ही भयावह क्यों न हो।

पर्वतीय कुञ्ज में पहुँचते ही रोगी को डाक्टर मुत्थू के परामर्श-गृह में जाना पड़ता है जिसमें एक ख़ुर्दबीन, एक बिजली का यन्त्र, एक्स-रे मशीन और एक नापने और तौलने की कल रहती है। वहाँ रोगी तौला जाता है, उसकी नाप होती है, उसकी छाती की परीक्षा होती है, उसका तापमान अंकित किया जाता है, उसका पूरा इतिहास लिखा जाता है और यदि आवश्यकता हो तो एक्स-रे से उसके फेफड़ों की तसवीर खींच ली जाती है। डाक्टर दवा तजवीज़ करता है, आराम और व्यायाम का समय निर्धारित करता है, और रोगी को उपदेश करता है कि नगर के बीच रहने से जो ख़राबी तुम्हारे फेफड़ों में आ गई है उसे प्रकृति यहाँ आप ही आप दूर कर देगी। साधारणतः रोगी को डाक्टर साहब के पास मास में दो बार जाने की ज़रूरत है, किन्तु रोग कठिन होने पर उसे कई बार जाना पड़ता है। यदि नसों में ख़राबी आ गई हो तो बिजली की चिकित्सा सप्ताह में दो बार की जाती है। बिजली की चिकित्सा के समय का ठीक अनुमान नहीं किया जा सकता। जितने दिनों तक उसकी आवश्यकता समझी जाती है उतने दिनों तक वह जारी रक्खी जाती है।

जिन रोगियों की दशा सन्तोष-जनक होती है वे आनन्दपूर्वक सवेरे, दोपहर को और सन्ध्या के समय

भोजनालय में बैठकर भोजन कर सकते हैं। भोजनालय के सामनेवाली दीवार पर एक बड़ी खिड़की है जो मौसिम के अनुसार, डाक्टर की आज्ञा से, न्यूनाधिक खुली रक्खी जाती है। इसमें परदे नहीं रहते और न कोई रोगी इसे छूने पाता है।

जिस रोगी को जितने भोजन की आवश्यकता डाक्टर साहब समझते हैं उस रोगी को उतना ही वे अपने हाथ से परोसते हैं। कोई दूसरा नहीं परोसने पाता। उनकी सम्मति में खोई हुई शक्ति को पुनः उपलब्ध करने के लिए रोगी को पौष्टिक पदार्थ खाने के लिए देना चाहिए, लेकिन आवश्यकता से अधिक ठूँस ठूँसकर नहीं। जर्मनी में रोगी को ठूँस ठूँसकर खिलाते हैं। डाक्टर मुल्यू इसे नापसन्द करते हैं। ये ब्लेक-फोस्ट (Black Fœst) गये थे और नारड्राक के डाक्टर वालथर (Dr. Walther of Nordrach) से मिलकर उन्होंने इनकी निकाली हुई चिकित्सा का अध्ययन भी किया था। इस चिकित्सा में रोगी को ठूँस ठूँसकर पौष्टिक भोजन कराते हैं और उसे घूमने का परामर्श देते हैं। डाक्टर मुल्यू रोगी का घूमना तो पसन्द करते हैं, किन्तु उसे ठूँस ठूँसकर भोजन कराना पसन्द नहीं करते।

प्रत्येक रोगी अकेला एक कमरे में रहता है जिसकी लम्बाई और चौड़ाई १२ और १० फ़ीट होती है। कमरे का मुँह दक्षिण की ओर रहता है। उसके सामने एक बराम्दा होता है जिसकी छत कांच की बनी होती है और पीछे एक दालान (corridor) होता है। सामनेवाले बराम्दे में बड़ी बड़ी खिड़कियां लगी होती हैं और उन खिड़कियों पर परदे पड़े रहते हैं। इनके कारण मेह भीतर नहीं जाने पाता। खिड़कियां दिन-रात खुली रहती हैं। डाक्टर की आज्ञा से जब कभी चारपाइयां बराम्दे में कर दी जाती हैं। डाक्टर मुल्यू का पूर्ण विश्वास है कि ताज़ी शुद्ध हवा ही क्षय-रोग को दूर कर सकती है।

चारपाइयां लोहे की बनी हुई हैं। उनमें बढ़िया कमानियाँ लगी हैं और रबर के पहिये हैं जिनसे वे एक स्थान से दूसरे स्थान तक सुगमतापूर्वक हटाई जा सकती हैं। कोठे में एक खानेदार अलमारी, खाना खाने की एक मेज़, वस्त्रालय (wardrobe), कुर्सियाँ, बिजली की रोशनी और बिजली की घंटी होती हैं। कमरे में पानी खौलता रहता है जिससे खिड़कियां खुली रहने पर ठण्डे से ठण्डे दिनों में भी कमरा गरम रहे। इसके सिवा कपड़ा पहनने और स्नान करने के स्थान (lavatory) का भी अच्छा प्रबन्ध है। निस्तार की कोठरी में सूखी मिट्टी रहती है और नलों में गरम तथा ठण्डा पानी आता है।

आरोग्याश्रम के रोगियों का व्यायाम-अभ्यास जिसे डा० मुल्यू ने आविष्कृत किया है।

प्रातः ७ बज कर ४० मिनट पर डाक्टर मुल्यू दाई

(matron) को साथ लेकर हर एक कोठे का निरीक्षण करते हैं। वहाँ प्रत्येक रोगी की जांच होती है और फिर उसे यह बतलाया जाता है कि आज दिन भर तुम्हें क्या क्या करना होगा—बिस्तार पर पड़े रहना होगा अथवा उठकर बैठना, कौन सी कसरत करनी पड़ेगी; कौन सा भोजन करना होगा और ज़रूरत पड़ने पर कौन सी दवा पीनी होगी।

पहला घण्टा आठ बजे बजता है। उस समय उठनेवाले रोगी उठकर हाथ-मुँह धोते हैं और वस्त्र पहनकर थोड़ी दूर घूमने के लिए बाहर निकल जाते हैं। नौ बजे उन्हें जलपान कराया जाता है, जिसमें शोरबा (porridge), चीनी मिश्रित दूध, रोटी-मक्खन, सुअर का मांस, मछली, अण्डे, मुरब्बा, चाय अथवा क़हवा मिलता है।

आरोग्याश्रम में रोगी स्त्रियाँ डाक्टर की सूचनाओं के अनुसार लकड़ी चीर रही हैं।

जलपान के पश्चात् डाक्टर साहब परामर्श-गृह में रोगियों की जांच करते हैं। हर एक रोगी को यहाँ मास में दो बार अथवा ज़रूरत पड़ने पर कई बार आना पड़ता है। यदि लाभ न हुआ, उलटे कोई ख़राबी दिखलाई पड़ी तो इस ख़राबी के दूर करने का भरसक प्रयत्न किया जाता है।

दस बजे सांस लेने और गाने की कसरतें (breathing and singing exercises) प्रारम्भ होती हैं। यदि मौसिम अच्छा रहा तो खुली हवा में, और यदि पानी बरसने लगा अथवा बरफ़ पड़ने लगी तो आराम-घर (recreation room) में कसरत की जाती है। रोगी सीधे खड़े होते हैं; उनकी छाती सामने निकली रहती है; गर्दन ऊँची रक्खी जाती है और हाथ दोनों ओर कड़े करके लटकाये जाते हैं। पुराने (senior) रोगी डम्ब-बेल (dumb-bells) का अभ्यास करते हैं।

कसरत नं० १— जांघों तक लटकते हुए हाथ धीरे धीरे ऊपर उठाये जाते हैं यहाँ तक कि वे कन्धे के इधर-उधर एक सीध में हो जाते हैं। हाथ उठाते समय रोगी का मुँह बन्द रहता है और वह ताक़त भर नाक से ख़ूब सांस लेता है। सांस खींचकर वह फिर पञ्जों (toes) के बल खड़ा हो जाता है और धीरे धीरे हवा बाहर निकालता है। इस समय हाथ भी पहले की अपेक्षा कुछ अधिक तेज़ी के साथ, पर धीरे धीरे नीचे आते रहते हैं यहाँ तक कि पूर्ववत् वे फिर जांघों तक पहुँच जाते हैं। यह कसरत छः बार की जाती है।

कसरत नं० २— रोगी सांस खींचता हुआ दोनों हाथ बगल से ऊपर लाता है और सांस निकालता हुआ ऊपर से फिर नीचे ले जाता है। हाथ नीचे लाते समय वह छाती को कोहनी से ख़ूब दबाता है जिससे भीतर का बचा-बचाया बलग़म हवा द्वारा बाहर

निकल जाता है । यह कसरत भी छः बार की जाती है ।

कसरत नं० ३—रोगी झटके से दोनों हाथ छाती के सामने लाकर फैलाता है और फिर उन्हें जोड़ लेता है। तत्पश्चात् उन्हें फैलाता हुआ कंधे की सीध में लाता है। हाथ फैलाते समय वह दाहिना पैर तीन बार और बांया दो बार, दो फुट तक आगे ले जाता और पीछे ले आता है ।

इसके अनन्तर गाने की कसरत शुरू होती है। रोगी पहले एक सांस में स्वर चढ़ाता है और फिर एक ही सांस में उसे उतार देता है । फिर हर एक स्वर को चढ़ाते हुए वह ६ तार पर गाता है और फिर आठ तार तक जाता है । अन्त में वह एक छोटी मधुर तान अलापता हुआ इस व्यायाम को समाप्त करता है । श्वास लेने और गाने की कसरत में २० मिनट लगते हैं ।

आरोग्याश्रम के कुछ रोगी आवरण लगाये हुए घूम रहे हैं ।

साढ़े दस बजे से रोगियों को अपनी शक्ति के अनुसार क्रम-पूर्वक कसरत (graduated exercises) करनी पड़ती है । कुछ जङ्गल में जाकर वृक्ष काटते हैं, कुछ आरे और रन्दे से काम करते हैं, कुछ मैदान की घास इकट्ठी करते हैं, और कुछ बग़ीचों में खोदने का काम करते हैं। ग्यारह बजे तक इस काम से छुट्टी पाकर सब अपने अपने कमरे में पहुँच जाते हैं । यहां वे जो चाहें सो कर सकते हैं—चाहे लेटें, चाहे बैठे रहें ।

आराम करने के बाद उन्हें सवा ग्यारह बजे सड़कों या जङ्गलों में घूमने जाना पड़ता है। कुछ आध घण्टे तक घूमते हैं और कुछ इससे भी अधिक, लेकिन सबको १२½ बजे तक लौट आना पड़ता है । जो स्त्री-पुरुष डाक्टर मुत्थ्यू की ख़ास निगरानी में रहते हैं वे नाक और मुँह को एक कपड़े से ढांककर घूमने निकलते हैं । इस कपड़े में दवा से भीगा हुआ एक फाहा (lint) होता है जो फेफड़ों को साफ़ करता रहता है। इसे स्वयं डाक्टर मुत्थ्यू ने आविष्कृत किया है ।

१२½ बजे से आराम और शान्ति का समय प्रारम्भ होता है । रोगियों को इस समय तक अपने अपने कमरों में अवश्य लौट आना चाहिए । वे बेत की आराम-कुरसी पर चुपचाप लेटे रहते हैं, किसीसे बातें नहीं कर सकते । १½ बजने से कुछ मिनट पहले वे फिर उठते हैं और हाथ-मुँह धोकर खाने की तैयारी करते हैं ।

भोजन में शोरवा या मछली, गरम गोश्त, दो तरकारियां, फल या गुलगुले, पनीर और बिस्कुट, रोटी और मक्खन, और शिशिर ऋतु में गरम तथा ग्रीष्म ऋतु में ठंढा (एक-दो गिलास) दूध मिलता है । सप्ताह में दो दिन क़हवा भी मिलता है और उस समय फल की जगह गुलगुले (pudding) दिये जाते हैं ।

भोजन के पश्चात् सब रोगी अपने अपने कमरों में ढाई बजे तक फिर आराम करते हैं। ढाई से साढ़े तीन तक अपनी अपनी शक्ति के अनुसार मौसिम को देखकर वे क्रोकेट (croquet), बिलियर्ड (billiard), गार्डन गोल्फ (garden golf) आदि खेल खेलते हैं। खेल-कूदकर
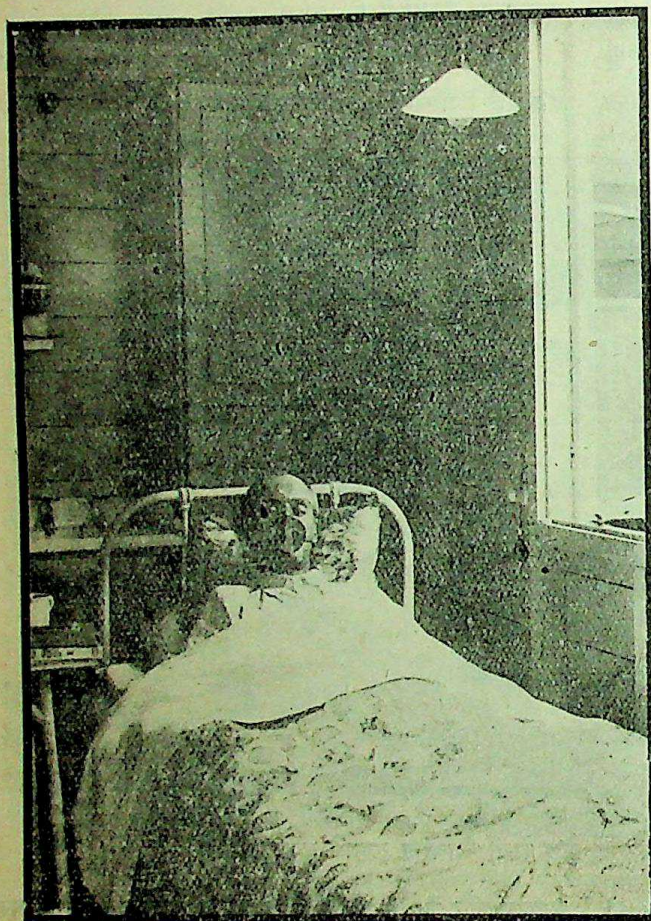
रोगी दवा से भीगा फाहा लगाये है।

वे फिर अपने अपने कमरों में चले जाते हैं। वहाँ वे सब दरवाज़ों और खिड़कियों को बन्द कर लेते हैं और उस लैम्प को जलाते हैं जिसको डाक्टर ने स्वयं तैयार किया है। उसमें से फारमलडीहाइड (Formaldehyde) नाम की गैस निकलकर कमरे भर में भर जाती है। इस गैस में रोगियों को सांस लेना पड़ती है। पन्द्रह से तीस मिनट के अनन्तर लैम्प बुझा दिया जाता है और तब रोगी सांस लेने और गाने की कसरत करने के लिए फिर बाहर मैदान में निकल आते हैं।

चार बजे उन्हें चाय दी जाती है जिसका प्रबन्ध एक पुरानी रोगी स्त्री के स्वाधीन रहता है। चार से छः बजे तक रोगी जो चाहें सो कर सकते हैं। इस समय वे बिलियर्ड (billiard), ताश या शतरञ्ज खेलते हैं, अथवा उपन्यास पढ़ते या टहलते हैं। भीतर बैठे रहने से बाहर घूमना या खेलना अच्छा समझा जाता है। यदि मौसिम ख़राब हो तो दूसरी बात है। सिद्धान्त यह है कि जहाँ तक हो रोगी हर समय खुली हवा में रहे। छः से सात तक वे फिर आराम कुर्सियों पर चुपचाप आराम करते हैं।

सात बजे वे ब्यालू करते हैं। उस समय उन्हें (जाड़े में) गरम मांस या (गरमी में) ठंढा मांस, मछली, तरकारी, गुलगुले, दूध, रोटी और मक्खन खाने को मिलता है।

ब्यालू के अनन्तर नौ बजे तक रोगी मनमाना काम करते हैं। कुछ खेलते हैं, कुछ बैठकर पढ़ते हैं और कुछ टहलने के लिए बाहर निकल जाते हैं। ठीक नौ बजे सबके लिए अपने बिछौने पर लेट रहना आवश्यक है। आध घण्टे के बाद दाई घूम घूमकर सब लैम्प ठण्ढे कर देती है। यदि उस समय किसी रोगी को विशेष कष्ट हो तो वह डाक्टर को बुला देती है।

पर्वतीय कुञ्ज एक प्रकार का होटेल (hotel) है जहाँ रोगी खूब गुल-छर्रे उड़ाया करते हैं। उन्हें और दूसरी वस्तुओं की अपेक्षा आराम और स्वच्छ वायु की अधिक आवश्यकता है, इसीलिए जहां तक सम्भव हो सकता है डाक्टर मुस्थू अपने सैनीटोरियम के रोगियों को बहुत प्रसन्नचित्त और सुख से रखते हैं। यही कारण है कि रोगी एक साथ कुटुम्ब के समान रक्खे जाते हैं और उन्हें रोचक नाटक भी दिखाये जाते हैं।

ओषधियों पर डाक्टर मुस्थू का विश्वास बहुत कम है और जब तक कोई ख़ास ज़रूरत न हो तब तक वे उनका प्रयोग नहीं करते। वे रोगी को ऐसे नियम से रखते हैं कि

प्रकृति आपसे आप उसको अच्छा करदे। औषधियां देने के बदले वे रोगियों से कहा करते हैं कि तुम आरोग्यवर्द्धक और आनन्ददायक स्थान में रहो, मन को शान्त रक्खो, बिगड़ी हुई नसों को ठीक करने के लिए बिजली काम में लाओ और कृमिनाशक भाफ (antiseptic vapour) सूँघा करो। यह गैस फेफड़ों को साफ़ कर शरीर को सुदृढ़ बनाता है।

जिन कारणों से क्षय-रोग उत्पन्न होता है उन पर विचार करने से मालूम होता है कि इस प्रकार की चिकित्सा इस रोग के लिए अत्यन्त उपयोगी है और इसीका प्रयोग होना चाहिए। डाक्टर मुथ्यू सभ्यता ही को इस रोग का निदान बतलाते हैं। कई घण्टे लगातार आग के सामने काम करने से मनुष्य का दिमाग़ गरम हो जाया करता है। नगरों में जन-संख्या अधिक होने से वहाँ के निवासियों को स्वच्छ काफ़ी हवा साँस लेने को नहीं मिलती। बोतलों में भरा हुआ बासी दूध, और पीपों में भरी हुई बासी रोटी, तरकारी और मांस खाने को मिलता है। उनमें से वह सत्व निकल जाता है जो शरीर प्रायः दृढ़ करने में सहायता देता है। ग़रीबों को आर्थिक कष्ट के कारण यह भोजन भी नसीब नहीं होता। इन्हीं कारणों से शरीर के अवयव मिलकर अपना काम ठीक तौर पर नहीं कर सकते जैसा वे निरोगी शरीर में किया करते हैं। सभ्यता के बढ़ने से स्वास्थ्य ख़राब होता है और सचमुच यही ख़राबी क्षय-रोग का मुख्य कारण है।

क्षय के कीड़े क्या नुक़सान पहुँचाते हैं, इस पर अभी बड़े बड़े डाक्टरों का मत-भेद है। कीटाणु-विज्ञान-विशारद (bacteriologists) अब भी दावे के साथ कहते हैं कि कीड़े रोग और रोग का आधार (soil) दोनों उत्पन्न करते हैं। डाक्टर मुथ्यू का कथन है कि क्षय के प्रायः ऐसे ऐसे रोगी देखने में आये हैं जिनमें बड़े बड़े कीटाणु-विज्ञान-विशारद कीड़े नहीं निकाल सके। उनकी राय में इस रोग की जड़ शारीरिक विकार है, और शारीरिक विकार का कारण मानसिक दुर्बलता है। मानसिक विकार से शरीर के कोठे अपना काम ठीक तौर पर नहीं कर सकते। यही सम्मति और बहुत से चिकित्सकों की होने लगी है। कहने का सारांश यह है कि जब तक मानसिक विकार और अवयवों की ख़राबी न हो, तब तक कीड़े कोई हानि नहीं पहुँचा सकते। डाक्टर साहब का इतने दिनों का अनुभव बतलाता है कि यह बीमारी गन्दे रहन-सहन से पैदा होती है, कीड़ों से नहीं।

पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार से हिन्दुस्तान के लोग भी गांवों से खिंचकर शहरों में बसने लगे हैं। शहरों में भीड़-भड़क्का अधिक होने, देर तक लगातार काम करने और

डा० चौरी मुथ्यू द्वारा आविष्कृत लम्प जिससे फारमेलडीहाइड नामक गैस निकलकर कमरे में भरती है।

मदिरा के सेवन से हिन्दुस्तान में भी क्षय-रोग की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। डाक्टर मुथ्यू हिसाब लगाकर बतलाते हैं कि प्रतिवर्ष ९,००,००० (नौ लाख) से १०,००,००० (दस लाख) तक प्राणी इस भयङ्कर रोग की भेंट होते हैं।

कलकत्ता, बम्बई, मदरास और दूसरे हिन्दुस्तानी शहरों की मृत्यु-संख्या जन-संख्या के लिहाज़ से विलायत के बरमिंघम, ग्लासगो और अन्य व्यापारिक नगरों की अपेक्षा बढ़ी हुई है।

हिन्दुस्तान में स्त्रियाँ क्षय-रोग से मर्दों से भी अधिक मरती हैं। ऐसा दृश्य उन श्रेणियों के मनुष्यों में दिखाई देता है जिनके यहाँ परदे का प्रचार है। बालक उत्पन्न कर सकनेवाली नवयुवतियाँ विशेष कर इस रोग से आक्रान्त रहती हैं। इसीलिए अभाग्यवश देश की दुहरी हानि हो रही है।

सबसे अधिक शोक इस बात का है कि इतने बड़े हिन्द देश में इस प्राण-घातक रोग से पीड़ित रोगियों की चिकित्सा करने के लिए केवल चार या पाँच आरोग्याश्रम हैं। डाक्टर मुथ्यू इस सम्बन्ध से हिन्दुस्तान में कई बातों का होना अत्यावश्यक बतलाते हैं। प्रथम तो एक हेड आफ़िस खोला जाय और फिर उसकी शाखायें प्रान्तों और नगरों में रक्खी जावें ताकि लोगों को क्षय-रोग के उत्पन्न होने और बढ़ने के कारण, और अच्छे होने के सुलभ साधन बराबर मालूम होते रहें। दूसरे, कई एक अस्पताल खोले जायँ जिनमें बहुत से ऐसे कमरे हों जिनमें रोगी के सम्बन्धी रह सकें और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, मुसलमान, और ईसाई आदि जातियों के लोग अपनी वर्ण-व्यवस्थानुसार भोजन अलग अलग पका सकें। तीसरे, शहरों के बाहर और गाँवों से लगे हुए आरोग्याश्रम खोले जायँ जिनमें क्षय-रोगाक्रान्त मनुष्य सपरिवार रहकर दोनों काम कर सकें—अपनी दवा करें और काम करके परिवार की सहायता भी कर सकें।

डाक्टर मुथ्यू की बातें वस्तुतः विशेष ध्यान देने योग्य हैं। यूरोप और अमेरिका के लोग क्षय को सफ़ेद प्लेग (white plague) के नाम से पुकारते हैं और उसको निर्मूल करने का प्रयत्न कर रहे हैं। हम हिन्दुस्तानियों का भी कर्तव्य है कि इस प्राण-घातक रोग की हानियों को समझें और अपने देश से इसे निर्मूल करने का यथा-साध्य प्रयत्न करें।

सन्त निहालसिंह (लन्दन)

विविध विषय।

१—सफ़ाई के महकमे की रिपोर्ट।
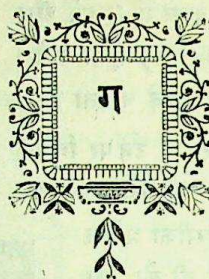
गवर्नमेंट, हर साल, सफाई के महकमे की रिपोर्ट प्रकाशित करती है। गत वर्ष की रिपोर्ट अभी हाल में निकली है। इस रिपोर्ट में और और बातों के सिवा इस प्रान्त के निवासियों की जन्म और मृत्यु-संख्या रहती है; किस रोग से कितना नर-नाश हुआ तथा सफ़ाई और रोग-निवारण के लिए क्या क्या यत्न किये गये, इसका भी वर्णन रहता है। पिछले साल की रिपोर्ट के पाठ से ताप, सन्ताप, परिताप और अनुताप सभी कुछ होता है। हमारे प्रान्त की जितनी आबादी है प्रायः उतनीही, आबादी अँगरेज़ लोगों की विलायत अर्थात् 'ग्रेट-ब्रिटन' के संयुक्त-राज्य की भी है। विश्वास कीजिए, यह जो युद्ध अभी ५ वर्षों तक होता रहा है उसमें विलायत-वासी जितने मनुष्यों का नाश हुआ, उससे भी अधिक नर-नाश इस प्रान्त में गत वर्ष रोग से हुआ! आप जानते हैं, कितने मनुष्य मरे? कोई ४० लाख! अर्थात् आबादी का द्वादशांश एक ही वर्ष में नष्ट हो गया। इन्फ़्लुयञ्ज़ा और ज्वर से ही ३२ लाख से ऊपर मनुष्य मर गये; बाक़ी और रोगों से। जितने बच्चे पैदा हुए, उनसे कहीं अधिक मनुष्य मरे। पैदा तो हुए केवल २० लाख, पर मरे ४० लाख, अर्थात् दूने! अभी तक प्लेग और हैज़ा ही की कृपा हम पर थी, अब तो उनके साथी दो और उत्पन्न हो गये हैं। उनके नाम हैं—इन्फ़्लुयञ्ज़ा और बार बार आनेवाला बुख़ार (relapsing fever) ज़रा सोचिए तो। चालीस लाख मनुष्य तो हम लोगों से सदा के लिए बिछुड़ ही गये। न मालूम कितने लाख मनुष्य बीमार होने पर, हफ़्तों और महीनों, यम-यन्त्रणा भोगकर अच्छे हुए होंगे। इनको कितनी तकलीफ़ें उठानी पड़ी होंगी, कितना ख़र्च करना पड़ा होगा, इनके काम-काज की कितनी दुरवस्था और हानि हुई होगी। यह सब घाते में।

सूबे भर का हिसाब लगाने से मालूम हुआ कि फ़ी

एक हज़ार आदमी पीछे ८२ से कुछ अधिक आदमी मर गये। किसी किसी ज़िले में तो इतना प्राणनाश हुआ कि सुनकर रोमाञ्च होता है। आगरा सबसे अधिक अभागी निकला। वहाँ फ़ी एक हज़ार आदमियों में कोई १४४ आदमी चल बसे! बरेली में ११४, फ़र्रुख़ाबाद में ११३, शाहजहाँपुर और सुलतांपुर में १०६ मरे—फ़ी एक हज़ार पीछे। और भी ऐसे कितने ही ज़िले हैं जिनकी मृत्यु-संख्या प्रति-सहस्र १०० से अधिक हो गई। बच्चे बहुत ही अधिक मरे। हिसाब लगाने से ज्ञात हुआ है कि विलायत में मृत्यु-संख्या का जो औसत पड़ता है, उससे लगभग ४½ गुना अधिक मनुष्य इस प्रान्त में परलोक सिधारे। ईश्वरीय कोप, और क्या कहें। सरकार तो उपाय भर सफ़ाई का ख़याल रखती ही है और बड़े बड़े शहरों और क़सबों में शफ़ाख़ाने खोलकर दवा-पानी का प्रबन्ध भी करती ही है। और ज़रूरी कामों—मसलन् फ़ौज और रेल से अगर कुछ अधिक रुपया बच जाता है तो इस मद में वह और भी ख़र्च कर देती है। पर नहीं बचता। लाचारी है। फिर भी पिछले साल उसने मामूली से कुछ अधिक ख़र्च किया भी था। इस साल भी इन्फ़्लुयञ्ज़ा के आगमन की आशङ्का है। इस कारण सरकार पहले ही से लोगों को सचेत कर रही है। मकान साफ़ रक्खो, भीड़ में मत धँसो, मेले-ठेले में मत जाओ, नमक मिले हुए पानी से कुल्ले करो, उसकी बतलाई हुई दवायें पानी में घोलकर उस पानी को नाक से सुड़को। ये सब सरकार ही के बड़े बड़े अफ़सरों की बताई हुई तरकीबें तो हैं।

२—महाभारत का एक नया संस्करण।

महाभारत बहुत बड़ा ग्रन्थ है। प्राचीन ग्रीस देश में होमर नाम का एक महाकवि हो गया है। उसके बनाये हुए इलियड और आडेसी नाम के दो ऐतिहासिक महा-काव्य, पश्चिमी देशों में, बहुत प्रसिद्ध हैं। वे दोनों मिलकर जितने बड़े हैं, हमारा महाभारत उनसे बहुत नहीं, तो सात-आठ गुना बड़ा ज़रूर होगा। महाभारत में कुरुक्षेत्र के महायुद्ध का विस्तृत वर्णन ही नहीं, और भी सैकड़ों-हज़ारों बातें हैं। राजनीति, कूटनीति, धर्म्मनीति, सदाचार, इतिहास, पौराणिक गाथायें—न मालूम उसमें क्या क्या है। वह ज्ञातव्य बातों का भव्य-भाण्डार अथवा अक्षय्य कोश है। इसीसे उसकी इतनी महिमा है। वह पञ्चम वेद कहाता है। उसके रचयिता वेदव्यास नाम से विश्रुत हैं। भारत की प्राचीन सभ्यता, कलाकुशलता, ऊर्जितावस्था और शक्ति का यथेष्ट परिचय यदि कहीं मिल सकता है तो महाभारत में ही मिल सकता है। इस ग्रन्थ के अनुवाद अनेक देशी और विदेशी भाषाओं में हो चुके हैं। श्रीयुत प्रतापचन्द्र मज़ूमदार ने इसे अँगरेज़ी भाषा में भी अनुवादित कर डाला है। बाबू रमेशचन्द्र दत्त का रचा हुआ इसके मुख्य कथांश का पद्यात्मक अनुवाद भी अँगरेज़ी भाषा में विद्यमान है। पर इतने से ही भारतीय विद्वानों को सन्तोष नहीं। पूने में भाण्डारकर इन्स्टीट्यूट नामक पुस्तकालय से और गवेषणालय से सम्बन्ध रखनेवाली जो विद्वत्परिषद् है उसके कितने ही सभासदों ने अब इस ग्रन्थ-रत्न का एक बहुत ही बढ़िया संस्करण निकालने का पक्का इरादा कर लिया है। इस काम के लिए एक समिति सङ्गठित हुई है। वह देशान्तरों तक में महाभारत की हस्त-लिखित पोथियों का संग्रह और उनके पाठान्तर आदि का ज्ञान प्राप्त करेगी। महाभारत से सम्बन्ध रखनेवाले प्राचीन लेख, प्राचीन पुस्तकें, प्राचीन काव्य आदि, जो जहां मिलेंगे, एकत्र किये जायँगे। उन सबकी सहायता से, कोई १५ वर्ष के सतत परिश्रम से, इस ग्रन्थ का यह नया संस्करण प्रकाशित होगा। इस काम में लगभग ३ लाख रुपये का ख़र्च कूता गया है। एक हज़ार रुपये महीने से कम ख़र्च न पड़ेगा। कम से कम १० जिल्दों में यह ग्रन्थ समाप्त होगा। प्रत्येक जिल्द में एक हज़ार पृष्ठों से भी अधिक पृष्ठ रहेंगे। दाम पूरे ग्रन्थ का २०) होगा। इस काम के लिए जो समिति बनी है उसमें विद्वानों और पण्डितों के सिवा कुछ लोग—उदाहरणार्थ औंध-राज्य के सरदार—ऐसे भी हैं जो विद्वान् भी हैं और श्रीमान् भी। ईश्वर इस समिति को अपने इस सदुद्योग में सफलता दे!

३—कानपुर की विस्तार-वृद्धि।

कानपुर अभी कल का शहर है। कोई सवा सौ वर्ष पहले वह एक छोटी सी ग्रामावलि के गर्भ में था। १७७८ ईसवी के पहले वर्तमान कानपुर के बदले कुछ छोटे छोटे

गांव मात्र थे। पूर्वनिर्दिष्ट वर्ष, ईस्ट इंडिया कम्पनी ने, कानपुर में, गङ्गा के किनारे, एक कारख़ाना खोला। तब उसकी रक्षा के लिए फ़ौज रखने की ज़रूरत हुई। १७७३ ईसवी में कम्पनी और अवध के नवाब-वज़ीर के बीच, फ़ैज़ाबाद में, जो सन्धि-स्थापना हुई थी उसकी शर्तों के अनुसार अवध की रक्षा का भार कम्पनी ने अपने ऊपर लिया था। इसलिए उसे बिलग्राम में फ़ौज रखनी पड़ी थी। वह फ़ौज अब कानपुर को भेज दी गई और वहीं रक्खी गई। तभी से कानपुर कम्पू कहाया, जो अब तक प्रसिद्ध है। पुराने कानपुर से जाजमऊ तक कोई १२ मौजों की ज़मीन लेकर छावनी बनाई गई। कम्पनी का कारख़ाना खुला, फ़ौज रक्खी गई, लूट-पाट का डर जाता रहा, गङ्गा में नावों के ज़रिये माल आने-जाने लगा। व्यापार बढ़ा। दूर दूर से बनिये, महाजन, व्यापारी आ आकर बसने लगे। ज़िले की कचहरियाँ पहले छावनी में थीं। १८११ से १८१६ तक वे बिठूर में रहीं। उसके बाद, कानपुर से मिले हुए नवाबगंज नामक क़सबे में उठ आईं। १८५७ ईसवी के ग़दर के बाद वे शहर में लाई गईं और गङ्गा के किनारे, कुछ दूर पर, उनके लिए इमारतें बनीं।

दिन पर दिन शहर की उन्नति होती गई। नये नये कारख़ाने खुलते गये। ग्वालटोली, ख़लासी-लैन और परमट बाज़ार में कारख़ानों के कर्म्मचारी उमड़ चले। जब वहाँ काफ़ी जगह न मिली तब उनमें से सैकड़ों हज़ारों आदमी शहर में रहने लगे। इधर शहर की भी आबादी बढ़ रही थी। इतने में रेलों ने अपना जाल बिछाया फल यह हुआ कि जिस कानपुर में, १८४७ ईसवी में, छावनी को छोड़कर, १, ०८, ७९६ मनुष्य थे, उसी कानपुर में, १९११ में, १, ९५, ४९८ मनुष्य हो गये। रहने को जगह मिलना कठिन हो गया। गन्दगी बढ़ी। बीमारी बारहों महीने रहने लगी। मकानों का किराया बेतरह बढ़ गया।

इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए गवर्नमेंट ने एक कमिटी बनाई। उससे कहा गया, बताइए क्या किया जाय। दो-तीन वर्ष बाद उसने रिपोर्ट दी। वह प्रकाशित हो गई है। कमिटी की राय है कि ग्वालटोली, ख़लासी-लैन और परमट बाज़ार नष्ट कर दिये जायँ। वहाँ, तथा और भी इधर-उधर, दूर तक, बँगले बनें अर्थात् सिविल लाइन्स का विस्तार बढ़ाया जाय। उधर छावनी का भी कुछ भाग इस काम के लिए ले लिया जाय। कारख़ाने सब उठाकर बी० बी० सी० आई० और ई० आई० रेलवों के बीच की त्रिकोणाकार भूमि में लाये जायँ। जो सड़क कानपुर से हमीरपुर को जाती है उसके और जी० आई० पी० रेलवे के बीच की त्रिभुज-भूमि पर कारख़ानों में काम करनेवाले कर्म्मचारियों के लिए मकान बनाये जायँ। हमीरपुर की सड़क और पूर्व ओर ई० आई० रेलवे के बीच की जगह नगर-निवासियों को मकान आदि बनाने के लिए दी जाय। कई सड़कें नई निकाली जायँ। रेलों की लैनें और नहर पार करने के लिए तीन-चार पुल भी बनें। बीच में सब्ज़ बाग़ के लिए जगह छोड़ी जाय। और भी दो तीन खुली जगहें योंही छोड़ दी जायँ।

इन सब कामों के लिए अभी कई वर्ष चाहिए। कमिटी की सलाह के अनुसार काम हुआ तो कानपुर की बस्ती और भी बहुत अधिक हो जायगी; साथ ही उसके उद्योग-धन्धों और व्यापार की भी वृद्धि होगी। उसके सौन्दर्य्य की भी बढ़ती होगी। शहर देखने लायक़ हो जायगा। जिनके मकान और ज़मीन सरकार ले लेगी उन्हें मुआविज़ा ज़रूर ही मिलेगा। पर कितने ही ज़मींदारों और ज़मीन तथा मकानों के मालिकों की हानि भी होगी। हमीरपुर की सड़क के इर्द गिर्द की ज़मीन आज-कल बड़ी महँगी हो रही है। उसके दाम एक हज़ार रुपये बीघे तक हो गये हैं। सरकार इतने दाम थोड़े ही देगी। वह तो अपने निश्चित निर्ख़ ही के हिसाब से मुआविज़ा देगी। जो ज़मीन मकान बनाने के लिए म्यूनिसिपैलिटी लोगों को देगी उसकी क़ीमत वह लेगी। इस क़ीमत का औसत अन्दाज़ा कमिटी ने ४) फ़ी गज़ मुरब्बा रक्खा है। इस तरह, उसका ख़याल है कि ६० फुट लम्बी और ४५ फुट चौड़ी ज़मीन के दाम ३००) देने पड़ेंगे।

४—पुनर्जन्म का स्पष्ट प्रमाण।

रियासत धौलपुर की तहसील सेंपऊ में तसीमों ग्राम का एक ग्राम है। इस ग्राम में मूला नाम का एक वैश्य रहता था। लगभग ५ वर्ष हुए कि इस वैश्य को उसी ग्राम के गुलाबसिंह ठाकुर ने क़त्ल कर डाला था। गुलाबसिंह को आजन्म कारावास की सज़ा हुई, और वह इस

समय धौलपुर जेल में सज़ा भुगत रहा है। तसीमों ग्राम के निकट ही चार मील की दूरी पर नौनेरा ग्राम है। यहां पर एक वैश्य का लड़का इस समय लगभग ५ वर्ष की अवस्था का है, जो कहता है कि मैं तसीमों का मूला हूँ। मुझे पहले जन्म में गुलाबसिंह ठाकुर ने मार डाला था। वह अपने पहले घर के सब चिह्न बताता है, और मूला-सम्बन्धी सब बातों का पता देता है। इस बात को आम तौर पर सुनकर मैंने तहसीलदार साहब सेंपऊ से हाल दरयाफ़्त किया। उन्होंने तहक़ीक़ात करके उत्तर दिया है।

जो पत्र मैंने तहसीलदार साहब को लिखा था, और जो पत्र उन्होंने उत्तर में मुझे लिखा है, उन दोनों पत्रों की अक्षरशः नक़ल नीचे दी जाती है। इनके पढ़ने से ज्ञात होगा कि मामला झूठा नहीं है। सम्भव है कि वह कुछ बढ़ाकर लिखा गया हो, परन्तु निर्मूल नहीं है।

पहला पत्र

इनायत व करमफ़रमाये मन तहसीलदार साहब, तसलीम। यहां बहुत गर्म ख़बर मशहूर हो रही है कि मौज़े नौनेरा परगने कोलारी में एक बक्काल के यहां एक लड़का पैदा हुआ है, जिसकी उम्र पांच साल के क़रीब कही जाती है। किसी मौक़े-शादी पर उसने गुलाबसिंह, क़ातिल-मूला की औरत को देखकर जब कि वह मुताबिक़ रिवाज देह के उसके पास किसी रसम के अदा करने के लिए गई, यह कहा कि तू मेरे दुश्मन की औरत है। मैं तुझे अपने वास्ते यह रसम न अदा करने दूँगा। चुनांचे उस वक़्त से यह चरचा आम हुआ। वह लड़का कि जो अपने आपको मूला-मक़तूल होना ज़ाहिर करता है, अपने उस मकान पर लाया गया जिसमें बहैसियत मूला रहता था। उसने अपने अज़ीज़ो-अक़ारिब को शनाख़्त करके बतलाया और अपना क़र्ज़ा लोगों के ज़िम्मे होना ज़ाहिर किया, और कुछ दफ़ीना भी ज़ाहिर किया, कि जो बरामद हुआ। और एक लकड़ी अपने बांधने की अपने हमराह लिवा ले गया। दर असल इस शोहरत की क्या असलियत है, इसकी तसदीक़ आपके ज़रिये से चाहता हूँ। इसमें आपको तक़लीफ़ तो ज़रूर होगी; मगर इस तकलीफ़ को गवारा फ़रमाकर अगर मुफ़स्सिल हालात से आप मुत्तला फ़रमावें तो आपकी इस इनायत और मेहरबानी का मशकूर व ममनून हूँगा। ३० जुलाई १९१९।

दूसरा पत्र (उत्तर)

जनाबआली

हस्ब वरूद चिट्ठी हुज़ूरवाला इस मामले का दरयाफ़्त हाल किया गया। और लड़का व वालिद-लड़का व बक्कालान तसीमों एक जलसा बुलवाये गये, तो वाक़आत इस तरह पर ज़ाहिर हुए हैं।

मुसम्मी मूला बक्काल सकनः तसीमों चैत अव्वल सुदी पांचें संवत् १९७२ को क़त्ल हुआ। और यह लड़का चैत दोयम सुदी द्वादशी संवत् १९७२ में बमौज़े नौनेरा बख़ाना बूचा-नामी बक्काल पैदा हुआ है। जब यह लड़का कुछ बोलने लगा, तो अक्सर गाहे-बगाहे अपनी मां और दादी से ज़िक्र करता था कि मैं मूला तसीमों का हूँ। मगर किसीने ग़ौर नहीं किया। लड़कों में खेलता हुआ भी कहता था कि मेरे घोड़ी है, हवेली है। वग़ैरः वग़ैरः गाहे-बगाहे कहना शुरू किया। इन्हीं अय्याम में इस लड़के के पड़ोस में एक ठाकुर सकनः नौनेरा के यहां शादी थी। और बवजह रिश्तेदारी, गुलाबसिंह ठाकुर क़ातिल की औरत इस शादी में शरीक हुई थी। यह ब्याह में पूरियां बेल रही थी कि यह लड़का भी वहां खेलता हुआ चला आया और इस औरत को देखकर बोला कि यह तो गुलाबसिंह की ठकुरानी है। और उसने मुझे मारा था।

कहते हैं कि गुलाबसिंह की ठकुरानी ने यह सुनकर लड़के से कुछ दरयाफ़्त भी किया; मगर यह लड़का फिर न बोला। और बाहर चला आया। यह बात अक्सर लोगों में फैल गई। और लड़के के मा-बाप ने ज़ियादहतर हाल दरयाफ़्त करना शुरू किया। तो कहा जाता है कि इस लड़के ने अपना नाम मूला-मक़तूल बतलाया। और कहा है कि गुलाबसिंह ने मुझको मार डाला था, गरदन में तलवार मारी थी। मेरा एक बेटा है। तसीमों से मैं किसी गाड़ी पर यहां आ गया था। वग़ैरः वग़ैरः। यह शोहरत मौज़े तसीमों में भी पहुँच गई। नौनेरा से तसीमों सिर्फ़ दो कोस के फ़ासले पर है। शोहरत होने पर मूला-मक़तूल का बेटा और हक़ीक़ी भाई दोनों नौनेरा में आये। तो लड़के

ने उन दोनों को पहचान लिया। और उनके सवालों का जवाब तसल्लीबख़्श देता रहा। जब उन लोगों को पूरा इतमीनान हो गया, तो मक़तूल का लड़का और भाई उस लड़के को अपने हमराह मौज़े तसीमों में ले आये। और गांव के बाहर से लड़के को पैदल छोड़ दिया गया; और उससे कह दिया गया कि मूला है तो मकान पर चला चल। चुनांचे यह लड़का गांव के अन्दर अपने मकान (हवेली) पर चला गया। और अपनी पुरानी हवेली भी बतला दी गई। इसी तरह से बूचा बौहरा वग़ैरः की हवेली भी बतला दी गई। और बूचा बौहरा व बीधा व मीका वग़ैरः आदमियों को भी इशारे से बतला दिया गया। और अपने मकान में जाकर वह जगह भी बतला दी गई, जहां वह रोज़मर्रा बैठकर रसोई के कोने में खाना खाया करता था। हालाँ कि उस रोज़ उस जगह खाट वग़ैरः रखी हुई थी। खाट में से गुज़रकर जाय दरयाफ़्त शुदा पर जा बैठा था। और इसी तरह उसकी लाठी जिसको वह हमेशा बांधता था, चन्द लाठियों में मिलाकर उसके सामने रख दी गई, तो उसने अपनी लाठी उठा ली। बल्कि वापसी पर यह लड़का लाठी अपने साथ ही ले आया है। और और बातें भी बक़्क़ालान तसीमों उसकी क़ाबिल इतमीनान बयान करते हैं, जो उन्होंने मौक़े पर दरयाफ़्त कीं। बक़्क़ालान तसीमों को पूरा पूरा इतमीनान हो गया है। आपकी चिट्ठी की तामील में, अव्वल मैंने लड़का और वालिद लड़का व बूचा बौहरा वग़ैरह को सेंपऊ बुलवाकर इस लड़के से दरयाफ़्त हाल किया, तो मुझको उसने कुछ जवाब नहीं दिया। उस वक़्त यह लड़का आशोब-चश्म की वजह से ज़रूर बेचैन था।

जब यह लड़का दरवाज़े गढ़ी पर पहुँचा था, तो कहते हैं कि उसने क़िलेदार तहसील और जमादार जङ्गलात वग़ैरः को पूछने पर इशारे से बतला दिया था। यानी शनाख़्त किया। इसके बाद मैं ख़ुद इतवार के दिन मौज़े नौनेरा में गया। और लड़के से चन्द सवाल किये गये, मगर कुछ जवाब नहीं दिया। यह बतलाना उसका कि मूला हूँ, गुलाबसिंह ने मारा था, तलवार मारने का निशान गरदन पर हाथ से कर देना क़ाबिल इतमीनान नहीं। क्योंकि रोज़मर्रा के पूछने से यह बातें उसको हिफ़्ज़ हो चुकी हैं। मसलन अगर कोई उससे पूछता है कि गुलाबसिंह ने तेरे कहां तलवार दी थी। तो गरदन पर हाथ रखकर बताता है कि यहां तलवार दी थी। मगर बक़्क़ालान तसीमों को पूरा इतमीनान हो गया है। जवाबन् अर्ज़ है। ख़ुसूसन मुकर्रर यह भी अर्ज़ करना नामुनासिब न होगा कि मैंने उस लड़के से यह भी सवाल किया था कि गुलाबसिंह के बाप का क्या नाम है; मगर उसने कुछ जवाब नहीं दिया था।

कन्नोमल एम० ए०

५—सम्पादकता की सनद

लन्दन-विश्व-विद्यालय ने सम्पादकता की सनद स्थापित की है जो परीक्षार्थियों को उनकी सफलता पर दी जायगी। मैट्रिक या नान-मैट्रिक प्रार्थी को दो वर्ष पढ़ना होगा, पर ग्रेजुएट का अध्ययन-काल कुछ कम रहेगा। यह परीक्षा सम्पादक-सङ्घ, शिक्षा समिति, नियुक्ति-विभाग तथा श्रमजीवी दल की सम्मति से स्थापित की गई है। इसमें वे अफ़सर और सैनिक अधिकतर लिये जायँगे जो आज-कल खाली हैं और जिनकी प्रवृत्ति साहित्य-सेवा की ओर है। विश्व-विद्यालय ने इस परीक्षा के शिक्षा-पत्र में ऐसे विषय रक्खे हैं जिनसे विद्यार्थी का आधुनिक ज्ञान बढ़े और उसे समाचार-पत्रों में लेख लिखने की योग्यता प्राप्त हो। इन विषयों में शार्ट हैंड और टाइप-राइटिङ्ग न रहेंगे, पर विद्यार्थी को इनमें यथासम्भव योग्य होना पड़ेगा।

पाठ्य-विषय दो भागों में विभक्त होगा, जिनमें से एक आवश्यक रहेगा और दूसरे में इच्छानुसार विषय लिये जा सकेंगे। आवश्यक पाठ्य-विषयों में अँगरेज़ी-रचना, समाचारपत्रों के लिए लेख लिखने का अभ्यास, विज्ञान का साधारण इतिहास, राजनैतिक विचारों का इतिहास, समालोचना के सिद्धान्त और उनका व्यवहारी उपयोग रहेगा। इनके अतिरिक्त आगे लिखी ज्ञान की शाखाओं में से कोई भी तीन शाखायें चुननी होंगी—अँगरेज़ी-साहित्य और समालोचना, इतिहास, आधुनिक भाषायें (फ़्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, इटालियन और रशियन में से एक, अथवा विशेष अवस्था में, दो), राजनैतिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, प्राणिशास्त्र, पदार्थ-रसायन-शास्त्र, तत्त्वज्ञान,

और मनोविज्ञान। विद्यार्थी यूनिवर्सिटी कालेज, किंग्ज़ कालेज, ईस्ट लन्दन कालेज, बेडफोर्ड कालेज और लन्दन-अर्थशास्त्र-शाला में पढ़ सकेंगे।

विद्यालय का कार्य आगामी अक्टूबर से आरम्भ होगा और प्रतिवर्ष परीक्षा होगी। प्रथम परीक्षा सन् १९२१ में ली जायगी।

बहुत अच्छा हो, यदि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन इस प्रकार की परीक्षा का प्रबन्ध कर हिन्दी-सम्पादक तैयार करे, जिनका आज-कल बहुत अभाव है।

६—स्त्रियों के राजनैतिक अधिकार।

यूरोप में स्त्रियों को राजनैतिक अधिकार देने की चर्चा अनेक वर्षों से हो रही है और इस विषय में बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त हुई है। स्त्रियों ने अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए वहां कुछ समय पूर्व बड़ा आन्दोलन किया था और सत्याग्रह की भी शरण ली थी। गोसाईंजी ने ठीक ही कहा है—"अति सङ्घर्षण करे जो कोई। अनल प्रकट चन्दन तें होई॥"

आज-कल भारतवर्ष की शिक्षित स्त्रियों को भी इस बात की चिन्ता हुई है कि हमें राजनैतिक अधिकार दिये जायँ। इनकी अधिकार-हानि का एक उदाहरण यह है कि हमारे देश में स्त्रियां वकालत नहीं कर सकतीं, यद्यपि कई महिलायें ऐसी हैं जिन्होंने क़ानून की परीक्षायें पास की हैं। उनका कथन है कि जब स्त्रियां अन्य सरकारी काम-काज जैसे डाक्टरी, मास्टरी, इन्सपेक्टरी, आदि कर सकती हैं, तब उन्हें वकालत अथवा कौंन्सिल की मेम्बरी करने का अधिकार देने में क्यों आगा-पीछा किया जाता है। इस विषय में आन्दोलन करने के लिए यहां से श्रीमती सरोजिनी नैडू प्रभृति सुशिक्षित महिलायें इँगलेंड गई हुई हैं। देखिए, इनके उद्योग का क्या फल होता है।

पुस्तक-परिचय।

१—श्रीश्रीरामकृष्ण-कथामृत; प्रथम भाग—इस बड़े आकार की पुस्तक की पृष्ठ-संख्या ३१५ है। छपाई और काग़ज़ साधारणतः अच्छा है। मूल्य है डेढ़ रुपया, मरचेंट प्रेस, कानपुर, को लिखने से मिलती है।

बङ्गाल में रामकृष्ण परमहंस नाम के एक पहुँचे हुए महात्मा हो गये हैं। सर्वश्रुत स्वामी विवेकानन्द उन्हींके शिष्य थे। परमहंसजी कोई नामी विद्वान् न थे; पर आत्म-तत्त्व के वे पारगामी पण्डित थे। उनमें पारमार्थिक और पारलौकिक ज्ञान की मात्रा बहुत अधिक थी। भक्ति-भाव के उन्मेष से वे बात की बात में समाधिमग्न हो जाते थे। बड़े बड़े ज्ञानी और विज्ञानी उनकी सेवा करने और उनके समागम से लाभ उठाने के लिए उन्हें घेरे रहते थे। परमहंसजी साधारण बातचीत में भी लौकिक दृष्टान्तों के द्वारा ऐसी ऐसी पारमार्थिक बातें कह देते थे जैसी बड़े बड़े शास्त्रज्ञों और पण्डितों को न सूझ सकती थीं। इन बातों या कथाओं को परमहंसजी के शिष्य लिख लिया करते थे। बातें बँगला में होती थीं। उनका सङ्ग्रह बँगला भाषा में निकले बहुत समय हुआ। उसकी कई आवृत्तियां निकल चुकी हैं। प्रस्तुत पुस्तक उसी सङ्ग्रह के हिन्दी अनुवाद का पहला भाग है। अनुवादक हैं बाबू हरनारायण बाथम, एम० ए०। पुस्तक की कथायें सचमुच ही अमृतवर्षिणी हैं। उनके "कथामृत" होने में कुछ भी सन्देह नहीं। पुस्तक पढ़ने और उसकी कथाओं का अमृत जी भरकर पीने योग्य है। उससे अजीर्ण होने का डर नहीं। पुस्तकारम्भ में परमहंस जी का एक हाफ़-टोन चित्र भी है।

❋

२—भारतवर्ष में सरकारी नौकरियाँ—इसकी पृष्ठ-संख्या २०० है। छपाई और काग़ज़ साधारण है। मूल्य १२ आने है। भारतबन्धु कार्यालय, हाथरस, से यह प्रकाशित हुई है। वहीं से मिल सकती है। यह एक अँगरेज़ी पुस्तक (The Public Services in India) का हिन्दी अनुवाद है। उसके लेखक पण्डित हृदयनाथ कुंजरू, बी० ए०, बी० एस-सी० हैं। अनुवादक हैं—पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०। इस कारण भाषा-विषयक शिकायत करने के लिए बहुत ही कम जगह है। पुस्तक राजनैतिक है। "इस छोटी सी पुस्तक के लिखने में मेरा मुख्य उद्देश यह बतलाने का है कि ऊँचे ऊँचे सरकारी पदों में बे-रोक-टोक नियत किये जाने के अपने जन्मसिद्ध अधिकार को व्यक्त करने के लिए भारतवासियों ने क्या क्या प्रयत्न किये हैं और अधिक महत्त्वपूर्ण सरकारी नौकरियों के

सम्बन्ध में आज-कल उनकी क्या अवस्था है"—लेखक के इस एक वाक्य से ही पाठक समझ जायँगे कि इस पुस्तक में क्या है और वह कुछ महत्त्व भी रखता है या नहीं। इसे पढ़ने से साधारण पाठकों को ऐसी भी कितनी ही बातें मालूम होंगी जो उन्हें और किसी भी मार्ग से, हिन्दी में, बिना विशेष झंझट के, कदापि न मालूम हो सकतीं।

❋

३—अष्टम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (इन्दौर) का कार्य्य-विवरण—यह विवरण सरस्वती के आकार का है। साधारण काग़ज़, पर अच्छे टाइप में छपा है। सम्मेलन की स्वागत-कारिणी समिति ने इन्दौर से इसे प्रकाशित किया है। उसीको लिखने से शायद इसकी कापियां मिल सकती हैं। मूल्य ज्ञात नहीं।

इस विवरण के दो भाग हैं। पहले भाग की पृष्ठ-संख्या ८० है। चार-पांच बड़े बड़े सुन्दर हाफ़टोन चित्रों से अलङ्कृत है। सम्मेलन के कार्य्य-कलाप का पूरा विवरण इसमें है। प्रदर्शिनी का भी विवरण है। इसके सिवा कई परिशिष्ट भी हैं। दूसरे भाग की पृष्ठ-संख्या १८६ है। इस भाग में उन सब लेखों का समावेश है जो सम्मेलन के लिए लिखे गये थे। लेख अनेक विषयों के हैं। सुयोग्य लेखकों के लिखे हुए हैं। पढ़ने और शिक्षा-ग्रहण करने लायक़ हैं। विवरण के ये दोनों भाग हिन्दी-प्रेमियों के पुस्तक-सङ्ग्रह की शोभा बढ़ा सकते हैं।

❋

४—चेतसिंह और काशी का विद्रोह—इसकी पृष्ठ-संख्या ६० और मूल्य ६ आने है। कानपुर के प्रताप प्रेस ने इसका प्रकाशन किया है। उसीसे पुस्तक मिल सकती है। इसे श्रीयुत सम्पूर्णानन्द ने काशी में ही बैठकर लिखा है। अँगरेज़ी की कई पुस्तकें देखकर आपने इसकी रचना की है। पर नक़ल किसीकी नहीं की। अपनी बुद्धि से ही विशेष काम लिया है। घटनाओं का वर्णन करके अपनी निज की राय भी लिखी है। इस पुस्तक से काशी-राज्य के पूर्वेतिहास का भी ज्ञान प्राप्त हो सकता है और वारन हेस्टिंग्ज़ तथा चेतसिंह के कारनामों के सिवा राजा मनसाराम, राजा बलवन्तसिंह और अन्य भी अनेक पुरुषों का बहुत कुछ हाल मालूम हो सकता है। विद्रोह का वर्णन तो पुस्तक का प्रधान अंश ही है। वह तो पढ़ने को मिलता ही है। इस विस्मृतप्राय घटना के वर्णन को फिर से सुना देना ऐतिहासिक दृष्टि से प्रशंसनीय हुआ है।

❋

५—नर्म्मदा-परिक्रमा-वर्णन—इस १६६ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य १) है। काग़ज़ अच्छा, पर छपाई साधारण है। लेखक हैं—पण्डित दामोदर मोरेश्वर लघाटे। आर० एल० देसाई, फोटोग्राफ़र, लश्कर—ग्वालियर—से मिलती है। नर्म्मदा की परिक्रमा स्वयं करके लेखक ने इस पुस्तक की रचना की है। आरम्भ में पहले आपने नर्म्मदा की एक स्नान-यात्रा का चित्र दिया है, फिर अपना भी दे दिया है। उसके आगे परिक्रमा-सम्बन्धी एक नक़शा देकर उसमें प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थान तथा रेलवे-लैनें भी आपने चिह्नित कर दी हैं। फिर आपने परिक्रमा में जो स्थान, मन्दिर, नदियां, मेले, वन, पर्वत आदि पड़ते हैं, उनका संक्षिप्त वर्णन किया है। कहां ठहरना चाहिए, कहां न ठहरना चाहिए; कहां खाने-पीने की सामग्री मिलती है, कहां नहीं मिलती—इत्यादि बहुत कुछ आपने लिखा है। इसके सिवा और भी अनेक बातें आपने काम की लिखी हैं। भाषा आपकी काम-चलाऊ है, पर इससे विशेष हानि नहीं। परिक्रमा करनेवालों को इस पुस्तक से बड़ी सहायता मिल सकती है।

चित्र-परिचय।

इस महीने का रङ्गीन चित्र टेहरी-गढ़वाल के राजा साहब की कृपा से प्राप्त हुआ है। राजा साहब सरस्वती पर विशेष कृपा करके उसे अपने दरबार के प्राचीन चित्रकारों के चित्रों से समय समय पर सुसज्जित किया करते हैं। वर्त्तमान चित्र में बालि और सुग्रीव का मल्ल-युद्ध, श्रीरामचन्द्र का अपनी प्रतिज्ञानुसार बालि को मारने के लिए लक्ष करना, उनका सुग्रीव को जयमाला पहनाना और फिर सुग्रीव का प्रभु के निकट कृतज्ञ होना ये सब दृश्य योग्यतापूर्वक अङ्कित किये गये हैं। जिस सुन्दर स्थान पर ये सब घटनायें हुई हैं उसका चित्र भी स्वाभाविक तथा मनोहर है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

लेख-सूची । पृष्ठ

चित्र-सूची ।

बालि का दाह-कर्म ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

भाग २०, खण्ड २] अक्टूबर १९१९—कार्तिक १९७६ [संख्या ४, पूर्ण संख्या २३८

प्रतिज्ञा।

न अपनी हीनता को अब सहेंगे हम ;
हृदय की बात ही मुँह से कहेंगे हम।
हमारी राष्ट्र-भाषा मातृ-भाषा है ;
सफल होगी न क्यों ? आत्माभिलाषा है।
समय के साथ उन्नति की शुभाशा है,
बने भागीरथी जो कर्म्मनाशा है।
बहककर अब न विषयों में बहेंगे हम,
न अपनी हीनता को अब सहेंगे हम॥
हमीं उस भाव-सागर को हिलोड़ेंगे ;
हलाहल देखकर भी मुँह न मोड़ेंगे।
करोड़ों रत्न पाकर भी विलोड़ेंगे,
पुरुष होकर कभी पौरुष न छोड़ेंगे।
अमृत पीकर, अमर होकर रहेंगे हम,
न अपनी हीनता को अब सहेंगे हम॥

मैथिलीशरण गुप्त

ऐतिहासिक और पूर्व ऐतिहासिक बातें।

इस समय से सौ वर्ष पहले, लोग इतिहास को प्रायः मनोरञ्जक या कभी कभी शिक्षाप्रद विषय समझा करते थे। यह किसीको गुमान भी न था कि यह विषय महत्त्व में किसी बड़े से बड़े वैज्ञानिक विषय से कम नहीं। अट्ठारहवीं शताब्दी में इँगलेंड के विद्वान्, डाक्टर जानसन का तो कथन था कि इतिहास साहित्य की एक लचर शाखा है।

उन्नीसवीं शताब्दी में विज्ञान की सभी शाखाओं ने बड़ी उन्नति की। वैज्ञानिक युग का आरम्भ ईसवी सन् के कोई ३०० वर्ष पहले, अर्थात् यूनानी तत्त्ववेत्ता अरस्तू या अरिस्टाटल के समय से, माना जाता है। उस समय से लेकर दो हज़ार वर्षों में

जितने वैज्ञानिक सिद्धान्त स्थिर हुए या वैज्ञानिक आविष्कार काम में लाये गये उससे कहीं ज़ियादह बातें इस एक सदी में ज्ञात हुई। इतिहास का क़दम भी अपनी दौड़ में पीछे नहीं रहा। इन एक सौ वर्षों में उसकी काया पलट गई; और अब, बीसवीं सदी में, उसकी उन्नति की और भी अधिक आशा है।

विज्ञान किसे कहते हैं, यह प्रश्न बड़ा गूढ़ है। इसका उत्तर थोड़े शब्दों में देना कठिन है। तथापि संक्षेप में शायद इतना कहना काफ़ी होगा कि विज्ञान उसको कहते हैं जिसमें किसी विषय, पदार्थ, घटना या विचार की वास्तविक दशा—उसके मूल या कारण—की खोज हो; वह भी इस प्रकार कि कार्य्य-कारण का निश्चित सम्बन्ध मालूम हो जाय।

और इतिहास क्या है? यों तो किसी जाति, किसी पदार्थ या किसी विचार का हाल, आदि से लेकर जहाँ तक मालूम हो, बयान करना सभी इतिहासों के अन्तर्गत हो जाता है। इस हिसाब से तो "दुनिया का इतिहास" इन तीन शब्दों में जितनी विद्यायें हैं उन सभी का समावेश हो सकता है। इसलिए इतिहासों का अर्थ कुछ सङ्कुचित करके उससे साधारणतया "मनुष्य-जाति का इतिहास" समझा जाता है। अतएव वैज्ञानिक इतिहास उसको कहना चाहिए जिसमें मनुष्य-जाति या उसके किसी अंश का हाल इस प्रकार वर्णन किया गया हो कि उसकी प्रत्येक अवस्था के उलट-फेर का कारण मालूम हो सके।

बहुत ही विस्तृत विषय होने के कारण "इतिहास" शब्द का मतलब एक तरह और भी सङ्कुचित कर दिया गया है। यथार्थ इतिहास वही कहा जाता है जो तत्कालीन लिखित प्रमाणों का आधार रखता हो। वे लिखित प्रमाण भी ऐसे हों जिनका समय ठीक ठीक मालूम हो। उसके पहले का जो हाल मिलता है या जो और तरह के प्रमाणों से जाना जा सकता है वह पूर्व इतिहास कहलाता है।

इतिहास का आरम्भ उसी समय से कहा जा सकता है जब से लिखित प्रमाण मिलें और उन प्रमाणों का समय भी निश्चित हो। अतएव स्पष्ट ही प्रकट है कि इस अवस्था को पहुँचते पहुँचते जन-समुदाय का कुछ अंश बहुत कुछ सभ्यता प्राप्त कर चुकता है। किसी भी जाति के ऐतिहासिक काल के प्रारम्भ ही की अवस्था पर ध्यान देने से मालूम हो जायगा कि उस समय भी खेती होती थी। लोग खाना पकाकर खाते थे; कपड़े बुनते और पहनते थे; धातुओं को काम में लाते थे; हथियार और बर्तन वग़ैरह बनाते थे; मिलकर मुखियों के अधीन गाँवों और क़सबों में रहते थे; किसी न किसी धर्म्म के अनुयायी थे; और गीत या कविता की रचना करते थे। इतना ही नहीं, किन्तु नितान्त प्रारम्भ में भी सौदा-सुलफ़, लेन-देन, चिकित्सा, गणित, ग्रहों के ज्ञान इत्यादि की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। अतएव लिखने की कला ईजाद होने के पहले ही मनुष्य-जाति में सभ्यता के मुख्य मुख्य लक्षण प्रकट हो चुके थे।

यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि लिखित प्रमाणों के अभाव में पूर्व ऐतिहासिक हाल जाने कैसे गये? इसका उत्तर यह है कि पृथ्वी की सब जातियाँ यदि एक ही सी उन्नति करतीं या यों कहिए कि सब मनुष्य एक ही जन-समुदाय के होते तो पूर्व ऐतिहासिक काल का कभी बोध ही न होता। पर प्राचीन इतिहासकारों ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने अपने इतिहास इस ढङ्ग से आरम्भ किये हैं मानों मनुष्य सदा से ही इतना सभ्य था जितना कि उसे वे अपने समय में—इतिहास-रचना के समय में—देखते थे। बड़ी खोज और जाँच के बाद यह बात पीछे से मालूम हुई कि यह बड़ी भूल थी। जिस अवस्था में इतिहास आरम्भ हुआ

वह लाखों वर्ष की क्रमशः बढ़ती हुई सभ्यता का परिमाण था।

जब विज्ञानवेत्ताओं ने उन अनेक जन-समुदायों की अवस्था को देखा और जाँचा जिनमें इतिहास का जन्म न हुआ था, यहाँ तक कि इतिहास लिखने की कुछ चर्चा भी न थी, तब उन्हें मनुष्य-जाति की उन्नति के क्रम का अनुमान हो सका। यही क्रम पूर्व ऐतिहासिक काल का पता देता है। यह अवश्य है कि पूर्व ऐतिहासिक वृत्तान्त इतना ब्योरेवार नहीं मालूम हो सकता जितना ऐतिहासिक वृत्तान्त मालूम हो सकता है। परन्तु जो कुछ मालूम हुआ है वह अत्यन्त मनोरञ्जक अवश्य है। वैज्ञानिक जाँच करनेवालों को उससे सहायता भी बहुत मिल सकती है।

पूर्व ऐतिहासिक काल का पता विशेष करके उन वस्तुओं से चलता है जो ज़मीन की तहों में, ग़ारों में, अथवा पुराने ढीहों या क़ब्रों में गड़ी हुई निकलती हैं। उनमें प्रधानता अस्तव्यस्त वस्तुओं ही की है। परन्तु कहीं कहीं हज़ारों वर्ष पहले के मकान, गाँव, रोज़मर्रा के इस्तेमाल के बर्तन और गहने वग़ैरह भी मिले हैं। योरप में इन वस्तुओं के अनेक सङ्ग्रहालय हैं, जो विज्ञान-विशारदों के लिए बहुत ही उपयोगी हैं।

पूर्व ऐतिहासिक समय का वृत्त पूरे तौर पर बतलाने के लिए अनेक बड़ी बड़ी पुस्तकें चाहिएं। विद्या और विज्ञान पर हिन्दी-प्रेमियों की श्रद्धा बढ़ती गई तो किसी समय ऐसी पुस्तकें बन भी जायँगी। इस छोटे से लेख में तो हम संक्षेपतः केवल उन परिणामों का वर्णन करेंगे जो विज्ञानवेत्ताओं ने इस विषय में स्थिर किये हैं।

पूर्व ऐतिहासिक अवस्था प्राप्त होने के पूर्व मनुष्य (अर्थात् दो पैरों पर चलने और हाथों से और और काम करनेवाला प्राणी) चार अवस्थाओं को, जिनके लक्षण जुदा जुदा हैं, तय कर चुका है। वे चारों अवस्थाएं ये हैं—

(१) भद्दे पत्थरों के अस्त्र-प्रयोग की अवस्था।
(२) चिकने किये गये पत्थरों के अस्त्र-प्रयोग की अवस्था।
(३) ब्रांज़ नामक धातु के अस्त्र-प्रयोग की अवस्था।
(४) लोहे के प्रयोग की अवस्था।

सरलता के लिए इन चारों दशाओं के संक्षिप्त नाम ये होंगे। (१) भद्दा पत्थर-काल, (२) चिकना पत्थर-काल, (३) ब्रांज़-काल, (४) लोह-काल।

पहली अवस्था तो बिलकुल जङ्गली थी। उस काल में मनुष्य अकेला या छोटी छोटी टोलियाँ बना-कर जङ्गल में इधर-उधर जानवरों को मारता और खाता फिरता था। शिकार के लिए भद्दे पत्थरों को वह तोड़ ताड़कर उन्हें नुकीले बना लेता था। उन्हींसे वह अस्त्रों का काम लेता था। उस समय वह कच्चा ही मांस खाता था; हड्डियाँ तोड़कर उनके भीतर की मज्जा निकाल लेता था। विशेष करके वह कन्दराओं ही में रहता था। इस काल के अन्तिम भाग में शायद मांस भून लिया जाता था और कपड़े की जगह खाल का इस्तेमाल किया जाता था। कन्दराओं में जो हड्डियाँ मिलती हैं वे विशेष करके बड़े बड़े जानवरों के बच्चों की हैं। इससे साबित है कि उस समय मनुष्य बड़े बड़े जानवरों का शिकार न कर सकता था। यह अवस्था लाखों वर्ष रही। दो लाख वर्ष पहले तक इस अवस्था के मनुष्यों का पता लगता है।

दूसरे काल में पत्थर के अस्त्र-शस्त्र बड़े, बहुत साफ़ और तेज़ बनते थे। आग का इस्तेमाल मालूम हो जाने से शस्त्र-निर्माण में बहुत सहायता मिली और ऐसे हथियार बनने लगे जिनसे मनुष्य बड़े बड़े जानवरों का भी शिकार सुगमता से करने लगा। हिंसक जानवरों से कुछ कम डर रह जाने के कारण, इस समय मनुष्य कन्दराओं को छोड़कर झोपड़ों

ग्रैार गाँवों में रहने लगा, गोल बाँधकर शिकार करने लगा, मिट्टी के बर्तन बनाने लगा, कुत्ते ग्रैार शायद एक-ग्राध ग्रैार घरेलू जानवर पालने लगा, ग्रैार कुछ कुछ खेती भी करने लगा। इस काल का प्रारम्भ कब से माना जाय, इसका ग्रभी तक ठीक ठीक निश्चय नहीं हो सका है। मगर ग्रब से ३०,००० वर्ष पहले तक के पत्थर के बहुत ही साफ़ ग्रैार तेज़ चाकू, कटार वग़ैरह मिले हैं। ऐतिहासिक काल का ग्रारम्भ होने, ग्रर्थात् ग्रब से कोई दस हज़ार वर्ष पहले, तक मनुष्य विशेषतः इसी ग्रवस्था में था। इस काल के ग्रन्तिम भाग में शायद मिट्टी के बर्तन बनाना ग्रैार खाना उबालना जारी हो गया था।

ऊपर की दोनों ग्रवस्थायें बिलकुल ही ग्रसभ्यता-सूचक थीं। सभ्यता का ग्रारम्भ तो तब हुग्रा जब मनुष्य ने धातु गलाना ग्रैार उससे हथियार बनाना जाना। ब्रांज़ नामक धातु बहुत ग्रासानी से गलाई जा सकती है। इससे पहले इसीका प्रयोग ग्रारम्भ हुग्रा ग्रैार इसी धातु से तीसरे काल की पहचान स्थिर हुई। इस काल में मिट्टी के उमदा बर्तन बनने लगे, कपड़ों का बुना जाना जारी हुग्रा, सोने-चाँदी के ग्राभूषण बनने लगे। खेती की ग्रैार उन्नति हुई। बकरी ग्रैार भेड़ पालना, दूध खाना ग्रैार भोजन भले प्रकार बनाना प्रचलित हुग्रा।

इस तीसरी ग्रवस्था का एक नाम चरवाहों या पशुपालों की ग्रवस्था भी है। यह ग्रवस्था, सभ्यता बहुत कुछ बढ़ जाने के बाद, इस काल की ग्रन्तिम ग्रवस्था थी। उस समय ग्रपने ग्रपने गोत्र का समस्त जन-समुदाय एक ही साथ ग्रपने ग्रपने गाय, बैल, भेड़-बकरी, ऊँट-घोड़े ग्रैार बाल-बच्चे साथ लिये हुए इधर-उधर, चारे की तलाश में, फिरने लगा। नदी-किनारे जहाँ कहीं ग्रच्छी ज़मीन पाई, वहीं ख़ेमे डाल दिये, थोड़ी बहुत खेती कर ली ग्रैार जब तक वहाँ की ज़मीन काफ़ी उपज देती रही तब तक वहीं रहे। फिर डेरा-डण्डा उठाया ग्रैार दूसरी जगह चल दिये। यदि ग्रैार किसी ऐसे ही गोल से सामना हुग्रा तो उससे लड़े भिड़े। जिसकी जीत हुई उसकी प्रशंसा के गीत बन गये। इस ग्रवस्था में सभ्यता बहुत कुछ बढ़ी; वाणिज्य-व्यापार का ग्रारम्भ हुग्रा। लोग मिल जुलकर गीत गाते, छोटे छोटे झगड़ों का ग्रापस में फ़ैसला करते, ग्रपने पूर्वजों या बहादुर लोगों या सुन्दर स्त्रियों की प्रशंसा करते। इन विषयों पर वे गीतों की रचना भी करते। यही गीत इतिहास के बीज हैं ग्रैार सभी सभ्य देशों के इतिहासों में इस सुखपूर्ण दशा की मनोरञ्जक कथायें मिलती हैं।

चौथा काल ग्राधुनिक समय है, जिसमें धातुग्रों का, ग्रैार विशेष कर लोहे का प्रयोग बहुत बढ़ा, खेती प्रधान व्यवसाय हो गया, ग्रैार इधर-उधर घूमना ग्रैार ख़ेमों में रहना छोड़कर मनुष्य बड़ी बड़ी बस्तियों में रहने लगा। दो एक जातियाँ, चौथे काल में प्रवेश करने के पहले ही, ऐतिहासिक हो गईं, ग्रर्थात् उन्होंने ग्रपनी जीत इत्यादि के लिखित प्रमाण या स्मारक निर्म्मित कर दिये। लेकिन ग्रधिकतर जातियाँ चौथा काल ग्राने के बाद ही ऐतिहासिक हुईं। कोई कोई तो ग्रब तक भी इस ग्रवस्था को नहीं प्राप्त हुई हैं, यद्यपि लोहे का प्रयोग उनमें जारी है। ग्रभी तक इस बात का पता ठीक ठीक नहीं लगा कि लोहे का इस्तेमाल किस जाति ने कब ग्रारम्भ किया। हाँ, ग्रब से सात हज़ार वर्ष पहले तक तो इस धातु का काम में लाया जाना ग्रलबत्ते साबित है।

यह भी याद रखना चाहिए कि सभी जातियाँ बराबर बराबर समय तक इन ग्रवस्थाग्रों में नहीं रहीं। एक बात ग्रैार भी है। कुछ जातियों में इन ग्रवस्थाग्रों का मिश्रण साथ ही साथ पाया जाता है। भद्दे ग्रैार सचिक्कण पत्थरों के हथियार साथ ही साथ मिलते हैं। इसी तरह पत्थर ग्रैार ब्रांज़ धातुग्रों के हथियार भी साथ ही मिलते हैं। इन सबके साथ

कहीं कहीं लोहे के भी हथियार मिलते हैं। ऐसा सम्भव भी नहीं कि सब लोग एकदम ही बदल जायँ। उन्नति धीरे धीरे होती है और उसका प्रभाव बहुत छोटी अवस्था से आरम्भ होता है। उस समय बदली हुई हालत को ठीक तरह पहचानना भी कठिन हो जाता है। जब किसी नई बात का प्रचार भले प्रकार हो जाता है तभी मालूम होता है कि अवस्था बदल गई है। आज-कल भी मिट्टी और पत्थर के बर्तनों का, और कहीं कहीं पत्थर के औज़ारों का भी इस्तेमाल जारी है। अभी तक आपको कुछ जातियाँ ऐसी मिलेंगी जो लोहे का इस्तेमाल करती हैं, मगर न वे खेती करती हैं और न उनमें सभ्यता के कोई और ही लक्षण पाये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त हर मनुष्य-जाति ने एक सी उन्नति नहीं की। किसीने बहुत जल्द उन्नति की, किसीने बहुत धीरे। कुछ जातियाँ तो दूसरी उन्नत जातियों के संसर्ग से एक-दम ही पहले या दूसरे काल से चौथे काल में आ गईं। संसर्ग का परिणाम यहाँ तक व्यापक हुआ है कि अब कोई भी जाति बिलकुल ही पहली, दूसरी या तीसरी अवस्था में नहीं मिलती। तथापि किसी समय बहुत सी जातियाँ इन अवस्थाओं में थीं, इसके ऐतिहासिक प्रमाण मौजूद हैं।

जब तक लिखना नहीं जारी हुआ था तब तक जो जातियाँ कुछ सभ्य हो गई थीं वे अपनी बातें परम्परागत कथाओं या गीतों के रूप में ज़बानी याद रखती थीं। अभी तक इसका पता नहीं चला कि सबसे पुरानी कथायें किस जाति की हैं। हम हिन्दुओं में से कितनों ही का विश्वास है कि इसका गौरव हमीं को प्राप्त है, और इस हिसाब से हमीं लोग पहली ऐतिहासिक जाति हैं। परन्तु अभाग्य-वश एक तो इस देश के इतिहास की खोज ही अभी अच्छी तरह नहीं हुई और दूसरे कई कारणों से यहाँ ज़बानी विद्याभ्यास का रिवाज बहुत दिनों तक रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि यद्यपि इस देश की सभ्यता बहुत पुरानी है तथापि उसका लिखित प्रमाण कोई नहीं। इस देश का कुछ प्राचीनतम हाल फ़ारिस के बादशाहों के विषय में लिखित लेखों में मिलता है और इसके बाद यूनानियों के ग्रन्थों में। स्वयं भारत में कोई लिखित चिह्न राजा अशोक के पहले का मिलता ही नहीं।

गिरिजादत्त बाजपेयी

पश्चिमीय अर्थ-शास्त्र।

जब हम अर्थशास्त्र (Political Economy) का इतिहास लिखने बैठते हैं तब पहला प्रश्न हमारे सामने यह उपस्थित होता है कि अर्थ-शास्त्र का अर्थ क्या है? किसी भी पारिभाषिक संज्ञा का अर्थ बतलाने अथवा उसकी व्याख्या करने का यह तात्पर्य नहीं है कि उसके शब्दार्थ बतला दिये जायँ, क्योंकि शब्दार्थ मालूम कर लेना न कठिन ही है न लाभदायक, और न साधारण लोग इसे जानने की परवा करते हैं। किसी शब्द की व्याख्या करने का केवल यही उद्देश है कि उस शब्द के उच्चारण-मात्र से उसका बोध हो जाय, और मस्तिष्क में उसके प्रवेश करने पर उसके सम्बन्धी विचारों का आभास होने लगे। सारांश यह कि उस शब्द के सुनने से साधारणतः तुरन्त यह मालूम हो जाता है कि उसके साथ किन किन विषयों का सम्बन्ध है, उसका मौलिक सिद्धान्त क्या है और उसके द्वारा बुद्धिपटल पर किस प्रकार का चित्र अङ्कित होता है। उदाहरणार्थ, मनुष्य शब्द के उच्चारण करतेही हमें एक विशेष प्रकार के जीव का ध्यान आता है। हम जानते ही हैं कि यह शब्द एक ऐसे जीव का नाम है जिसके दो पैर, दो हाथ, इत्यादि अङ्ग-विशेष होते हैं और जिसमें सृष्टि के और

जीवों की अपेक्षा ज्ञान-शक्ति की मात्रा विशेष तौर से पाई जाती है, जिसके द्वारा वह बातों को समझ बूझ सकता है। दूसरे जानवर ऐसा नहीं कर सकते। इसी प्रकार वनस्पति-शास्त्र के कहने से हमें एक ऐसे शास्त्र का बोध होता है जिसका सम्बन्ध वनस्पतियों से है और जिसका मुख्य उद्देश नाना प्रकार के पौदों की प्रकृतियों तथा तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों की खोज करना है। ऐसे ही अर्थ-शास्त्र की व्याख्या करने में यह जानना आवश्यक है कि इस शास्त्र का मुख्य उद्देश्य क्या है, और यह शास्त्र किन सिद्धान्तों पर अवलम्बित है।

दुर्भाग्यवश कई कारणों से अर्थ-शास्त्र की पूर्ण व्याख्या करना बहुत कठिन है, क्योंकि अभी तक इसके उद्देश्यों और सिद्धान्तों के विषय में विद्वानों में बहुत कुछ मत-भेद रहा है। कुछ मोटी बातें ऐसी अवश्य हैं जिन पर प्रायः सभी सहमत हैं। जैसा कि इसके नाम ही से प्रतीत होता है, अर्थ-शास्त्र का मुख्य सम्बन्ध अर्थ अथवा द्रव्य से है। अर्थ अथवा द्रव्य का मतलब केवल रुपये-पैसे से नहीं है, वरन उन सब पदार्थों से है जो मनुष्य की इच्छाओं अथवा कामनाओं की पूर्ति करने में समर्थ हैं।

वस्तुतः अर्थ-शास्त्र अथवा अर्थ-विज्ञान समाज-शास्त्र का एक अङ्ग है। जिस प्रकार पदार्थ-विज्ञान (Physical science) में प्रकृति के नियमों का अध्ययन किया जाता है उसी प्रकार समाज-विज्ञान (Social science) में मनुष्यों की प्रकृति तथा तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों और नियमों का अध्ययन किया जाता है। अर्थ-शास्त्र समाज-शास्त्र का वह अङ्ग है जिसका उद्देश्य मनुष्य के उन आपस के व्यवहारों का अध्ययन करना है जिनके द्वारा वह अपनी रोज़ की आवश्यकताओं की सामग्री को इकट्ठा करता है और उसको नाना प्रकार से काम में लाता है।

अर्थ-शास्त्र की इस व्याख्या पर विचार करने के पहले हमको यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि हम यहाँ अर्थ-शास्त्र का पूर्ण अथवा वैज्ञानिक अर्थ बतलाने की चेष्टा नहीं कर रहे हैं। यहाँ पर हम अर्थ-शास्त्र के उद्देश्य का केवल साधारण रूप से परिचय कर लेना चाहते हैं। यों तो देखतेही इस व्याख्या में कई जगह सन्देह उत्पन्न हो जायगा; परन्तु जैसा हमने पहले ही कहा है, कई कारणों से अर्थ-शास्त्र का यथार्थ और वैज्ञानिक आशय जान लेना सरल नहीं है। पहली बात तो यह है कि समाज-शास्त्र की सभी शाखाओं की नाईं अर्थ-शास्त्र मनुष्य की प्रकृति और उसके व्यवहारों पर अवलम्बित है। यदि इस शास्त्र का उद्देश्य कुछ ऐसे सिद्धान्तों का खोज निकालना है जिनके अनुसार मनुष्य सदा काम किया करता है और जो उसके धनोपार्जन और धन-व्यय इत्यादि जीवन के अनेक व्यवहारों को किसी परिमित मार्ग में ले जाया करते हैं तो यह कहना कठिन है कि इस कार्य्य में विद्वानों को कहाँ तक सफलता प्राप्त हो सकेगी। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ बातें ऐसी अवश्य हैं जो प्रायः सभी मनुष्यों में पाई जाती हैं और जो नित्य ही हुआ करती हैं। इनको हम मनुष्य की प्रकृति अथवा स्वभाव कह सकते हैं। किन्तु हमारी सभ्यता का इतिहास इस बात का साक्षी है कि मनुष्य की प्रकृति, उसके विचार, उसकी संस्थायें और प्रथायें समय समय पर बदला करती हैं। जो बात आज से दो सहस्र वर्ष पहले थी वह आज नहीं पाई जाती। मनुष्य की परिवर्तन-शक्ति इतनी बढ़ी-चढ़ी है कि उसने केवल अपने ही को नहीं, किन्तु अपने से पृथक् सृष्टि को भी बहुत कुछ बदल दिया है। तोभी प्रकृति के ऊपर मनुष्य का अभी तक बहुत थोड़ा अधिकार हुआ है। जो प्राकृतिक नियम संसार के आदि में थे वे ही अब भी हैं। जिस प्रकार दो सहस्र वर्ष पहले ऊपर से गिरा हुआ पत्थर आकर्षित होकर पृथ्वी

पर आ जाता था वैसे ही आज भी। किन्तु सामाजिक नियमों और विचारों में बहुत कुछ अन्तर हो गया है। जो धार्मिक विचार आज से सौ वर्ष पहले प्रचलित थे उनमें से बहुतों का आज पता भी नहीं है। अब भी कुछ स्थान ऐसे हैं जहाँ आधुनिक सभ्यता का प्रवेश नहीं हुआ है। उन जगहों के लोगों से और सभ्य लोगों से मिलान करने पर मालूम हो जायगा कि दोनों में कितना अन्तर है। इन्हीं कारणों से बहुत लोगों का मत है कि अर्थ-शास्त्र के बहुत से सिद्धान्त नित्य नहीं माने जा सकते।

समाज की किसी विशेष अवस्था से निर्धारित सिद्धान्त उसी अवस्था के लिए सत्य अथवा उपयोगी कहे जा सकते हैं। दूसरे युग अथवा दूसरी दशा में उनका घटित होना बहुत कठिन है। उदाहरणार्थ, पहले समय में वस्तुओं का मूल्य मज़दूरों की मज़दूरी, पृथिवी का कर (rent) इत्यादि बहुत सी बातें सामाजिक परम्परा पर निर्भर थीं। यद्यपि संसार के कुछ विभागों में किसी अंश तक यह बात अब भी ठीक है; परन्तु साधारण तौर पर आज-कल मूल्य आदि उपज और माँग के अनुसार बदलते रहते हैं। यदि अन्न की उपज कम हुई अथवा माँग अधिक, तो मूल्य तुरन्त बढ़ जायगा। यदि मज़दूरों की माँग अधिक हुई और संख्या कम, तो वेतन अवश्य बढ़ जायगा। इसका एक कारण यह है कि आज-कल की सभ्यता में स्वेच्छाचार और व्यक्तिगत आत्म-निर्णय का बड़ा ऊँचा स्थान है। प्राचीन काल में इतनी स्वतन्त्रता नहीं थी और लोग प्रायः एक ही लकीर के फ़क़ीर बने रहते थे। दासत्व अथवा गुलामी की प्रथा, अनियन्त्रित शासन, वर्ण-व्यवस्था इत्यादि बहुतसी प्रथायें इसी सिद्धान्त के बल पुराने समय में प्रचलित थीं। लेकिन उनके पक्ष में बात करना ही आज-कल सठिया जाने का प्रमाण समझा जाता है।

फिर यह भी निश्चित नहीं है कि आज-कल की औद्योगिक तथा सामाजिक दशा कब तक स्थिर रहेगी। वर्तमान महायुद्ध में संसार की औद्योगिक अवस्था में बहुत कुछ हेर-फेर होगया है और वह हेर-फेर अब भी जारी है। कुछ पुराने सिद्धान्त जो अभी तक अटल माने जाते थे, अब त्याग दिये गये हैं और नई समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं जिनको सुलझाने के लिए हमारे नेताओं को बहुत दिनों तक अपना मस्तिष्क अर्पण करना पड़ेगा। अस्तु।

अर्थ-शास्त्र को पूर्ण रूप से समझने में एक और भी कठिनाई आ पड़ती है। वह यह है कि अभी थोड़े दिन पहले तक विद्वानों का ध्यान भली भाँति इस शास्त्र की ओर आकर्षित नहीं हुआ था। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि कुछ काल पहले योरप में वाणिज्य नहीं हुआ करता था। कहने का आशय केवल यही है कि अर्थ-शास्त्र को वैज्ञानिक रीति से उन्नति देने में लोगों को बहुत अधिक उत्साह नहीं था। इसका फल यह हुआ कि इसके मुख्य उद्देश और सिद्धान्तों पर बड़ा मतभेद है। इस मतभेद को अच्छी तरह जाने बिना अर्थ-शास्त्र का ठीक ठीक मतलब समझ में नहीं आ सकता। इसलिए पहले यह आवश्यक है कि इस शास्त्र के इतिहास का दिग्दर्शन कर लिया जाय।

Economy (एकानमी) शब्द यूरोपीय साहित्य में बहुत दिनों से प्रचलित है। ग्रीस अथवा यूनान की सभ्यता यूरोप के सभी देशों की सभ्यता से पुरानी है। सच तो यह है कि यूनानी सभ्यता ही आधुनिक पश्चिमी सभ्यता की आधार-रूप है। यूरोप की कला, साहित्य, समाज-सङ्गठन, आचार-व्यवहार इत्यादि सभ्यता और उन्नति के सभी मुख्य अङ्गों को ग्रीस के साहित्य और रहन-सहन से उत्तेजना तथा आदर्श प्राप्त हुए हैं। इसी यूनानी भाषा के दो शब्दों को मिलाकर Economy शब्द बना है और प्रसिद्ध यूनानी ग्रन्थकार ज़ेनाफन (Xenophon) ने अपनी एक पुस्तक का नाम भी एकानमी रक्खा

था। तथापि इससे यह न समझना चाहिए कि उस समय अर्थ-शास्त्र का उसी वैज्ञानिक रीति से अध्ययन किया जाता था जैसा कि आधुनिक सभ्य देशों में होता है। उस समय वाणिज्य अवश्य होता था, लोग आय-व्यय का ब्यौरा भी किसी न किसी रूप में रखते ही थे और बहुतसे प्रश्न जो आज-कल सभ्य समाज के ध्यान पर अधिकार जमाये हुए हैं उस समय भी उपस्थित थे। किन्तु सब बातें उस समय शास्त्ररूप में परिणत नहीं हुई थीं और इन पर अखिल राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से विचार नहीं किया जाता था। एकानमी शब्द ही का अर्थ है—'घरेलू नियम'। कभी कभी विद्वान् लोग सम्मति के रूप में इन विषयों पर अपने विचार प्रकट कर दिया करते थे।

यह कुछ आश्चर्यजनक मालूम होता है कि साहित्य, सङ्गीत, कला इत्यादि उन्नति के प्रधान अङ्गों में चढ़े-बढ़े होने पर भी ग्रीस के लोगों ने अर्थ-शास्त्र की उन्नति करने में अपना चित्त नहीं लगाया। इसका कारण यह है कि यूनानी लोग बड़े उपजाऊ और व्यसन पैदा करनेवाले देश में रहते थे। उनको पेट भरने के लिए कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता था। दासत्व अथवा गुलामी की प्रथा को वे बुरा नहीं समझते थे और उच्च श्रेणी के लोगों का जीवन प्रायः भोग-विलास और सरस्वती की आराधना में व्यतीत हुआ करता था। वे लोग इतने धन-धान्य युक्त थे कि उनके दासों को भी आत्म-सुधार का अवसर मिल जाया करता था। ऐसी दशा में उनको उदर-पोषण के गम्भीर प्रश्नों पर विचार करने अथवा धन बढ़ाने की कोई आवश्यकता न थी। जल-वायु का भी उनके ऊपर प्रभाव पड़ा और उसने भी उनको बहुत कुछ आराम-तलब बना दिया। फल यह हुआ कि न तो कभी उन्होंने कठिन परिश्रम में अपना जीवन बिताया और न उसकी उन्हें आदत ही पड़ी। यही कारण है कि ग्रीस में अर्थ-शास्त्र को महत्त्व प्राप्त नहीं हुआ और इसी कारण से कालान्तर में ग्रीस का राजनैतिक महत्त्व भी जाता रहा।

उसी समय से सभ्यता का केन्द्र ग्रीस की राजधानी एथेन्स (Athens) से हटकर रोम (Rome) में चला गया। रोमवाले यूनानियों (ग्रीसवालों) से कई बातों में भिन्न थे। वे इनकी अपेक्षा अधिक परिश्रमी, अधिक संयमी तथा अधिक सूझ-बूझ के आदमी थे। ग्रीसवालों का जीवन रसमय था, इनकी प्रकृति काव्यमयी थी और सौन्दर्य्य के विवेचन में इनके चक्षु दिव्य-चक्षुओं का काम करते थे। तो भी इन लोगों में सांसारिक चातुर्य की मात्रा बढ़ी हुई नहीं थी। रोमवाले इनकी अपेक्षा इस विद्या में अधिक प्रवीण थे। लड़ाई और राज-नीति से उनको विशेष स्नेह था; परन्तु वे वाणिज्य की अवहेलना नहीं करते थे। उनके समय में भिन्न भिन्न व्यवसायवालों के लिए भिन्न भिन्न समितियाँ अथवा व्यापार-सङ्घ मौजूद थे। दासों को उपयोग में लाकर वे लोग बड़े बड़े कार्यालय खोलते थे। ज्वाइन्ट स्टाक कम्पनियों का भी वे प्रबन्ध किया करते थे और बड़े बड़े ठेकों का काम करते थे। रोम की भाषा रोमन साम्राज्य के दूर दूर अंशों तक फैली हुई थी और उसके द्वारा परस्पर व्यापार करने का बड़ा सुभीता था।

इन सब बातों के होते हुए भी रोम में अर्थशास्त्र की उन्नति नहीं हुई। इसका कारण यह है कि रोम का व्यापार लेन-देन के स्वाभाविक नियमों के अनुसार नहीं हुआ करता था। वाणिज्य का अधिकांश जो रोम में आता था लूट-मार के द्वारा लाया जाता था। उस समय के व्यापारी-दल में धनलोलुपता का अधिक भाग था और बीसों छल-कपट द्वारा धनोपार्जन का प्रयत्न किया जाता था। कभी सम्राट् की कृपा द्वारा, कभी अन्य उपायों से, वे लोग रुपया पैदा किया करते थे और उस सच्चाई, ईमानदारी और परिश्रम का उन्हें तनिक भी ध्यान नहीं रहता

था, जिनके ऊपर राष्ट्र का वाणिज्य निर्भर रहता है। सारांश यह कि उस समय का व्यापार किसी नियत सिद्धान्त के अनुसार नहीं हुआ करता था और इसीलिए उस समय भी अर्थ-शास्त्र की उन्नति नहीं हुई।

हाँ, यह अवश्य है कि पश्चिम के भावी अर्थ-शास्त्र पर रोमन सभ्यता का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। ये लोग पहले ही से राष्ट्र के स्वत्वों को जाति-विशेष अथवा कुटुम्ब-विशेष के स्वत्वों से अधिक महत्त्वपूर्ण और बली मानते थे। प्राचीन समय में समाज कुटुम्बों में विभक्त था। क्रमशः बहुतसे कुटुम्ब एक दूसरे से मिल गये और सबने मिलकर किसी जाति-विशेष का निर्माण कर लिया। ऐसा होने पर यद्यपि भिन्न भिन्न कुटुम्ब अब भी बने रहे, किन्तु जब कभी अखिल जाति और किसी विशेष कुटुम्ब के स्वार्थ एक दूसरे के विरुद्ध रहते थे अर्थात् एक को ऊपर रखने से दूसरे की हानि की सम्भावना होती थी, तब जाति ही के अधिकारों को श्रेय दिया जाता था। ग्रीस और रोम में समाज एक दर्जा और ऊपर बढ़ गया और जाति अथवा कुटुम्ब की अपेक्षा राष्ट्र अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा। परन्तु राष्ट्र का ज़ोर होने पर भी कुटुम्ब निःशेष नहीं हुए। बहुतसी पुरानी प्रथायें उनमें अब भी बनी रहीं। कुटुम्ब का स्वामी अथवा बड़ा बूढ़ा अब भी उसके प्रतिनिधि की दृष्टि से देखा जाता था और इस समय तक व्यक्तिगत स्वत्वों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। थोड़े दिनों में रोम का गौरव और बढ़ा और उसे एक प्रकार से चक्रवर्ती का स्थान प्राप्त हुआ। इस दशा में उसके न्यायकर्ताओं को बहुतसे अधीन राष्ट्रों के अधिकार सीमाबद्ध करने पड़े। ऐसे समय में स्वभावतः न्यायशास्त्र को बड़ी उत्तेजना मिली और रोम के बड़े बड़े न्यायकर्ता कुछ ऐसे अटल और नैसर्गिक सिद्धान्तों की खोज में लगे जिनके द्वारा स्वामित्व के अधिकार भली भाँति स्थिर किये जा सकें। धीरे धीरे व्यक्तिविशेष की सम्पत्ति और उसके अधिकारों का पूर्ण रूप से विधान कर दिया गया और इस समय से उसे यह स्वत्व प्राप्त हुआ कि निज की जायदाद को वह यथेष्ट रूप से व्यय कर सके। यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य का अर्थ-शास्त्र पर कितना प्रभाव पड़ा। केवल यही कह देना बस है कि आज-कल का समाज ही इसी सिद्धान्त पर ठहरा हुआ है।

इस समय रोम में जो दार्शनिक विचार प्रचलित थे उन पर 'स्टोइक' (Stoic) सिद्धान्तों का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा था। पश्चिमीय दर्शन के इतिहास में स्टोइक विचारों का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन काल में स्टोइक लोगों का बड़ा प्रसिद्ध दार्शनिक सम्प्रदाय ग्रीस में था। बहुतसी बातों में इन लोगों के सिद्धान्त आज-कल के सामाजिक सिद्धान्तों से मिलते-जुलते हैं। यह बात अवश्य है कि प्राचीन भारतीय ऋषियों की भाँति ये लोग सांसारिक सुख को बड़ी तुच्छ दृष्टि से देखा करते थे। नियमबद्ध, कर्तव्य-परायण तथा काठिन्यमय जीवन व्यतीत करने ही में इन लोगों की आत्मा को सन्तोष मिलता था। इसका एक कारण यह है कि प्राचीन यूरोपीय सभ्यता पर पूर्वीय देशों का बहुत असर पड़ा था। विशेषतः रोम के बहुत से स्टोइक तत्त्ववेत्ताओं का तो पूर्वीय देशों ही से अधिक सम्बन्ध था। अस्तु।

यद्यपि रोम बड़ा प्रतापशाली था, उसका आधिपत्य और सभ्यता योरप के दूर दूर देशों तक फैली हुई थी और अपने उत्थानकाल में उसने ऐसे ऐसे राजनीतिज्ञों और शासकों को जन्म दिया था जिनके लेखों और वक्तृताओं को लोग अब भी बड़े चाव से पढ़ते हैं और उनसे शिक्षा ग्रहण करते हैं, तोभी उसका गौरव बहुत दिनों तक स्थिर न रह सका। उत्तर योरप के कुछ अंशों (जर्मनी) में गाथ आदि कुछ असभ्य जातियाँ रहती थीं। ये लोग बड़े मज़बूत और लूटमार के प्रेमी थे और प्रायः रोमन साम्राज्य

पर आक्रमण कर दिया करते थे। बहुत दिनों तक तो रोमन सेनायें इन लोगों को परास्त करती रहीं और साम्राज्य की सीमा के अन्दर इनका पैर न जमने दिया। परन्तु ३७८ सन् में ऐड्रियानोपेल (Adrianople) के समीप एक बड़ी भारी लड़ाई हुई जिसमें जर्मनों की पूर्ण विजय हुई और रोमन सम्राट् मारा गया। उसी तिथि से रोमन साम्राज्य का पतन आरम्भ हुआ। फिर कुछ ही दिनों में लगभग समस्त साम्राज्य टुकड़े टुकड़े होकर कई असभ्य जातियों के अधिकार में आ गया। ये जातियाँ बहुत दिनों तक परस्पर लड़ती रहीं। कभी एक को विजय प्राप्त होती थी, कभी दूसरी को। कभी कभी कोई सुयोग्य सैनिक अथवा शासक अपने बाहुबल द्वारा औरों को परास्त करके उन पर अपना अधिकार जमा लिया करता था, परन्तु उसकी मृत्यु हो जाने पर कालान्तर में फिर सब उलट-पुलट हो जाता था।

नवीं शताब्दी में फ्रैंक जाति में शार्लिमैन नामक बड़ा भारी राजा हुआ। उसने धीरे धीरे अन्य जातियों पर अपना अधिकार जमाना आरम्भ किया और इस प्रकार उसने एक बड़ा भारी साम्राज्य स्थापित कर लिया। इतना विस्तृत साम्राज्य रोमन साम्राज्य के पतन के बाद योरप में कभी भी नहीं हुआ था। शार्लिमैन की मृत्यु के बाद उसका साम्राज्य उसके पुत्रों में बँट गया और यह बाँट-चूँट का लड़ाई-झगड़ा कई पीढ़ियों तक चलता रहा। इसी बाँट-चूँट के द्वारा योरप की वर्तमान रियासतों का सूत्रपात हुआ। साम्राज्य के पृथक् पृथक् भाग पृथक् पृथक् नामों से प्रसिद्ध हो गये और थोड़े-बहुत हेर-फेर के सहित वे अब तक चले आते हैं।

अब प्रश्न यह है कि इन बातों से और अर्थ-शास्त्र के इतिहास से क्या सम्बन्ध ? हार-जीत, लूट-मार की ये सब घटनायें योरप के राजनैतिक इतिहास से सम्बन्ध रखती हैं; अर्थ-शास्त्र के छात्र को इनसे क्या प्रयोजन ? पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है। यद्यपि यह सच है कि रोमन-साम्राज्य के पतन के बाद कई सौ वर्षों तक योरप में इतनी गड़बड़ मची रही कि उस समय अर्थ-शास्त्र अथवा किसी भी सभ्य व्यवसाय की ओर लोगों का चित्त नहीं आकर्षित होता था, तो भी ज्यों ज्यों असभ्य जातियों पर रोमन सभ्यता का प्रभाव पड़ता गया त्यों त्यों इनकी रुचि भी कला साहित्य इत्यादि की ओर दौड़ने लगी। ये लोग परिश्रमी और उत्साही तो पहले ही से थे, और इनका जो उत्साह अभी तक उच्छृङ्खल रहा करता था और प्रायः लूट-मार इत्यादि पाशविक व्यवहारों में लगाया जाता था, वह अब सभ्यता के मार्ग को सुगम बनाने में लग गया।

इस विवेचन से प्रकट होता है कि योरप के अर्थ-शास्त्र पर उसके पूर्व इतिहास का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है।

बेनीमाधव मेहरोत्र, बी० ए०

——

कवि।*

बतलाओ, वह कौन जिसे है कवि कहता सारा संसार ?
रख देता शब्दों को क्रम से, घटा-बढ़ा जो किसी प्रकार।
क्या कवि वही ? काव्य-किसलय क्या उसका ही लहराता है ?
जिसके यशः-सुमन-सौरभ से निखिल विश्व भर जाता है ॥१॥

नहीं, नहीं, मेरे विचार में कवि तो है उसका ही नाम,
यम-दम-संयम के पालनयुत होते हैं जिसके सब काम।
रहती है कल्पना-कामिनी जिसके हृदय-कमल आसीन;
सञ्चारित करती सदैव जो भांति भांति के भाव नवीन ॥२॥

भूत, भविष्यत्, वर्तमान पर होती है जिसकी सम-दृष्टि,
प्रतिभा जिसकी मर्त्यधाम में करती सदा सुधा की वृष्टि।
जो करुणा, शृङ्गार, हास्य, वीरादि नवों रस का आधार,
जिसको ईश्वरीय तत्त्वों का अनुभव-युत है ज्ञान अपार ॥३॥

* माइकेल मधुसूदन दत्त की एक बँगला कविता की छाया।

जिसकी इच्छा से अरण्य में रम्य फूल खिल जाता है,
नन्दन-वन से पारिजात की लता छीन जो लाता है।
मरीचिका-मय मरु-स्थली में जिसकी आज्ञा के अनुसार,
कलकल-नाद-पूर्ण बहती है अतिशय शीतल जल की धार॥४॥

पाण्डेय मुकुटधर

सबसे अधिक बुद्धिमान् कुत्ता ।

कुत्ता बड़ा बुद्धिमान् जानवर है। इस बात को सभी जानते हैं। कुत्ते की बुद्धिमानी के अनेक उदाहरण सुने गये हैं। सेंड बर्नार्ड नाम के कुत्ते बर्फ़ में भूले-भटके मुसाफ़िरों को रास्ता बतलाते हैं; उनको खाने-पीने का सामान देते हैं; और अनेक आदमियों को अकाल-मृत्यु से बचाते हैं। कहीं हमने पढ़ा है कि योरप में कुत्ते पुलिस तक में भरती होने लगे हैं। पर अमेरिका के शिकागो नगर में एक ऐसा अद्भुत कुत्ता है जिसे कुत्ता नहीं, मनुष्य कहना चाहिए। मनुष्य भी ऐसा-वैसा नहीं—अन्तर्यामी! दुनिया में, इस समय, उससे अधिक बुद्धिमान् और कोई कुत्ता नहीं है।

"स्ट्रैंड मैगेज़ीन" नामक एक अँगरेज़ी मासिक पुस्तक में लिखा है कि यह कुत्ता जार्ज बी० क्लेसन नामक एक अमेरिकन साहब के पास है। वह गिन सकता है; जोड़, बाक़ी और गुणा कर सकता है; वक्त बतला सकता है; और बहुत अच्छा जासूसी काम कर सकता है। उसके इन गुणों को सुनकर संसार भर के मनोविज्ञान-विशारद दङ्ग हो रहे हैं। वे उसकी प्रत्यक्ष परीक्षा लेने के अभिप्राय से शिकागो जाने की तैयारी में हैं। सबसे अधिक आश्चर्यजनक बात इस कुत्ते में यह है कि वह औरों के मन की बात जान लेता है!

यदि किसी दिन बहुत आदमी क्लेसन साहब से भेंट करने जाते हैं तो उनके सामने उस कुत्ते को पेश करके क्लेसन साहब पूछते हैं—मोती, कितने आदमी, इस समय, हमसे मिलने आये हैं? यह सुनकर कुत्ता कमरे में चारों तरफ़ देखेगा और जितने आदमी होंगे उतनी ही दफ़ा भूँककर वह उनकी ठीक ठीक संख्या बतला देगा। यह उसके लिए बहुत सहज बात है। इसमें वह कभी ग़लती नहीं करता। इसके बाद क्लेसन साहब अकसर अपने मिलनेवालों में से किसीसे कहते हैं कि आप मोती से कोई गणित का सवाल पूछिए। एक दफ़ा एक प्रदर्शिनी में किसीने मोती से पूछा—तीन ऋण एक धन दो (३—१+२) का क्या फल हुआ? ज़रा देर में मोती ने चार दफ़ा भूँककर पूँछे गये सवाल का ठीक उत्तर दे दिया! इसके बाद काग़ज़ के छोटे छोटे टुकड़े लाये गये। उन पर वर्णमाला के अक्षर छपे हुए थे। उन्हें दिखलाकर मोती से कहा गया कि तुम अपने नाम के हिज्जे करो। उसने झट-पट काग़ज़ के उन टुकड़ों को अपने पैर से अलग किया जिन पर उसके नाम के अक्षर थे। फिर उनको उसने तरतीबवार, ठीक ठीक, एक के बाद दूसरा रख दिया। मोती की इस बुद्धिमानी पर लोगों को बहुत हैरत हुई। फिर उससे और कई छोटे छोटे शब्दों के हिज्जे कराये गये। मोती इस परीक्षा में भी पास हो गया। एक-आध ग़लती उसने ज़रूर की, पर बहुत छोटी।

एक आदमी ने एक दफ़ा कहा कि मोती को शब्द-रचना का ज्ञान नहीं हो सकता; इस विषय में उसका मालिक ज़रूर उसकी मदद करता होगा। इस पर क्लेसन साहब कमरे से बाहर चले गये और जो लोग कमरे में थे उनसे कह गये कि मेरी ग़ैर-हाज़िरी में आप शब्द-रचना में मोती की परीक्षा लीजिए। कमरे से बाहर जाते समय अपने मालिक की तरफ़ मोती ने ग़ौर से एक बार देखा और अपना काम उसने शुरू किया। एक के बाद दूसरे, दूसरे के बाद तीसरे और तीसरे के बाद चौथे—इसी तरह कितने ही शब्दों की रचना काग़ज़ के

टुकड़ों के द्वारा करके उसने सबको आश्चर्य्य में डाल दिया।

जब क्रेसन साहब कमरे में वापस आये तब उन्होंने मोती से पूँछा—मोती, बतलाओ तो सही, अभी कुछ देर पहले, इन लोगों के मन में क्या था? मोती के सामने अक्षराङ्कित कागज़ के टुकड़े बिछा दिये गये। मोती झटपट कागज़ के कई टुकड़ों पर दाड़ गया। उन टुकड़ों पर छपे हुए वर्ण जोड़े गये तो "धोखा" और "चालाकी" शब्द बने। यह देखकर जितने आदमी वहाँ मौजूद थे सब कहकहा मारकर हँस पड़े। तब क्रेसन साहब ने कहा—मोती, मैं चाहता हूँ तुम ठीक ठीक वही करो जो ये लोग तुमसे करने को कहें। यह कहकर क्रेसन साहब ने जितने आदमी वहाँ उपस्थित थे सबसे कहा कि आप लोग कागज़ का एक एक टुकड़ा लें और उस पर कोई अङ्क लिख दें। उसे आप मन में रक्खें। मोती उसे बता देगा। सबने ऐसा ही किया। पहले आदमी ने ८ का अङ्क लिखा। मोती उसके सामने गया और आठ दफ़ा उसने भूँका। दूसरे ने ४ का अङ्क मन में लिया। एक मिनट सोचकर मोती ने उसे भी ठीक ठीक बता दिया। और जिन लोगों ने उस कागज़ को देखा था वे कह उठे "ग़लत"। परन्तु जिसके हाथ में कागज़ था, अर्थात् जो परीक्षा कर रहा था, उसने कहा, 'नहीं, कुत्ते ने सही बतलाया है; मैंने कुत्ते को धोखा देना चाहा था। इससे मन में तो मैंने चार का अङ्क लिया, परन्तु कागज़ पर लिखा पाँच का।

इस तरह बड़ी देर तक मोती की जाँच हुई। पर कुत्ते ने मन में भावना की गई बात को तत्काल ही बतलाकर सबको चकित कर दिया। क्रेसन साहब ने एक कागज़ पर लिखा—अपने मन में मोती को आज्ञा दीजिए कि आज सुबह का अख़बार उठा लाओ। इस कागज़ को उन्होंने एक आगत व्यक्ति को दिया। उस व्यक्ति ने कुत्ते की तरफ़ कुछ देर तक देखा और उससे मन ही मन सुबह का कागज़ लाने को कहा। मोती ने पूँछ हिलाई और दौड़कर सुबह का अख़बार वह उठा लाया।

कहिए, मोती अन्तर्यामी जीव है या नहीं?

इब्न बतूता की यात्रा।

मुसलमान यात्री इब्न बतूता का आसन उन सब यात्रियों से ऊँचा है जिन्होंने ऐसे समय में यात्रा की थी जब न रेल थी और न आज-कल के ऐसे बड़े बड़े जहाज़ ही थे। उस समय यात्रियों को पग पग पर बड़ी बड़ी भयङ्कर विपत्तियों का सामना करना पड़ता था। इब्न बतूता तीस वर्ष तक एशिया और अफ़रीक़ा के भिन्न भिन्न देशों में घूमता रहा। सब मिलाकर उसने लगभग पचहत्तर हज़ार मील से अधिक की यात्रा की। उस समय संसार भर में इसलाम की विजय-दुन्दुभि बज रही थी। योरप की ईसाई शक्तियां उसके आतङ्क से थरथर कांपती थीं। स्पेन, अफ़रीक़ा, हिन्दुस्तान, फ़ारिस, भारतीय समुद्र के जावा, सुमात्रा आदि द्वीप सभी कहीं इसलाम का आधिपत्य था। इसलाम धर्म्म का अनुयायी होने के कारण ही इब्न बतूता इतना लम्बा सफ़र बिना विशेष कष्ट पाये हुए कर आया।

वह १३२५ ईसवी में यात्रा करने निकला। टेंञ्जियर से चलकर वह मिस्र देश के प्रधान नगर काहिरा में आया। वहां से वह जेरुशलम, मक्का आदि मुख्य मुख्य नगरों और तीर्थों की यात्रा करता हुआ फ़ारिस देश में पहुँचा। शीराज़, इस्फ़हान; दमश्क, बग़दाद आदि होता हुआ वह फिर मक्के को लौट गया। उसने दमश्क की बड़ी तारीफ़ की है। उस समय दमश्क था भी एक बड़ा ही सुन्दर नगर। नगर भर में नहरों और बाग़ों की भरमार थी। वहां की जामे-मसजिद उस समय संसार भर में सर्वश्रेष्ठ समझी जाती थी। सात सौ हाफ़िज़ केवल कुरान पढ़ने के लिए उसमें नियत थे। इसके अतिरिक्त दमश्क उस समय विद्या का केन्द्र और उदार और दान-वीर लोगों का घर हो रहा था।

मक्के में वह तीन वर्ष तक रहा। एक जगह पर उस के क़दम बहुत दिनों तक न जमते थे। न मालूम उसने किस प्रकार ये तीन वर्ष मक्के में काटे। मक्के से अदन होता हुआ वह अफ़रीक़ा में समुद्र के पूर्वी तट की यात्रा करने लगा। इस यात्रा में उसने ज़ंज़ीबार और मुम्बासा आदि कितने ही द्वीपों और नगरों की सैर की। अफ़रीक़ा से वह फिर फ़ारिस गया। कुछ दिन उस देश में घूमकर वह फिर तीसरी बार मक्के गया। मक्के से वह हिन्दुस्तान जाना चाहता था, परन्तु उसे हिन्दुस्तान जानेवाला कोई जहाज़ ही न मिला। लाचार उसने उस समय भारत-यात्रा का विचार त्याग दिया। परन्तु उससे बैठे न रहा गया। लालसागर पार करके वह मिस्र देश में आया और वहां से नील नदी के किनारे किनारे चलकर फिर क़ाहिरा पहुँचा। कुछ दिन वहां आराम करके वह योरप के दक्षिण में, छोटे छोटे द्वीपों में, घूमता रहा। वहां से वह काले समुद्र को पार करके रूस देश के अन्तर्गत वालगा नदी के तट पर पहुँचा। मुहम्मद उज़बक उस समय उस देश का राजा था। उस समय, संसार में, सात बादशाह बड़े ही शक्तिशाली समझे जाते थे। उज़बक भी उन्हीं सातों में था। उज़बक वंशवाले दीने-इसलाम के पाबन्द थे; परन्तु स्त्रियों को परदे में रखने की प्रथा न उनमें थी और न उनकी प्रजा में ही।

रमज़ान में इब्न बतूता बलगेरिया पहुँचा। वहां रात बहुत छोटी होती थी। दिन भर उसे रोज़ा रखना पड़ता था। वह कहता है कि मग़रिब की नमाज़ पढ़ते ही इशा की नमाज़ का वक्त आ जाता था—अर्थात् रात बीत जाती थी। इस यात्रा में वह उज़बक बादशाह से भी मिला। बादशाह ने उसका बड़ा आदर किया और अपने पास ठहरा लिया। बादशाह के कई बेगमें थीं। प्रधान बेगम कुस्तुनतुनिया के ईसाई बादशाह की बेटी थी। वह उस समय गर्भवती थी। उसने बादशाह से अपने पिता के यहां जाने की आज्ञा चाही। आज्ञा मिल गई। बादशाह की आज्ञा से बतूता भी बेगम के साथ हो लिया। कुस्तुनतुनिया में उसका बड़ा आदर-सत्कार हुआ। वहां के बादशाह से मुलाकात होने पर उसे बहुत कुछ इनाम मिला। वहां वह एक महीना छः दिन रहा। तथापि वह इस यात्रा से ख़ुश न हुआ। ईसाई गिरजों के घण्टों का नाद उसे बहुत ही नापसन्द था। एक बात और भी थी। उज़बक बादशाह की जिस बेगम के साथ वहां गया था वह अपने पिता के पास पहुँचकर सुअर का मांस खाने और शराब पीने लगी। उसका यह आचरण बतूता को बहुत ही बुरा लगा। जब बतूता और उसके साथियों ने देखा कि बेगम अपने पति के पास अब नहीं जाना चाहती तब ये लोग उज़बक के पास लौट गये।

इसके बाद वह हिन्दुस्तान की ओर चला। रास्ते में जो जो नगर पड़े उनमें ठहरता हुआ वह उस पर्व्वत पर पहुँचा जिसे आज-कल 'हिन्दू-कुश' कहते हैं। उसने लिखा है कि इस पर्व्वत को 'हिन्दू-कुश' इसलिए कहते हैं कि जो ग़ुलाम हिन्दुस्तान से पकड़कर लाये जाते थे वे इस पर्व्वत के शीत को न सह सकने के कारण मर जाते थे। हिन्दू-कुश के निकट बशाई नाम के एक पहाड़ पर उसे एक बूढ़ा आदमी मिला। उसने बतलाया कि मेरी उम्र इस समय ३५० वर्ष की है! प्रत्येक शताब्दी समाप्त होने पर मेरे नये दांत और बाल नये हो जाते हैं!

बतूता को उस वृद्ध की बातों पर विश्वास न हुआ। वहां से वह काबुल होता हुआ १३३२ ईसवी के मुहर्रम महीने में पञ्जाब पहुँचा।

उस समय हिन्दुस्तान में मुहम्मद तुग़लक बादशाह था। देश में शान्ति नाम को भी न थी। कोई राजपथ तक सुरक्षित न था। मुसाफ़िर सब कहीं लूट लिये जाते थे। स्थान स्थान पर उत्पात होते थे। निर्बलों को सताना ही बलवान् अपना कर्तव्य समझते थे। अपनी भारत-यात्रा के विषय में इब्न बतूता ने अपने सफ़रनामे में इस प्रकार लिखा है—

"सिन्ध, हिन्दुस्तान का बड़ा भारी दरिया है। यहां डाक प्यादों और सवारों द्वारा लाई और भेजी जाती है। हिन्दुस्तान का कोई मेवा हमारे देश में प्रसिद्ध नहीं। केवल तरबूज़ ही ऐसा फल है जो यहां भी होता है और वहां भी। परन्तु यहां का तरबूज़ बड़ा और मीठा होता है। यहां वृक्ष बहुत बड़े बड़े हैं; परन्तु अपने यहां का कोई वृक्ष मुझे नहीं दिखाई पड़ा। यहां का एक फल आम है। कच्चा आम खट्टा होता है। उसका अचार पड़ता है। पक्का

आम सेब की तरह मीठा होता है। खिरनी, जामन, महुआ, बेर, आदि कितने ही और भी मेवे यहां होते हैं। अङ्गूर और अनार बहुत नहीं होते। खजूर होते ही नहीं। अनाज बहुत क़िस्म के होते हैं। यहां के अधिकतर निवासी काफ़िर और बुतपरस्त हैं। उनमें जो इसलामी शासन के अधीन नगरों और गांवों में बसते हैं वे तो शान्ति-प्रिय हैं; परन्तु जो पहाड़ों पर रहते हैं वे लूट-मार करते हैं। इन लोगों में मृत पति के साथ स्त्रियां ज़िन्दा जल जाती हैं। जब पति मरता है तब स्त्री शृङ्गार करती है। ब्राह्मण और अन्य लोग बाजा बजाते हैं। जिस आग में मृत पति जलाया जाता है उसीमें स्त्री भी जा गिरती है। दोनों थोड़ी देर में राख हो जाते हैं। यह आवश्यक नहीं कि सब विधवायें अपने पति की लाश के साथ जलें। परन्तु यह प्रथा बहुत अच्छी समझी जाती है। जिस घर की कोई स्त्री इस प्रकार जल जाती है उस घर का लोग बड़ा आदर करते हैं। जो विधवा नहीं जलती उसे मोटे कपड़े पहनकर अपना सारा जीवन अपने सम्बन्धियों के साथ बिताना पड़ता है। जलने के पहले स्त्री खूब खुश हो होकर हँसती, बोलती और नाचती है।

"हिन्दू लोग जलाये गये मुर्दों की राख गङ्गा में फेंक देते हैं। बहुत से हिन्दू गङ्गा में जान बूझकर ख़ुद ही डूब जाते हैं। जो डूबना चाहता है वह अपने किसी सम्बन्धी को बुलाकर कहता है—'यह मत समझना कि मैं गङ्गा में किसी सांसारिक इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए डूबता हूँ। नहीं, मेरा मतलब केवल यही है कि मैं भगवान् के पास पहुँच जाऊँ।'

"देहली हिन्दुस्तान की राजधानी है। संसार के इसलामी राज्यों में कहीं भी इतना बड़ा शहर नहीं। जैसी अच्छी शहरपनाह देहली के चारों तरफ़ है वैसी अच्छी शहरपनाह शायद ही दुनिया के किसी शहर की हो। शहरपनाह की दीवार ग्यारह गज़ चौड़ी है। उसके ऊपर ठौर ठौर पर आड़ की जगहें बनी हुई हैं जिनमें शहरपनाह की रक्षा करनेवाले सिपाही रहते हैं। दीवार के अन्दर कितने ही सिलहख़ाने हैं। क़िले में गल्ला भी बेहद भरा हुआ है। गल्ला ज़मीन में गड़ा रहता है, परन्तु ख़राब नहीं होता। बादशाह बलबन के समय के, लगभग नव्वे वर्ष के पुराने, गड़े हुए चावल मैंने देखे। रङ्ग उनका कुछ मैला तो अवश्य हो गया था, पर स्वाद उनका वैसा ही था। दीवार के नीचे का भाग पत्थर का है और ऊपरी भाग ईंट और चूने का। दीवार पर दो सवार बड़ी अच्छी तरह दौड़ सकते हैं। शहरवाले उन्हें देख सकते हैं; परन्तु बाहरवाले नहीं। इसका कारण यह है कि दीवार पर भी जाने-आने का रास्ता छोड़कर बाहर की तरफ़ एक छोटी चहार दीवारी बना दी गई है। शहरपनाह में बाहर आने जाने के लिए २८ फाटक हैं।

"देहली की जामे-मसजिद भी अपने ढङ्ग की एक ही है। पहले वह काफ़िरों की परिस्तिश-गाह थी। वह सङ्गमर्मर की बनी हुई है। लकड़ी और मामूली पत्थर का कहीं नाम नहीं। बीच मसजिद में एक तीस गज़ लम्बा स्तम्भ है। कहते हैं, वह सात धातुओं को मिलाकर बनाया गया है, और किसी भी शस्त्र से काटा नहीं जा सकता। मसजिद का एक मीनार बहुत ही ऊँचा है। वह सुर्ख़ पत्थर का बना हुआ है। उसके ऊपर चढ़ने की सीढ़ियाँ इतनी चौड़ी हैं कि हाथी भी उन पर चढ़ सकता है।

"शहर के बाहर एक बड़ा भारी हौज़ है। वह दो मील लम्बा और एक मील चौड़ा है। उससे भी बड़ा एक और हौज़ है। देहली से जो सड़कें और नगरों को जाती हैं उन पर दोनों तरफ़ इतने वृक्ष हैं कि सदा छाया रहती है। उन पर तीन तीन मील पर सरायें बनी हुई हैं, जिनमें मुसाफ़िर ठहरते हैं।

"हम लोगों के आने का समाचार बादशाह मुहम्मद तुग़लक को मिल गया था। उसने अपने कर्मचारियों को आज्ञा दे दी थी कि हमें रास्ते में किसी तरह की तकलीफ़ न होने पावे। देहली पहुँचकर हम वज़ीर और क़ाज़ी के साथ राज-माता को सलाम करने गये। राज-माता ने हमारा अच्छा सत्कार किया और हमारे ठहरने और भोजन का उचित प्रबन्ध कर दिया। हर रोज़ प्रातःकाल हम वज़ीर को सलाम करने जाते थे। एक दिन उसने मुझे दो हज़ार दीनार दिये और कहा कि यह आपके कपड़ों की धुलाई है। इसके सिवा उसने मुझे एक बहु-मूल्य चोग़ा और मेरे नौकरों को जो लगभग चालीस थे, दो हज़ार दीनार दिये। उस समय बादशाह कहीं बाहर गये हुए थे, परन्तु उनकी कृपा से हम

लोगों के आराम में कोई विघ्न नहीं पड़ा । इसी बीच मेरी एक लड़की का देहान्त हो गया । वज़ीर ने उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया का सब ख़र्च सरकारी ख़ज़ाने से दिया ।

"हमारे देहली पहुँचने के थोड़े ही दिनों बाद समाचार मिला कि बादशाह राजधानी को लौट रहे हैं । हम लोग नज़रें ले लेकर, सात मील आगे बढ़कर बादशाह से मिलने गये । बादशाह ने मेरा और मेरे साथ के मुसाफ़िरों का खूब सत्कार किया और सबको खिलअतें दीं । देहली पहुँचकर बादशाह ने हममें से हर मुसाफ़िर को योग्यतानुसार एक एक पद पर नियत कर दिया । मुझे देहली के क़ाज़ी का पद मिला । मेरी तनख़्वाह बारह हज़ार रुपये साल नियत हुई । इसके सिवा बारह हज़ार की जागीर भी मिली । मैं हिन्दुस्तान की ज़बान बिलकुल न समझता था । इसलिए बादशाह ने मेरे दो नायब नियत किये, जो मुझे हर बात में सहायता दें ।

"मुहम्मद तुग़लक बड़ा ही उदार और दयालु बादशाह है; परन्तु साथ ही ज़िद्दी भी परले सिरे का है । ज़रा ज़रा सी बात पर ज़िद कर बैठता है । ज़िद में आकर कभी कभी वह बड़े बड़े कठोर काम कर डालता है । कुछ बाग़ियों ने देहली-वालों को बादशाह के विरुद्ध भड़का दिया । फल यह हुआ कि बादशाह ने हुक्म दे दिया कि देहली ख़ाली कर दी जाय । यदि कोई आदमी नगर के किसी मकान में पाया जायगा तो उसे प्राण-दण्ड दिया जायगा । लोग अपने अपने घर छोड़कर भाग गये । केवल दो आदमी जिनमें एक अन्धा था, एक घर में छिप रहे । शाही नौकरों ने उन्हें ढूँढ़ निकाला । जो अन्धा था उसे देहली से दौलताबाद तक घसीटे जाने का हुक्म हुआ और दूसरे को एक ऊँची छत पर से गिरा दिये जाने का । कोई न कोई घटनायें इस तरह की हुआ ही करती हैं । कभी कोई शेख़ अपनी जान खोता है और कभी कोई अमीर हाथी के पैरों में बंधवाकर मारा जाता है ।

"यद्यपि बादशाह मुझ पर बड़ी कृपा करता था, परन्तु मैं प्रतिदिन होनेवाले इन अत्याचारों को न देख सकता था । इधर हिन्दुस्तान में रहते मुझे बरसें हो गई थीं; इसलिए घूमने के लिए मेरा जी ललचा रहा था । मेरा ख़र्च भी बहुत बढ़ गया था । पचपन हज़ार रुपये का तो मेरे ऊपर कर्ज़ हो गया था । इसी बीच एक दुर्घटना हो गई । बादशाह ने एक शेख़ पर नाराज़ होकर उसे क़ैद कर दिया । शेख़ के मिलने-जुलनेवाले भी पकड़े जाने लगे । मैं भी उससे मिला करता था, इसलिए दूसरों के साथ मुझे भी बादशाह के सामने हाज़िर होना पड़ा । औरों को तो फांसी दे दी गई, परन्तु मैं छोड़ दिया गया । छूटतेही मैंने अपने काम से इस्तेफ़ा दे दिया और अपना सब माल-असबाब फ़क़ीरों को बांटकर फ़क़ीरी वेश धारण कर लिया ।

"इसी समय चीन के सम्राट् ने बादशाह मुहम्मद के पास कुछ सौगातें भेजीं । मैं जो फ़क़ीरी वेश में बादशाह से मुलाक़ात करने गया तो उसने पहले से भी अधिक मेरा सत्कार किया । उसने कहा—'मैं जानता हूँ कि तुम सफ़र को बहुत पसन्द करते हो । अच्छा, तुम मेरे एलची बनकर चीन जाओ और मेरी तरफ़ से चीन के सम्राट् के पास सौगातें लेजाओ' । मैंने इस काम को स्वीकार कर लिया । मैं बादशाह की तरफ़ से सौगातें लेकर चीन से आये हुए एलची के साथ देहली से चल पड़ा । रास्ते में हिन्दुओं ने हम लोगों पर डाका डाला । हम सब भागकर तितर-बितर हो गये । मैं अकेला रह गया । सात दिन तक जङ्गली फलों और पत्तों को खाता मैं चला गया । एक दिन कमज़ोरी के कारण बेहोश होकर सड़क पर गिर पड़ा । जो आँखें खुलीं तो मैंने अपनेको शाही सिपाहियों के बीच में पाया । मैं बादशाह के पास पहुँचाया गया । वह मेरे लूटे जाने का हाल सुन चुका था । मुझे बारह हज़ार रुपये देकर कुछ आदमियों के साथ उसने फिर रवाना किया ।

"रास्ते में हम लोग 'जोगियों' से मिले । ये जोगी ज़मीन के नीचे अपना मकान बनाते हैं । हवा आने के लिए केवल ज़रा सा छेद रहता है । ये महीनों कुछ नहीं खाते । मैंने सुना है कि एक जोगी ने साल भर तक कुछ नहीं खाया । बादशाह जोगियों को बहुत पसन्द करते हैं । वे उनकी सुहबत में भी बैठते हैं । जोगी लोग केवल एक बार देखकर ही आदमी को मार सकते हैं । एक दिन मैं बादशाह के पास बैठा था कि दो जोगी आये । बादशाह ने उनका बड़ा आदर किया और मेरी तरफ़ इशारा करके उनसे कहा, यह मुसाफ़िर है; इसे कोई करामात दिखलाइए । एक जोगी उठा और आकाश में उड़ गया । मैं इस विचित्र लीला को

देखकर बेहोश हो गया। जब मैं होश में आया तब देखा कि जोगी उसी प्रकार हवा में उड़ रहा है। इतने में दूसरा जोगी उठा और चन्दन का एक टुकड़ा ज़मीन पर मारकर वह भी उसी तरह हवा में उड़ने लगा। जब मैं बहुत घबरा गया तब बादशाह ने जोगियों के इस खेल को बन्द करवा दिया।

"चलते चलते हम लोग सिन्धुपुर नाम के द्वीप में पहुँचे। इसमें एक बड़ा भारी तालाब और एक मन्दिर है। मैं मन्दिर के पास पहुँचा तो देखता क्या हूँ कि एक जोगी दो मूर्तियों के बीच में बैठा है। मैंने उसे बुलाया; पर वह न बोला। मैंने इधर-उधर देखा; पर कोई खाद्य पदार्थ मुझे न दिखाई पड़ा। मैं देख ही रहा था कि वह एक-दम कड़का और एक नारियल के उस वृक्ष से जो उसके सामने ही था, पट से नीचे गिर पड़ा। यह नारियल उसने मेरी तरफ़ फेंक दिया। मैंने उसे कुछ रुपये देना चाहा; पर उसने तुरन्त मुझे मेरे रुपयों से दस रुपये अधिक दे दिये। मैं उसे मुसलमान समझता हूँ; क्योंकि जब मैंने उसे बुलाया तब पहले तो उसने आकाश की तरफ़ सङ्केत किया, फिर मक्का-मुअज़्ज़मा की तरफ़। इन इशारों से उसने यह प्रकट किया था कि वह खुदाय-वाहद और रसूल-अल्लाह को जानता है और उन्हीं पर ईमान रखता है।

"यहाँ से हम लोग मलाबार पहुँचे। यहाँ की सड़कों पर आधे आधे मील पर मुसाफ़िरख़ाने बने हुए हैं। हिन्दू और मुसलमान, कोई क्यों न हो, बिना किसी रोक-टोक के इन मुसाफ़िरख़ानों में ठहर सकते हैं। इन मुसाफ़िरख़ानों में एक एक कुआँ है। एक आदमी कुएँ पर सदा बैठा रहता है और लोगों को पानी पिलाया करता है। हिन्दुओं को पानी किसी पात्र में दिया जाता है और मुसलमानों को चुल्लू में। हिन्दू अपने पात्र मुसलमानों को नहीं छूने देते। यदि कोई पात्र किसी मुसलमान से छू जाय तो वह तुरन्त तोड़ दिया जाता है। यहाँ अधिकतर हिन्दू ही रहते हैं। परन्तु मुसलमान व्यापारी भी बहुत पाये जाते हैं। नगरों में मुसलमान यात्री मुसलमान व्यापारियों के यहाँ ठहरा करते हैं। जहाँ मुसलमान व्यापारी नहीं, वहाँ हिन्दू लोग मुसलमानों को केले या किसी दूसरे पत्ते पर खाना दे देते हैं। इस राज्य में मैंने दो मास तक सफ़र किया; परन्तु कहीं ज़रा सी भी ज़मीन बिना जोती-बोई न देखी। हर एक आदमी के पास एक एक बाग़ है, जिसमें रहने के लिए घर बना है। यहाँ सिवा बादशाह के कोई घोड़े पर सवार नहीं होता। अमीर लोग पालकियों पर सवार होते हैं। व्यापारी लोग लदनेवाले जानवरों का काम कुलियों से लेते हैं। चोरों को यहाँ प्राण-दण्ड तक दिया जाता है; इसीलिए यहाँ चोरी नहीं होती। मलाबार में बारह राजा हैं। सबसे बड़े राजा के पास पचास हज़ार सेना है और सबसे छोटे के पास पाँच हज़ार। इन राजाओं के उत्तराधिकारी इनकी बहनों के पुत्र होते हैं। इस देश में काली-मिर्च बहुत होती है।

"हेली और पट्टन होते हुए हम लोग कालीकट पहुँचे। यहाँ से चीन को जहाज़ जाते हैं। प्रत्येक जहाज़ में एक हज़ार नौकर रहते हैं, जिनमें छः सौ मल्लाह होते हैं और चार सौ नौकर-चाकर। बड़े जहाज़ के साथ तीन छोटे छोटे जहाज़ भी रहते हैं। ये जहाज़ चीन में बनते हैं। ये बड़ी बड़ी शहतीरों के डाँड़ों से खेये जाते हैं। बीस-पचीस मल्लाह मिलकर एक डाँड़ चलाते हैं। जहाज़ों में लकड़ी के घर बने रहते हैं, जिनमें जहाज़ के कर्मचारी रहते हैं।

"हम लोग चीन जानेवाले जहाज़ों पर सवार हुए। दुर्भाग्यवश चलते ही तूफ़ान आ गया। जहाज़ टूट-फूट गये। मेरे सब साथी समुद्र में डूब गये। केवल मैं बच गया। अन्त को घूमते-घामते मैं माल-द्वीप पहुँचा।"

यहाँ से इब्न बतूता की भारत-यात्रा समाप्त होती है। उस समय माल-द्वीप में कोई स्त्री राज कर रही थी। पहुँचते ही बतूता को वहाँ के क़ाज़ी का पद मिल गया। वह वहाँ लगभग एक वर्ष के रहा। उसने वहाँ की चार स्त्रियों से शादी की। एक से तो एक पुत्र भी हुआ। अधिक दिनों तक वह वहाँ न ठहर सका। अपनी स्त्रियों को तिलाक़ देकर वह सीलोन को चलता बना। वहाँ उसने बाबा आदम के पद-चिह्नों के दर्शन किये। वहाँ से वह दक्षिण भारत में घूमता हुआ बङ्गाल के चटगाँव में पहुँचा। चटगाँव से एक जहाज़ पर सवार होकर वह चीन गया। रास्ते में जावा, सुमात्रा आदि द्वीपों की भी सैर करता गया। उस समय चीन में चङ्गेज़ ख़ाँ का कोई वंशज राज्य करता था। वह चीनवालों की शिल्प-कला-सम्बन्धिनी चतुरता को देखकर

दङ्ग रह गया। उसने चीन की राज-पद्धति की भी बड़ी प्रशंसा की है। चीन में मुसाफ़िरों को बड़ा आराम था। देश भर में कहीं डाकुओं और चोरों का नाम न था। उसके चीन में पहुँचने के थोड़े ही दिनों बाद वहां एक बड़ा राज्य-विप्लव हुआ। उसमें चीन का बादशाह मारा गया। तब उसका भतीजा सिंहासन पर बैठा। देश में अशान्ति बढ़ती देख बतूता वहाँ से चल दिया। जावा, सुमात्रा आदि द्वीपों में फिर एक चक्कर लगाकर वह बीस वर्ष बाद अरब पहुँचा। मक्का, दमश्क, काहिरा आदि तीर्थों और नगरों में ठहरता हुआ वह १३४९ ईसवी के अन्त में सकुशल स्वदेश को लौट गया।

१३५२ में वह फिर यात्रा करने निकला था। दो वर्ष तक वह मध्य अफ़रीक़ा की सैर करता रहा। बाद को वह स्वदेश लौट गया और बीस वर्ष तक जीता रहा। ७३ वर्ष की उम्र में इस बड़े यात्री की जीवन-यात्रा समाप्त हो गई।

साँपों का स्वभाव।

मुम्बई-समाचार में इस विषय पर एक छोटा सा लेख निकला है। उसका मतलब सुनिए—

हिन्दुस्तान के प्रायः सभी भागों में साँप होते हैं। साँप में यह एक विशेषता है कि जब तक उसको कोई सताता नहीं तब तक वह नहीं काटता। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं कि उसके ऊपर से निकल जाने पर भी उसने किसीको नहीं काटा। इसके विपरीत यदि किसीने उसके साथ ज़रा भी छेड़-छाड़ की तो उसकी कोप-दृष्टि से बचना मुश्किल हो जाता है। साँपों के सम्बन्ध की दो-चार सच्ची घटनाओं का यहाँ पर उल्लेख किया जाता है जिससे सरस्वती के पाठकों को, मन-बहलाव के साथ साथ, साँपों के स्वभाव का भी थोड़ा-बहुत पता लग जायगा।

छोटे छोटे गाँवों में ग्वाले प्रातःकाल ही अपनी गाय और भैंसों को दुहते हैं। एक दिन एक ग्वाले ने जब अपनी गाय दुही तब उसको उसका दूध हमेशा से कम मालूम हुआ। उस दिन तो उसने इस बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया; परन्तु जब प्रतिदिन उसको दूध कम मिलने लगा तब उसको यह सन्देह हुआ कि रात के वक्त कोई पड़ोसी आकर गाय को दुह जाता होगा। यह विचारकर वह एक दिन सारी रात अपने बाड़े में छिपकर बैठा रहा। सारी रात बीत गई; परन्तु कोई मनुष्य वहाँ पर न आया। निदान थककर वह गाय दुहने की तैयारी करने लगा, इतने में उसने एकाएक गाय को काँपते देखा। भय से उसके मुँह पर मुरदनी सी छा गई थी, मानों किसी रोग से उसका शरीर अकड़ गया हो। ग्वाला गाय से थोड़ी ही दूर पर था। इस प्रकार गाय का रङ्ग बदला देखकर वह बड़ा विस्मित हुआ। ग्वाला इसी आश्चर्य में डूबा था कि उसने और भी एक आश्चर्यमयी घटना देखी। उसने देखा कि एक बड़ा सा साँप गाय की अगली और पिछली टाँगों में लिपटा हुआ है और उसका एक स्तन अपने मुँह में लेकर बच्चे की तरह दूध पी रहा है। यह हाल देखकर ग्वाला चुपचाप एक कोने में छिप रहा, क्योंकि वह जानता था कि यदि थोड़ी सी भी आवाज़ साँप के कान में पड़ेगी तो वह झट गाय को काट खायगा। निदान जब साँप दूध पीकर अपने बिल में घुस गया तब ग्वाले के जी में जी आया।

एक मदारी और उसके साँप।

एक गाँव में दो मदारी-भाई रहते थे। वे हमेशा जङ्गलों से साँपों को पकड़ते और लोगों को उनके तमाशे दिखाकर टके कमाते थे। एक दिन उन्होंने जङ्गल से छः साँप एक ही साथ पकड़े और उनको एक टोकरे में बन्द करके अपनी झोपड़ी के एक

कोने में रख दिया। उस झोपड़ी के दो हिस्से थे; एक में भोजन बनाया जाता था और दूसरे में दोनों भाई सोया करते थे। साँपों का टोकरा सोने के कमरे में रक्खा गया था। रात को दोनों भाई एक ही बिछौने पर चादर बिछाकर सो रहे। सबेरे एक भाई बहुत जल्द उठकर भोजन की तैयारी करने लगा और दूसरा सोता ही रहा। थोड़ी देर बाद जब उसकी आँख खुली तब उसने देखा कि सब साँप उसके चारों तरफ़ फन निकालकर खड़े हैं। पहले तो यह दृश्य देखकर वह बहुत घबराया और चाहा कि कूदकर भाग जाऊँ। परन्तु चारों तरफ़ से घिरा होने के कारण भागना मुश्किल था। यह भयङ्कर दृश्य बहुत देर तक न देख सकने के कारण उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं। वह मन में सोचने लगा कि ये साँप टोकरे से कैसे निकल आये और इन्होंने मेरी जान लेने का मनसूबा क्यों किया है और फिर जान लेने की सारी तैयारी करके भी विलम्ब क्यों कर रहे हैं? इस प्रकार वह थोड़ी देर तक विचार करता रहा। परन्तु उसको निश्चय न हुआ कि साँपों का मतलब क्या है। आख़िर उसके ध्यान में आया कि झोंपड़ी की ज़मीन गोबर से लिपी होने के कारण कुछ काले रङ्ग की हो गई है और जिस चादर पर मैं पड़ा हूँ उसका रङ्ग दूध की तरह सुफ़ेद है। इसीलिए साँप इस ओर आकर्षित हुए हैं। यह बात ध्यान में आते ही वह अपने बचाव की तदबीर सोचने लगा। परन्तु उसको किसी सूरत से भी साँपों से बच निकलने की तदबीर न सूझी। आख़िर उसने बहुत ही दबी आवाज़ से अपने भाई को बुलाया। अपने भाई का मन्द स्वर सुनकर दूसरा भाई, जो उस समय दूध गरम कर रहा था, वहाँ आया और अपने भाई को साँपों से घिरा हुआ देखकर झट भोजन-घर में लौट गया। जो दूध उसने पीने के लिए गरम कर रक्खा था, उसे वह एक थाली में डालकर वहाँ पर ले आया और उसको साँपों से थोड़ी दूर पर रखकर फिर भोजन-घर में चला गया। वहाँ से वह देखने लगा कि अब क्या होता है। थोड़ी ही देर में साँपों को दूध की सुगन्धि आई और वे सबके सब दूध की थाली पर टूट पड़े। उनके दूर होतेही वह मनुष्य, जो अपने को जीते ही मरा हुआ समझ रहा था, दौड़कर भोजन-घर में घुस गया।

साँपों का सङ्गीत-प्रेम।

साँपों को सङ्गीत से बड़ा प्रेम होता है। इसी प्रेम के कारण वे अपनेको मदारी के हाथों में फँसा देते हैं। इसी सङ्गीत द्वारा ही मदारी लोग उनको अपने बिलों से बाहर निकाल लेते हैं। यद्यपि मुरली को वे सबसे ज़्यादा पसन्द करते हैं तथापि अन्य वाद्य भी उनको कम प्रिय नहीं होते। किसी समय एक स्त्री अपनी वाटिका में बैठी सारङ्गी बजा रही थी। इतने में उसने अपने से केवल दो फुट की दूरी पर एक बड़े से साँप को फन निकालकर डोलते देखा। उसको देखकर वह बहुत घबराई और सोचने लगी कि किसी तरह यहाँ से भाग जाऊँ। परन्तु केवल एक हाथ के फ़ासले पर साँप अपने फन को हिलाकर उसीकी तरफ़ देख रहा था। ऐसी अवस्था में वहाँ से भाग निकलना कठिन था। उस मौक़े पर उसे एक बहुत अच्छा विचार सूझा जिससे उसकी रक्षा हुई। उसने उस वक़्त एक नवीन राग बजाना शुरू किया जिससे नाग अत्यन्त आनन्दित होकर झूमने लगा। जैसे जैसे सारङ्गी से आलाप निकलने लगे वैसे ही वैसे साँप भी डोलने लगा और वह स्त्री धीरे धीरे पीछे हटती गई। पहले तो उसका यह विचार था कि इस प्रकार साँप को धोखे में डालकर भाग जाऊँ। परन्तु जब वह बहुत दूर निकल गई तब उसको साँप के डोलने से बड़ा मज़ा आने लगा। क्योंकि जिस प्रकार का ताल वह बजाती थी उसी प्रकार साँप भी अपने सिर को

हिलाता था। कभी कभी सारङ्गी की गति त्वरित हो जाने पर साँप का सिर भी बड़ी तेज़ी से हिलने लगता था। वाद्य की गति यदि मन्द हो जाती थी तो वह भी मानों नींद के झोंके खाने लगता था। एक बार उस स्त्री ने जान-बूझकर ताल को बिगाड़ दिया। उससे साँप ने बड़ा दुःख प्रकट किया, मानों इससे वह बड़ा ही अप्रसन्न हुआ हो। मतलब यह कि राग के पहचानने में साँप ने एक अच्छे गवैये की सी चतुराई दिखाई। आख़िर उस स्त्री ने तङ्ग होकर, और इस प्रकार साँप से खेल-खाल करते रहने से शायद कोई दूसरा तूफ़ान न खड़ा हो जाय, इस भय से अपने घर में घुसकर किवाड़ बन्द कर लिये। साँप भी राग पूरा हो जाने से अपने बिल में जा घुसा।

नाग को पैर तले कुचल डालनेवाली माँ-बेटी।

हिन्दुस्तान की स्त्रियाँ जूता नहीं पहनतीं; सब जगह खुले पैरों फिरा करती हैं। यह रिवाज कुछ अच्छा नहीं, क्योंकि इससे कभी कभी बड़ी हानि होती है। एक दिन सन्ध्या-समय एक लड़की अपने घर के बरामदे में फिर रही थी। घर के बाहर पीपल का एक वृक्ष था। वह लड़की फिरते फिरते उस पीपल के वृक्ष के पास आई और सहसा स्तब्ध होकर खड़ी रह गई। डर से उसका सारा बदन काँपने लगा। उसमें बोलने की शक्ति भी न रही।

"अम्मा! ओ अम्मा!"—आख़िर उसने ज्यों त्यों करके बहुत डरी हुई आवाज़ से अपनी माँ को बुलाया।

"क्यों बेटी क्या है?"—अन्दर से आवाज़ आई।

"माँ! मेरा पैर एक साँप पर—उसके सिर पर—पड़ गया है"—लड़की ने कहा।

"वैसे ही खड़ी रहना; मैं अभी आती हूँ; देखना ज़रा भी हिलना मत"—मा ने कहा।

इस प्रकार लड़की को आश्वासन देती हुई वह एक दिया हाथ में लेकर उसके पास आई। लड़की वहीं खड़ी थी। उसका मुँह पीला पड़ गया था। खून सूख गया था और मुख पर घबराहट छाई हुई थी। परन्तु उसने अपना पैर साँप के सिर पर खूब ज़ोर से दबा रक्खा था। साँप भी उसकी टाँगों में लिपट गया था और उसके पैर के नीचे से अपना सिर छुड़ाने की कोशिश कर रहा था। साँप कुछ छोटा था; इसलिए लड़की के पैर-तले से निकल न सका। यदि वह बड़ा होता तो अवश्य लड़की को मार डालता।

लड़की की माँ ने आकर अपना पैर लड़की के पैर पर रख दिया और उसको खूब ज़ोर से दबाने लगी। उसने लड़की के बग़ल में अपने दोनों हाथ डालकर उसको बड़ी मज़बूती से पकड़ रक्खा था। कितनी ही देर तक दोनों माँ-बेटी साँप का सिर अपने पैर के नीचे दबाये खड़ी रहीं। यदि थोड़ी सी भी ग़फ़लत हो जाती तो दोनों माँ-बेटी आलिङ्गित अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो जातीं! इस प्रकार कुछ देर तक दवा रहने से साँप मर गया। निदान जब साँप मरकर धरती पर गिर पड़ा तब माँ ने लड़की के पैर पर से अपना पैर उठाया और उन दोनों के जी में जी आया।

छबीलदास सामन्त

शरद्दर्शन।

नील नीरद नाहिं दीसत इन्द्र-धनु नहिं भाय।
मन्द गति सरितान की भइ सुठि सोई दरसाय॥ १॥
व्योम-शोभा बढ़ति निशि में नखत-अवली पाय।
मनु सितारन जड़ित माया-नील-पट सरसाय॥ २॥
विमल सरवर लसत कहुँ कहुँ जल अगाध लखाय।
ललित पीत सुशालि की मृदु महँक सौंधि सुहाय॥ ३॥

विविध रँग के खिले सरसिज कुमुदिनी लहराय ।
भ्रमर-गन गुञ्जरहिं मानहुँ प्रकृति यश कों गाय ॥ ४ ॥
मोर मद सों मत्त है अब शोर नाहिं मचाय ।
नृत्य-रत कहुँ नाहिं दीखत उपवननि में जाय ॥ ५ ॥
हंस कलरव करत अब वह विमल सरितन-तीर ।
सारसन की सुभग जोरी कहुँ किलोलत नीर ॥ ६ ॥
शुक चक्रवाक लखाहिँ कहुँ कहुँ खञ्जनन की भीर ।
सेत पंछी उड़त नभ-पथ मनहु उजरो चीर ॥ ७ ॥
कञ्ज-रज सों सौरभित शुचि बहत मन्द समीर ।
हरत हिय सन्ताप कों अरु कर निरोग शरीर ॥ ८ ॥
पाय सुखमय समय यह हे देश-सेवा-वीर !
करहु भारत को सुखी अब हरहु वाकी पीर ॥ ९ ॥

विद्याधर तिवारी ।

महाकर्षण ।

यदि कोई वस्तु पृथ्वी से कुछ दूर ऊँची उठाकर निराश्रय छोड़ दी जाय तो वह शीघ्र ही पृथ्वी-तल पर आ जाती है। वृक्ष का आश्रय छूटतेही फल, फूल, पत्ते आदि ज़मीन पर गिर पड़ते हैं। ऐसी घटनायें नित्य ही हम लोगों के दृष्टिगोचर होती हैं। परन्तु क्या एक बार भी हम लोगों को इस पर आश्चर्य हुआ है ? क्या किसीने कभी भी यह जानने की चेष्टा की है कि इस आश्चर्यजनक घटना का कारण क्या है ?

वैज्ञानिकों ने इस विषय में बहुत छानबीन करके यह निश्चय किया है कि पृथ्वी में एक प्रकार की आकर्षण-शक्ति है। वह शक्ति सब पदार्थों को अपनी ओर खींचती है। इसीसे वे ज़मीन पर गिर जाते हैं। अनुसन्धान द्वारा जाना गया है कि केवल पृथ्वी में ही नहीं, किन्तु इस विश्व-ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थों के प्रत्येक अणु में यह शक्ति न्यूनाधिक रूप से विद्यमान है। इस अनन्त नीलाकाश में जितने ग्रह और नक्षत्र हैं, उन सबकी विचित्र गति का कारण भी यही अद्भुत आकर्षण-शक्ति है। वैज्ञानिकों ने इसका नाम महाकर्षण-शक्ति रक्खा है।

चुम्बक के सामने लोहे का एक टुकड़ा ले जाइए। चुम्बक शीघ्र ही उसको अपनी ओर खींच लेगा। चुम्बक में जैसी आकर्षण-शक्ति है, वैसी ही आकर्षण-शक्ति पृथ्वी में भी है। किन्तु दोनों की शक्ति में कुछ भेद है। लोहा, निकल आदि केवल कुछ ही धातुओं को चुम्बक अपनी ओर खींच सकता है; पर पृथ्वी सभी पदार्थों को अपनी ओर खींचती है। धरादेवी किसी को भी अपनी गोद में लेने से इनकार नहीं करतीं। किन्तु जब हम गुब्बारे और चिड़ियों की ओर देखते हैं तब इस नियम का कुछ व्यतिक्रम सा देख पड़ता है। वे निराधार होने पर भी पृथ्वी पर नहीं गिरते। परन्तु यह यथार्थ व्यतिक्रम नहीं है। व्यतिक्रम का आभास-मात्र है। विचार करने से मालूम होगा कि उनमें प्रत्येक को मुख्य अथवा गौण रूप में वायु से सहायता मिलती है। उसीके बल से वे पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति को रोकने में समर्थ होते हैं। यदि हवा न होती तो निश्चय ही वे अन्य पदार्थों की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ते।

इस शक्ति के सम्बन्ध में और अधिक बातें जानने के लिए परीक्षा आवश्यक है। एक सीसे का टुकड़ा लीजिए। उसे कुछ ऊँचा उठाकर ज़मीन पर गिरने दीजिए। ऊपर से ज़मीन तक आने में उस टुकड़े को कुछ समय लगेगा। फिर एक और उससे बड़ा टुकड़ा लीजिए और दोनों को एक ही साथ बराबर उँचाई से गिराइए। इस परीक्षा में बड़े टुकड़े को, भारी होने के कारण, ज़मीन पर पहले आ जाना चाहिए; परन्तु ऐसा न होगा। दोनों साथ ही साथ ज़मीन पर गिरेंगे। इसी तरह और भी अनेक पदार्थों की सहायता से परीक्षा कर सकते हैं। परन्तु फल एक ही होगा। हलका पदार्थ जितने समय में ज़मीन पर गिरेगा भारी पदार्थ भी ठीक उतने ही समय में गिरेगा। किन्तु यदि किसी पक्षी का पर लेकर आप परीक्षा करेंगे तो वह कुछ अधिक समय में ज़मीन पर गिरेगा। इसका कारण यह है कि पर बहुत हलकी चीज़ है; इससे हवा उसकी गति में बाधा देती है। यदि पर को एक पैसे पर रखकर आप गिरावेंगे तो वह पैसे के साथ ही ज़मीन पर गिरेगा। कारण यह होगा कि नीचे का पैसा हवा की बाधा को दूर करके पर के गिरने का रास्ता साफ़ कर देता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि किसी निर्दिष्ट उँचाई से ज़मीन तक आने में सभी वस्तुओं को

बराबर एकसा समय लगता है, चाहे वे हलकी हों चाहे भारी।

परीक्षा द्वारा जाना गया है कि यदि कोई वस्तु सोलह फ़ीट ऊँची उठाकर छोड़ दी जाय तो उसे ज़मीन तक आने में एक सेकण्ड लगेगा। चाहे जो वस्तु हो सबके गिरने का समय बराबर ही होगा। यदि हवा की बाधा दूर करके पर गिराया जाय तो वह भी सोलह फ़ीट ऊँचाई से एक ही सेकण्ड में ज़मीन पर आ जायगा। पृथ्वी के चाहे जिस स्थान में यह परीक्षा की जाय फल सर्वत्र एक ही होगा।

अतएव निष्कर्ष यह निकला कि पृथ्वी-तल पर सभी जगह किसी वस्तु को सोलह फ़ीट की ऊँचाई से ज़मीन तक आने में एक सेकण्ड लगता है। अब ज़रा पहाड़ के ऊपर चलकर परीक्षा कीजिए। पहाड़ पर परीक्षा करने से मालूम होगा कि वहां सोलह फ़ीट की ऊँचाई से नीचे आने में पदार्थों को एक सेकण्ड से कुछ अधिक समय लगता है परन्तु पहाड़ के नीचे एकही सेकण्ड लगता है। इससे यह जान पड़ता है कि पृथ्वी-तल से ज्यों ज्यों ऊपर कोई वस्तु जाती है त्यों त्यों उस पर उसकी आकर्षण-शक्ति का प्रभाव कम होता जाता है। परन्तु इस तरह कम होते होते कितनी ऊँचाई पर इस आकर्षण-शक्ति का बल एक-दम निःशेष हो जायगा, इसका पता लगाना बड़ा कठिन काम है। वैज्ञानिक लोग जी-जान से प्रयत्न करने पर भी अब तक केवल पांच-छः मील तक का ही हाल जान सके हैं।

न्यूटन ने अपने विज्ञान-बल से स्थिर किया था कि २,४०,००० मील ऊपर तक भी पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति पहुँचती है। उस स्थान पर भी यदि कोई पदार्थ छोड़ दिया जाय तो वह पृथ्वी पर गिरेगा। उस स्थान से सोलह फ़ीट नीचे आने में एक सेकंड के बदले एक मिनिट समय लगेगा। चन्द्रमा की गति की परीक्षा करके ही न्यूटन ने यह सिद्धान्त स्थिर किया था। चन्द्रमा पृथ्वी से २,४०,००० मील की दूरी पर स्थित है। न्यूटन ने परीक्षा करके देखा कि चन्द्रमा धीरे धीरे पृथ्वी की ओर आता है। इसी आधार पर उसने उक्त सिद्धान्त स्थिर किया।

इन्हीं सब विषयों की आलोचना करके न्यूटन ने, कुछ समय बाद, महाकर्षण-सम्बन्धी तत्त्व का आविष्कार किया। उसने यह भी निश्चय किया कि दो वस्तुओं के बीच में जितना अधिक दूरत्व होगा, उनकी परस्पर की आकर्षण-शक्ति भी उतनी ही कम होगी। किसी प्रकाशमान् पदार्थ से प्रकाश जितना अधिक दूर जायगा उतना ही वह कम होता जायगा। इसी तरह किसी आकर्षणशील पदार्थ से अन्य पदार्थ का जितना ही अधिक अन्तर होगा आकर्षण भी उस पर उतना ही कम पड़ेगा। आश्चर्य्य की बात है कि उक्त दोनों अवस्थाओं में ह्रास की मात्रा एक ही नियम के अनुसार होती है। वह नियम यह है—पदार्थ के आकर्षण का बल उसके दूरत्व के वर्ग के अनुपात से कम होता है। पृथ्वी का ऊपरी भाग उसके केन्द्र से २,००० मील ऊपर है और केन्द्र-स्थल में ही आकर्षण-शक्ति का निवास माना जाता है। इससे यह सिद्ध है कि २,००० मील की दूरी पर पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति किसी वस्तु को एक सेकण्ड में सोलह फ़ीट नीचे खींच सकती है। इसी नियमानुसार हिसाब करने से मालूम होता है कि पृथ्वीतल से २,००० मील ऊपर (अर्थात् केन्द्र से ४,००० मील की दूरी पर) आकर्षण-शक्ति का बल पृथ्वीतल के बल का चतुर्थांश होगा।

अब तक पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के ही सम्बन्ध की बातें कही गई हैं। महाकर्षण का बल इससे भी अधिक है। महाकर्षण से यही न समझना चाहिए कि पृथ्वी अन्यान्य पदार्थों को अपनी ओर खींचती है और अन्यान्य पदार्थ पृथ्वी को अपनी अपनी ओर खींचते हैं। महाकर्षण के सिद्धान्त का यह अभिप्राय है कि विश्व-ब्रह्माण्ड में जितने पदार्थ हैं, सभी परस्पर आकर्षण करते हैं। और वह आकर्षण दूरत्व के अनुपातानुसार कम होता है।

इस महाकर्षण के नियम से कौन कौन कार्य्य सम्पन्न होते हैं, इसका पूरा वर्णन करना असम्भव है। इसी नियम के बल से अनन्त नीलाकाश-स्थित ग्रह-समूह की विचित्र गति का पता लगता है। और इसी नियम के आधार पर गणना करके ज्योतिषी लोग देखने के पहले ही अनेक ग्रहों के अस्तित्व का पता लगा लेते हैं। एक उदाहरण लीजिए। बात उस समय की है जब नेपचून् ग्रह का आविष्कार नहीं हुआ था। अँगरेज़ विद्वान् ट्राडाम्स और फ़रासीसी विद्वान् लेवेरियर दोनों स्वतन्त्र भाव से महाकर्षण के नियमानुसार गणित-शास्त्र के बल से ग्रहोपग्रहों की गति का मिलान कर रहे थे। जब वे लोग यूरेनस ग्रह की गति का

मिलान करने लगे तब उन्हें कुछ गोलमाल मालूम हुआ। उस समय उन्होंने सोचा कि यदि यूरेनस के पीछे और एक ग्रह हो तो बखेड़ा मिट जाय। इस कारण उन्होंने दुबारा गणना की तो उन्हें मालूम हो गया कि अवश्य ही इसके पीछे एक और ग्रह है। तदनन्तर लेवरियर ने हिसाब करके नेपचून ग्रह का स्थान निश्चित किया और चेष्टा करके उसका आविष्कार भी कर लिया।

पृथ्वी चन्द्रमा का आकर्षण करती है। किन्तु अब तक चन्द्रमा पृथ्वी पर नहीं गिरा। इसका क्या कारण? इसी तरह जब सब ग्रहोपग्रह एक दूसरे को खींचते हैं तब उन्हें एक दूसरे से टकराकर नष्ट होजाना चाहिए था। पर अब तक ऐसा क्यों नहीं हुआ? यदि उनमें आकर्षण-शक्ति है तो वे क्यों एक दूसरे के पास नहीं आ जाते? ऐसे ही अनेक प्रश्न लोगों के मन में उठ सकते हैं, क्योंकि आज तक हम लोगों ने कभी ग्रहों के सङ्घर्ष की बात नहीं सुनी।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि सारे ग्रहोपग्रह अपने अपने स्थान पर निश्चल रहते तो अवश्य ही वे परस्पर की आकर्षण-शक्ति के प्रभाव से टकराने लगते। परन्तु इन सब पिण्डों की अपनी अपनी स्वतन्त्र गति भी है। उसी गति के प्रभाव से इनका सङ्घर्षण नहीं होता।

चन्द्रमा पृथ्वी के चारों तरफ़ घूम रहा है और पृथ्वी अपनी आकर्षण शक्ति से बराबर उसको अपनी तरफ़ खींच रही है। तो भी अब तक चन्द्रमा की गति में अन्तर नहीं पड़ा। इस बात को समझने के लिए यहां पर दिये गये चित्र को देखिए। मान लीजिए कि इस चित्र में भीतर-वाला वृत्त पृथ्वी को बीच से काटकर प्राप्त हुआ है। चित्र के ऊपरी भाग में जो चिह्न है उसे पृथ्वी-तल पर एक पर्वत समझिए। इस पर्वत के ऊपर क-चिह्नित स्थान पर बन्दूक़ रखकर यदि क-ख की ओर एक गोली साधारण वेग से चलाई जाय तो वह खण्डित रेखा-पथ से होकर च-चिह्नित स्थान पर गिरेगी। यदि फिर उसी स्थान से गोली कुछ अधिक वेग से चलाई जायगी तो वह छ–चिह्नित स्थान पर गिरेगी। किन्तु यदि गोली का वेग किसी उपाय से बहुत बढ़ा दिया जाय तब क्या होगा? उस अवस्था में वह गोली पृथ्वीतल पर न गिरेगी। वह ग-घ-ङ-चिह्नित वक्र रेखा-पथ पर ज़ोर से चलेगी। पृथ्वी के आकर्षण के प्रभाव से वह क-ख रेखा से भ्रष्ट होकर वक्रपथ ग्रहण करेगी; किन्तु अपने वेग के कारण वह पृथ्वीतल पर न गिरकर ग-घ-ङ वृत्ताकार मार्गों में भ्रमण करने लगेगी। इस समय यदि पर्वत बन्दूक़ आदि सब हटा दिये जायँ तो वह गोली बराबर उस भीतरवाले मण्डल के चारों तरफ़ उसी तरह निराधार घूमती रहेगी।
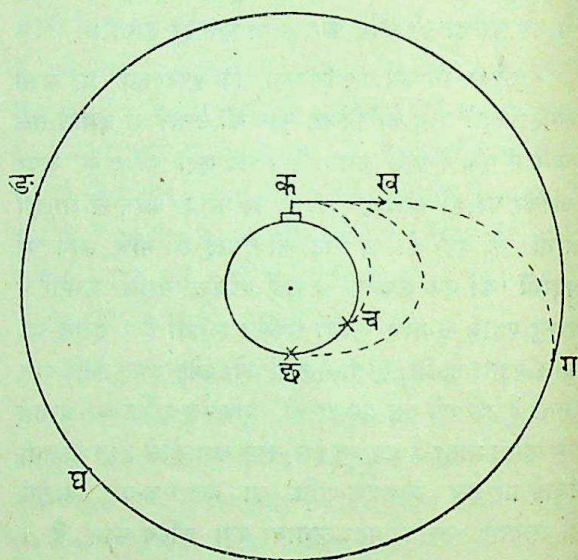
अब ज़रा इस कल्पना को कुछ और बढ़ाकर चन्द्रमा के विषय में विचार कीजिए। मान लीजिए कि चन्द्रमा एक गोला है जिसका व्यास कोई २००० मील है। वह एक बहुत ही बड़े धनुष पर रखकर इतने वेग से छोड़ा गया है कि वह एक सेकंड में ३००० फ़ीट जा सकता है और यह धनुष पृथ्वी से प्रायः २,४०,००० मील ऊपर रक्खा हुआ है। यह गोला पृथ्वी के आकर्षण के प्रभाव से क-ग-घ-ङ वक्रपथ अवलम्बन करके पृथ्वी की परिक्रमा करना आरम्भ करेगा और एक बार पृथ्वी की पूरी प्रदक्षिणा करने में उसे चार सप्ताह समय लगेगा। अब धनुष को हटा लीजिए। ऐसा करने से यह गोला युग युगान्त तक इसी तरह घूमता रहेगा। कोई भी शक्ति उसकी गति को न रोक सकेगी।

धनुष की जो कल्पना यहां पर की गई है वह केवल

काल्पनिक है। हम ठीक ठीक नहीं कह सकते कि वास्तव में यह चन्द्रमा-रूपी गोला किस तरह प्रक्षिप्त हुआ था। किन्तु आज तक यह घूमता हुआ दिखाई देता है। पृथ्वी के साथ चन्द्रमा का जैसा सम्बन्ध है ठीक वैसा ही सम्बन्ध सूर्य्य के साथ अन्यान्य ग्रहोपग्रहों का है। इसीलिए वे सब बराबर सूर्य्य की परिक्रमा कर रहे हैं।

महाकर्षण के प्रभाव से चन्द्रमा पृथ्वी के चारों तरफ़ घूमता है और ग्रहोपग्रह सूर्य्य की परिक्रमा करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि महाकर्षण एक बहुत ही प्रबल शक्ति है। जो शक्ति पृथ्वी आदि ग्रहों को अपने अपने पथ पर बराबर घुमा रही है—जो इस सौर-जगत् को एक अखण्ड परिवार की तरह नियन्त्रित किये हुए है—उसकी प्रबलता में सन्देह ही क्या? किन्तु उक्त सब वस्तुओं का आकार बड़ा होने के कारण ही उनमें महाकर्षण-शक्ति अधिक है। हम लोग जितने पदार्थ देखते हैं सबमें आकर्षण-शक्ति है। सभी परस्पर खींच रहे हैं। किन्तु दो वस्तुओं में यदि एक बड़ी नहीं तो उनमें आकर्षण की शक्ति बहुत कम होगी।

जिन पदार्थों के बल का हम लोग अनुमान कर सकते हैं उनमें व्याप्त हुई आकर्षण-शक्ति का परिमाण भी जाना जा सकता है। कल्पना कीजिए कि दो लोहे के गोले इतने बड़े हैं कि प्रत्येक का वज़न १,१६,७६,००० मन और प्रत्येक का व्यास ९७ गज़ है। ये दोनों परस्पर एक मील के फ़ासले पर रक्खे हुए हैं। दोनों एक दूसरे को आकर्षण करते हैं। इनका परस्पर आकर्षण इतना प्रबल होगा कि इनके बीच यदि कोई पहाड़, मकान या और कोई चीज़ आ जाय तो भी ये दोनों अपना काम करते ही रहेंगे। किसी तरह इनके कार्य्य में बाधा न पड़ेगी। किन्तु यह सब होने पर भी यह काम बहुत धीरे धीरे होगा। इतने बड़े बड़े गोलों के भी परस्पर आकर्षण का परिमाण इतना कम होगा कि एक छोटा लड़का भी आसानी से उसका प्रतिरोध कर सकेगा। मान लीजिए कि किसी दैव-बल से पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति की बाधा दूर करके ये दोनों गोले एक समतल क्षेत्र में रख दिये गये हैं। इस दशा में महाकर्षण के बल से ये दोनों एक दूसरे की ओर बढ़ने लगेंगे; किन्तु इनकी गति ऐसी सूक्ष्म होगी कि ख़ुर्दबीन की सहायता बिना उसका पता भी न मालूम होगा। उन दोनों के बीच का अन्तर एक फुट कम होने में, अर्थात् प्रत्येक को छः इञ्च चलने में, कम से कम डेढ़ घंटा समय लगेगा। पीछे अवश्य ही धीरे धीरे उनकी गति बढ़ेगी और तीन-चार दिनों में, वे दोनों एकत्र हो जायँगे।

जो महाकर्षण-शक्ति यहाँ सूक्ष्म भाव से काम कर रही है उसीके बल से इस विश्वब्रह्माण्ड के सब पदार्थ नियन्त्रित हैं। वही शक्ति पृथ्वी को अपने पथ से विचलित होने से रोकती है। वही इस सौर जगत् को स्थानभ्रष्ट होने से बचाती है। सारे ग्रहोपग्रह अपने अपने मार्ग पर नियमित रूप से घूम रहे हैं और सूर्य्य बीच में रहकर महाकर्षण-बल से सबको अपने अपने स्थान पर रक्खे है। इन ग्रहोपग्रहों के बड़े आकार के कारण ही महाकर्षण का प्रभाव इतना अधिक है। एक एक ग्रह इतना बड़ा है कि हम लोग उसका अन्दाज़ा नहीं कर सकते। आकार से किसी वस्तु के केवल स्थूलाकार से ही मतलब नहीं, किन्तु उसके पिण्ड (Mass) से भी मतलब है। महाकर्षण का एक यह भी नियम है कि जिस वस्तु का विस्तार और पिण्ड जितना ही अधिक होगा उसका आकर्षण भी उतना ही अधिक होगा। एक घन-इंच रुई की अपेक्षा एक घन-इंच लोहे का पिण्ड अधिक है। इसीसे लोहे का आकर्षण भी रुई से अधिक है। अतएव यह पृथ्वी रुई की अपेक्षा लोहे को अधिक आकर्षण करेगी।*

——

मेवाड़ की राजधानी उदयपुर।

मेदपाट अर्थात् मेवाड़ की राजधानी का नाम उदयपुर है। वह राजपूताने के दक्षिणी हिस्से में, समुद्र की सतह से २०६४ फ़ीट ऊपर, अर्वली पर्वत के पूर्व में बसा हुआ है। उसको श्री महाराना प्रतापसिंह जी ने अपने पिता के नाम पर, संवत् १५९० में, बसाया था।

यह शहर २४ अंश ३५ कला १९ विकला उत्तर

* प्रवासी से सङ्कलित।

अक्षांश और ७३ अंश ४३ कला २३ विकला पूर्व-देशान्तर रेखा में स्थित है। मनुष्य-संख्या के हिसाब से भारत में इस शहर का नम्बर ८३ और राजपूताने में ६ है।

शहर के पश्चिम में पिचैाला नाम की २½ मील चौड़ी एक झील है। उत्तर और पूर्व की ओर खाई है, जिसमें इसी झील से पानी आता है। दक्षिण की ओर लिङ्गढ़ की एक पहाड़ी है जो शहर की क़िलाबन्दी का काम देती है। शहर के चारों ओर दीवार है, जिसके दक्षिण तरफ़ कई बग़ीचे हैं। चहार-दीवारी में चार प्रधान फाटक हैं—उत्तर की तरफ़ हाथीपोल, दक्षिण की तरफ़ किसन-पोल, पूर्व की तरफ़ सूर्य्यपोल और पश्चिम की तरफ़, जिधर झील है, तीन महरावोंवाला त्रिपैा-लिया नामक पानी का फाटक है। पूर्व की ओर एक और भी फाटक है जो दिल्ली-दरवाज़ा कहलाता है।

हाथीपोल से प्रधान-बाज़ार होकर राजमहल को रास्ता गया है। गुलाबबाग़ को सूर्य्यपोल से रास्ता गया है; वहीं तालाब, बाग़ आदि देखने के लायक़ जगहें हैं। गुलाब-बाग़ होकर दूध-तालाब को जाते हैं जो पिचैाला झील की एक शाखा है।

शहर में कई देव-मन्दिर हैं। जगदीश का सुन्दर मन्दिर महाराना जगत्सिंहजी का बनाया हुआ शहर भर की इमारतों से ऊँचा और उत्तम है। शहर के पश्चिम पिचैाला झील के बीच जग-निवास और जग-मन्दिर नाम के दो सुन्दर महल हैं। उन्हें पूर्वोक्त महा-राना ने सत्रहवीं शताब्दी के मध्य भाग में बनवाया था।

पिचैाला झील के ऊपर से उदयपुर का दृश्य।

जग-निवास महल कोई १२ बीघे भूमि पर सङ्गमरमर का बना हुआ है। जगह जगह दीवारों पर पच्चीकारी का काम है। फूलबाग़, झरने, नारङ्गी की कुञ्जें इत्यादि बहुत ही मनोहर हैं। जग-मन्दिर-महल ज़मीन से १०० फ़ीट ऊँचा है। वह चौकोनी शकल का है और ग्रेनाइट पत्थर और सङ्गमरमर का बना हुआ है। उसमें अठपहले गुम्बज़दार मीनार हैं। पूर्व की ओर महल की प्रधान अट्टालिकायें हैं। नीचे मिहराबों की तीन पंक्तियाँ हैं। मिहराबी दीवार की उँचाई ५० फ़ीट है। गणेश-द्वार से महल में प्रवेश करना होता है। भीतर बाड़ी-महल, शीश-महल और शम्भु-निवास-

महल हैं। शाहजहाँ ने अपने पिता जहाँगीर से बाग़ी होकर कुछ दिन जग-मन्दिर में ही निवास किया था, जिसकी यादगार में वहाँ पर पत्थर का एक स्थान है। झील के किनारे महाराना के महा-राज-महल हैं जो बड़े ही सुन्दर और सुहावने हैं।

कविराज गयादत्त ने इन महलों की शोभा और महत्ता का वर्णन इस प्रकार किया है—
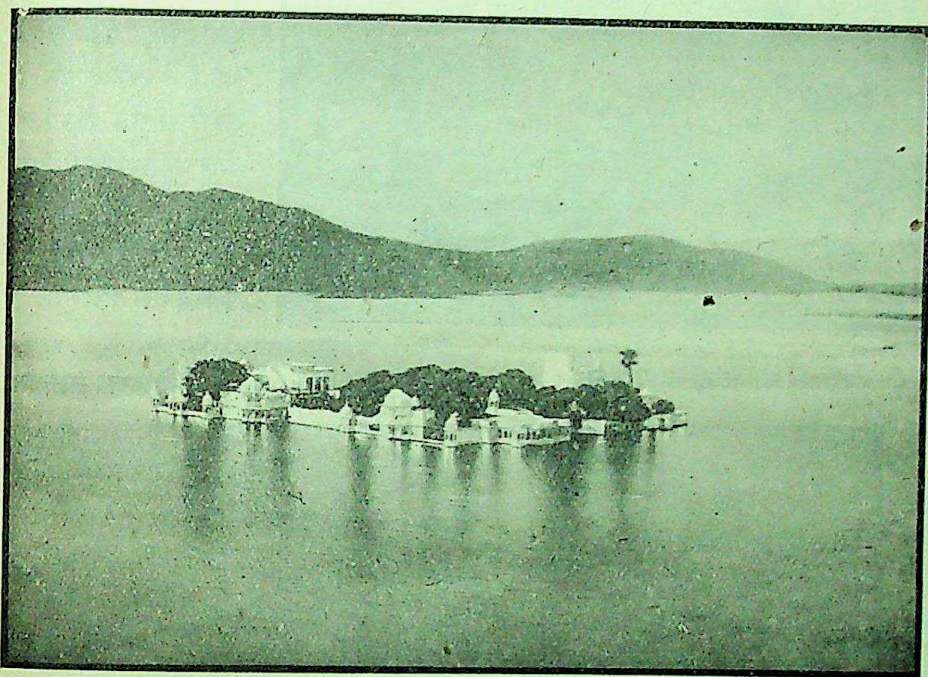
उदयपुर का जग-मन्दिर-महल।

काम कारीगर के बनाये हैं विशाल धाम,
उन्नत शिखर घने गुम्बज़ सुजाने हैं;
सुवरण-कलश कँगूरन पै राजि रहे,
मानों रवि-बिम्ब बहु रूप ह्वै लखाने हैं।
शोभा सुरराज के सुभौन की सकेलि लीन्हीं,
मन्दिर अनूप ठौर ठौर दरसाने हैं;
चक्रित चितोतहीं चकित चित होत ऐसे,
महल विचित्र महाराना के बखाने हैं॥

झील से तीन मील पूर्व, महासती नामक स्थान में, मृत महाराना जलाये जाते हैं। यहाँ पर ऊँची दीवार के घेरे में उन लोगों की छतरियाँ बनी हुई हैं और यहाँ सतियों की मूर्तियाँ भी हैं। छतरियों में दूसरे संग्रामसिंह की छतरी बहुत बड़ी और ख़ूबसूरत है। उदयसिंह के पोते अमरसिंह की छतरी भी अच्छी है।

पिचौला झील का दृश्य बड़ा ही मनोमोहक और अद्भुत है। उसके दोनों तरफ़ सुन्दर सुन्दर इमारतें हैं। इस सिरे से उस सिरे तक मनोहर घाट बने हैं। पिचौला के किनारे ही बाण-नाथजी महादेव का प्रसिद्ध शिवालय; और कुछ दूर पर, झील के किनारे ही, महाराजी के हवा खाने और शिकार खेलने का स्थान ख़ासओदी नामक बड़ा ही मनोहर है। यहाँ से उदयपुर नगर का अद्भुत दृश्य देख पड़ता है। इस स्थान पर हज़ारों जङ्गली सुअरों को मकई वग़ैरह दी जाती है। उनके झुण्ड के झुण्ड यहाँ पर जमा रहते हैं। हिन्दुस्तान में शायद ही कोई दूसरी जगह ऐसी हो जहाँ इतने जङ्गली जानवरों का समूह रोज़ एक साथ भोजन करता हो।

पिचौला झील तो अपनी स्वाभाविक सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध ही है। वर्त्तमान महाराना जी का

बनवाया हुआ फ़तहसागर नामक तालाब भी बड़ा

उदयपुर का शम्भुनिवास-महल।

ही शोभाशाली है। फ़तहसागर का जल पिचौला से अच्छा है। अन्त में पिचौला, फ़तहसागर और सरूपसागर, ये तीनों तालाब एक नहर के द्वारा मिला दिये गये हैं। फ़तहसागर के मध्य में भी महल है। उसके किनारे सहेलियों की बाड़ी नामक एक उत्तम बग़ीचा वर्त्तमान महाराना साहब ने बनवाया है। फ़तह-सागर तीन पहाड़ियों के बीच में है। उनमें से एक पहाड़ी के ऊपर महाराना सज्जनसिंहजी के बनवाये हुए सज्जनगढ़ नामक महल बहुत ही सुन्दर हैं।

पिचौला के किनारे, महल से आगे, एक मील पर जलबुर्ज़ नामक एक उत्तम स्थान है। यहाँ से ख़ासओदी को सड़क गई है। इस स्थान पर साधु लोग राज्य की ओर से डेरा जमाये पड़े रहते हैं। यह उदयपुर का हृषीकेश है। यह एक उत्तम तपोभूमि है। मोर, हरिण, सुअर आदि विविध प्राणियों के समूह यहाँ एक ही साथ चरते रहते हैं।

उदयपुर का गनगोर-घाट।

गनगोर-घाट पिचोला झील का सबसे सुन्दर और उत्तम घाट समझा जाता है। गनगोर का प्रसिद्ध मेला यहीं से शुरू होता है। आतिशबाज़ी छूटते समय इस झील के किनारे अद्वितीय शोभा होती है। सारे शहर के स्त्री-पुरुष अपने अपने मकान की अट्टालिकाओं तथा दरिया के किनारे के मकानों के ऊपर से यह दृश्य देखते हैं। उदयपुर प्रकृति-सुन्दरी की विहार-भूमि है। प्रसिद्ध कवि पद्माकर भट्ट ने उदयपुर में गनगोर का मेला महाराना भीमसिंह जी के समय में देखा था। उक्त कविराज की एक उक्ति इस मेले की शोभा के विषय में सदा से प्रसिद्ध है। वे कहते हैं:—

> द्यौस गनगौर के सुगिरिजा गुसाँइन की
> माची उदयपुर में बधाई ठौर ठौर है;
> कहै पद्माकर यों तमाशा ताकिबे के लिए,
> छाई आसमान में विमानन की भौर है।
> धोखे में उमा के त्यों देखो महाराना जू,
> गौरिन के गोंद में गजानन की दौर है;
> मार मार हेला महा मेला में महेश पूछे,
> गौरिन में कौन धरैं हमारी गनगौर है॥

इस शहर में स्त्रियों के लिए एक नया अस्पताल, सज्जन-निवास बाग़ में, जुबिली की यादगार में बना है। अस्पताल के सामने ही स्वर्गीया श्रीमती महारानी विक्टोरिया की मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। यहीं पुस्तकालय और अजायब-घर भी है। अजायब-घर में मेवाड़ की पैदावार के नमूने हैं।

मनोहरलाल मिश्र

गीता-रहस्य-विवेचन।*

(अध्यात्म)।

वेदान्त-प्रतिपादन।

ग्रन्थकार ने अपने अध्यात्म प्रकरण के सिद्धान्तों पर तर्क-बुद्धि का प्रयोग करने के आदि में ही नकारात्मक सूचना दे दी है। उन्होंने स्वामी शंकराचार्य्य के इस श्लोक को—

> अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत्।
> प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥—

पूरा पूरा स्वीकार कर लिया है। इसे स्वीकार कर इस विषय में उन्होंने कुछ और अपनी तरफ़ से कहा है। उन सबका सार यह है:—

"आधिभौतिक शास्त्रों के विषय इन्द्रियगोचर होते हैं। और अध्यात्म-शास्त्र का विषय इन्द्रियातीत अर्थात् स्वसंवेद्य है। × × यदि कोई यह कहे कि आत्मा तो स्वसंवेद्य है, इसलिए प्रत्येक मनुष्य को उसके विषय में जैसा ज्ञान होवे, होने दो; तब फिर अध्यात्म-शास्त्र की आवश्यकता ही क्या है? इसका उत्तर यह है कि यदि प्रत्येक मनुष्य का मन या अन्तःकरण समान रूप से शुद्ध हो तो यह प्रश्न ठीक होगा; परन्तु जब इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव है कि सब लोगों के मन या अन्तःकरण शुद्धि और शक्ति में एक से नहीं होते तब जिन लोगों के मन अत्यन्त शुद्ध, पवित्र और विशाल हो गये हैं उन्हींकी प्रतीति हमारे लिए इस विषय में प्रमाणभूत होना चाहिए। × × × वेदान्त-शास्त्र तुमको युक्तियों का उपयोग करने से नहीं रोकता; वह सिर्फ़ यही कहता है कि इस विषय में निरी युक्तियाँ वहीं तक मानी जायँगी जहाँ तक कि इन युक्तियों से अत्यन्त विशाल, पवित्र और निर्मल अन्तःकरणवाले महात्माओं के इस विषय-सम्बन्धी साक्षात् अनुभव का विरोध न होता हो। क्योंकि अध्यात्म-शास्त्र का विषय स्वसंवेद्य है। × × × जिस प्रकार आधिभौतिक

---

* यह लेख एप्रिल १९१९ की सरस्वती में निकले हुए लेख से आगे समझना चाहिए।

शास्त्र में वह अनुभव त्याज्य माने जाते हैं जो प्रत्यक्ष के विरुद्ध हों, उसी प्रकार वेदान्त-शास्त्र में युक्तियों की अपेक्षा स्वानुभव की ही योग्यता अधिक मानी जाती है। परन्तु मैं प्रत्येक मनुष्य का यह जन्म-सिद्ध अधिकार समझता हूँ कि, वह परमात्मा की दी हुई बुद्धि को किसी भी सिद्धान्त में खर्च करे।"

ग्रन्थकार के विचारों पर मैं अपना मत नीचे लिखता हूँ—

लेखक का यह कहना कि आधिभौतिक शास्त्रों का विषय इन्द्रिय-गोचर है, ठीक है। तथा यह भी ठीक है कि आध्यात्मिक विषय इन्द्रिय-गोचर नहीं, किन्तु स्वसंवेद्य है। पर यदि स्वसंवेद्य का अर्थ यह है कि युक्ति-रहित बुद्धि से जाना जाय तो यह बात अवश्य आपत्ति करने के योग्य है। क्योंकि, जानना मन का या बुद्धि का धर्म है। मन से या इस तरह से कहिए कि बुद्धि से जाना जाता है। अब जिन नियमों के अनुसार मन या बुद्धि से किसी बात की जाँच की जाती है उन्हींमें से एक का नाम तर्क या युक्ति है। आधुनिक, पाश्चात्य-न्यायशास्त्र की परिभाषा में यह बात बिलकुल स्पष्ट कर दी गई है। ऐसी दशा में यह कहना कि स्वसंवेद्य विषयों में तर्क-बुद्धि का उपयोग न करो, ज़रा खटकनेवाली बात है, क्योंकि इसके बिना बुद्धि का उपयोग ही कैसे हो सकेगा। और यह कहना कि तर्क वहीं तक करो जहाँ तक हमारे कथन से विरोध न हो, एक प्रकार की खुशामद या यों कहिए कि चापलूसी कराना है। इतना ही नहीं, किन्तु यह इस बात को सिद्ध करता है कि आगे की खोज-जाँच बंद कर दो—हम सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर चुके।

फिर यह कहना कि सब लोगों के अन्तःकरण समान रूप से शुद्ध नहीं हैं; इसलिए अत्यन्त, विशाल और पवित्र अन्तःकरणवालों की बात मानो, मुझे अत्यन्त सारहीन प्रतीत होता है। जिस प्रकार 'महाजनो येन गतः स पन्थाः'-वाले सिद्धान्त पर ग्रन्थकार ने यह आक्षेप किया था कि उन महाजनों की मति भी तो भिन्न भिन्न है, हम उसमें किसको प्रामाणिक मानें, उसी प्रकार यहाँ भी हम कह सकते हैं कि उन विशाल अन्तःकरणवाले महापुरुषों की भी मतियाँ भिन्न भिन्न हैं, हम इनमें किसका प्रमाण मानें? क्या रामानुजाचार्य्य, गौतम, कपिल, कणाद, स्वामी दयानन्द, भगवान् बुद्ध आदि निर्मल और विशाल अन्तःकरण के नहीं? यदि नहीं, तो क्या निर्मल और विशाल अन्तःकरण की यही परिभाषा है कि, जो अद्वैतवेदान्ती हो, और उसका प्रतिपादन करे?

केवल इतना ही नहीं यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो मालूम होगा कि बिना युक्ति और तर्क के दर्शन-शास्त्र को लकवा मार जायगा और इस बीसवीं सदी में जो दर्शन और विज्ञान की परस्पर चढ़ा-ऊपरी हो रही है उसमें दर्शन को निश्चय नीचा देखना पड़ेगा। अस्तु। इन्हीं विचारों को लेकर मैं यथाशक्ति तर्क-बुद्धि के साथ ग्रन्थकार के मना करते रहने पर भी यह क्षुद्र लेख लिखने में प्रवृत्त होता हूँ।

न्याय और सांख्य के प्रकरण हो चुके। अब अध्यात्म-प्रकरण रह गया है। यह प्रकरण अन्य सब प्रकरणों की अपेक्षा बड़ा और कठिन है। इसीलिए इसका स्वतन्त्र वर्णन करना मैंने उचित समझा। इस प्रकरण को कई बार पढ़ने के बाद मुझे अन्त में जो इसका सार-सिद्धान्त समझ पड़ा है उसे मैंने ग्रन्थकार के शब्दों और जहाँ तक हो सका है उनके वाक्यों में ही संक्षेप से लिख दिया है। उस पर भी जहाँ जहाँ मुझे अकारण विस्तार मालूम पड़ा है वहाँ वहाँ मैंने उनको बदल भी दिया है। ऐसा करने में मेरा मतलब यही रहा है कि जिसमें सिद्धान्त का ज्ञान संक्षेप, सुगमता, और स्पष्टता से हो जाय। असली तात्पर्य्य को जहाँ तक हो सका है मैंने वैसा ही रहने देने की यथाशक्ति चेष्टा की है। अस्तु।

अब ग्रन्थकार के द्वारा प्रतिपादित वेदान्त-सिद्धान्त का सार सुनिए—

वेदान्त-शास्त्र का पहला सिद्धान्त यह है कि प्रकृति और पुरुष से भी परे एक सर्वव्यापक, अव्यक्त, निर्गुण, चराचर सृष्टि का मूल, नित्य, अक्षर, और अमृततत्त्व है। उसका श्रेष्ठ स्वरूप अव्यक्त ही है; अव्यक्त से व्यक्त होना उसकी माया है। यद्यपि परमेश्वर के सगुण स्वरूप का भी बहुत वर्णन है तथापि उसका असली स्वरूप निर्गुण ही है; और निर्गुण से सगुण होना भी उसकी माया ही है। इसी

प्रकार सांख्यों की प्रकृति भी उसकी माया है। सांख्य का पुरुष या जीवात्मा वेदान्त के ईश्वर के ही समान है। वह अज्ञान के कारण अपनेको कर्ता समझता है। यही चित्स्वरूपी ब्रह्म जब माया में प्रतिबिम्बित होता है तब सांख्यों की त्रिगुणमयी प्रकृति का निर्माण होता है, और जब अविद्या में प्रतिबिम्बित होता है तब जीव का निर्माण होता है। यहाँ पर माया, अविद्या आदि शब्द समानार्थक ही समझने चाहिए। सृष्टि के आदि में जो कुछ था वह बिना नाम-रूप के ही था। फिर आगे चलकर नाम-रूप मिल जाने पर वही व्यक्त अर्थात् सगुण बन गया। अतएव विकारवान् या नाशवान् नाम-रूप को ही माया नाम देकरके कहते हैं कि यह सगुण अर्थात् दृश्य शक्ति एक ही मूल द्रव्य अर्थात् ईश्वर की माया का खेल या लीला है। सृष्टि-ज्ञान केवल इन्द्रियों को प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाला जड़ पदार्थ ही नहीं, किन्तु इन्द्रियों के द्वारा मन पर होनेवाले अनेक संस्कारों या परिणामों का जो एकीकरण आत्मा किया करता है—उसका फल है।

यह तो हुई सार-सिद्धान्त की बात। अब हमें उधर चलना चाहिए जिधर इस सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि प्रतिपादन ख़ूबी के साथ किया गया है। तथापि मैं यह भी कहे बिना नहीं रह सकता कि विषयों का क्रम ऐसा है जिसमें किसी भी मनुष्य को पढ़ने और सम्पूर्ण रूप से प्रतिपादन पर सम्मति प्रकट करने में अनायास ही कष्ट मिल सकता है। कम से कम मेरे विषय में तो यही बात हुई; मेरा तो अधिकांश समय दलीलों के छांटने और उनको एक क्रम से करने में ही लग गया। मैंने उनको छांटकर ५ विभागों में विभक्त किया है। अब क्रम से एक एक पर पहले ग्रन्थकार के, और फिर अपने विचार, संक्षेप से आगे लिखूँगा।

१ सारे नाम-रूपात्मक पदार्थ परिवर्तनशील हैं, इसलिए नाशवान् हैं; चाहे वे नैय्यायिकों के महाभूतों से उत्पन्न हुए हों और चाहे सांख्यों की मूल सगुण प्रकृति से। यह बात सदा एक सी ही रहेगी कि वे विनाशी हैं। ऐसी दशा में ऐसा सगुण परमेश्वर भी नाशवान् ही सिद्ध होगा। अतएव जिसे प्रकृतिवाद स्वीकार है उसे परमेश्वर को अविनाशी कहना छोड़ना चाहिए; नहीं तो सगुण से परे उसकी खोज करना चाहिए। और यदि हम अमृततत्त्व को मिथ्या कहें तो मनुष्यों की यह स्वाभाविक इच्छा देख पड़ती है कि वे किसी राजा से मिलनेवाले पुरस्कारादि का प्रबन्ध न केवल अपने लिए, किन्तु अपने वंश के लिए भी करना चाहते हैं। हम यह भी देखते हैं कि, जब कभी चिरस्थाई कीर्त्ति मिलने का सौभाग्य आ पड़ता है तब मनुष्य प्राणों की भी परवा नहीं करता। अब विचार कीजिए कि मनुष्य में यह चिरकाल की कल्पना कहाँ से आई? यदि स्वभाव से मानें—और ऐसा मानना ठीक भी है,—तो विवश होकर यह भी मानना पड़ेगा कि इस नाशवान् देह के सिवा कोई अमृत-वस्तु अवश्य है। अब यदि इस अमृततत्त्व की खोज करना है तो प्रत्यक्ष नाशवान् वस्तु से आगे बढ़ना चाहिए। और यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि वेदान्त-शास्त्र में इसी नामरूप को मिथ्या कहते हैं। तथा उपनिषदों में इसीको अविद्या और माया आदि शब्दों से कहा है।

ग्रन्थकार के इस सिद्धान्त पर पहली बात मुझे यह कहनी है कि, जब तक, मनुष्य की इच्छाओं, और वासनाओं से प्रकृति या ब्रह्म का कोई स्पष्ट सम्बन्ध न सिद्ध कर दिया जाय तब तक 'मनुष्य के मन में चिरकाल के यश या कल्याण की इच्छा है' इतने से ही, 'इस नाशवान् शरीर के अलावा कोई अमृतवस्तु अवश्य है' ऐसा हम कैसे मान लें। क्योंकि इसमें कोई प्रमाण नहीं। दूसरी बात यह कि यदि एक बार सगुण प्रकृति नाशवान् भी साबित हो जाय तो भी हम सगुण ईश्वर को भी कैसे विनाशी कहें। क्योंकि यह कथन तो ठीक उसी प्रकार का हुआ, जिस प्रकार का यह कि, यदि सफ़ेद नमक पानी में घुल जाता है तो सफ़ेद हीरा भी उसमें घुल जायगा। तीसरी बात हमें नाम-रूपात्मक पदार्थों के विनाशी होने पर कहनी है। नाम-रूप से तात्पर्य्य गुण और पदार्थ से द्रव्य का है। चांदी पदार्थ या द्रव्य है, कटोरा, करधनी आदि नाम-रूप। जब कटोरे से करधनी होती है तब चांदी का तो परिवर्तन होता नहीं, पर कटोरे का अवश्य होता है। ग्रन्थकार इसे परिवर्तन

न कहकर नाश कहते हैं। अब यदि इस बात की परीक्षा करनी है तो उस करधनी का फिर कटोरा बनाइए, यदि यह बन जाय तो उसका नाश कहाँ सिद्ध हुआ। क्योंकि अभाव से भाव नहीं होता, तिरोभाव होता है। वही यहाँ भी हुआ। इसी नियम को सभी नाम-रूपों पर लगा सकते हैं।

२ इस नामरूप की जड़ में कोई तत्त्व या द्रव्य है जो कभी नहीं बदलता। यही सत्य है, यही अमृत है। और सृष्टि के आदि में केवल यही पदार्थ था। उसमें जब नामरूप मिल गया तब सगुण होकर वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हो गया। यद्यपि यह सत्य और अपरिवर्तनशील पदार्थ हमें इन्द्रियों से नहीं देख पड़ता तथापि यह है अवश्य, क्योंकि हमें सारी सृष्टि का ज्ञान एकता से होता है।

इसमें तीन बातें कही गई। प्रथम यह कि नाम-रूपों के मूल में कोई एक द्रव्य है, जो अपरिवर्तनशील एवं अविनाशी है। दूसरी यह कि सृष्टि के आदि में केवल वही द्रव्य था, नाम-रूप पीछे से मिला। और तीसरी यह कि उसका ज्ञान हमें यद्यपि नेत्रों या इन्द्रियों से न हो, तो भी सृष्टि का ज्ञान एकता होने के कारण हमें उसका अस्तित्व अवश्य मानना पड़ेगा। इनमें से प्रथम पर मुझको कुछ भी नहीं कहना है। दूसरी पर यह निवेदन है कि 'आदि में द्रव्य बिना नामरूप के था' यह कहना मानों यह स्वीकार करना है कि द्रव्य और गुण अलग अलग रह सकते हैं। पर स्मरण रखना चाहिए कि आज तक कोई वैज्ञानिक या दार्शनिक इस बात को नहीं सिद्ध कर सका है। क्योंकि इनका अनादि सम्बन्ध है, और भावरूप में अनादि सम्बन्ध कभी सान्त नहीं होता। और जो आगे चलकर यह कहा गया है कि मूल द्रव्य का अनुमान हम सृष्टि-ज्ञान की एकता के कारण ही करते हैं, सो वह पूर्ण रूप से इसका कारण नहीं हो सकता। यह बात अवश्य है कि उसको सिद्ध करने के लिए यह भी खींच-खाँचकर प्रमाण बनाया जा सकता है। पर वह गौण है, मूल प्रमाण वही है जो गुण के लक्षण करने से निकलता है। जो द्रव्याश्रयी, अगुणवान् और संयोग-विभाग में अनपेक्ष्य हो वही गुण है। ग्रन्थकार के गुण में ये लक्षण पूरे नहीं उतरते।

३ आत्मा को नाम-रूपात्मक सारे पदार्थों का ज्ञान होने के लिए, मन पर इन्द्रियों के द्वारा बाह्य-नामरूप के जो संस्कार हुआ करते हैं, और जिनके एकीकरण से आत्मा को ज्ञान होता है, उनके मेल के लिए कुछ न कुछ एक ऐसा मूल नित्य द्रव्य होना चाहिए जो आत्मा का आधारभूत हो, और बाह्य सृष्टि के भी नाम-रूपों के मूल में रहनेवाला हो। यदि ऐसा न मानेंगे तो नाम-रूपात्मक पदार्थों का ज्ञान होने का कारण न मिलेगा और जो कुछ एकीकरण से ज्ञान होता है वह स्वकपोलकल्पित और निराधार होकर असत्य प्रमाणित हो जायगा।

इसको थोड़ा सा और भी खोल देना अच्छा होगा। इसमें मैंने ग्रन्थकार का और मि० ग्रीन का सिद्धान्त मिलाकर कह दिया है, क्योंकि ग्रन्थकार को भी यही मान्य है। वास्तव में ग्रीन का सिद्धान्त है कि 'मन पर इन्द्रियों के द्वारा जो नाम-रूपों के भिन्न भिन्न संस्कार हुआ करते हैं, उससे जो ज्ञान होता है उस ज्ञान के मेल के लिए बाह्य सृष्टि के नाम-रूपों में एकता से रहनेवाली कोई वस्तु होनी चाहिए।' इसमें यह नहीं कहा गया है कि वही पदार्थ आत्मा में भी रहना चाहिए, पर ग्रन्थकार ने इस कमी को भी पूरा कर दिया है। यदि यह देखा जाय कि ग्रन्थकार के इस विशेष कथन में प्रमाण क्या है तो शायद 'अपने आत्मा को नाम-रूपात्मक पदार्थों का ज्ञान होने के लिए', इस वाक्यांश को छोड़कर कोई दूसरा कथन न मिलेगा। मैं पूछता हूँ कि क्या आत्मा को उस दशा में ज्ञान नहीं हो सकता जब कि दोनों के आधार भिन्न भिन्न हों? क्या यह कोई नियम है कि उसे सजातीय पदार्थ का ही ज्ञान हो? यदि हाँ, तो नाम-रूप तो आत्मा का सजातीय नहीं, फिर उसका ज्ञान क्यों होता है? इन प्रश्नों का भी उत्तर देना ग्रन्थकार का आवश्यक कर्त्तव्य था।

४ इसी एक पदार्थ को ब्रह्म कहते हैं। अन्य पदार्थों की भाँति इसका स्वरूप व्यक्त और स्थूल नहीं हो सकता। परन्तु व्यक्त और स्थूल पदार्थों के सिवा, मन, स्मृति, वासना आदि बहुतसे ऐसे पदार्थ हैं जो स्थूल नहीं। एवं सम्भव है कि ब्रह्म इनमें से किसी एक-आध के स्वरूप का हो। किसीने इसको

वासनात्मक कहा है। वासना मन का धर्म होने से वह मनोमय हुआ, पर अध्यात्म-विचार से ये सब रूप नाम-रूपात्मक ही हैं, क्योंकि इनका ज्ञान बुद्धि से होता है। निश्चय है कि इन सबमें आत्मा श्रेष्ठ है। ऐसी दशा में ब्रह्म का वही स्वरूप हुआ जो आत्मा का है। पर यदि ऐसा न मानकर उसे आत्मा से भिन्न मानें तो यह मानना ही पड़ेगा कि भिन्न पदार्थ के परिणाम या कार्य्य भी भिन्न ही होते हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि सृष्टि के जो भिन्न भिन्न संस्कार मन पर होते हैं; उनका आत्मा की क्रिया से एकीकरण होता है। इस एकीकरण का उस एकीकरण से मेल होना चाहिए जिसे भिन्न भिन्न बाह्य पदार्थों के मूल में रहनेवाला वस्तुतत्त्व निष्पन्न करता है। यदि इस प्रकार इनमें मेल न होगा तो समूचा ज्ञान ही निराधार हो जावेगा। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि ब्रह्म आत्मस्वरूपी है।

मुझे इस पर ही सन्देह है कि इस सर्वाधार पदार्थ का स्वरूप व्यक्त और स्थूल क्यों नहीं है, क्योंकि यह स्पष्ट है कि गुण या नाम-रूप बिना किसी व्यक्त या स्थूल पदार्थ के ठहर ही कैसे सकेंगे। ग्रन्थकार के मत से नाम-रूप तो मिथ्या और व्यक्त पदार्थों की श्रेणी में हैं, और नाम-रूपों का आधार-भूत आत्मा, या ब्रह्म, नित्य पदार्थों की श्रेणी में। यह तो ठीक, पर वासना, मन, बुद्धि आदि को भी जो नाम-रूप की श्रेणी में रक्खा गया है वह समझ में न आया। यदि उनका ज्ञान बुद्धि या मन से हो जाता है इसीलिए वह नाम-रूप की श्रेणी में है, तो इसी प्रकार वस्तुतत्त्व का ज्ञान भी तो होता है, सो क्या वह भी इसी श्रेणी में रक्खा जायगा। इससे स्पष्ट होता है कि यह कसौटी ठीक नहीं। फिर जो ग्रन्थकार ने यह सिद्धान्त निकाला है कि भिन्न भिन्न पदार्थों के कार्य्य या परिणाम भी भिन्न भिन्न ही होने चाहिए, सो बिलकुल ठीक है। पर मैं देखता हूँ कि वह खुद ही इसके अनुसार नहीं चलते—यदि चलते होते तो आत्मा और वस्तुतत्त्व के भेद का कारण अवश्य स्पष्ट कर देते।

१ आत्मा के सान्निध्य से उत्पन्न होनेवाले धर्म को चित् अर्थात् ज्ञान कहते हैं। पर बुद्धि के इस धर्म को आत्मा पर लादना उचित नहीं। आत्मा के मूल स्वरूप को निर्गुण ही मानना चाहिए। अब यदि ब्रह्म आत्म-स्वरूपी है तो ब्रह्म को या आत्मा को चिद्रूपी कहना ठीक नहीं। और इससे यह आप ही आप स्पष्ट होता है कि उसके लिए सत् विशेषण भी लगाना ठीक नहीं, क्योंकि ये दोनों विशेषण परस्पर विरुद्ध और सदैव परस्पर सापेक्ष हैं। अतएव विचार करने के बाद ब्रह्म या आत्मा का अज्ञेयत्व स्वीकार किये बिना गति ही नहीं रहती।

इसमें कुछ विशेष बात नहीं कही गई। एक बात ही है और वह यह कि ज्ञान या बुद्धि अथवा इसी प्रकार की अन्य चीज़ें आत्मा का गुण नहीं, और इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आदि से जो न्यायाचार्य्य ने आत्मा का लक्षण किया है वह ठीक नहीं। पर प्रश्न होता है कि यदि ज्ञान बुद्धि या मन का ही धर्म है, ऐसा आप किसी दलील से सिद्ध भी कर देंगे तो फिर वह कौन सी दलील है जो आत्मा का सान्निध्य मानने को मजबूर करती है—विवश करती है। फलितार्थ यह हुआ कि जब बुद्धि से ज्ञान हो सकता है, मन से मनन हो सकता है और सारे महाभूतों या प्रकृति से अन्य तमाम काम हो सकते हैं, तब फिर आत्मा है, इस बात का आपके पास प्रमाण ही क्या रह गया? इसी बात को सोचकर शायद न्यायशास्त्र में आत्मा का लक्षण और तरह का माना गया है।

यदि इन विषयों पर विस्तार से लिखा जाय तो जिल्दें भर सकती हैं। इसलिए इनका दिग्दर्शन-मात्र कराकर अब मैं आप लोगों को प्रकरण के उस भाग में ले चलता हूँ जिसमें, ग्रन्थकार ने अध्यात्म-वाद पर होनेवाली एक महाशङ्का का उत्तर दिया है।

थोड़ी देर के लिए, यदि ग्रन्थकार का उक्त सिद्धान्त मान भी लिया जाय तो भी मानते मानते यह शङ्का खड़ी होती है कि, निर्गुण से सगुण कैसे हो गया। यहाँ पर आपका माना हुआ सत्कार्य्यवाद कहाँ चला गया जो निर्गुण से सगुण की उत्पत्ति आपने मान ली। इस शङ्का के सम्बन्ध में ग्रन्थकार के विद्वत्ता और तर्क-कौशल से सने हुए विचारों का संक्षेप यह है—

उन्होंने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि सांख्य-वाले इसको हल कर चुके हैं। पर उनका उज्र यह है कि इसी हल करनेवाले रास्ते को हम भी स्वीकार कर लेंगे तो जगत् के मूलतत्त्व दो हुए जाते हैं। इसलिए उन्होंने इसके लिए दूसरा मार्ग पकड़ा है। बड़ा अच्छा हुआ जो यहाँ हमें यह नहीं कहना पड़ा कि वे पक्षपात को छू गये। यह उन्हींके लेख से स्पष्ट हो जाता है। इसमें सांख्यों की युक्ति के क़ायल होते हुए,—अपने लिए 'सच्ची उलझन' और 'सच्चा पेंच' मानते हुए भी वे उसे भिन्न रीति से हल करते हैं। पर यह होही नहीं सकता कि सत्य दो प्रकार का हो।

उनकी युक्ति का सारांश यह है कि इस नियम का उपयोग वहाँ होता है जहाँ कार्य्य और कारण, दोनों एक ही श्रेणी और वर्ग के होते हैं। इससे यह हो सकता है कि सत्य और निर्गुण ब्रह्म से सत्य और सगुण माया न हो सके। पर जहाँ एक पदार्थ सत्य और दूसरा केवल दृश्य है, वहाँ यह नियम नहीं लग सकता। माया अनादि बनी रहे, फिर भी वह सत्य नहीं। वह तो मोह अज्ञान या इन्द्रियों को दिखाई देनेवाला दृश्य है।

यह तो हुआ उनकी दलील का सार। इसके बाद उन्होंने इसके सिद्ध करने को कई उदाहरण भी दिये हैं। उनमें कई तो बिलकुल नवीन हैं। इन सबका वर्णन करना अत्यावश्यक है; इसलिए मैं सबको, संक्षेप से नीचे लिखता हूँ—

१ जब बाप से लड़का पैदा होता है तब कहते हैं कि गुण परिणाम से होता है। पर जब पिता कभी बूढ़े का और कभी जवान का स्वाँग बनाये देख पड़ता है, तब कह सकते हैं कि उसके इन स्वाँगों में गुण-परिणाम-रूपी कार्य्य-कारण-भाव नहीं है।

२ जब यह निश्चय है कि सूर्य्य एक है तब फिर हम पानी में उत्पन्न उसके प्रतिबिम्ब को दूसरा सूर्य्य नहीं मानते।

३ कानों को सुनाई देनेवाले शब्दों और आँखों से दिखाई देनेवाले रङ्गों के विषय में यह निश्चय हो गया है कि, शब्द वायु की लहर या गति है और रङ्ग सूर्य्य के प्रकाश का विकार है। सूर्य्य-प्रकाश, एक प्रकार की गति है ही। गति मूल में एक होने पर भी कान उसे शब्द और नेत्र उसे रूप बतलाते हैं।

४ दूरबीन से किसी ग्रह के स्वरूप के निश्चित हो जाने पर ज्योतिष-शास्त्र स्पष्ट कह देता है कि नेत्रों से दीखनेवाला उसका दृश्य निरा दृश्य है, और वह अत्यन्त दूरी तथा नेत्रों की कमज़ोरी के कारण ऐसा मालूम पड़ता है।

५ रस्सी में सांप तथा सीप में चांदी का भ्रम, आँख में उँगली डालने से एक पदार्थ के दो देख पड़ने का भ्रम, रङ्गीन चश्मों से पदार्थों के रङ्गीन होने का भ्रम, आदि अनेक दृष्टान्त।

इसी प्रकार के अतात्त्विक अन्यथाभाव को विवर्त कहते हैं। इस सम्बन्ध में मैं दो अवतरण और देता हूँ—

"जहाँ विवर्तवाद से यह सिद्ध हो गया कि एक निर्गुण ब्रह्म से त्रिगुणात्मक सगुण प्रकृति का देख पड़ना शक्य है, वहाँ से वेदान्त-शास्त्र को यह स्वीकार करने में कोई हानि नहीं कि अगला विस्तार गुण-परिणाम से हुआ है"।

"एक ही वस्तु के भिन्न भिन्न रूप देख पड़ना उस वस्तु का धर्म नहीं, पर दृष्टि-भेद के कारण द्रष्टा से ये भिन्न भिन्न भेद होते हैं। निर्गुण ब्रह्म और सगुण जगत् के लिए इस न्याय का उपयोग करने पर कहेंगे कि ब्रह्म तो निर्गुण है, पर मनुष्य के इन्द्रिय-धर्म के कारण उसमें सगुणत्व की झलक हो जाती है। यही विवर्तवाद है।"

अब यह कहा जा सकता है कि हमने ग्रन्थकार की युक्तियों का सार कह दिया। इस युक्ति-वाद पर अब मैं अपने कुछ विचार लिखता हूँ—

जिस पदार्थ की उत्पत्ति विवर्त्तात्मक अतएव भ्रमात्मक है क्या उसमें आगे चलकर गुण परिणाम हो सकता है? यदि हाँ, तो इसमें प्रमाण, युक्ति तथा उदाहरण क्या हैं? मतलब यह कि अतात्त्विक अन्यथाभाव में क्या आगे चलकर तात्त्विक अन्यथाभाव भी होना सम्भव है, जैसे रस्सी में विवर्त के अनुसार सर्प का अतात्त्विक अन्यथाभाव हुआ? अब प्रश्न यह है कि क्या उस सर्परूपी अतात्त्विक अन्यथाभाव में आगे चलकर गुण-परिणामात्मक तात्त्विक अन्यथाभाव भी हो सकेगा? इसमें प्रमाण क्या है?

दूसरी बात यह है कि जब आपने एक बार मान लिया कि ब्रह्म में पहले अतात्त्विक अन्यथाभाव, और फिर तात्त्विक अन्यथाभाव होने लगता है, तब आप इस बात से कैसे इन्कार कर सकते हैं कि जवान से बुड्ढा होना तात्त्विक गुण परिणामात्मक अन्यथाभाव नहीं है। आयुर्वेद के नियमों के अनुसार वह गुण परिणामात्मक ही सिद्ध होता है। पानी में सूर्य्य का प्रतिबिम्ब देख पड़ना भी विज्ञान-शास्त्र के अनुसार कार्य्य-कारण के नियम से रहित नहीं। इसी प्रकार दूर के ग्रहों का छोटा और भिन्न प्रकार का दीखना भी प्रकाश और नेत्रमण्डल के नियमों के अनुसार कार्य्य-कारण की शृङ्खला से सुसम्बद्ध है तथा रङ्ग और शब्द के विषय में भी विकाश के नियमों के अनुसार गुण परिणाम का क्रम मौजूद है। ये सब बातें रस्सी में सर्प के भ्रम के समान नहीं हैं। ऐसी दशा में विवर्तवाद की पुष्टि में जो चार नई दलील ग्रन्थकार ने दी हैं वे उसके अनुकूल न होकर ठीक प्रतिकूल हैं।

तीसरी बात यह है कि इस जगत् को विवर्तात्मक,—रस्सी में सर्प के भ्रम के समान—तो बतलाया; पर यह बात स्मरण से उतार दी कि इस प्रकार के विवर्तात्मक भ्रम उसी दशा में होते हैं, जब कि प्रथम उस पदार्थ को देख लिया हो। जिसने सर्प देखा-सुना ही न होगा उसे सर्प का रस्सी में भ्रम हो ही कैसे सकता है? इस नियम के अनुसार इन्द्रियों को ब्रह्म में यह भ्रम तभी होना था जब कि इन्द्रियों ने उस प्रकार का कोई पदार्थ देख लिया होता। अतएव, जब तक इन्द्रियों के द्वारा कोई पूर्वकृत तत्सदृश ज्ञान न मान लिया जाय, तब तक ब्रह्म में यह विवर्तात्मक भ्रम नहीं माना जा सकता। इसलिए मुक्त-कण्ठ से कहना पड़ता है कि विवाद-सङ्कट पूर्ववत् उपस्थित है।

अन्त में मुझे एक बात यह कहनी है कि यदि सूक्ष्म-दृष्टि से देखा जाय तो मालूम पड़ेगा कि ग्रन्थकार ने जगत् को विवर्तात्मक अन्यथाभाव कहकर, प्रस्तुत प्रश्न को टाल सा दिया है। पर वास्तव में बात वैसी नहीं हुई। क्योंकि इस प्रकार टालने में भी उन्हें एक 'इन्द्रिय' पदार्थ की कल्पना करनी ही पड़ी, और उन्हें विवर्तात्मक ज्ञान का मूल उसे मानना ही पड़ा। जिस बात से डरकर सांख्य का स्पष्टीकरण उन्होंने अस्वीकार किया था, वह बात अन्त में फिर सामने आ ही गई। हम कह सकते हैं कि इस तरफ़ उनका ज़रा भी ध्यान नहीं गया।

अब तक हमने दो प्रकार की दलीलों का वर्णन किया, और यह दिखलाने की चेष्टा की कि उन पर भी कई प्रकार की अन्य शङ्कायें उत्पन्न होती हैं जिनका ग्रन्थकार ने उल्लेख तक नहीं किया। प्रथम प्रकार की वे शङ्कायें थीं जो अद्वैत-प्रतिपादन में उठीं। दूसरे प्रकार की वह शङ्का थी जिसका वर्णन अभी ऊपर हो चुका। पर इनके अलावा एक प्रकार की और भी शङ्कायें होती हैं। उनको हम इस सिद्धान्त के स्वीकार कर लेने के बाद की शङ्कायें कह सकते हैं। उनका उत्तर दे देना कोई साधारण बात नहीं है। ग्रन्थकार ने उनमें से एक का भी वर्णन नहीं किया—नमूने के लिए मैं उनमें से एकाध का वर्णन करता हूँ।

अद्वैतवादी, माया को सीमायुक्त, काल को अनादि, तथा जीव का मोक्ष मानते हैं। वे यह भी मानते हैं कि जीव मोक्ष से फिर नहीं लौटता—'यद्गत्वा न निवर्तन्ते'। इस दशा में यह प्रश्न होता है कि जब मोक्ष होता है, तथा काल अनादि है और माया सीमा-युक्त है तब फिर यह सृष्टि हमको क्यों मिल रही है। चाहे जितने युगों के अन्तर पर भी एक एक जीव का मोक्ष होना माना जाय तो भी काल के अनादि होने के कारण यह सृष्टि खतम हो चुकनी थी। इसी प्रकार एक बात और भी है। वे लोग मानते हैं कि विद्या का ईश्वर अपने स्वरूप में है और हम सब अविद्या-वाले ईश्वर हैं। हमारा सबका मोक्ष हो जायगा, हम फिर कभी अविद्या में न लौटकर आवेंगे। तब यह प्रश्न होता है कि जिसका आदि है उसका अन्त भी होना चाहिए। यदि मोक्ष का आदि है तो उसका अन्त भी होना चाहिए। इस पर यदि कोई प्रागभाव या प्रध्वंसाभाव का उदाहरण दे तो वह अच्छी तरह से सोच ले कि यह उदाहरण अभाव का है—भाव का नहीं और वह भाव का ही होना चाहिए। सारांश यह कि इसी प्रकार की बहुत शङ्कायें उठती हैं। पर ग्रन्थकार ने उनका वर्णन तक नहीं किया है। मेरी राय में इनका भी थोड़ा थोड़ा वर्णन हो जाता तो ठीक था।

अन्त में मुझे यह कहना है कि यद्यपि यह सब ऐसा है, तथापि जिसने ग्रन्थ का अध्यात्म-प्रकरण पढ़ा है वह ज्ञान

गया होगा कि ग्रन्थकार की वेदान्तविषयक योग्यता अव्वल दर्जे की है। साथ ही पाश्चात्य दर्शन में भी उनका असाधारण प्रवेश है।

सम्भव है कि मेरी ये शङ्कायें ठीक न हों। हो सकता है कि यह सब मेरे विचारों का भ्रम हो। तथापि जो कुछ मेरे विचार में शुद्ध भाव से, बिना किसी राग-द्वेष के आया वह मैंने कह दिया। बहुत आवश्यक था कि मैं ये सब बातें भी विस्तार के साथ लिखता; पर कुछ सोचकर मैंने इन्हें संक्षेप से ही लिखना ठीक समझा।

मुक्तिनारायण सुकुल

रामायण का एक दृश्य।

किस नींद में हो कूवते बाज़ू उठो उठो। मेरे रफ़ीक़ो मूनिसो दिलजो उठो उठो।
टुकड़े तुम्हारे ग़म में है पहलू उठो उठो। पोंछो तो मुझ ग़रीब के आंसू उठो उठो।
देखो नज़र उठाके कि छाती को कूटकर।
बालीं पै कब से रोता हूँ मैं फूट फूटकर।

क़ुर्बान जाऊँ, अब तो ज़रा आंख खोल दो। दामन में मेरे गौहरे मक़सूद रोल दो।
मुशताक़ हूँ, मैं प्यार के दो बोल बोल दो। होंठों से मुस्कराके ज़रा क़ंद घोल दो।
चिल्ला रहा हूँ कब से मैं, प्यारे जवाब दो।
आँखें तो खोलो, आँखों के तारे जवाब दो।

वह आह मुस्कराने की आदत किधर गई। मुझको गले लगाने की आदत किधर गई।
वह मेरा दुख बटाने की आदत किधर गई। ढारस मुझे बँधाने की आदत किधर गई।
बेकस समझके वादिये ग़ुरबत में छोड़कर।
जाते कहाँ हो मुझको मुसीबत में छोड़कर।

मर जाऊँगा तड़पके मैं, मुझसे जुदा न हो। दीरीना ग़मगुसार हो, नाआशना न हो।
जादानवर्द मंज़िले राहे फ़ना न हो। पूछूँ मैं एक बात जो भाई ख़फ़ा न हो।
तनहा गया अवध को तो दुनिया कहेगी क्या।
लछमन कहाँ हैं मुझको सुमित्रा कहेगी क्या।

सीता सी नाज़नी का है क्या कम मुझे वियोग। अपनी मुफ़ारक़त का लगाओ न मुझको रोग।
भाई का आस्माँ न दिखाये अदू को सोग। लौटा अवध को मैं तो कहेंगे वतन के लोग।
भाई को खोके हाथ से ज़न की फ़िराक़ में।
लौटे अवध को, राम वतन की फ़िराक़ में।

तुम पर निसार, मुझसे बिरादर न हो ख़फ़ा। आई हँसी वह होंठों पै देखो इधर ज़रा।
जाकर सुमित्रा को मैं दूँगा जवाब क्या। टीका मेरी जबीं पै लगाओ न नील का।
मुझको मुफ़ारक़त का ग़मे जावदाँ न दो।
बिस्तर पै यों तड़पके दमे निज़अ जाँ न दो।

बेफ़ायदा है इनका करे ग़म कोई अगर। मिल जाते हैं यह सब ज़नो फ़र्ज़न्दो मालो-ज़र।
दुशमन भी हो न ग़म में बिरादर के नूहागर। मिलता नहीं तो यह नहीं मिलता है छूटकर।
भाई से आह क़हर है भाई का छूटना।
गिरना इक आस्माँ का है बाज़ू का टूटना।

भाई न हो तो हेच मनाज़र जहां के हैं। आंखों में ख़ार फूल रियाज़े ज़मां के हैं।
सदमे न आह बाप के ऐसे न मां के हैं। इस ग़म में टुकड़े होते दिले-नातवां के हैं।
भरता नहीं है जो कभी नासूर यह वह है।
सौ मरतबा हरा हो जो अंगूर यह वह है।
जाती है सेंकने से कहीं यह जिगर की चोट। सदमा यह दम के साथ है, यह उम्र भर की चोट।
ख़ंजर का ऐसा वार न है नेशतर की चोट। है लाइलाज इस ग़मेवहशत-असर की चोट।
गहरा जिगर पै घाव है इस तीर जस्ता का।
थमता नहीं लहू कभी क़ल्बे शिकस्ता का।
इस बेकसी में छोड़के मुझको किधर, दरेग़। तुम चल दिये बिरादरे-ख़स्ता-जिगर, दरेग़।
देखा मुझे न प्यार से भरकर नज़र, दरेग़। मुझसे गले मिले भी न वक़्ते-सफ़र, दरेग़।
क़ौलो-क़रार क्या यही मुझ ख़स्ताजां से थे।
हैं याद वह वचन भी जो हारे ज़बां से थे।
यों मुझसे रूठ जाने की पहले तो ख़ू न थी। चाके जिगर की कब मेरे फ़िक्रे-रफ़ू न थी।
लब पर तुम्हारे प्यार की कब गुफ़्तगू न थी। देहीमो-सल्तनत की तुम्हें आरज़ू न थी।
उफ़्ताद इक जहां की उठाई मेरे लिए।
बन बन की तुमने ख़ाक उड़ाई मेरे लिए।
थी गरचे आह! दश्त-नवर्दी तुम्हें गरां। लाई वतन से मेरी मुहब्बत कशां-कशां।
ग़ुरबत में हैफ़! मुझसे छुटा जैसे ख़ानमा। साये की तरह साथ रहे तुम रवां-दवां।
छोड़ा न मेरे दामने-उलफ़त को हाथ से।
जाने दिया न वज़अ रफ़ाक़त को हाथ से।
ऐ बाप, आज फेरके मुझसे नज़र को तुम। जाते हो आह! जान-बिरादर किधर को तुम।
दे जाओगे फ़िराक़ का सदमा जिगर को तुम। ज़ानू पै लाश होगी, न होगे सहर को तुम।
आंखों में आह! निस्फ़ शबे ग़म गुज़र गई।
ऐ जज़्ब इश्तियाक़! सजीवन किधर गई।

[आर्य्य-समाचार से उद्धृत

मृच्छकटिक और उसके रचनाकाल का हिन्दू-समाज।
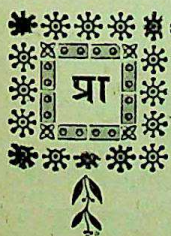
प्राचीन भारतवर्ष के आर्य्यों ने लगभग सब विषयों में उन्नति की थी और जिस समय योरप-निवासी आज-कल की जङ्गली जातियों से बढ़-कर नहीं कहे जा सकते थे उस समय भारत सभ्यता के शिखर पर था। इस विषय के प्रमाण दिन-पर-दिन मिलते जाते हैं। तोभी आश्चर्य्य की बात यह है कि भारतनिवासियों ने अपना इतिहास लिखने की ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया। कल्हण की राज-तरङ्गिणी को छोड़कर उनका लिखा हुआ इतिहास का और कोई ग्रन्थ नहीं। पुराने समय का जो कुछ इतिहास मालूम होता है वह या तो मेगस्थे-नीज़, फ़ाहियान इत्यादि विदेशी यात्रियों की पुस्तकों से, या पुराने शिला-लेखों, दान-पत्रों और सिक्कों से अथवा पुराने साहित्य-ग्रन्थों से। इन काव्य-ग्रन्थों को पढ़ने से उनमें चित्रित समाज की

दशा का ज्ञान अनायास ही हो जाता है। मम्मट ने काव्यप्रकाश में लिखा ही है—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥

संस्कृत के नाटकों में मृच्छकटिक का बहुत आदर है। यद्यपि उसमें कालिदास की शकुन्तला की सी उत्कर्ष काव्य-निपुणता और घटनाओं का समावेश, भवभूति के उत्तर-रामचरित का सा उच्चकोटि का करुणरस, नारायण के वेणी-संहार का सा उत्कट वीररस और मुद्राराक्षस की सी राजनीति-पटुता नहीं है, तथापि वह इन्हीं नाटकों की श्रेणी का समझा जाता है और इतना ही पढ़ा भी जाता है। इस आदर का विशेष कारण यह है कि इस नाटक में हिन्दू-समाज का चित्र बड़े कौशल से खींचा गया है। अन्य नाटकों में राजा, महाराजाओं का वर्णन है; परन्तु इसमें एक सामान्य श्रेणी के ब्राह्मण का वर्णन है। और नाटकों में राजमहलों और प्रमदवनों की सैर कराई जाती है; पर इसमें नायक एक जीर्ण पुष्पोद्यान ही से सन्तुष्ट है। मृच्छकटिक नाटक की सब शर्तों को पूरी नहीं करता, इस कारण वह प्रकरण-मात्र है; किन्तु इससे उसकी शोभा और बढ़ गई है और लेखक अधिक स्वच्छन्दता से लिख सका है। इस पुस्तक का आदर पश्चिमी विद्वानों ने अधिक किया है। विलसन और राइडर के अनुवाद प्रसिद्ध हैं।

मृच्छकटिक को किसने लिखा, यह अभी तक निर्णीत नहीं है। भारतीय पण्डितों का कहना है कि यह शूद्रक राजा का बनाया हुआ है और पश्चिमी विद्वानों का मत है कि शूद्रक राजा के दरबार के किसी कवि का रचा हुआ है; परन्तु शूद्रक के नाम से प्रसिद्ध है * इस मतभेद का कारण प्रस्तावना का एक श्लोक* है जिससे ज्ञात होता है कि शूद्रक एक सौ वर्ष और दस दिन जीवित रहकर अग्नि में प्रवेश करके पञ्चत्व को प्राप्त हुआ। अब प्रश्न यह है कि यदि शूद्रक ने स्वयं नाटक लिखा है तो वही अपनी मृत्यु के विषय में किस प्रकार लिख सकता था। इससे यह स्पष्ट है कि या तो शूद्रक ने यह ग्रन्थ नहीं लिखा अथवा उसने उसकी प्रस्तावना नहीं लिखी और पश्चात् किसी कवि ने वह तथा दो-एक और अंश† जोड़ दिये हैं। शूद्रक के मृच्छकटिक के लेखक होने के विरुद्ध कोई निर्विवाद और युक्तिसङ्गत प्रमाण न होने के कारण प्राचीन लेखकों का अनुमोदित मत मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। वामन अपनी काव्यालङ्कार-सूत्रवृत्ति में शूद्रक को कवि मानकर मृच्छकटिक से दो पद्य उदाहरण-स्वरूप उद्धृत करते हैं। फिर यदि शूद्रक के आश्रित किसी कवि का रचा हुआ यह ग्रन्थ मान लिया जाय तो वह कवि शूद्रक की मृत्यु के पश्चात् यह नाटक क्यों बनाने बैठा? यदि उसे अपने स्वामी का नाम करना था तो शूद्रक के पुत्र आदि उत्तराधिकारी का नाम प्रकाशित करता। इससे प्रकट होता है कि प्रस्तावना अवश्य किसी अन्य कवि की लिखी है, परन्तु मूल पुस्तक शूद्रक की ही बनाई हुई है।

मृच्छकटिक के रचना काल के विषय में भी बहुत

---

* पिशल (Pischel) साहब का मत है कि यह नाटक दण्डी का बनाया हुआ है; परन्तु यह भ्रम शूद्रक को छठी शताब्दी का समझने से उत्पन्न हुआ है। दण्डी की रचना से इस ग्रन्थ की रचना में बड़ा भेद है; इस कारण यह मत भ्रम-मूलक ही जान पड़ता है।

* ऋग्वेदं सामवेदं गणितमथ कलां वैशिकीं हस्तिशिक्षाम्।
ज्ञात्वा शर्वप्रसादाद् व्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्य।
राजानं वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्वमेधेन चेष्ट्वा।
लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः॥
॥ प्रथम अङ्क ४ ॥

† यथा वसन्तसेना के मकान का वर्णन (चतुर्थ अङ्क का उत्तर भाग)।

मत-भेद है। मैक्डानेल* साहब की राय है कि यह नाटक छठी शताब्दी का है और प्रो० वेबर† का मत है कि ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के पूर्व का यह नाटक नहीं हो सकता। विलसन साहब का मत है कि यह ग्रन्थ ईसवी सन् के प्रारम्भ के कुछ वर्ष इधर या उधर का रचा हुआ है‡—बहुमत से यह सिद्ध-प्राय है कि शूद्रक कालिदास से पहले हुए हैं और पुस्तक की रचना आदि के प्रमाणों से भी यह पुस्तक पुरानी मालूम होती है। इस पुस्तक में जो प्राकृत प्रयुक्त की गई है वह पुरानी है और वररुचि के समय की या उससे पहले की जान पड़ती है। वररुचि ईसवी सन् के पूर्व प्रथम शताब्दी के इधर का नहीं माना जाता। इस कारण मृच्छकटिक ईसवी सन् के पूर्व प्रथम शताब्दी में बनाया गया मालूम होता है।

इस पुस्तक से विदित होता है कि इसके निर्म्माण-काल में यह देश सुख-समृद्धियुक्त था। समृद्धि के दोष वेश्या, जुआ मदिरा-पान इत्यादि भी प्रचलित थे। खान-पीने के लिए कोई तरसता न था। व्यापार बहुत चढ़ा-बढ़ा था और भारतीय व्यापारियों के निज के जहाज थे (अङ्क ४, २९ वें श्लोक के पश्चात्—"भवति, किं युष्माकं यानपात्राणि वहन्ति")। नगर-रक्षा का बहुत अच्छा प्रबन्ध था और चोर-डाकू सड़कों पर और गलियों में निर्भय नहीं घूम सकते थे (अङ्क ३, २० वें श्लोक के उपरान्त, "अये पदशब्दः इव, मा नाम रक्षिणः" इत्यादि)। शकुन्तला नाटक की तरह इस नाटक में पुलिस के कर्म्मचारियों का ज़ुल्म और कुटिलता नहीं दिखाई गई है*। मृच्छकटिक में एक स्थान पर कर्म्मचारी चन्दनक आर्य्यक को, अभय माँगने पर, अपनी जान जोखिम में डालकर छोड़ भी देता है।

न्याय करने के लिए भी उस समय बहुत यत्न किया जाता था। न्यायाधीश अपने कार्य्य से उन दिनों भी खिन्न थे और गवाही इत्यादि से सच्ची बात जानने में बड़ी कठिनता पड़ती थी†। झूठी सच्ची बातें उस समय भी सरलता से गढ़ी जाती थीं और झूठे मुक़द्दमे तैयार किये जाते थे। क़ानून की गूढ़ बातें तब भी उठती थीं और बयानों में एक शब्द इधर या उधर होने पर तुरन्त लिख लिया जाता था‡। क़ानून को सब मानते थे और न्याय-कर्त्ता को छिपी बात जानने के विशेष अधिकार थे (व्यवहारस्त्वां पृच्छति इ०)। जैसी बात साबित होती थी उसके अनुसार मुलज़िम को अपना दोष स्वीकार करना पड़ता था और हर जुर्म के लिए अलग अलग दण्ड दिया जाता था। न्यायाधिकारी क़ानून के जटिल बन्धन से बँधे रहते थे और अपनी इच्छा-

---

* History of Sanskrit Literature—A. A. Macdonell, p. 361 :—

"In any case, it not improbably belongs to the sixth century."

† वेबर साहब के मतानुसार नाणक शब्द जो इस पुस्तक में आया है कणेरकी से (जिसका समय लगभग सन् ४० ई० है) निकला है—और इसीको लेकर उन्होंने अपना मत स्थापित किया है; परन्तु इसका खण्डन मैक्स-मूलर साहब ने अपनी पुस्तक 'Ancient Sanskrit Literature' में किया है। पृ० ३३२ देखिए।

‡ The Toy Cart by Wlison, p. 4.

* शकुन्तला के षष्ठ अङ्क का प्रवेशक देखिए।

† छन्नं कार्य्यमुपक्षिपन्ति पुरुषा न्यायेन दूरीकृतम्,
स्वान् दोषान् कथयन्ति नाधिकरणे रागाभिभूताः स्वयम्।
तैः पक्षापरपक्षवर्धितबलैर्दोषैर्नृपः स्पृश्यते,
संक्षेपादपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरतः॥ नवमाङ्क श्लो० ३॥

‡ "शकारः—...... बाहुपाशबलात्कारेण वसन्तसेनिका मारिता न मया।
अधिकरणिकः—अहो, नगररक्षिणां प्रमादः। भोः श्रेष्ठि-कायस्थौ, न मयेति व्यवहारपदं प्रथममभिलिख्यताम्।" नवमाङ्क में।

नुसार न्याय-परिवर्तन नहीं कर सकते थे। असेसर तब भी नियुक्त होते थे; परन्तु वे 'हाँ हुज़ूर' ही अधिकतर होते थे। लिखने का काम कायस्थ लोग करते थे। जज गवाही इत्यादि से जुर्म साबित करके राजा के पास भेज देता था और राजा के हस्ताक्षर होने पर सज़ा होती थी। जल्लादों को फाँसी देने के स्थान पर मनमानी रीति से फाँसी देने का अधिकार था। फाँसी की आज्ञा भारी रक़म देने से टाली जा सकती थी और कोई बड़ी ख़ुशी की बात होने पर अपराधी छोड़ भी दिये जाते थे।

राजा को प्रजा की रक्षा करने में दत्तचित्त रहना पड़ता था और शास्त्र-विहित रीति से कार्य्य करना होता था। अन्याय करने पर राजा गद्दी से उतार दिया जाता था। न्यायानुसार शासन करनेवाले राजा का बड़ा मान होता था और उसकी भक्ति की जाती थी। राजा के नातेदारों का तब भी दबाव था।

जुए का प्रचार तब भी था, परन्तु वह नियत स्थानों में, नियत कर्म्मचारियों के संरक्षण में होता था। क़र्ज़ का रुपया क़र्ज़दार से मारपीट कर, उसका असबाब बेचकर अथवा ख़ुद उसे ही बेचकर वसूल किया जा सकता था।

स्त्रियों का मान अधिक था, और इस बात का प्रयत्न किया जाता था कि उन्हें कोई कष्ट न होने पावे। उनके कपट की शिकायत पुरुषों को तब भी रहती थी। पर्दे का कुछ अंश उस समय भी था। मालूम होता है कि भले घर की स्त्रियाँ घर से बाहर नहीं निकलती थीं और परपुरुषों के सामने घूँघट निकालती थीं *। वेश्यायें भले आदमियों के घरों के अन्दर नहीं जा सकती थीं *।

जाति-बन्धन उस समय बहुत कड़ा नहीं था। ब्राह्मण लोग केवल वेदपाठी ही नहीं होते थे, किन्तु व्यापार भी करते थे। चारुदत्त का पिता बड़ा भारी सेठ था। चारुदत्त का विवाह वसन्तसेना से हो जाता है जो केवल शूद्राणी कही जा सकती है और सब उसका अनुमोदन करते हैं। आर्य्यक अहीर का बालक होने पर भी राजा हो जाता है। वीरक और चन्दनक नाई ऐसी नीच जाति में उत्पन्न होने पर भी उच्च कर्म्मचारी बनाये जाते हैं। इससे विदित होता है कि उस समय जाति उन्नति में बाधक न होती थी।

खाने-पीने में छुआ-छूत इतनी नहीं थी। ब्राह्मण चारणों और वेश्याओं के घर भोजन कर लेते थे। दान लेना तब भी ब्राह्मण बुरा समझते थे; परन्तु न्योता खानेवाले ब्राह्मणों की उस समय भी कमी नहीं थी और न्योता खाने में ब्राह्मणों में तब भी स्पर्धा होती थी। धर्म्मोपासना और तर्पण इत्यादि आज-कल की भाँति उस समय भी होते थे। स्त्रियों की तब भी उपवासों में श्रद्धा थी। इस पुस्तक में 'अभिरूपपति' और 'रत्न-षष्ठी' के नाम आये हैं†। उत्सवों में इन्द्रमह और कामदेवोत्सव के नाम

* वसन्तसेना वेश्या को जब चारुदत्त की वधू बनाते हैं तब लिखा है कि "वसन्तसेनामवगुण्ठ्य"। शकुन्तला के पाँचवें अङ्क में शकुन्तला के विषय में ये शब्द हैं:-

"कास्विदवगुण्ठनवती... इत्यादि" १३ वाँ श्लोक

"गौतमी—जाते मुहूर्त्तं मा लज्जस्व। अपनेष्यामि तावत्तेऽवगुण्ठनम्। ततस्त्वां भर्ताभिज्ञास्यति"—

इन बातों से स्पष्ट है कि पर्दे का कुछ अंश प्राचीन काल में भी था और घूँघट तो अवश्य निकाला जाता था।

* वसन्तसेना (चारुदत्त से)—मन्दभागिनी खल्वहं तवाभ्यन्तरस्य—प्रथम अङ्क।

वसन्तसेना—हञ्जे किं प्रविष्टाऽहमिहाभ्यन्तरचतुःशालम्—छठा अङ्क।

† 'अभिरूपपति' कदाचित् आज-कल की बरसाइत और 'रत्नषष्ठी' आज-कल की हरछठ हैं।

मिलते हैं। कुआँ, तालाब और बाग़ इत्यादि बनवाना उस समय भी पुण्य समझा जाता था*।

दासत्व की प्रथा प्रचलित थी; परन्तु दासों को भोजनाच्छादन का सुख था। अलग से जोड़ा हुआ रुपया उन्हींका रहता था और स्वामी की इच्छा पर अथवा छुड़ौती का रुपया देने पर दास छोड़ दिये जाते थे।

इस नाटक में चोर-विद्या का अच्छा उल्लेख है। इस विद्या की बहुतसी पुस्तकें पुराने समय में थीं जिनमें चोरी करने की साइत, स्थान, सेंध के भेद इत्यादि के वर्णन थे। ऐसी पुस्तकें आज-कल नहीं मिलतीं। इस विद्या को सिखाने के लिए आचार्य्य होते थे, और कई आचार्य्यों के नाम इस नाटक में आये हैं। चोर सेंध नापने के लिए यज्ञोपवीत सूत्र का प्रयोग करता है †।

इन सब बातों का चित्र खींचकर शूद्रक भारत के तत्कालीन इतिहास पर प्रकाश डाल गया है।

बाबूराम सक्सेना

लुक़मान के अनमोल बोल।

१

از کتب خانه عالم چهار کلمه برگزیدم دورا یاد
و دورا فراموش باید کرد-خدا و مرگ را یاد دار
و نیکی که باکسے کنی و بدي که کسے با تو کند
فراموش کن -

अक्षरान्तर।

अज़ कुतब खानए आलम चहार कलमः बर गुज़ीदम। दोरा याद व दोरा फ़रामोश बायद कर्द। ख़ुदा व मर्ग रा याद दार; व नेकी कि बाकसे कुनी, व बदी कि कसे बा तो कुनद, फ़रामोश कुन।

अनुवाद।

संसार के पुस्तकालय से मैंने चार वाक्य छाँटे हैं। दो को याद रखना चाहिए और दो को भूल जाना चाहिए—ईश्वर और मृत्यु को याद रख; और नेकी जो तू किसीके साथ करे, और बदी जो कोई तेरे साथ करे, भूल जा।

२

لقمان را پرسیدند که تو شبان بودي بدرجه
حکما چگونه رسیدي گفت بسه چیز راست گفتن
و خاموش ماندن و از صحبت بد احتراز کردن -

अक्षरान्तर।

लुक़मान रा पुरसीदंद, कि तू शबान बूदी, बदरजह हुक्मा चिगूनः रसीदी-गुफ़्त, ब सेह चीज़। रास्त गुफ़्तन, व ख़ामोश माँदन, व अज़ सुहबते बद इहतराज़ करदन।

अनुवाद।

लुक़मान से किसीने पूछा कि तू चौकीदार था, हकीमों के दरजे पर कैसे पहुँच गया? उसने कहा, तीन बातों से। सत्य बोलने से, मौन रहने से, और बुरों की सङ्गत से बचने से।

३

حاصل من از فضیلت همین بود که بر جهل
خود اطلاع یافتم -

अक्षरान्तर।

हासिले मन अज़ फ़ज़ीलत हमीं बूद कि बर जहले ख़ुद इत्तलाअ याफ़्तम।

---

* "The same notions," Dr. Bhandarkar observes, "as regards these matters prevailed then as now."

† आज-कल भी तो जनेऊ कुञ्जियाँ बाँधने के काम में लाया जाता है !!

अनुवाद।

विद्वत्ता से मैंने यही लाभ उठाया कि अपने मूर्खत्व का मुझे ज्ञान हो गया।

नानकचन्द

एलक्ज़न्डर का एकान्तवास।

जो कुछ दृष्टि मुझे आता है, उस सबका मैं हूँ स्वामी।
स्वत्वों का विरोध करने को, यहां न कोई अनुगामी॥
चारों ओर केन्द्र से लेकर, सागर-सीमा तक बिस्तार।
जितने पशु-पक्षी हैं, सब पर है पूरा मेरा अधिकार॥
अरे! आज वे मन्त्र कहाँ हैं, बतला दे, एकान्त।
तेरे मुख पर जिनको देखा, ऋषियों ने हो शान्त॥
भय में रहना अधिक श्रेष्ठ है, मेरा यही विचार।
किन्तु न हो इस महा भयानक थल का राज्य-प्रसार॥
मानव जाति नहीं पा सकती मेरा यह संस्थान।
केवल मैं ही पार करूँगा अपना कठिन पयान॥
मैं न सुनूँगा बात-चीत का अब सारा सङ्गीत।
अपनी ही ध्वनि सुन, अचरज से होता हूँ भयभीत॥
ये अनेक पशु मैदानों में अति स्वच्छन्द विचरते हैं।
निर्भय होकर मुझे देखते, नहीं ध्यान कुछ करते हैं॥
हैं ये इतने बिलग मनुज से, चंचल होता ज्ञान।
इनके पालू हो जाने का आता है जब ध्यान॥
प्रेम, मित्रता वा समाज का है जितना व्यवहार।
दिये हुए है मनुज-जाति को स्वामी जगदाधार॥
हाय! दिये होते यदि विधि ने, पक्षी के से पंख।
तो फिर शीघ्र इन्हींका अनुभव करता मैं निःशंक॥
तब फिर अपने कष्टों का मैं शीघ्र निवारण कर लेता।
सच्चाई वा मत के सत्पथ पर अपना पग धर देता॥
दुख कम करते वृद्धपने के उत्तम उच्च विचार।
युवा अवस्था की मारों से होता हर्ष अपार॥
इसका तो मैं खेल बना हूँ, हे हे चञ्चल वायु।
इस निर्जन तट पर अब आके कर दे मुझे चिरायु॥
अब तो पवन सुना दे मुझको कोई सुखद सँदेश।
उसका, जहाँ न अब जाऊँगा, जो है मेरा देश॥
मेरी इच्छा करते हैं क्या मेरे मित्र महान।
क्या उनको अब तक होता है मेरा भी कुछ ध्यान॥
अरे! बता दे क्या अब भी है मेरा एक सुमित्र।
यदपि न होगा किसी मित्र का दर्शन हाय! पवित्र॥
कितनी शीघ्र-गामिनी है यह मम मस्तक की चाल।
जिसकी समता करे न कोई कहीं किसी भी काल॥
इसकी गति से आंधी पीछे रहती है गंभीर।
नहीं पार पा सकते इससे वे प्रकाश के तीर॥
अपनी जन्मभूमि के प्रति मैं कभी ध्यान जब करता हूँ।
यही जान पड़ता क्षण भर में मानों वहीं विचरता हूँ॥
किन्तु शोक है, हा! तुरन्त ही मेरे उभरे हुए विचार।
मुझे निराशा दिखलाते हैं जिसका कहीं न वारापार॥
किन्तु देखिए, अबाबील अब चला बसेरे को अपने।
पशु भी अब सब लेट गये हैं, दिन के दृश्य हुए सपने॥
अहो! यहां भी आती है ऋतु करने को विश्राम।
मैं भी पर्णकुटी को लौटूँ, जो है मेरा धाम॥
कृपापूर्ण सुविशाल जगत का है प्रत्येक स्थान।
उसी कृपा से ये विचार भी होते पुष्ट महान॥
देकर शुभ साहस विचार को सुन्दर वही बनाती है।
करती है सन्तुष्ट भाग्य, वह दुख-सुख भी सरसाती है॥

तोरनदेवी

मनोरञ्जक श्लोक।

पात्रीकृत्य कपालमण्डलमिदं पीयूषभानोः कलां
वर्तीकृत्य फणामणिं फणिपतेः सम्पाद्य तस्मिन्शिखाम्।
सायं दीपविधिं वितन्वति शिशौ मन्दं हसन्त्या तया
किञ्चित्कुञ्चदपाङ्गभङ्गकुटिला दृष्टिः समारोपिता॥

भगवान् चन्द्रशेखर ध्यान में लीन हैं। पास ही जगज्जननी भवानी बैठी हुई हैं। इतने में सन्ध्या हुई। बालक कार्त्तिकेय ने घर में अँधेरा देख दीपक जलाना चाहा। पर उसे वहाँ दीपक जलाने की कोई सामग्री न देख पड़ी। अकस्मात् पिता चन्द्रचूड़ की कपाल-माला पर उसकी नज़र पड़ी। बस उसी कपाल-मण्डल को कार्त्तिकेय ने पात्र बनाया और पिता के जटाजूट पर चमकती हुई चन्द्र-कला को बत्ती बनाया। फिर भुजङ्ग-राज की फणा-मणि को लेकर बत्ती के

आगे रख दिया। बस दीपक का काम होने लगा। बालक की इस अपूर्व कार्य-कुशलता को देख मन्द मन्द हँसती हुई पार्वती ने किञ्चित् आकुञ्चित नेत्र-प्रान्त से बालक कार्त्तिकेय की ओर देखा।

अहा! कैसा मधुर भाव है! चित्त को लुभानेवाला कैसा मधुर मुसकाना है!

श्रीशुभानन्द शर्मा

विविध विषय।

१—मृत्यु के पूर्व लक्षण।
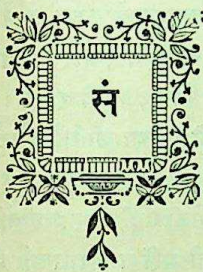
संसार में कोई अमर नहीं। सबको एक न एक दिन मरना ही होगा। पर मरने के पहले ही यदि हम यह जान सकें कि इतने दिनों के बाद हमें काल-कवलित होना पड़ेगा तो इससे हमें कितने ही लाभ हों। तन्त्र, पुराण, आयुर्वेद, ज्योतिष और स्वरोदय आदि शास्त्रों में मृत्यु के कितने ही लक्षण दिये हुए हैं। परन्तु साधारण लोगों के लिए उनका समझना और उनके द्वारा मृत्यु की पहचान करना बड़ा कठिन है। अतएव उनके सुभीते के लिए हम अपने कितने ही अनुभूत लक्षण यहाँ देते हैं—

(१) साल, महीने या पक्ष के पहले दिन जिसके दोनों नथनों से बराबर ज़ोर से साँस निकले, समझ लीजिए कि उसी दिन से तीन वर्ष बाद वह मर जायगा।

(२) साल, महीने या पखवारे के पहले दिन से दो रात और दो दिन जिसके दाहने नथने से सांस निकले, उस दिन से दो वर्ष बाद उसे मृत्यु का शिकार होना पड़ेगा।

(३) साल, महीने या पखवारे के पहले दिन से तीन दिन और तीन रात जिसके दाहने नथने से साँस चले उस दिन से एक वर्ष बाद उसकी मृत्यु होगी।

(४) साल, महीने या पखवारे के पहले दिन थोड़ी देर तक बायें नथने से जिसकी साँस न निकलकर दाहने नथने से निकलती रहे तो उसे पन्द्रह दिन में मौत के घर जाना होगा।

(५) साल, महीने या पखवारे के पहले दिन से सोलह दिन तक जिसकी सांस दाहने नथने से चलती रहे उसे उस दिन से एक महीने के बाद के अन्तिम दिन मौत का शिकार होना पड़ेगा।

(६) साल, महीने या पखवारे के पहले दिन जिसका मल, मूत्र, शुक्र और अधोवायु एक साथ ही निकले उसे दस ही दिन में ज़रूर मौत का मुँह देखना होगा।

(७) जिस दिन से मनुष्य अपनी भौंहों के बीच की जगह नहीं देख पाता उस दिन के सातवें या नवें दिन उसे मरना पड़ेगा।

(८) जिसे अपनी नाक नहीं देख पड़ती वह तीन दिन में मौत का थप्पड़ खाता है और जिसको अपनी जीभ नहीं दिखाई देती वह एक ही दिन में।

(९) मौत जिसके सर पर सवार है उसे आकाश में अरुन्धती, ध्रुव, मातृका-मण्डल और विष्णुपद नहीं दिखाई देता।

(१०) जिसके दोनों नथने बिलकुल बन्द रहते हों और मुँह से सांस निकलती हो उसकी शीघ्र ही मृत्यु होगी।

(११) जिसकी नाक टेढ़ी पड़ गई हो, दोनों कान ऊपर को उठ गये हों, और आँखों से आँसू बराबर निकल रहे हों तो वह शीघ्र ही मौत का ग्रास हो जाता है।

(१२) घी, तेल, या पानी में अपनी परछाईं—प्रतिबिम्ब—देखते वक्त जिसको अपना सिर नहीं देख पड़ता वह एक महीने में मृत्यु को प्राप्त होता है।

(१३) जो स्वप्न में गधे पर चढ़ता है और तैल मर्दन करता है उसे जल्दी ही मौत आती है।

(१४) जो मनुष्य स्वप्न में लोहे का डण्डा लिये, काले कपड़े पहने, काले रङ्गवाले पुरुष को देखता है वह तीन महीने में मौत का मिहमान बनता है।

(१५) जिसका गला, होंठ, जीभ और तालु सदा सूखता रहता है वह छः महीने के भीतर ही दुनिया से कूच कर जाता है।

(१६) अकारण ही यदि कोई मोटा आदमी अकस्मात् दुबला हो जाय या दुबला मोटा हो जाय तो एक महीने बाद उसे मौत के घर जाना पड़ता है।

(१७) हाथ से कान का छेद बन्द करने पर एक

प्रकार की अस्पष्ट आवाज़ सुनाई देती है। जिसे वह नहीं सुनाई देती वह एक महीने के भीतर ही मृत्यु का ग्रास हो जाता है।

(१८) अण्डी के तेल से जलते हुए दीपक के बुझने पर जिसे बू न आती हो वह छः महीने के भीतर यमलोक को सिधार जाता है।

(१९) दांत दबाने से जिसे दर्द नहीं मालूम होता वह तीन महीने के भीतर ही मौत के घर चला जाता है।

(२०) अपने दाहने हाथ की मुट्ठी बाँधकर उसे नाक या भौंह के बीच में रखिए। फिर सामने नज़र डालिए। आपको हाथ बहुत पतला देख पड़ेगा। जिस दिन हाथ से मुट्ठी अलग मालूम हो, समझ लीजिए, छः महीने और दुनिया में रहना है।

(२१) अपनी आँखें बन्द कर लीजिए। फिर उँगली के सिरे से आँख का एक कोना दबाइए। यदि चमकते हुए सितारे के सदृश कोई बिन्दु न देख पड़े तो समझ लीजिए कि दस दिन बाद दुनिया से कूच करना होगा।

मरने के लक्षण देख पड़ने पर घबराना न चाहिए। धैर्य्य रखना चाहिए। भगवान् का ध्यान करना चाहिए। यथाशक्ति दान-पुण्य करना चाहिए। मरने से डरना व्यर्थ है। क्योंकि—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

गोवर्द्धन शर्म्मा

२—बर्फ़स्तानी जल में जीवित मत्स्य।

संसार में मत्स्यभोजियों की कमी नहीं। शायद ही ऐसा कोई देश हो जहाँ मछली खानेवाले न हों। पर मछलियाँ सब देशों में कसरत से नहीं पाई जातीं; कहीं अधिक होती हैं कहीं कम। अतएव इन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने की अकसर ज़रूरत पड़ती है। मतलब यह कि इनका भी आन्तर्जातिक व्यापार होता है। पर इस प्रकार एक देश से दूसरे देश को भेजने में मछलियाँ बहुधा रास्ते ही में सड़ जाती हैं और खाने के काम की नहीं रहतीं। इससे मत्स्यव्यापारियों को बहुत हानि उठानी पड़ती है। इसलिए योरप और अमेरिका के लोग बहुत दिनों से कोई ऐसी तरकीब ढूँढ़ रहे थे जिससे जीवित अवस्था में ही मछलियाँ एक जगह से दूसरी जगह भेजी जा सकें। उनके भाग्य से अब एक तरकीब निकल आई है। जिस प्रकार से इस तरकीब का पता लगा उसका भी हाल सुनिए।

एशिया महाद्वीप के उत्तर में साइबीरिया नामक एक अत्यन्त शीत-प्रधान देश है। वहाँ की कितनी ही बड़ी बड़ी नदियाँ जाड़े के दिनों में बिलकुल जम जाती हैं। साथ ही साथ उन नदियों में जो मछलियाँ होती हैं वे भी जम जाती हैं और जाड़े के कई महीनों तक लाखों मन बरफ़ के ढेर के नीचे दबी पड़ी रहती हैं। पर वे मरती नहीं। गरमी में ज्योंही पानी पिघलता है त्योंही वे इधर-उधर तैरने लगती हैं। यह देखकर लोगों ने यह सिद्धान्त निकाला कि बरफ़ में दबी रहने से मछलियाँ महीनों और बरसों तक जीवित रह सकती हैं। अतएव यदि बरफ़ में दबाकर वे एक देश से दूसरे देश को भेजी जायँ तो कदापि न सड़ेंगी और बरसों तक जैसी की तैसी, अतएव खाने के योग्य, बनी रहेंगी। फ़्रांस के कई स्थानों में इस सिद्धान्त की परीक्षा की गई और वह सत्य सिद्ध हुआ। बरफ़ के टुकड़ों के अन्दर दबी हुई मछलियाँ एक जगह से दूसरी जगह भेजी गईं और महीनों तक उसी दशा में रक्खी गईं; पर न वे मरीं न ख़राब हुईं। बरफ़ का टुकड़ा ज्योंही पिघलाया गया त्योंही वे इधर-उधर रेंगने लगीं। इससे अब जान पड़ता है कि कुछ दिनों में जीवित मछलियों का व्यापार भी संसार में होने लगेगा। क्योंकि इस तरकीब से हज़ारों मील दूर के स्थानों को भी अब मछलियाँ भेजी जाने लगी हैं।

३—दुनिया का सबसे बड़ा जल-प्रपात।

सरस्वती में नियागरा नामक जल-प्रपात का वर्णन बहुत पहले निकल चुका है। इस प्रपात की जल-धारा १६४ फ़ीट ऊपर से गिरती है। इसका दृश्य बड़ाही भयङ्कर और आतङ्कजनक है। दुनिया में यह प्रपात अब तक सबसे बड़ा समझा जाता था। पर इसका नम्बर अब एक और प्रपात छीन रहा है। यह नव-ज्ञात प्रपात ब्रिटिश गायना में है। वहाँ पोटारो नाम की एक नदी है। एक जगह इस नदी की धारा ८२२ फ़ीट ऊँचे पहाड़ की चोटी से नीचे एक पाताल-तल-स्पर्शी खड्ड में गिरती है। अतएव इसकी उँचाई नियागरा-प्रपात की उँचाई से पँचगुनी हुई। गरमियों में इस प्रपात का दृश्य बरसात की अपेक्षा अधिक देखने योग्य

होता है। दूर दूर से लोग इसे देखने जाते हैं और प्रकृति के इस अद्भुत खेल को देखकर दङ्ग रह जाते हैं।

अभी इस प्रपात के सम्बन्ध की सारी बातें ज्ञात नहीं हुईं। खोज हो रही है। धीरे धीरे इसकी लीलाओं का उद्घाटन होगा।

४—आदमियों का काम कलों से।

अमेरिका के एक सचित्र पत्र में एक बड़ा ही कौतूहल-वर्धक लेख प्रकाशित हुआ है। मेक्कारमक नाम के लेखक ने उसमें अनेक चित्र देकर यह दिखाया है कि अमेरिका में हिसाब रखने का प्रायः सारा काम कलें करने लगीं। उसने ऐसी कितनी ही कलों के चित्र भी दिये हैं और विस्तार-पूर्वक बताया है कि कौन कौन काम किस तरह ये कलें करती हैं। बड़ी बड़ी दूकानों पर अब इन्हीं कलों से बेखटके काम लिया जाता है। यही कलें जमाखर्च लिखती हैं, यही बिक्री का हिसाब रखती हैं, शाम को यही विधि मिलाती हैं और रोज़ सबेरे ये यह बता देती हैं कि दूकान के किस विभाग में कितना माल है और पिछले दिन कितने की बिक्री हुई। हर कर्मचारी के पास उसके काम के अनुरूप एक एक कल रहती है। वह जो कुछ बेचता या खर्च करता है उसका पाई पाई का हिसाब वही रखती है। भूल कभी नहीं होती। खाते भी यही कलें रखती हैं। चिट्ठियाँ लिखने का काम जैसे अब टाइप-राइटिंग् मैशीनें करती हैं वैसे ही ये कलें हिसाब रखने का काम करती हैं। लेखक का अनुमान है कि कुछ दिनों में ये कलें टाइप-राइटिंग् मैशीनों की ही तरह सर्वत्र काम करती दिखाई देंगी।

५—एक अद्भुत टाइप-राइटिंग्-मैशीन।

रेमिंग्टन आदि की बनाई हुई टाइप-राइटिंग्-मैशीनें अब यहां सर्वत्र ही प्रचलित हैं। दफ़्तरों में, कचहरियों में, कारखानों में, दूकानों में—सभी कहीं उनका खटाखट शब्द सुनाई देता है। अँगरेज़ी ही की नहीं, नागरी लिपि लिखने-वाली भी मैशीनें अब बनने और बिकने लगी हैं। इन्हें देर तक चलाने से उँगलियां दर्द करने लगती हैं। लिखाई का काम भी बहुत अधिक नहीं होता। इन दोषों को दूर करने की चेष्टा बहुत समय से हो रही थी। उसमें अब काम-याबी के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। अमेरिका में एक जगह ब्रुकलीन है। वहां जान-फ्लावर नाम का एक इञ्जिनियर रहता है। वह एक ऐसी टाइप-राइटिंग् मैशीन बना रहा है जिससे काम लेने में उँगली उठाने की ज़रूरत ही न पड़ेगी। उसे सामने रखकर केवल मुँह से इबारत बोल देना पड़ेगा। लिखनेवाला बोलता जायगा, मैशीन लिखती चली जायगी। जितनी जल्दी बोलनेवाला बोलेगा उतनी ही जल्दी वह लिखती जायगी। इस मैशीन में टाइप-राइटिङ्ग् और टेलीफ़ोन दोनों के कल-पुरज़े रहेंगे। इसके सिवा और भी कितने ही अद्भुत अद्भुत पुरज़े रहेंगे जो हर तरह की ध्वनि को अक्षरों में परिवर्त्तित करते चले जायँगे। यह मैशीन प्रायः बन चुकी है। कुछ ही कठि-नाइयों का हल होना बाक़ी है।। उनके भी शीघ्र ही हल हो जाने की आशा है। मैशीन तैयार हो जाने पर टेलि-फ़ोनों के दफ़्तरों में भी लगाई जा सकेगी। उसे लगाने से मुँह से कही गई बातें आपही आप लिख भी जायँगी और यदि सुननेवाला चाहेगा तो यन्त्र के पास बैठा हुआ उन्हें सुनता भी जायगा।

६—लन्दन की विचित्रता।

दुनिया में लन्दन सबसे बड़ा नगर है। धन, आबादी और विस्तार में उसके बराबर भूमण्डल में और कोई नगर नहीं। नीचे लिखी गई कुछ बातों से ही इस कथन की पुष्टि हो जायगी:—

(१) नगर का विस्तार, जिसमें वह भाग जिसे बड़ा लन्दन (Greater London) कहते हैं शामिल है	६९२ मुरब्बा मील
(२) आबादी	७२,५२,९६३ (७२½ लाख के ऊपर)
(३) दैनिक जल-खर्च	३०, ३५५ मन
(४) उन वस्तुओं के दाम जो हर साल नगर में बाहर से आती हैं	२,५१,३५,२३,८१० रुपये (२½ अरब के ऊपर)

(५) उन वस्तुओं के दाम जो हर साल नगर से बाहर भेजी जाती हैं	१,४०,४१, ७०, ८६५ रुपये (लगभग १$\frac{1}{2}$ अरब)
(६) नगर के बाग़ीचों तथा अन्य खुले स्थानों का विस्तार	८ मुरब्बा मील
(७) शहर के क़ब्रस्तानों का विस्तार	६०६ एकड़
(८) शहर की पुलिस की संख्या	१६,७६१
(९) पारलियामेंट के मेम्बर जो शहर से चुने जाते हैं	६२
(१०) कपड़े और सिलाई की बड़ी बड़ी दूकानें	७७
(११) ऊपर की दूकानों में लगा हुआ धन	२२,५०,००,००० रुपये (२२$\frac{1}{2}$ करोड़)
(१२) नगर के मध्य भाग से रोज़ आने-जानेवालों की संख्या	१२,५०,००० (१२$\frac{1}{2}$ लाख)
(१३) मनुष्य-जन्म, प्रतिदिन	३६१
(१४) मृत्यु, ,,	६६
(१५) उन गलियों की लम्बाई जिनमें बड़ी भीड़ रहती है	४८$\frac{1}{2}$ मील
(१६) लन्दन में रहनेवाले विदेशियों की संख्या	२,००,००० अर्थात् २ लाख
(१७) स्कूलों की संख्या (कालेजों को छोड़कर)	१०५६
(१८) ऊपर के स्कूलों में छात्रों की गुंजायश	८,००,००० (८ लाख)
(१९) प्रतिदिन नगर से बाहर जानेवाले मुसाफ़िर	रेल पर ७,६०,००० (क़रीब ८ लाख) सवारी गाड़ियों पर (अधिकतर मोटर कारों पर) ३,८०,००० (क़रीब ४ लाख) ट्रैमवे पर ५०,००,००० (पचास लाख)
(२०) किराये की गाड़ियों की संख्या (जो अधिकतर मोटर हैं)	११,०००
(२१) ,, ,, ,, में भूल से रह गई चीज़ों की संख्या	८०,०००
(२२) कारख़ानों में काम करनेवाले उन लोगों की संख्या जो कारख़ानों से शाम को बाहर निकलते हैं	१,७४,८५८ (१ लाख ७५ हज़ार)
(२३) कारख़ानों में काम करनेवाली स्त्रियों की संख्या	२,००,००० (२ लाख)
(२४) नगर-निवासी, जो केवल एक कोठरी या कमरे में अपना गुज़र करते हैं	३,००,००० (३ लाख)
(२५) ,, ,, जो खुले मैदान या बाग़ीचों में रात व्यतीत करते हैं	२,०००
(२६) शहर में जायदाद रखनेवालों की संख्या	३४, ६००

सबसे अधिक जायदाद के मालिक बादशाह हैं। उनसे कम के मालिक नगर के प्रधान पादरी (Ecclesiastical Commissioners), उनसे कम की मालिक सिटी कारपोरेशन (City Corporation) हैं। इन तीनों का अधिकार १६ मुरब्बा मील पर है, १८३ ज़मींदार और हैं जिनके पास कोई $\frac{1}{2}$ मुरब्बा मील कमोवेश की जायदाद है।

[सङ्कलित]

गौरीदत्त वाजपेयी

७—आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सा।

यह देखकर हर्ष होता है कि बड़े लाट की कौंसिल के महामान्य मेम्बर भी अब अपने देश की रोग-चिकित्सा की उन्नति की चिन्ता करने लगे हैं। १९१६ की सरस्वती की किसी संख्या में इस चिन्ता की चर्चा हो चुकी है। इस बार, गत सितम्बर में, २३ तारीख़ को, मध्यप्रान्त के मेम्बर, राय साहब सेठ नथमल ने फिर कौंसिल में इस विषय की चर्चा की। आपने एक प्रश्न द्वारा यह पूछा कि स्वदेशी चिकित्सा की उपयोगिता बढ़ाने और उसे विज्ञान-सिद्ध बनाने के लिए भारतीय और प्रान्तीय गवर्नमेंटों ने, १९१६ से आज तक, कुछ किया या नहीं और किया तो क्या किया?

इस पर सर विलियम विन्सेंट ने यह उत्तर देने की कृपा की—

> प्रान्तीय गवर्नमेंटों से सलाह मशविरा हो चुका। उन सबकी, एक स्वर से, यही सम्मति है कि आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सा को वैज्ञानिक बनाने के लिए अभी कुछ भी नहीं किया जा सकता। जो लोग इन चिकित्सा-प्रणालियों के अनुसार रोग-निवारण का काम कर रहे हैं उन्हें पहले अपना सुधार करना और अपने को एक समुदाय में सङ्गठित कर लेना चाहिए। परन्तु अब तक ऐसा होने का कोई प्रमाण नहीं मिला और कहीं कुछ प्रमाण के चिह्न मिले भी हैं तो बहुत ही स्वल्प हैं। जब इस तरह का सुधार और सङ्गठन हो जायगा तभी गवर्नमेंट कुछ कर सकेगी, उसके पहले नहीं। भारतीय गवर्नमेंट की राय, तथापि, यह है कि देशी दवाओं के गुण-दोष आदि की वैज्ञानिक खोज होने से लाभ होने की सम्भावना ज़रूर है। महामान्य मेम्बर महाशय जो बात चाहते हैं उसकी सिद्धि शायद वैसी खोज से हो जाय—सम्भव है वैसी खोज से यहाँ की प्राचीन चिकित्सा-प्रणालियों की उपयोगिता बढ़ जाय। अभी हाल में गवर्नमेंट ने एक कमिटी बना दी है। वह दवाओं के कारोबार (Drugs Manufacture) के सम्बन्ध में जाँच करेगी। और और बातों के सिवा वह इस बात की भी जाँच करेगी कि देशी दवायें कुछ महत्त्व या मोल भी रखती हैं या नहीं। डाक्तरी चिकित्सा में जिन दवाओं से काम लिया जाता है उनके सिवा अन्यान्य खनिज या काष्ठादि ओषधियाँ, जिनका उपयोग यहाँ के वैद्य और हकीम करते हैं और जो यहाँ मिल सकती हैं उनके विषय में भी यह कमेटी ज्ञातव्य बातें जानने की चेष्टा करेगी।

हकीमजी और हमारे वैद्यजी इस सरकारी उत्तर को सुन लें। जी चाहे तो अपना सुधार करें और अपने समुदाय को मज़बूत सङ्गठन-सूत्र से बाँधें। तब सरकार से कुछ सहायता पाने के लिए आवाज़ लगावें। तब तक उनके खँभार, पँवार, पाढ़ी, अपामार्ग, ब्राह्मी और शङ्खपुष्पी आदि की जाँच होगी और यदि ये ओषधियां किसी काम की समझी गईं तो इन्हें एकत्र करने या विलायती ढङ्ग से इनके कल्क, क्वाथ, फाण्ड, चार, और सार आदि, बनाने के कारख़ाने भी खुल जायँगे। आप लोग यह कुछ भी न कर सकें तो अपने भपके, इमामदस्ते और पाताल-यन्त्र के भरोसे चैन की बंसी बजाते रहें। कंडू फर्मास्यूटिकल वर्क्स नाम के कारख़ाने को देखकर भी तो आपकी नींद नहीं टूटी। फिर कैसे आशा करें कि आप सुधार और सङ्गठन के फन्दे में फँसेंगे। और फँसना भी चाहें तो सुधार और सङ्गठन की कुछ विशेष व्याख्या या दिशा भी तो मालूम हो।

८—गिन्नी का मोल।

गत सितम्बर में बड़े लाट की कौंसिल की कई बैठकें हुईं। उनमें से २३ तारीख़ की बैठक में एक बड़ी ही मज़ेदार बात, प्रश्नोत्तर के रूप में, सुनने में आई। वह सचमुच ही सुनने लायक़ है। सूबे विहार के माननीय मेम्बर श्रीयुत सच्चिदानन्दसिंह ने कहा, मैंने स्टेट्समैन नाम के अँगरेज़ी अख़बार में यह पढ़ा है कि—

> (क) यदि आप एक सावरेन (गिन्नी), किसी और देश से अपने साथ लाकर, इस देश के किसी बन्दरगाह में जहाज़ से उतर पड़ें तो सरकार वह गिन्नी ले लेगी और बदले में आपको ११=) दे देगी (ख) यदि आप इसी देश में हैं और दैवयोग से आपके पास एक गिन्नी है तो जो आप उसे किसी करंसी आफ़िस में (चलन बाज़ार सिक्के के दफ़्तर में, जैसा कि कानपुर में है) ले जायँगे तो आपको उसका मोल १५) मिल जायगा (ग) यदि आप उसी गिन्नी को बाज़ार में बेचने ले जायँगे तो आपको ऐसे गाहक मिल जायँगे जो उसका मोल २१) देने को तैयार हो जायँगे; मगर जो कहीं आपने उसे बाज़ार में बेच दिया तो आप मुजरिम समझे जायँगे।
>
> क्या ये बातें सच हैं? हैं, तो क्या गवर्नमेंट इस पर कुछ कारवाई करना चाहती है? हां, तो कैसी कारवाई? नहीं, तो क्यों नहीं? क्या गवर्नमेंट कुछ भी कारवाई न करने का कारण बताने की कृपा करेगी?

इस पर गवर्नमेंट की तरफ़ से माननीय हौवर्ड साहब ने जो कुछ फ़रमाया उसका सार सुनिए—

बात ऐसी ही है। सोने के तीन भाव हो रहे हैं। बाज़ार में कुछ, गवर्नमेंट के घर में कुछ और, करंसी आफ़िस में कुछ और ही। इस बेतरतीबी या विभिन्नता का कारण वे बनावटी रुकावटें हैं जिनकी सृष्टि गवर्नमेंट ने सोने की आमदनी के सम्बन्ध में की है। उनके दूर हो जाने पर यह विभिन्नता न रहेगी। चलन बाज़ार सिक्के से सम्बन्ध रखनेवाली एक कमिटी इस समय लन्दन में इन सब बातों पर विचार कर रही है। वह जब यह निश्चय कर देगी कि इस देश में सोने के सिक्के की अमुक दर होनी चाहिए तब यह सारी न्यूनाधिकता दूर हो जायगी। रही बाज़ार दर की बात सो कुछ समय से हर पन्द्रहवें दिन सरकार अपना सोना बेच रही है। इस कारण बाज़ार दर बहुत कुछ अब भी गिर गई है।

सो अभी बहुत दिनों तक बेचारी गिन्नी के मोल में स्थिरता असम्भव सी जान पड़ती है।

९—हिन्दुस्तान में मुक़द्दमेबाज़ी।

सन् १९१४ में २०,५५,२७२।
सन् १९१५ में २२,२६,४६८।
सन् १९१६ में २३,२९,०००।

दीवानी के दायर किये गये पिछले ५ वर्षों के मुक़द्दमों का औसत था २१,५३,०००। इनमें से ⅔ (दो तिहाई) मुक़द्दमे नक़द या जङ्गम सम्पत्ति के सम्बन्ध में थे, और बाक़ी मुक़द्दमों में आधे माल के थे। मुक़द्दमेबाज़ी में बङ्गाल का नम्बर अव्वल रहा, उससे उतरकर मद्रास का और फिर पञ्जाब का। फ़ी सदी ५३ मुक़द्दमे सिर्फ़ ५०) तक की रक़मों के लिए दायर किये गये और ९५ सैकड़ा २००) तक। ख़फ़ीफ़ा के मुक़द्दमों में संयुक्त-प्रदेश का नम्बर प्रथम रहा। यदि ये मुक़द्दमे अदालतों में न जाकर पञ्चायत ही से तय हो जाते तो क्या ही अच्छी बात होती। सन् १९१६ में १६,६९,६७० नालिशें हुईं और ये भी २४,३६,०७,०३४ की आबादी में। १०,११,२१० को सज़ा हुई। सन् १८८९ में फ़ी १०००० की आबादी पीछे ३८ लोगों को सज़ा हुई थी, परन्तु १९१६ में ४२ को। जुर्म भी बढ़ते ही जाते हैं।

१०—काठमाण्डू के कुछ दृश्य।

नैनीताल, अलमोड़ा, मन्सूरी आदि स्थानों में घूमकर मुझे नैपाल देखने की इच्छा हुई। यह मेरे बड़े ही सौभाग्य की बात थी कि मुझे इस प्रदेश में घूमने के लिए शीघ्र ही सुविधा हो गई। यात्रा प्रारम्भ करने के पूर्व मुझे कब आशा थी कि वैज्ञानिक-शिल्प आर्य्य-कारीगरी से मिलकर बड़े बड़े पहाड़ों के बीच एक विस्तीर्ण घाटी में छिपा बैठा है। इस घाटी के निवासी अपने निवास को 'नैपाल' नाम से पुकारते हैं, परन्तु हम इस शब्द से नैपाल का सम्पूर्ण प्रदेश अभिहित करते हैं।

घाटी में प्रवेश करते ही सात मील की दूरी से काठमान्डू के सफ़ेद महलों का समूह नज़र आता है। और उसके बीच से एक मीनार भी अपनी ऊँचाई का गर्व दिखाती है। वहाँ के लोग इसे 'धरारा' कहते हैं। यह शहर के दक्षिण कोने में अपने बनानेवाले जनरल भीमसेन थापा के स्मारक-यश को बढ़ा रहा है। बाग़मति के किनारे पर यह विशाल मीनार खड़ी है। इसकी ऊँचाई
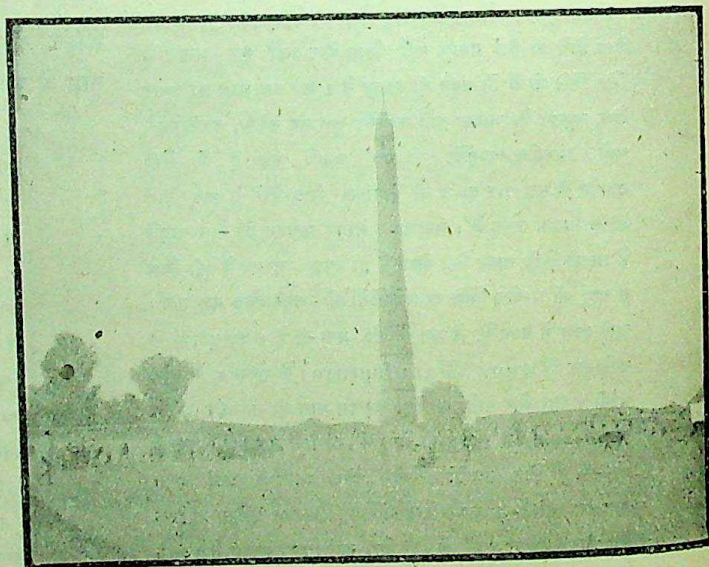
धरारा (मीनार)।

बनते समय २३० फ़ीट थी पर दो बार वज्रपात से वह ऊँचाई घट गई और अब सिर्फ़ २०० फ़ीट ही रह गई है।
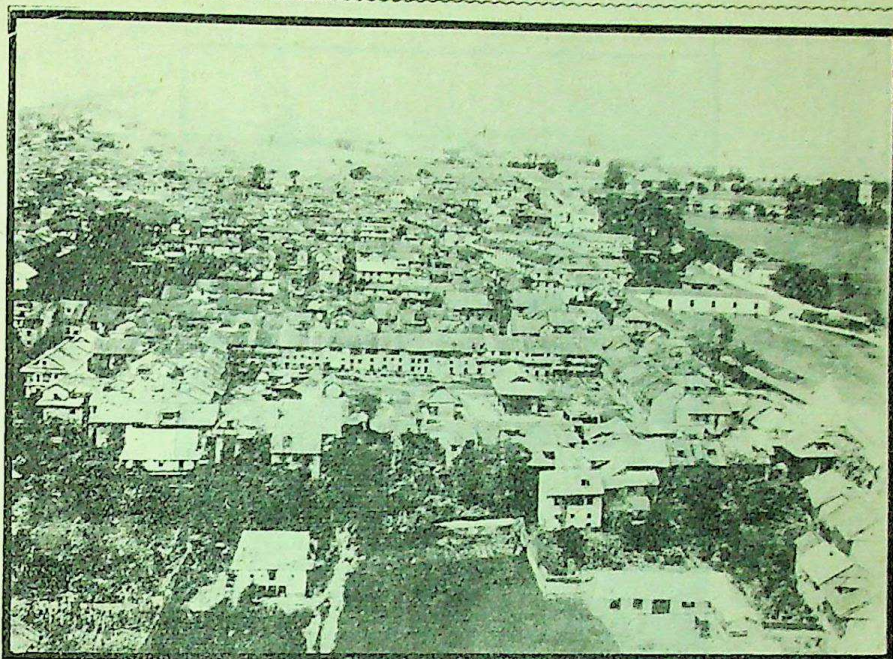
काठमांडू नगर के पूर्वोत्तर भाग का एक दृश्य (धरारा पर से)।
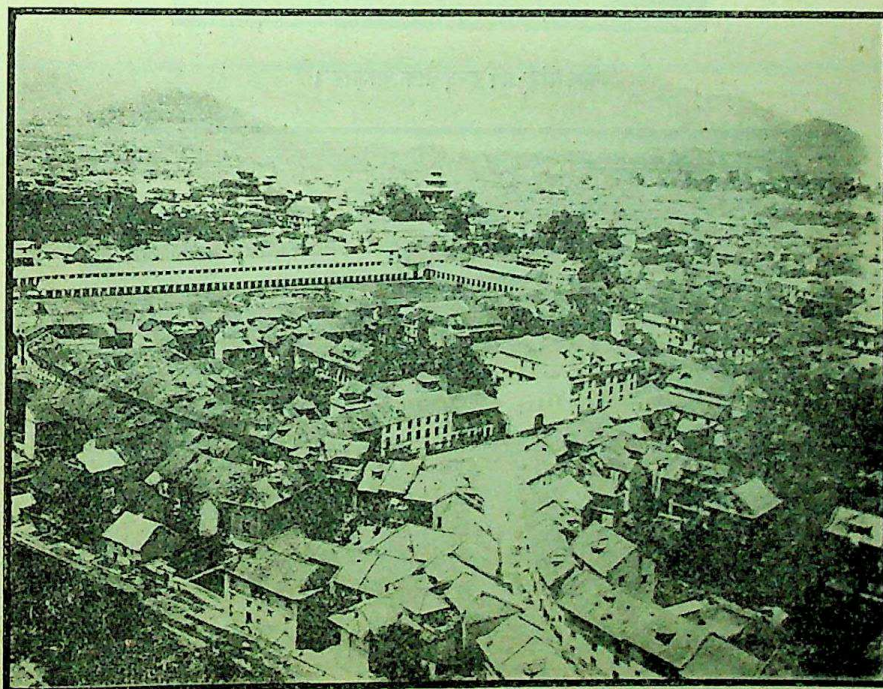
काठमांडू नगर के पश्चिमोत्तर भाग का एक दृश्य (धरारा पर से)।
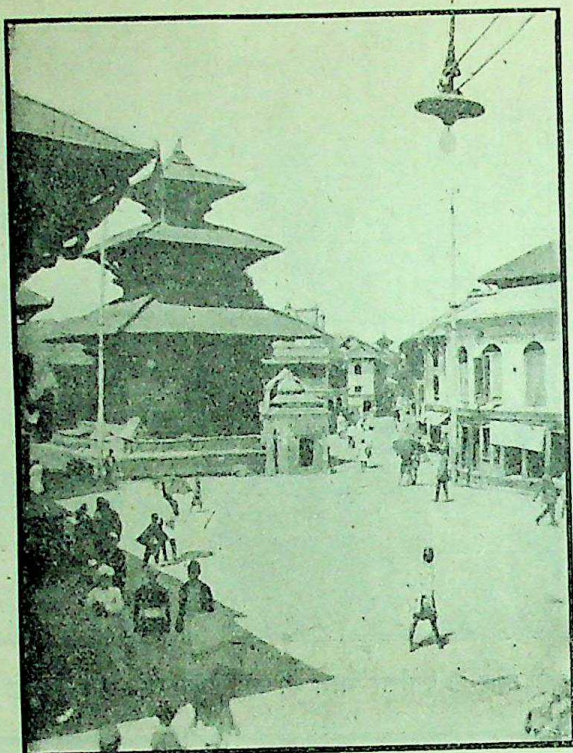
काठमांडू का इन्द्रचौक बाज़ार।
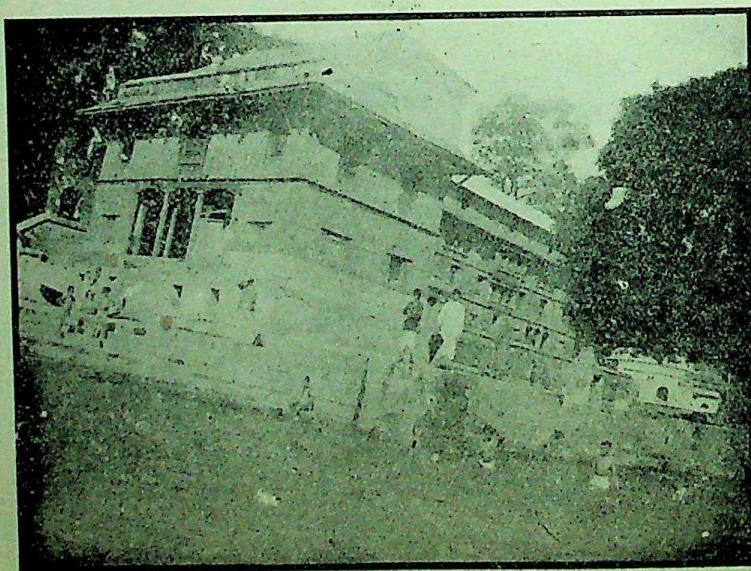
गुंजेश्वरी घाट।

पशुपतिनाथ का मन्दिर।

आर्य्यघाट (पशुपतिनाथ)।
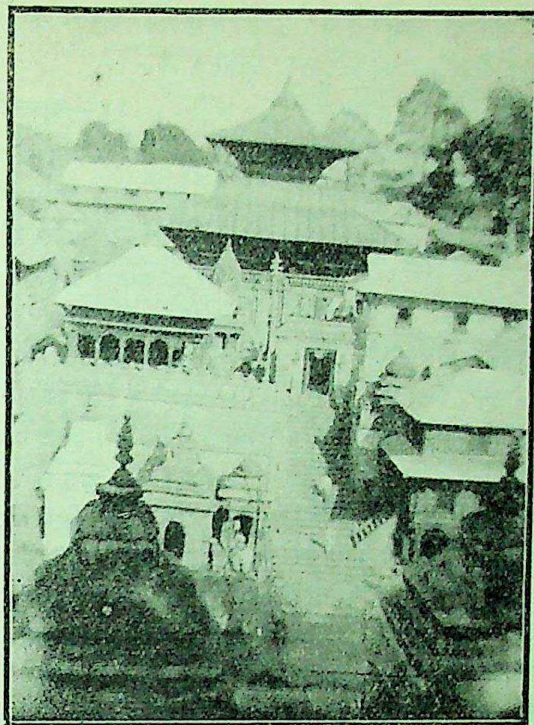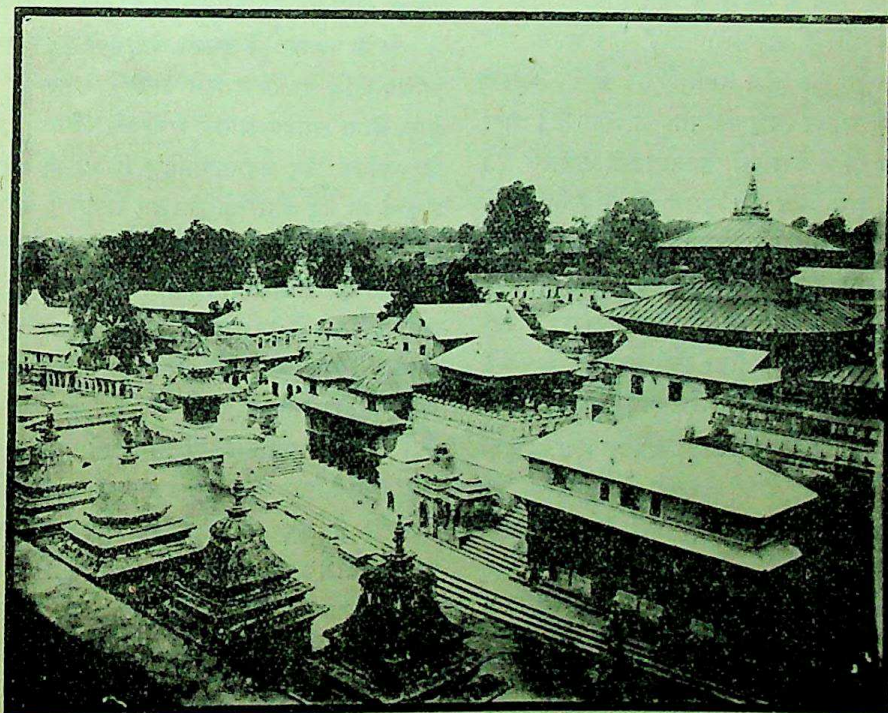
इसके अन्दर ही अन्दर फेरदार सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। जब जङ्गबहादुर लेफ़्टनेन्ट ही थे और जब धरारा भी अपनी पूरी २३० फ़ीट की ऊँचाई में था, उस समय उस वीर जङ्ग ने अपने हाथों में दो छत्रियां ले मीनार से ज़मीन पर कूदकर अपने महाराजाधिराज को प्रसन्न किया था। इस मीनार से शहर का बड़ा सुन्दर दृश्य दिखाई पड़ता है।

देदीप्यमान रमणीय महल, बिजली से प्रकाशित लम्बी-चौड़ी और साफ़-सुथरी सड़कें, पवित्र ठण्डे पानी के नल, बाज़ार, परेड, घंटाघर, स्कूल, अस्पताल आदि नाना प्रकार के स्थानों से युक्त, क़रीब आध लाख नैपालियों से भरा हुआ काठमाण्डू शहर बाग़मति और विष्णुमति के सङ्गम पर बसा हुआ है। इस शहर का प्रसिद्ध बाज़ार इन्द्रचौक है। इन्द्रचौक से तीन मील की दूरी पर नगर की पूर्वोत्तर दिशा में बाग़मति नदी गुञ्जेश्वरी घाट होती हुई पशुपतिनाथ की ओर बहती है। यात्री लोग पशुपतिनाथ का दर्शन करने से पहले इस घाट पर स्नान कर लेते हैं। तत्पश्चात् गुञ्जेश्वरी के दर्शन कर कैलाश पर्वत के ऊपर से होते हुए आर्य्यघाट के निकट बाग़मति को पारकर पशुपतिनाथ के मन्दिर में जाते हैं।

आर्यघाट नैपालियों का श्मशान-घाट है। मनुष्य जब अपनी अन्तिम दशा को पहुँच जाता है तब उसके कुटुम्बी उसे शय्या में उठाकर पशुपतिनाथ ले जाते हैं। वहाँ पशुपतिनाथ का दर्शन करा उसे आर्यघाट में उतारते हैं। यदि बीमार की दशा बहुत ही ख़राब होती है तो उसके पैर बाग़मति में डुबा उसे एक शिला पर लिटा देते हैं और उसके मुँह में पानी डालकर उसका कष्ट शीघ्र ही दूर कर देते हैं। पर यदि बीमार की दशा उतनी ख़राब न रही तो उसे अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा इसी आर्यघाट के किसी विश्राम-स्थान (rest-house) में करनी पड़ती है।

आर्य्यघाट से पशुपतिनाथ जी के मन्दिर तक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। यह मन्दिर पगोदे (pagoda) मन्दिरों की भाँति बना हुआ है। इसके अन्दर चतुर्मुखी शिव जी की पत्थर की मूर्त्ति है। प्रत्येक मुख के दर्शन करने के लिए मन्दिर के चारों दरवाज़ों से देखना पड़ता है। इस मन्दिर के चारों ओर बहुत से छोटे छोटे मन्दिर हैं जिन्हें देखने से एक अपूर्व धार्मिक गम्भीरता का भाव उत्पन्न होता है। (प्रज्ञा)

११—अलसी या तीसी।

इस बीज को मनुष्य-जाति बहुत दिनों से जानती है। पहले-पहल आर्य्य जाति ने अपने पुरातन स्थान में जो कि काले समुद्र और फ़ारस की खाड़ी के बीच में था, इसको जङ्गली अवस्था में पाया था। इसका पौधा अति प्राचीन है। "अतसी स्यादुमा क्षुमा"। जैसे इस समय आयरलेंड और रूस इत्यादि स्थानों में अलसी के पौधों के रेशों से कपड़ा तैयार करते हैं उसी प्रकार प्राचीन भारतवासी भी इससे कपड़ा बनाते थे। इसके कपड़ों का वर्णन पुराणों में पाया जाता है। परन्तु कुछ दिनों से इस देश में अलसी की खेती केवल बीज ही के लिए होती है। इस समय के सरकारी कृषि-विभागों ने कहीं कहीं इसकी खेती रेशे के लिए कराई, जिसका वर्णन पूसा-कृषि-विद्यालय के बुलेटिनों में छपा है और जिसके पढ़ने से इस काम की सफलता भी मालूम होती है।

इसके बीज दो प्रकार के होते हैं, एक सफ़ेद और दूसरे लाल। सफ़ेद अलसी का तेल लाल अलसी के तेल से अच्छा होता है और लगभग दो फ़ी सैकड़ा अधिक भी होता है। ब्रिटिश-भारत में इसकी खेती में ३० लाख एकड़ से अधिक भूमि हर साल लग जाती है। इसके लिए भूमि दूमट होना चाहिए जिसमें चूना और चिकनी मिट्टी अधिक हो। बल्कि यह कहना चाहिए कि इसके लिए वह भूमि ठीक है जो गेहूँ और चने के लिए अच्छी है और यह चने के साथ बोई भी जाती है। इसके लिए गहरी और भली रीति की जुताई लाभदायक होती है। यह भाद्रपद अथवा आश्विन मास में चार से छः सेर तक हर एकड़ में बोई जाती है। यदि और देर में बोई गई तो इसे सींचने की आवश्यकता होती है, नहीं तो जल की कुछ ऐसी ज़रूरत नहीं। जब यह पकने के लगभग हो अथवा इसमें फूल निकल आयें, तब जल हानिकारक हो जाता है। फाल्गुन तथा चैत्र में यह पक जाती है और पौधों को काटकर फलों से बीज अलग कर लिये जाते हैं। लगभग छः से आठ मन तक अलसी हर एकड़ में उत्पन्न होती है। इसका भूसा जानवरों के खाने के काम में नहीं आता; परन्तु

कहीं कहीं इसकी लकड़ी को जल में सड़ाकर इसके रेशों को अलग कर लेते हैं जिनसे रस्सी, डोर इत्यादि बना लेते हैं।

जब अलसी के पौधे वृक्ष से अलग कर लिये जाते हैं तब उनसे तेल निकाला जाता है। यदि बीज कच्चे रह जायँ तो उनसे तेल कम निकलता है और अधिक पतला होता है। काटने के बाद ही यदि अलसी से तेल निकाल लिया जाय तो भी कम निकलता है। इसलिए इसको तीन-चार महीने किसी सूखी जगह में रखकर फिर पेरते हैं जिससे तेल अच्छा और अधिक निकलता है। इसमें २१ से २८ फ़ी सैकड़ा तेल रहता है अर्थात् १ भाग अलसी से लगभग ¼ भाग तेल निकल आता है।

अलसी के ख़ालिस अथवा स्वच्छ तेल में गन्ध और रङ्ग अत्यन्त कम होता है, परन्तु बाज़ार का तेल बहुत पीला होता है और उसकी गन्ध भी अच्छी नहीं होती। जब यह तेल किसी काँच के ऊपर पतला पतला लगाकर वायु में रख दिया जाता है तब यह सूखकर एक पपड़ी का रूप धारण कर लेता है। इस गुण के कारण अलसी के तेल का व्यवहार बहुत कामों में होता है। इससे लकड़ी और लोहे के रँगने के लिए पेन्ट (paint) अथवा रङ्ग का लेप बनाते हैं। यदि पूर्वोक्त वस्तुएँ रँगनी हों तो इसके लिए निम्नलिखित उपाय से रङ्ग तैयार करे। अगर सफ़ेद रङ्ग चढ़ाना है तो सफ़ेदा अथवा खड़िया ले। यदि लाल रँगना है तो सेंदुर, और गहरा लाल रँगना है तो गेरू या हिरमिजी ले। जो पीला रँगना हो तो पीली मिट्टी अथवा रामरज ले। फिर इन चीज़ों को पीसकर अत्यन्त महीन कर ले जिसमें दरदरापन बिलकुल न रहे। इसके बाद अलसी के तेल को एक बटलोई में धीमी आँच पर गरम करे और पूर्वोक्त रङ्गों में से किसी एक रङ्ग को उसमें धीरे धीरे डाले और इतना घोटे कि तेल और रङ्ग एक-दिल हो जायँ। यदि पतला रखना है तो उतना ही तेल अधिक डाले। रङ्ग अनेक हैं, इस कारण सबोंका वर्णन यहाँ नहीं कर सकते। जब रँगना लेप तैयार हो जाय, तब उसको जिस वस्तु को रँगना हो उसके ऊपर लेप कर दे; फिर सूखने के लिए ऐसी जगह में रख दे जहाँ हवा जाती-आती हो और चीज़ धूल से बची रहे।

इस तेल से छापेख़ाने की स्याहियाँ बनती हैं। इन स्याहियों का एक मुख्य गुण शीघ्र सूखने का होता है; इसलिए इनमें अलसी के तेल का प्रयोग किया जाता है। पहले अलसी के तेल का वारनिश बनाते हैं, फिर उसमें रङ्ग को अच्छे प्रकार से घोटते हैं जिससे छापने की स्याही तैयार हो जाती है।

वारनिश बनाने की विधि—पहले राजिन (राल) को एक तांबे के बर्तन में आँच के ज़रिये से गलाते हैं और अलसी के तेल को दूसरे तांबे के बर्तन में २६०° सेन्टीग्रेड दरजे तक गरम करते हैं। फिर उस गरम तेल को गली हुई राजिन में मिलाते हैं और ख़ूब चलाते हैं। जब दोनों एक-दिल हो जाते हैं तब इसको लोहे के बरतनों में रख देते हैं। जब मिश्रण ठण्ढा हो जाता है तब उसमें तारपीन का तेल मिलाकर पतला करते हैं और फिर एक बड़े बरतन में भरकर रख देते हैं। समय पाकर यह वारनिश स्वयं स्वच्छ हो जाता है। इसे अलसी के तेल का वारनिश (linseed oil varnish) कहते हैं।

जब यह वारनिश तैयार हो जाता है, तब स्याही बनाने के लिए इसमें रङ्ग मिला देते हैं। काली स्याही के लिए काजल डालते हैं और ख़ूब घोटते हैं। जैसी स्याही दरकार हो उसीके अनुसार काजल का परिमाण मिलाते हैं। समाचार-पत्रों की स्याही में ७६ फ़ी सैकड़ा वारनिश और २४ काजल; किताबों की स्याही के लिए ७७ वारनिश और २३ काजल मिलाते हैं। रङ्ग अधिक काला करने के लिए कभी कभी नील एक वा दो भाग हर सैकड़े में मिला दिया करते हैं। रङ्गीन स्याही के बनाने में काजल के स्थान में और रङ्ग मिला देते हैं। लाल स्याही के बनाने में मजीठ अथवा और कोई लाल रङ्ग वारनिश में मिलाते हैं। नीली स्याही के लिए अल्ट्रामेरीन (ultramarine) अथवा प्रूशियन ब्लू; पीली के लिए क्रीमयलो मिलाते हैं।

इस तेल से एक प्रकार का साबुन भी बनता है जिसको साफ़्ट सोप (soft soap) अर्थात् मुलायम साबुन कहते हैं, और जो तेल के समान पतला होता है। इसके बनाने के लिए कास्टिक सोडा अथवा कास्टिक पोटाश और अलसी का तेल अथवा बिनौले का तेल होना आवश्यक है। यद्यपि इस साबुन के बनाने में अन्य तेलों का भी प्रयोग किया

जाता है तथापि अलसी के तेल और कास्टिक पोटाश से जो साबुन बनता है वह औरों की अपेक्षा उत्तम होता है। कास्टिक सोडा और कास्टिक पोटाश बने बनाये बिकते हैं, परन्तु साधारण मनुष्य इनको अपने घर में भी बना सकता है। कास्टिक सोडा सज्जी मिट्टी और चूने से बनता है। और कास्टिक पोटाश केले के पौधों अथवा आलू के पौधों की राख और चूने से बन जाता है। एक लोहे की कढ़ाई में सज्जी मिट्टी अथवा केले की राख को १० गुने पानी में घोले और इसमें चूना मिला दे। फिर दोनों को खूब खौलावे और थोड़ी देर के लिए स्थिर रहने दे। इसके बाद थोड़ा सा ऊपर का जल निथार ले अथवा ब्लाटिङ्ग काग़ज़ से एक शीशी में छान ले और फिर इसमें थोड़ा गन्धक अथवा नमक का अम्ल डाले। यदि फेन न उठे तो जानना चाहिए कि कास्टिक तैयार हो गया। यदि फेन उठे तो उसमें और चूना मिलाकर फिर खौलावे। जब तक कि अम्ल के मिलाने से फेन उठना बन्द न हो तब तक इसी प्रकार करता रहे। जब फेन उठना बन्द हो जाय, तब कढ़ाई को उतार ले और स्थिर होने के लिए रक्खा रहने दे। थोड़ी देर बाद सब कास्टिक जल में घुलकर ऊपर आ जायगा और कूड़ा-कर्कट नीचे बैठ जायगा।

तदुपरान्त दूसरी कढ़ाई में तेल ले और उसके नीचे आँच करे और फिर धीरे धीरे उसमें कास्टिक का घोल मिलाता जाय और अच्छे प्रकार से चलाता भी जाय। इस घोल को तेल में इतने प्रमाण से मिलावे कि कढ़ाई को आँच पर से उतारने के बाद तेल ऊपर छेहरा न आवे। यदि तेल छेहरा आवे तो जानना चाहिए कि अभी अधिक कास्टिक मिलाने की आवश्यकता है। जब साबुन में तेल बिलकुल न मालूम दे तब जाने कि साबुन तैयार हो गया। इससे कपड़े आदि धोये जा सकते हैं।

इस तेल से नक़ली रबर भी बनता है। जब वह तेल गन्धक के साथ गरम किया जाता है तब एक लचीली ठोस वस्तु रबर के समान तैयार हो जाती है जो कि बाइसिकलों और मोटरकार के पहियों के रबर में बहुतायत से मिलाई जाती है।

यदि अलसी का तेल एक तांबे की बटलोई में बाष्प (steam) से गरम किया जाय और उसके भीतर धौंकनी के ज़रिये से हवा दी जाय तो ५ या ६ घण्टे में तेल गाढ़ा हो जायगा। तदनन्तर इस गाढ़े तेल को तश्तरियों में भर दे। ठण्डा होने पर तेल एक ठोस लचीली वस्तु का रूप धारण कर लेता है। इसको अँगरेज़ी में लिनाक्सिन (linoxyn) अथवा (solid linseed oil) ठोस अलसी का तेल कहते हैं। यह वस्तु आयल क्लाथ (oil-cloth) के बनाने में काम आती है। आयल क्लाथ एक प्रकार का कपड़ा होता है जो रूप में जूते बनाने के चमड़े के वारनिश के समान होता है और लोग इसको मेज़ों पर बिछाते हैं। इससे जूते भी बनवाते हैं और अनेक काम इससे लेते हैं जिनसे पाठकगण परिचित भी होंगे। जब आयल क्लाथ बनता है तब पहले ठोस अलसी के तेल को भाफ की उष्णता से गलाते हैं, फिर उसमें राजिन गोंद, काजल और पिसा हुआ काग (cork) मिलाते हैं। इस मिश्रित वस्तु को कलों और बेलनों के ज़रिये से खूब एक-दिल करके कपड़े के ऊपर चढ़ा देते हैं और फिर विशेष कलों से इस मिश्रित वस्तु की तह के ऊपर वारनिश फैला देते हैं जो कि शीघ्र सूख जाता है और कपड़े के ऊपर अत्यन्त चमक उत्पन्न कर देता है।

लोहे और लकड़ी को चमकदार करने के लिए लोग उन पर इस तेल का वारनिश लगाते हैं। यह वारनिश बनाने की विधि अति सरल है। एक तांबे की बटलोई में तेल लो, फिर उसमें उतना ही जल मिला दो और चूल्हे के ऊपर चढ़ाकर उसे खौलाओ, उसी समय एक धौंकनी के ज़रिये से तेल के भीतर हवा देते जाओ। २ या ३ घण्टे बाद बटलोई को चूल्हे से उतार लो और ठण्डा होने पर तेल को पानी से अलग कर लो। फिर इस तेल को किसी लोहे के सामान के ऊपर लेप कर दो और सूखने के लिए रख दो। दो या तीन घण्टे बाद तेल सूख जायगा और सामान चमकदार हो जायगा।

उपर्युक्त, लेख से दर्शित होता है कि पश्चिमीय विज्ञानवेत्ताओं ने अलसी के तेल से कितने ही उपयोगी कार्य किये हैं। इसलिए हम भारतवासियों को भी उचित है कि विज्ञान का प्रचार तन, मन, धन से करें। इससे पहला लाभ तो यह होगा कि भारतवर्ष में ज्ञान बढ़ेगा, दूसरे आर्थिक उन्नति भी होगी, क्योंकि करोड़ों मन अलसी हर

वर्ष हिन्दुस्तान से योरप जाती और वहाँ से उसकी बहुमूल्य वस्तुयें बनकर फिर यहाँ बिक्री के लिए आती हैं जिनसे पश्चिमीय मनुष्य लाभ उठाते हैं। वही लाभ हमारे भारतवासी भी उठाने लगेंगे। तीसरा बड़ा लाभ यह होगा कि कुछ बेकार भारतवासियों को काम मिल जायगा।

१२—एन्ड्रू कार्नेगी।

गत ११ अगस्त १९१९ को मिस्टर एन्ड्रू कार्नेगी का देहान्त हो गया। ये बड़े विलक्षण पुरुष थे। इनका जन्म १८३७ में हुआ था। लड़कपनही में इन्होंने एक जुलाहे की नौकरी की। फिर तार-घर के चपरासी बने। क्रमशः इन्होंने तार का काम सीखा और पेन्सिलवेनिया रेल ऐंड कम्पनी में सुपरिन्टेन्डेन्ट हो गये। कुछ काल के अनन्तर उडरफ़ स्लीपिङ्गकार कम्पनी में इनका साझा हो गया और इन्होंने कुछ सम्पत्ति एकत्र की। फिर क्या था? इस पूँजी से इन्होंने कई कम्पनियां खड़ी कीं और अमेरिका ही में नहीं, किन्तु सारी दुनिया के बड़े मालदारों में इनकी गणना हो गई। इनकी आमदनी प्रतिदिन ७५०००) रुपये थी। धनोपार्जन के साथ ही साथ ये बड़े उदार और दानी भी थे। संसार में इनकी प्रतिष्ठा दान ही से हुई। जुलाई १९१८ तक इन्होंने परोपकार में १,०५,००,००,०००) रुपये ख़र्च किये। पुस्तकालयों और छात्रवेतनों में इनका बहुत कुछ धन-व्यय हुआ करता था। इनका सिद्धान्त था कि किसी धनी को बहुत रुपया छोड़कर न मरना चाहिए। धन की शोभा दानही में है। किया भी इन्होंने ऐसा ही।

१३—योरोपीय महायुद्ध में भारतवर्ष की ओर से सहायता।

योरोपीय महायुद्ध में भारतवर्ष से करोड़ों रुपयों की सहायता तो दी ही गई किन्तु सैनिकों की सहायता भी कम नहीं रही। जब लड़ाई आरम्भ हुई भारतवर्ष की सेना में रिज़र्वों को मिलाकर केवल १,९४,००० सिपाही थे। लड़ाई के समय में ७,९१,००० और भरती हुए और भारतवर्ष की सेना ९,८५,००० आदमियों की हो गई। इनमें से ५,५२,००० सिपाही भारतवर्ष से समुद्र पार लड़ने के लिए भेज दिये गये। फ़ौज में ऐसे लोग जिनका काम लड़ने का नहीं है लड़ाई के शुरू होने के पहले सिर्फ़ ४५,००० थे। लड़ाई के समय में ऐसे ४,२७,००० आदमी भरती किये गये और इनमें से ३,९१,००० समुद्र-पार रवाना कर दिये गये थे। भारतवर्ष की ओर से कुल १४,५७,००० सैनिकों की सहायता रही जिनमें से ९,४३,००० समुद्र-पार गये। १,०६,५२४ सिपाही काम आये परन्तु इनमें ३९९९,९ भी शामिल हैं जिनकी मृत्यु अन्यान्य कारणों से हुई। सैनिकों के अतिरिक्त १,७५,००० जानवर भी भारतवर्ष से समुद्र-पार भेजे गये।

१४—अमेरिका में हिन्दुस्तानी एसोसियेशन और अमेरिका के लिए हिन्दुस्तानी शिक्षा-कमीशन।

सरस्वती के पाठक श्रीयुत रामकुमार खेमका से परिचित होंगे। ये अमेरिका में हैं और सरस्वती पर कृपा किया करते हैं। इनके उद्योग से अमेरिका में हिन्दुस्तान एसोसियेशन स्थापित हुई है, जिसका मुख्य उद्देश्य है हिन्दुस्तान के विषय में अमेरिकावालों के ज्ञान की वृद्धि करना और हिन्दुस्तानियों की अमेरिका के विषय में। यह संस्था एक और बड़ी संस्था की शाखा है जिसका नाम है World's Hindustanee Students' Federation अर्थात् समस्त संसार के हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों का संघ। अमेरिका के हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों की इस एसोसियेशन (संस्था) में २०० विद्यार्थी सभासद् हैं और ये अमेरिका के भिन्न भिन्न विद्यालयों में शिक्षा पा रहे हैं। इसका वर्तमान कार्य्यालय न्यूयार्क में है। यह संस्था न तो राजनैतिक है और न किसी विशेष धर्म्म ही से इसका सम्बन्ध है। इसके मुखपत्र का नाम है 'हिन्दुस्तानी स्टूडेन्ट'। इस संस्था की एक कमेटी अमेरिका के व्यापार और शिक्षा के विषय में हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों और व्यापारियों को ख़बरें देती है और हर तरह की सहायता देती है। ऐसे विद्यार्थियों को जिन्हें आर्थिक कष्ट है क़र्ज़ देकर धन की भी सहायता करती है। अपने उद्देश्य की सफलता के लिए यह व्याख्यान और सम्मेलन इत्यादि भी कराती है। इस एसोसियेशन के आनरेरी मेम्बर सर रवीन्द्रनाथ टेगोर, मिस जेन एडम्स, मिसज़ सरोजिनी नैडू, हर हाइनस बेगम भोपाल प्रभृति हैं।

के विचार भारतवर्ष की वर्तमान स्थिति, शिक्षा, कल, पुतलीघर, वकील, डाक्टर, रेल इत्यादि के बारे में मालूम हो जाते हैं। भारतवर्ष के उद्धार होने के उपाय भी बतलाये गये हैं। महात्माजी के सभी सिद्धान्तों से कोई सहमत हों या न हों परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनके विचारों में मौलिकता है और मत-प्रकाश करने की विधि में निर्भयता। पुस्तक शिक्षाप्रद होने के साथ साथ रोचक भी है। इस पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद अभी हमारे पढ़ने में नहीं आया।

❋

३—सौ वर्ष जीवित रहने के सुगम उपाय—लेखक छीतरसिंह (सी . एस) द्विवेदी। पुस्तक का मूल्य =) और डा० म०)॥ है। और मिलने का पता सी० एस० द्विवेदी, सुल्तानपुरा, आगरा छावनी। जीवनसुधार-पुस्तक-माला की यह पहली ही पुस्तक है। पुस्तक का विषय नाम ही से प्रकट है। स्वास्थ्य और सदाचार के कुछ नियम ३२ पृष्ठों में बतला दिये गये हैं। भाषा में कहीं कहीं ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया गया है जिन्हें ग्रन्थकार महोदय को द्वितीयावृत्ति में सुधार देना चाहिए। गीता इत्यादि पुस्तकों के हवाले भी ठीक होने चाहिए।

❋

४—सदुपदेश—"अर्थात् विद्यार्थियों को फ़र्स्ट एड क्लास व अन्य कर्तव्य-विषयक एक अच्छी सलाह। लेखक पं० विश्वेश्वरदयालु मिश्र, बी० ए०, एल० टी०। प्रकाशक अगरवाल बुकडिपो, लखनऊ। पुस्तक का उद्देश्य नाम ही से प्रकट है; परन्तु उसके विषय-क्रम में सुधार की आवश्यकता है।

❋

५—गीतादर्शन—लेखक, श्रीयुत कन्नोमल एम० ए०, धौलपुर। मूल गीतापाठ को छोड़कर पृष्ठ-संख्या २२६ है और मूल्य २) । पुस्तक की रचना नये ढङ्ग से की गई है। अन्य टीकाकारों की भाँति प्रत्येक श्लोक पर टीका नहीं दी गई, किन्तु गीता में दिया गया भगवान् श्रीकृष्ण का उपदेश प्रत्येक विषय पर सरलता से दिखला दिया गया है। 'पाश्चात्य शास्त्रीय विचार और गीता' के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ लिखा गया है। एवं जीव, सृष्टि और ईश्वर के विषय में प्रत्येक दर्शन के सिद्धान्त बतलाये गये हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं को समझाने की ग्रन्थकार ने जो चेष्टा की है वह प्रशंसनीय है; परन्तु उनके सारे प्रमाणों से सभी लोग सहमत नहीं हो सकते। ग्रन्थकार की कुछ युक्तियां चिन्त्य अवश्य हैं। चीर-हरण-लीला, गिरि-धारण-लीला, रास-लीलादि विषयों पर अनेक पण्डितों का ग्रन्थकार से मत-भेद होगा। जो हो, ग्रन्थकार ने "गीता के सम्बन्ध में जो अन्य बातें लिखी हैं वे यद्यपि गौण हैं, तथापि उनसे गीता का तात्पर्य्य समझने में बहुत सहायता मिलती है। उनसे गीता का महत्त्व भी बढ़ गया है। भिन्न भिन्न शास्त्रों के ज्ञान का बहुत कुछ समन्वय जो उन्होंने गीता में दिखाया है, वही इस पुस्तक की विशेषता है।"

चित्र-परिचय।

इस महीने का रङ्गीन चित्र भी टेहरी-गढ़वाल के राजा साहब की कृपा से प्राप्त हुआ है। इस कृपा के लिए हम राजा साहब के बड़े कृतज्ञ हैं। प्राचीन दरबारी चित्रकार के बनाये हुए इस चित्र में एक ओर बालि का दाह-कर्म हो रहा है और दूसरी ओर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी को सुग्रीव के राजतिलक करने और अङ्गद को युवराज बनाने की आज्ञा दे रहे हैं। बीच में किष्किन्धा राजवंश के कुल-पुरोहित की कुटी अङ्कित की गई है। इस चित्र में चित्रकार ने चिता का निर्माण, दाह-कर्म का सम्पादन, वानर-यूथ का शोक और कुछ वानरों का पम्पा-नदी में स्नान कर प्रेत को तिलाञ्जलि देना इत्यादि दृश्य भले प्रकार दिखाये हैं। चित्र में धार्मिक भाव भी ख़ूब ही झलकता है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad

SARASVATI—Reg. No. A248.

भाग २०. खण्ड २] नवम्बर, १९१९ [संख्या ५, पूर्ण संख्या २३९

वार्षिक मूल्य ५।)] सम्पादक { १—महावीरप्रसाद द्विवेदी
२—देवीप्रसाद शुक्ल, बी० ए० [प्रति संख्या ॥)

लेख-सूची । पृष्ठ

चित्र-सूची ।

बाणासुर की तपस्या।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

भाग २०, खण्ड २] नवम्बर १९१९—मार्गशीर्ष १९७६ [संख्या ५, पूर्ण संख्या २३९

हाट ।

देना पड़ा वही जो लाया
हाँ, मैं हाट देख आया ।
धर्म्म-कर्म्म का विक्रय उसमें रूप-रङ्ग का क्रय देखा,
लाखों के दूकानदार थे, कौड़ी कौड़ी का लेखा ।
चारों ओर एक ही माया
हाँ, मैं हाट देख आया ।
दो आँखें थीं किन्तु एक मन, उसमें यही बुद्धि जागी,
मन ही एक और ले लूँ तो दो होंगे–सुख-दुख-भागी ।
सुनकर विक्रेता मुसकाया
हाँ, मैं हाट देख आया ।
निज जीवन का एक रत्न हँस मैंने भी रख दिया वहाँ
वह बोला–"पागल, पत्थर से मन का विनिमय हुआ कहाँ ?
मत छूना तुम उसकी छाया"
हाँ, मैं हाट देख आया ।
"धन देकर मन कभी न लेना इसमें धोखा खाओगे
पाओगे तब उसको मन के बदले ही तुम पाओगे ।"
मैंने मन देकर मन पाया
हाँ, मैं हाट देख आया ।

मैथिलीशरण गुप्त

माघ कवि और उनका काव्य ।

द्यपि महाकवि माघ-रचित केवल शिशुपालवध नामक एक ही ग्रन्थ उपलभ्य है; पर अकेले उसीके प्रभाव से वे साहित्य-जगत् में सदैव के लिए अमर हो गये हैं । आज माघ का साहित्य-रसज्ञों में जो आदर है वह विरले ही कवियों को प्राप्त हुआ है, यहाँ तक कि शिशुपालवध काव्य के बिना पढ़े किसीकी संस्कृत-शिक्षा पूरी नहीं समझी जाती । सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य में छः काव्य-ग्रन्थ सबसे उत्कृष्ट माने जाते हैं ।

रघुवंश, मेघदूत, और कुमारसम्भव—ये 'लघुत्रयी' कहलाते हैं और किरातार्जुनीय, नैषधचरित और शिशुपालवध—ये 'बृहत्त्रयी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। बृहत्त्रयी में सबसे उत्कृष्ट दर्जा बहुधा माघ-काव्य अर्थात् शिशुपालवध को ही मिलता है। हां, श्रीहर्ष के प्रेमी नैषध-चरित को ही संस्कृत-साहित्य-रत्नाकर का अमूल्य रत्न समझते हैं। उनका कथन है—

तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः॥

[भारवि की कान्ति तभी तक शोभित होती है जब तक माघ का उदय नहीं; लेकिन नैषध-काव्य के उदय होने पर कहां माघ और कहां भारवि ?]

दूसरी ओर से यह आवाज़ आती है—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

[कालिदास में उपमा, भारवि में अर्थ-गौरव और नैषध में पद-लालित्य है; पर माघ में तीनों गुण हैं।]

वास्तव में कवियों की छुटाई-बड़ाई का निर्णय करना असम्भव नहीं, तो दुस्साध्य अवश्य है। कारण यह कि उनकी कृतियों की तुलना करने के लिए हमें किसी नियति या परिमिति का आधार मिल ही नहीं सकता। प्रत्येक कवि में कोई न कोई नवीनता होती है, कोई ख़ास गुण रहता है। प्रत्येक कवि की रचना-शैली भिन्न होती है। उसके काव्यों में भिन्न भिन्न गुणों का समावेश होता है। ऐसी दशा में किसे अच्छा कहा जाय, किसे बुरा ? क्योंकि जो कवि एक प्रकार के विचारवाले मनुष्य की दृष्टि में उत्तम है वही दूसरे प्रकार के विचारवालों की दृष्टि में बहुधा उत्तम नहीं ठहरता। ऐसी दशा में किसीको किसी कवि की रचना रुचती है, किसीको किसीकी। "अच्छा क्या है ? जो जिसे अच्छा लगे"—यह कहावत यहां पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। सच तो यह है कि प्रत्येक कवि की कविता-कामिनी का सौन्दर्य्य भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। जिन्हें जिस प्रकार का सौन्दर्य्य रुचता है वे उसी ओर दौड़ते हैं। इस प्रकार प्रायः सभी कवियों के थोड़े-बहुत प्रेमी होते ही हैं। इसीलिए तो कुछ लोग कालिदास को, कुछ माघ को और कुछ श्रीहर्ष को सबसे उत्तम कवि समझते हैं।

जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि माघ बड़ी उत्कृष्ट कोटि के कवि थे और उनकी प्रशंसा प्राचीन और अर्वाचीन काल के अनेक विद्वानों और समालोचकों ने की है। श्री प्रभाचन्द्र कवि ने उनके सम्बन्ध में कहा है—

श्रीमाघोऽगाधधीः श्लाघ्यः प्रशस्यः कस्य नाभवत्।
चित्तजाड्यहरा यस्य काव्यगङ्गोर्मिविप्रुषः॥

[अगाध बुद्धिवाले माघ किसके लिए प्रशंसनीय और श्रेष्ठ न हुए जिनकी गङ्गा-रूपी कविता की लहरों की बूँदें चित्त की जड़ता को हरनेवाली हैं।]

मल्लिनाथ ने कहा है—'धन्यो माघकविः वयं तु कृतिनस्तत्सूक्तिसंसेवनात्', अर्थात् माघ कवि धन्य हैं और हम लोग भी उनकी सुन्दर उक्तियों के सेवन से धन्य हैं।

राजशेखर ने उनके सम्बन्ध में कहा है, 'माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य न जायते'—माघ मास की तरह (माघ की वीर-रस भरी हुई कविता) द्वारा किसको कँपकँपी नहीं लगती ? इसके अतिरिक्त 'काव्येषु माघः' इत्यादि तो प्रसिद्ध ही है।

वर्तमान समय में भी अनेक विद्वानों ने उनकी प्रशंसा की है और फ़रासीसी भाषा में माघ-काव्य का अनुवाद भी हो चुका है।

माघ कवि किस समय में थे, इस विषय में आधुनिक विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं। प्रसिद्ध जर्म्मन विद्वान् जेकोबी के मत में वे ईसा की छठी शताब्दी के मध्य-काल में रहे होंगे। प्रोफ़ेसर पाठक आठवीं शताब्दी का अन्तिम भाग उनका समय बतलाते हैं। प्रोफ़ेसर मेकडानेल का विचार है कि वे नवीं और दसवीं शताब्दी के बीच में किसी समय हुए होंगे। वेबर के मतानुसार दसवीं सदी का अन्तिम भाग हमारे कवि का समय रहा होगा। प्रोफ़ेसर क्लाट उन्हें दसवीं सदी के आरम्भ में रखते हैं और रमेशचन्द्र दत्त हमारे कवि का समय ग्यारहवीं शताब्दी ठहराते हैं। इनमें से अनेक मत बहुत पुराने हैं; अतएव वे साहित्य-सम्बन्धी नवीन अनुसन्धानों के प्रकाश से वञ्चित रहे हैं। हां, प्रोफ़ेसर पाठक का मत नवीन और निश्चयात्मक है और उन्हींकी अकाट्य युक्तियों और प्रबल प्रमाणों के

आधार पर हम आगे चलकर माघ का काल-निर्णय करेंगे।

कुछ लोगों का मत है कि माघ कवि बहुत पुराने हैं, यहां तक कि वे कालिदास के भी पहले हुए थे। इसका आधार और कुछ नहीं, केवल निम्न लिखित श्लोक तथा उसीके सम्बन्ध में पण्डितों में प्रचलित एक गप्प है—

पुष्पेषु जाती नगरेषु काञ्ची,
नारीषु रम्भा पुरुषेषु विष्णुः।
नदीषु गङ्गा नृपतौ च रामः,
काव्येषु माघः कविकालिदासः॥

[फूलों में चमेली, शहरों में काञ्ची, स्त्रियों में रम्भा, पुरुषों में विष्णु, नदियों में गङ्गा, राजाओं में रामचन्द्र, काव्यों में माघ काव्य और कवियों में कालिदास (सर्वश्रेष्ठ) हैं।]

कहा जाता है कि यह श्लोक घटखर्पर-रचित है, क्योंकि घटखर्पर महाराज विक्रमादित्य के नौ रत्नों में से थे, जैसा कि निम्न-लिखित श्लोक से सिद्ध होता है—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कु-
वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

[धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शङ्कु, वेतालभट्ट, घटखर्पर, कालिदास, प्रसिद्ध वराहमिहिर और वररुचि—ये विक्रमादित्य की सभा में नव रत्न थे।]

इसलिए माघ कवि कालिदास इत्यादि कवियों के बहुत पहले रहे होंगे।

पर जिस आधार पर यह सिद्धान्त निर्भर है वह बिलकुल अश्रद्धेय है, क्योंकि आज तक किसीने भी यह सिद्ध नहीं किया कि 'पुष्पेषु जाती' इत्यादि श्लोक घटखर्पर का है। केवल किसी किंवदन्ती के आधार पर यह मान लेना बड़ी भारी भूल है। 'घटखर्पर काव्य' तथा 'नीतिसार' नामक दो छोटी पुस्तकों को छोड़कर और कोई ग्रन्थ घटखर्पर-रचित नहीं मिलता और यह श्लोक न तो उनमें ही है और न किसी दूसरे ही स्थल में इस श्लोक के घटखर्पर-रचित होने का कोई प्रामाणिक उल्लेख आया है; फिर किस आश्रय पर हम इसे उनका मान लें? साथ ही यह बात भी तो विचारणीय है कि यह श्लोक काव्य के नियमों के अनुसार दोष-पूर्ण है। अतएव घटखर्पर-सदृश विद्वान् की यह रचना नहीं हो सकती। फिर यह भी किंवदन्ती तो प्रचलित है कि कालिदास और घटखर्पर में आपस में अनबन रहती थी। ऐसी अवस्था में घटखर्पर का अपने विपक्षी की ऐसी स्तुति करना एक अनहोनी बात मालूम होती है। जो हो, जब तक यह सिद्ध नहीं होता कि यह श्लोक घटखर्पर का है तब तक पूर्वोक्त सिद्धान्त कदापि मान्य नहीं हो सकता।

एक दूसरा मत यह है कि माघ धारा के राजा भोज के समकालीन थे। बल्लाल-रचित भोजप्रबन्ध में तथा जैन-मेरुतुङ्गाचार्य-रचित प्रबन्ध-चिन्तामणि में जो माघ का हाल दिया गया है उसमें तथा श्रीप्रभाचन्द्र-रचित प्रभावक-चरित में भी ऐसी ही बात कही गई है। यथा—

तस्य श्रीभोजभूपालबालमित्रं कवीश्वरः।
श्रीमाघो नन्दनो ब्राह्मीस्यन्दनः शीलचन्दनः॥

[दत्तक के पुत्र, सरस्वती के रथ-स्वरूप, शील में चन्दन के समान माघ कवीश्वर हुए जो भोज राजा के बाल-सखा थे।]

यह निश्चय हो चुका है कि राजा भोज ईसा की ग्यारहवीं सदी के उत्तरार्ध में थे, अतएव पूर्वोक्त आश्रय पर माघ भी उसी समय में रहे होंगे।

पर भोज-प्रबन्ध, प्रबन्धचिन्तामणि और प्रभावक-चरित कोई ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इनमें से पहले दो ग्रन्थों में राजा भोज के समय को भारतीय इतिहास में सबसे उत्कृष्ट समय दिखलाने की कोशिश की गई है। उनके अनुसार संस्कृत के प्रायः सभी बड़े बड़े कवि राजा भोज के समकालीन थे। इस कारण से उनकी बातें विश्वास करने योग्य नहीं। रह गया प्रभावक-चरित, उसमें तो ग्रन्थकार ही ने स्वयं ग्रन्थ के आरम्भ में यह बात कह दी है कि हमने जो कुछ लिखा है जनश्रुति के आधार पर लिखा है। इसलिए उन ग्रन्थों के आश्रय पर माघ कवि को ग्यारहवीं सदी के अन्तिम भाग में ठहराना भूल है।

इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे प्रमाण मौजूद हैं जिनसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि माघ ग्यारहवीं शताब्दी के बहुत

पहले विद्यमान थे। यह बात निश्चित हो चुकी है कि सोमदेव कवि ईसा की १०वीं शताब्दी में थे, और उन्हींके रचे हुए यशस्तिलक में माघ का नाम आया है। मम्मट भट्ट ने, जो ग्यारहवीं सदी में थे, अपने काव्यप्रकाश में माघ-काव्य के अनेक श्लोक उदाहरण-स्वरूप उद्धृत किये हैं। काश्मीर के प्रसिद्ध कवि और ध्वन्यालोक के रचयिता आनन्दवर्द्धन ने भी, जो कि नवीं शताब्दी में रहे, अपनी कृति में माघ-काव्य के दो श्लोक उद्धृत किये हैं।

नृप तुङ्ग ने अपने ग्रन्थ कविराज-मार्ग में माघ कवि की बड़ी प्रशंसा की है और उन्हें कालिदास के बराबर ठहराया है। यह नृपतुङ्ग और कोई नहीं अमोघवर्ष प्रथम का नामान्तर है और यह निश्चय हो चुका है कि ८१४ ई० में उनका राज्याभिषेक और ८७७ में उनका देहान्त हुआ। इन प्रमाणों से यह सिद्ध हुआ कि माघ कवि राजा भोज के समकालीन नहीं थे, वरन नवीं शताब्दी के पहले कभी रहे होंगे।

माघ के समय की उत्तरावधि तो पूर्वोक्त प्रमाणों द्वारा निश्चित हो गई। अब केवल पूर्वावधि का निर्णय करना शेष रह गया है, जिसके लिए निम्नलिखित आन्तरिक प्रमाण देखिए—

१—शिशुपालवध के अन्तर्गत एक श्लोक में महाराज जयादित्य और वामन की काशिका-वृत्ति तथा जिनेन्द्रबुद्धि रचित उसके टीका-न्यास का स्पष्ट उल्लेख आया है। वह श्लोक यह है—

> अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
> शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पृशा॥

मल्लिनाथ ने इस श्लोक की टीका करते हुए 'न्यास' का अर्थ 'वृत्तिव्याख्यानग्रन्थविशेषो' और 'वृत्ति' का अर्थ 'काशिकाख्य-सूत्रव्याख्यानग्रन्थविशेषो' लिखा है। ऐसा ही अर्थ कुछ और टीकाकारों ने भी लिखा है। इससे स्पष्ट होता है कि इस श्लोक में 'काशिका-वृत्ति' तथा 'न्यास' दोनों का उल्लेख है।

इसके अतिरिक्त और कई स्थलों में 'न्यास' के कतिपय सिद्धान्तों का भ उल्लेख आया है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि माघ कवि काशिकावृत्ति तथा न्यास की रचना के बाद रहे होंगे।

२—यह सिद्ध हो चुका है कि महाराज जयादित्य और वामन सातवीं शताब्दी के मध्यकाल में और जिनेन्द्रबुद्धि आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में थे।

इससे यह निश्चय हुआ कि माघ आठवीं शताब्दी विशेष कर उसके पूर्वार्ध में रहे होंगे।

माघ कवि की जन्म-भूमि गुजरात थी। प्रबन्ध-चिन्तामणि, प्रभावकचरित और भोजप्रबन्ध के अतिरिक्त आन्तरिक प्रमाणों से भी इस बात की पुष्टि होती है। शिशुपालवध में, समुद्र, द्वारका, रैवतक पर्वत (जिसे आज-कल गिरनार पर्वत कहते हैं) इत्यादि का वर्णन आया है। उसे पढ़कर तो ऐसी ही प्रतीति होती है कि माघ कवि कहीं इसी ओर के निवासी होंगे।

शिशुपालवध की एक हस्तलिखित प्रति के अन्त में 'इतिश्रीभिन्नमालववास्तव्यदत्तकसूनोः महावैयाकरणस्य माघस्य' इत्यादि लिखा हुआ मिला है। प्रभावकचरित में 'भिन्नमालव' के स्थान पर 'श्रीमाल' माघ का निवास-स्थान बतलाया गया है। कहा जाता है कि आज-कल भी 'भिनमाला' नाम का एक गांव गुजरात और मारवाड़ की सरहद पर बसा हुआ है। यदि ऐसा है तो यही माघ की जन्मभूमि रही होगी।

शिशुपालवध के अन्त में माघ कवि ने अपने पूर्वजों का भी कुछ हाल दिया है जिससे पता लगता है कि उनके बाबा का नाम सुप्रभदेव और पिता का नाम दत्तक था। यथा—

> सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः
> श्रीवर्म्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः।
> असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव
> देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा॥
> ... ...
> तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तः
> क्षमी मृदुर्धर्म्मपरस्तनूजः।
> यं वीक्ष्य वैयासमजातशत्रो-
> र्वचो गुणग्राहि जनैः प्रतीये॥
> ... ...
> तस्यात्मजः सुकविकीर्त्तिदुराशयाऽदः।
> काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम्॥

[श्रीवर्म्मल राजा के सुप्रभदेव नाम के एक महामन्त्री थे जो बड़े धर्म्मात्मा, सात्विकभावयुक्त तथा असक्तदृष्टि-वाले थे। मालूम होता था कि माने दूसरे राजा ही हैं। उनके दत्तक नाम के पुत्र हुए जो गम्भीर, क्षमी, कोमल स्वभाववाले तथा धर्म्मात्मा थे·········इत्यादि। उनके पुत्र (माघ) ने अच्छे कवि की दुर्लभ कीर्त्ति के पाने की इच्छा से शिशुपालवध नामक काव्य की रचना की।]

इससे पता चलता है कि सुप्रभदेव श्रीवर्म्मल-राजा के महामन्त्री अथवा वल्लभदेव के अनुसार महासेनापति थे। शिशुपालवध की अनेक प्रतियों में 'श्रीवर्म्मलाख्यः' के स्थान पर भिन्न भिन्न नाम आये हैं, जैसे धर्म्मनाथ, धर्म्म-नाभ, धर्म्मलाभ, वर्मलात, वर्मलाभ, इत्यादि। इस नाम के राजा कौन और कहां हुए, यह पता नहीं चलता; नहीं तो इससे माघ के समय-निरूपण करने में बड़ी सहायता मिलती। मालूम होता है कि वे भारत के उन छोटे छोटे राजाओं में से होंगे जो इतिहास के प्रकाश से सर्वथा वञ्चित रहे हैं।

प्रभावकचरित में भी हमारे कवि का ऐसा ही वंश-वर्णन किया गया है। हां, उसमें कुछ बातें और भी जोड़ दी गई हैं। उसके अनुसार सुप्रभदेव के दो लड़के थे। दत्तक और शुभङ्कर। दत्तक के पुत्र माघ और शुभङ्कर के सिद्ध थे। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त और कहीं भी शुभङ्कर और सिद्ध के नाम नहीं आये हैं, इसलिए हम इस बात को प्रामाणिक नहीं मान सकते।

यह तो स्पष्ट ही है कि माघ कवि बड़े ऊँचे दर्जे के कवि थे; पर उनका पाण्डित्य और भी ऊँचे दर्जे का था। कवित्व-शक्ति में इनकी बराबरी के – इनसे उच्च कोटि के भी – कवि रहे हैं; पर विद्वत्ता में श्रीहर्ष को छोड़कर और कोई इनकी बराबरी करनेवाला नहीं। यही कारण है कि साहित्य में जहां कहीं उनका नाम आया है उनके लिए अधिकतर 'पण्डित' शब्द का ही प्रयोग किया गया है, 'कवि' का बहुत कम। भोजप्रबन्ध और प्रबन्ध-चिन्ता-मणि में कालिदासादि को 'कवि' और 'महाकवि' की पदवियां दी गई हैं; पर माघ के लिए कवि शब्द का कहीं प्रयोग ही नहीं, बार बार 'पण्डित' शब्द का ही प्रयोग किया गया है। इससे तो यही जँचता है कि उक्त ग्रन्थकारों की आंखों में भी माघ की विद्वत्ता उनकी कवित्व-शक्ति से कहीं बढ़ी-चढ़ी थी।

वास्तव में उनके काव्य में किन्हीं किन्हीं स्थलों पर दर्शनशास्त्र, इतिहास, पुराण, राज-नीति के ऐसे ऐसे महीन सिद्धान्त गुँथे पड़े हैं, जिन्हें देखकर उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। कुछ उदाहरण देखिए—

रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः
पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्छना-
मवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः॥

इस श्लोक का तात्पर्य्य तो केवल इतना ही है कि नारदजी बार बार अपनी वीणा को देखते जाते थे जिसमें हवा भर जाने के कारण शब्द हो रहा था। पर सच पूछिए तो सम्पूर्ण सङ्गीतकला इस छोटे से श्लोक में कूट कूट-कर भरी हुई है। 'श्रुति' क्या है? उसके 'मण्डल' क्या हैं? 'स्वर' किन्हें कहते हैं? 'ग्राम' क्या वस्तु है? 'मूर्छना' से क्या तात्पर्य है? इत्यादि। इसमें सङ्गीतशास्त्र की प्रायः सभी मूल मूल बातें आगई हैं और बिना इन्हें जाने श्लोक को पूर्ण रीति से समझना असम्भव है।

उदासितारं निगृहीतमानसै-
र्गृहीतमध्यात्मदशा कथञ्चन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः
पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः॥
... ...
मैत्र्यादिचित्तपरिकर्म्मविदो विधाय,
क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगः।
ख्यातिं च सत्वपुरुषान्यतयाधिगम्य,
वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम्॥

पूर्वोक्त दोनों श्लोक सांख्य-दर्शन के सिद्धान्तों से ओत-प्रोत हैं। 'पुरुष' 'प्रकृति' 'विकार' 'मैत्री' इत्यादि चित्तवृत्तियां, 'पञ्चक्लेश' 'अविद्या' 'ज्ञान' इत्यादि सांख्य-दर्शन की अनेक रहस्य-पूर्ण बातों का जानना इन श्लोकों के समझने के लिए आवश्यक है।

विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम्।
फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि॥

इसमें भी सांख्य-दर्शन के विशेष शब्द 'साक्षी', 'बुद्धि', 'भोग' इत्यादि आ गये हैं। इनके जानने के अतिरिक्त श्लोक के समझने के लिए सांख्य का यह सिद्धान्त 'कर्तेव भवत्युदासीनः' जानना आवश्यक है।

सर्वकार्य्यं शरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्माऽन्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्॥

इसमें बौद्ध फ़िलासफी भरी पड़ी है।

ऐसे ही और अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। इन श्लोकों की गूढ़ता केवल इतने ही से समझी जा सकती है कि मल्लिनाथ-सदृश टीकाकार को भी, जिन्होंने आरम्भ में ही वचन दे दिया है कि 'नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते'—उन्हें भी इन श्लोकों पर बहुत कुछ लिखना पड़ा है।

पौराणिक कथायें तो माघ की अँगुलियों पर नाचती हैं। पद पद पर किसी न किसी कथा का उल्लेख है और अनेक पुराणों की कथायें आ गई हैं। शिशुपाल-वध के कोई पास पास के पांच श्लोक देख जाइए; उनमें कोई न कोई पौराणिक कथा अवश्य मिलेगी। जहां विशिष्ट रूप से उल्लेख की आवश्यकता नहीं पड़ी वहां और कुछ नहीं, तो उनकी ओर सङ्केत ही है। उदाहरणार्थ यह कहना है कि 'श्रीकृष्ण ने नारद को देखा' तो माघ इस प्रकार कहेंगे

"चिरन्तनः मुनिः हिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं ददर्श"।

'चिरन्तनः मुनिः' कौन? श्रीकृष्ण। क्यों? क्योंकि प्राचीन समय में विष्णु ने नारायणरूप से बदरिका-वन में तपस्या की थी। हिरण्यगर्भ कौन? ब्रह्मा। क्यों? देखिए—

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥

अर्थात् परमात्मा ने अनेक प्रकार की सृष्टि के उत्पन्न करने की इच्छा करके ध्यान द्वारा अपने शरीर से आरम्भ में जल को उत्पन्न किया और उसमें अपने तेज को डाला। यह तेज सूर्य के समान प्रभावाला एक सोने का अण्डा बन गया। उसमें सब लोकों के पितामह ब्रह्मा स्वयं उत्पन्न हुए।

इसलिए उनके शरीर से नारद की कैसे उत्पत्ति हुई? क्योंकि 'उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयंभुवः'। इसी प्रकार सूर्य्य के लिए 'अनूरुसारथिः', श्रीकृष्ण के लिए 'मुरद्विट्', 'कैटभद्विट्', 'कंसकृषः', 'उपेन्द्र', इन्द्र के लिए 'अहिद्विट्', 'नमुचिद्विट्', शिशुपाल के लिए 'सात्वतीसूनुः', 'सुतश्रवसः सुतः', बलराम के लिए 'सीरपाणि', 'रौहिणेयः' 'रेवतीजानिः', राहु के लिए 'सैंहिकेयो', इत्यादि पौराणिक वार्ताओं से भरे हुए शब्दों का प्रयोग हमारे कवि के पौराणिक ज्ञान का साक्षी है।

माघ कवि व्याकरण के विशेष पण्डित थे। अपने समय में वे "महावैयाकरण" कहलाते थे और इसमें सन्देह नहीं कि वे इस पदवी के लिए सर्वथा योग्य थे। शिशुपाल-वध का एक एक श्लोक उनके व्याकरण-पाण्डित्य का साक्षी है। इसीलिए तो कुछ पण्डितों की यह भी राय है कि भट्टिकाव्य की तरह शिशुपालवध भी व्याकरण के नियमों को समझाने, उसकी उलझनों को सुलझाने और उसके गूढ़ रहस्यों को खोलने के लिए रचा गया है; पर यह बात ठीक नहीं जँचती।

यह अलौकिक विद्वत्ता, असीम ज्ञान का यह स्वराज्य, प्रवीणता की ऐसी प्रखरता—यह सब होते हुए भी माघ को अभिमान का लेश नहीं। श्रीहर्ष की तरह वे आपे से बाहर नहीं होगये। जयदेव की तरह खुद अपनी कविता पर लट्टू होकर उन्होंने उसे अमृत से उपमा नहीं दे डाली। अपने स्वात्मत्व को उन्होंने कहीं प्रकट ही नहीं होने दिया। चाहे प्रशंसा समझिए चाहे निन्दा, उन्होंने अपने लिए ग्रन्थ के अन्त में केवल यह लिखा है—'सुकविकीर्तिदुराशयाऽदः,' अर्थात् सुकवि की कीर्ति पाने के दुराशय से युक्त (मैं)। धन्य माघ! धन्य तुम्हारा गर्वराहित्य!

माघ-काव्य के अतिरिक्त हमारे कवि के रचे हुए कुछ और भी श्लोक मिलते हैं। नीचे लिखे हुए दो श्लोक सुभाषितावली में वल्लभदेव ने माघ कवि के नाम से उद्धृत किये हैं—

शीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना,
माश्रौषं जगति श्रुतस्य विफलक्लेशस्य नामाप्यहम्।
शौर्य्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु मे सर्वदा।
येनैकेन बिना गुणास्तृणबुसप्रायाः समस्ता अमी॥

[शील पर्वत पर से गिर पड़े, भाई-बन्धु आग में जल जायँ, संसार में परिश्रम को विफल करनेवाले शास्त्रों का नाम भी न सुनें, वीरतारूपी वैरी पर वज्र शीघ्र ही गिर जाय, हमें तो हमेशा केवल धन चाहिए जिस एक के बिना ये सब गुण खर-पात के समान हैं।]

नारीनितम्बफलके प्रतिबध्यमाना,
हंसीव हेमरशना मधुरं ररास।
तन्मोचनार्थमिव नूपुरराजहंसा-
श्चक्रन्दुरार्त्तमुखरं चरणावलग्नाः॥

[स्त्री की जघनस्थली पर बँधी हुई सोने की करधनी (बँधी हुई) हंसी की तरह मधुर शब्द करने लगी। उसको छुड़ाने के लिए मानों नूपुररूपी राजहंस उसके पैरों में पड़कर ज़ोर से चिल्लाने लगे।]

निम्नलिखित श्लोक औचित्यविचार-चर्चा में क्षेमेन्द्र ने माघ-कवि-रचित बतलाया है—

बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते,
पिपासितैः काव्यरसो न पीयते।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं,
हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः कलाः॥

[भूखे मनुष्य व्याकरण नहीं खाते, प्यासे लोग काव्य-रस नहीं पीते, विद्या से किसीने भी अपने कुल को नहीं उठाया; इसलिए धन को ही उपार्जन करो; कलायें तो निष्फल ही हैं।]

ये श्लोक शिशुपाल-वध में नहीं मिलते; अतएव बहुत सम्भव है कि माघ-रचित और भी एक या अधिक ग्रन्थ रहे हों।

अब माघ-काव्य को देखिए। इसका असली नाम शिशुपाल-वध है और संस्कृत-काव्य के नियमों के अनुसार यह एक महाकाव्य है। नियम है कि महाकाव्य में आठ से अधिक सर्ग हों; इसमें बीस हैं। नियम है कि नायक कोई देवता अथवा धीरोदात्त गुणों से युक्त, उत्तम वंशवाला क्षत्रिय हो; इसमें भगवान् श्रीकृष्ण नायक हैं। शृङ्गार, वीर और शान्त इन तीन रसों में से कोई एक रस प्रधान होना चाहिए और शेष रसों को गौणरूप से रहना चाहिए; इसमें वीर-रस प्रधान है और शेष रस भी इतस्ततः आ गये हैं। नियम है कि महाकाव्य की कथा ऐतिहासिक हो अथवा किसी सज्जन के जीवन के आधार पर लिखी गई हो; शिशुपाल-वध की कथा महाभारत तथा कई पुराणों में आई है। आरम्भ में प्रार्थना या आशीर्वाद हो अथवा योंही कथा आरम्भ कर दी जाय; इसमें योंही कथा आरम्भ कर दी गई है। नियम है कि प्रतिसर्ग के बीच में एक ही प्रकार के छन्द हों और सर्ग के अन्त में एक या अधिक पद्य भिन्न भिन्न छन्दों में हों, पर कहीं कहीं पर अनेक प्रकार के छन्दों से युक्त सर्ग भी हो सकते हैं; माघ-काव्य में यह नियम पूर्ण रीति से निबाहा गया है, हां केवल चौथे सर्ग में भिन्न भिन्न छन्दों से युक्त पद्य आये हैं। प्रतिसर्ग के अन्त में आगे आनेवाले सर्ग की कथा का सङ्केत हो; इसमें ऐसा ही है। महाकाव्य में, यथासम्भव, सन्ध्या, सूर्य्य, चन्द्र, रात, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, दोपहर, शिकार, पर्वत, ऋतु, जङ्गल, समुद्र इत्यादि का साङ्गोपाङ्ग वर्णन होना चाहिए; शिशुपाल-वध में इनमें से अधिकांश का वर्णन है। महाकाव्य का नामकरण कवि के, काव्य के या और किसीके नाम पर, होना चाहिए; इसके दो नाम हैं—एक कवि के नाम पर, दूसरा काव्य के आधार पर। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सर्ग का भी नामकरण उक्त सर्ग में वर्णित कथा के आधार पर होना चाहिए; इसका भी पालन हुआ ही है। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। महाकाव्य का ऐसा कोई लक्षण नहीं जो इस काव्य में न घटता हो।

जैसा कि ग्रन्थ के नाम से ही स्पष्ट होता है, इसमें चेदिनरेश शिशुपाल के श्रीकृष्ण द्वारा मारे जाने का वर्णन है। कथा का क्रम इस प्रकार है—आरम्भ में नारद मुनि भगवान् श्रीकृष्ण के पास आये और उनसे शिशुपाल की जन्म-जन्मान्तर की दुष्टताओं का वर्णन किया और उसके वध करने की प्रार्थना की। श्रीकृष्ण ने मुनि को उसके मारने का वचन दिया और इस मन्तव्य को राम और उद्धव के सामने पेश किया। कुछ वाद-विवाद के उपरान्त यह निश्चय हुआ कि शिशुपाल के विरुद्ध अभी कुछ न करके हस्तिनापुर में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होना चाहिए जिसके लिए पहले ही से निमन्त्रण आ चुका था। बस, श्रीकृष्ण ने दल-बल के साथ हस्तिनापुर को प्रस्थान किया। मार्ग में अनेक प्राकृतिक दृश्यों को देखते हुए हस्तिनापुर पहुँचे। वहां युधिष्ठिर ने राजसभा में उन्हें

अर्घ्यदान किया। इस पर अत्यन्त क्रोधित होकर शिशुपाल ने अनेक दुर्वाक्य कहे और अपने साथियों के साथ सभा से उठ गया और युद्ध की तैयारी करने लगा। फिर दोनों पार्टियों के बीच में दूत भेजे गये; पर कुछ फल नहीं हुआ। अन्त में युद्ध हुआ और श्रीकृष्ण के हाथ से शिशुपाल आहत हुआ।

कथा का इतना सूक्ष्म कलेवर होते हुए भी कवि ने उसे किस प्रकार २० बड़े बड़े सर्गों में विस्तीर्ण किया है। यह कोई आश्चर्य्य की बात नहीं रहती, जब हम देखते हैं कि शिशुपाल-वध का आधे से अधिक भाग कथा से बाहरी बातों से भरा हुआ है। चौथे सर्ग से लेकर तेरहवें तक केवल प्राकृतिक दृश्यों का ही वर्णन है।

वैसे तो शिशुपाल-वध की कथा कई पुराणों में आई है; पर माघ ने अपनी रचना में मुख्यतया भागवत का ही आश्रय लिया है, क्योंकि एक-दो छोटी छोटी बातों को छोड़कर प्रायः दोनों कथायें एकसी ही हैं। दोनों में आरम्भ में भगवान् श्रीकृष्ण के पास नारद आते हैं। दोनों में उद्धव के साथ मन्त्रणा होती है। इसके बाद दोनों ही में श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ को प्रस्थान करते हैं। फिर श्रीकृष्ण को देखने के लिए इन्द्रप्रस्थ की पुर-नारियों का राजमार्ग में दौड़ना, पाण्डवों द्वारा श्रीकृष्ण का स्वागत, राजसभा में श्रीकृष्ण को अर्घ्य दिया जाना, तथा शिशुपाल का दुर्वचन कहना दोनों ही में हैं।

इसके अतिरिक्त देखिए कि दोनों में किन्हीं किन्हीं विशेष स्थलों में अर्थ, भाव अथवा शब्दों में कैसी समानता झलकती है :—

... ... देवर्षिः परमद्युतिः।
बिभ्रत्पिङ्गजटाभारं प्रादुरासीद्यथा रविः॥
तं दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः सर्वलोकेश्वरेश्वरः।
ववन्द उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यस्सानुगो मुदा॥

—भागवत

दधानमम्भोरुहकेसरद्युती-
जंटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।
... ...
पतत्पतङ्गप्रतिमस्तपोनिधिः
पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत॥
गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकै-
र्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः॥

—माघकाव्य

इनमें 'बिभ्रत्पिङ्गजटाभारं' तथा 'दधानमम्भोरुहकेसरद्युतीर्जटाः' दोनों एक हैं। भागवत के 'यथा रविः' के स्थान पर माघ में 'पतत्पतङ्गप्रतिमः' तथा 'देवर्षिः' की जगह 'तपोनिधिः' है। भागवत के 'उत्थितः' का ही माघ के शेष श्लोक में दिग्दर्शन है। 'ववन्द' इत्यादि बिलकुल छोड़ दिया गया है।

जीवस्य यः संसरतो विमोक्षणं,
न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः।
लीलावतारैः स्वयशःप्रदीपकं
प्राज्वालयत्त्वां तमहं प्रपद्ये॥

—भागवत

उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनै-
रभीक्ष्णमक्षुण्णतयातिदुर्गमम्।
उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विन-
स्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया॥

—माघ

भागवत की पहली दो लकीरों का यह अनुवाद सा है।

एवमादीन्यभद्राणि बभाषे नष्टमङ्गलः।
नोवाच किञ्चिद् भगवान् यथा सिंहः शिवारुतम्॥

—भागवत

प्रतिवाचमदत्त केशवः,
शपमानाय न चेदिभूभुजे।
अनहुङ्कुरुते घनध्वनिं,
नहि गोमायुरुतानि केसरी॥

—माघ

इन दोनों का भाव तो एक ही है; पर दूसरा श्लोक पहले की स्पष्ट प्रतिध्वनि है।

हमारे कवि शिशुपाल-वध की कथा के लिए कुछ अंश तक महाभारत के भी ऋणी हैं। जहाँ तक हमें विदित है, महाभारत के अतिरिक्त और कहीं भी शिशुपाल के सम्बन्ध में इस बात का उल्लेख नहीं आया है कि जन्म के समय उसके चार हाथ तथा तीन आंखें थीं; अत-

एव इस प्रसङ्ग के लिए कवि महाभारत के ऋणी हैं। साथ ही युधिष्ठिर की सभा में भीष्म द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति भी महाभारत के आधार पर है। इसी प्रकार शिशुपाल के पूर्व-जन्म का इतिहास कि वह पहले हिरण्यकशिपु था, फिर वही रावण हुआ और फिर तीसरे जन्म में शिशुपाल हुआ, अग्नि-पुराण पर निर्भर मालूम होता है। कथा के अन्त का अंश, युद्ध-वर्णन इत्यादि बिलकुल काल्पनिक है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस शुष्क पौराणिकी कथा में माघ ने बिलकुल नवीन जीवन फूँक दिया है। माघ की लेखनी के जादू से कथा फिर हरी-भरी हो गई, उसमें सरसता की कल्लोलिनी कलकल-शब्द से बहने लगी और वीररस के प्रवाह से वह आप्लावित हो गई। कथा-प्रसङ्ग में जिन जिन व्यक्तियों ने भाग लिया है वे भी इस जादू से नहीं बचे हैं और माघ ने उन्हें अपने चातुर्य्य से ऐसे साँचे में ढाला है कि उनमें एक प्रकार की नवीनता आ गई है। क्या माघ-काव्य के शिशुपाल वही हैं जो महाभारत के अथवा भागवत के? शिशुपाल ही क्यों, उद्धव, श्रीकृष्ण इत्यादि को भी कवि ने अपनी इच्छानुसार ही रङ्ग-रूप दिया है।

पौराणिक शिशुपाल बहुत ही क्रोधी और दुष्ट स्वभाव के राजा हैं। अन्याय करने तथा गाली देने में वे अद्वितीय हैं। राज-नीति से तो मानों उनका वैर है; और ईर्ष्या-द्वेष तो मानों ईश्वर ने उन्हींके लिए बनाये हैं; पर माघ के शिशुपाल पौराणिक शिशुपाल से कहीं ऊँचे दर्जे के हैं। उनमें क्रोध के साथ साथ गम्भीरता है, गालियों में प्रवीणता के साथ साथ वीरता तथा वाक्पटुता है। ईर्ष्या के स्थान पर मान है। राजनीतिज्ञता के साथ साथ दिल की सफ़ाई भी है। जो हो, पौराणिक शिशुपाल से एक-दम घृणा होती है; पर माघ के शिशुपाल के प्रति थोड़ा-बहुत प्रशंसा का भाव तथा सहानुभूति जागृत होती है। माघ के शिशुपाल कैसे वीर तेजस्वी हैं, देखिए—

अभितर्जयन्निव समस्तनृपगणमसावकम्पयत् ।
लोलमुकुटमणिरश्मि शनैःशनैः प्रकम्पितजगत्त्रयं शिरः ॥

[(श्रीकृष्ण को अर्घ्य दिये जाने पर खड़े होकर) शिशुपाल ने सब राजसमूह की भर्त्सना सी करते हुए, तीनों लोकों को भली भाँति कँपानेवाले अपने शिर को हिलाया, जिसमें मुकुट के मणियों की किरणें स्वतः धीरे धीरे काँप रही थीं।]

... ...

ध्वनयन्सभामथ सनीरघनरवगभीरवागभीः ।
वाचमवदतिरोषवशादतिनिष्ठुरस्फुटतराक्षरामसौ ॥

[जलभरे हुए मेघ की गर्जना के समान गम्भीर स्वरवाला, वह निर्भय शिशुपाल सभा को गुँजाता हुआ, अति क्रोध के कारण अति निठुर तथा स्पष्ट अक्षरों से युक्त वाणी बोला।]

अब क्या कहा, उसके भी एक-दो नमूने सुनिए—

यदपूपुजस्त्वमिह पार्थ मुरजितमपूजितं सताम् ।
प्रेम विलसति महत्तदहो दयितं जनः खलु गुणीति मन्यते ॥

[हे पार्थ! तुमने सज्जनों से अपूजित मुरारि का सभा में जो पूजन किया है उससे उनके प्रति तुम्हारा अधिक प्रेम ही द्योतित होता है। आश्चर्य्य की बात है कि लोग अपने प्रेम-पात्र को ही गुणी समझते हैं।]

यदि वार्चनीयतम एष किमपि भवतां पृथासुताः ।
शौरिरवनिपतिभिर्निखिलैरवमाननार्थमिह किं निमन्त्रितैः ॥

[हे पाण्डवो! यदि श्रीकृष्ण किसी प्रकार आप लोगों के पूज्य भी हैं तो फिर भला अपमान के लिए बुलाये हुए सम्पूर्ण पृथ्वी के राजाओं से क्या प्रयोजन?]

पूर्वोक्त श्लोकों से सहृदय पाठक स्वयं माघ के शिशुपाल के चरित्र का अनुभव कर सकते हैं।

माघ के कृष्ण भी भिन्न हैं। पौराणिक कृष्ण में ईश्वरत्व अधिक है। माघ के कृष्ण में ईश्वरत्व कम और नृपत्व या मनुष्यत्व अधिक है। भागवत में श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार बैठे ही बैठे चक्रद्वारा शिशुपाल को मार डाला उससे उनकी ऐश्वरी शक्ति द्योतित होती है पर दृश्य बिलकुल हत्याकाण्ड सा लगता है। माघ के कृष्ण नीतिशास्त्र में निपुण, उदारचरित, दुष्टों के शत्रु, साधुओं के मित्र—आदर्श राजा हैं।

भागवत में उद्धव श्रीकृष्ण के 'भृत्य' हैं। भागवत के उद्धव में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे श्रीकृष्ण के परम भक्त हैं। पर माघ के उद्धव श्रीकृष्ण के भृत्य नहीं बरन उनके 'गुरुजन' हैं। उनके सदृश राजनीतिज्ञ विरले ही होंगे। उनका स्वभाव जैसा सरल वैसा ही शान्त भी है।

अब बलराम का चित्र देखिए—

ततः सपत्नापनयस्मरणानुशयस्फुरा ।
ओष्ठेन रामो रामोष्ठबिम्बचुम्बनचुञ्चुना ॥
... ...
घूर्णयन्मदिरास्वादमदपाटलितद्युती ।
रेवतीवदनोच्छिष्टपरिपूतपुटे दृशौ ॥
आश्लेषलोलुपवधूस्तनकार्कश्यसाक्षिणीम् ।
म्लापयन्नभिमानोष्णैर्वनमालां मुखानिलैः ॥
दधत्संध्यारुणव्योमस्फुरत्तारानुकारिणीः ।
द्विषद्द्वेषोपरक्ताङ्गसङ्गिनीः स्वेदविप्रुषः ॥
... ...
ककुद्मिकन्यावक्त्रान्तर्वासलब्धाधिवासया ।
मुखामोदं मदिरया कृतानुव्याधमुद्वमन् ॥

[मन्त्रणा करते समय श्रीकृष्ण के बोलने के बाद जब बलराम बोलने को उद्यत हुए उसी समय का यह उनका वर्णन है—तब, स्त्रियों के ओष्ठबिम्बों के चुम्बन करने में चतुर, बलराम का ओठ, शत्रुओं के किये हुए अपराध के स्मरण से उत्पन्न क्रोध के कारण कांपने लगा। मदिरापान के मद से, रक्तकान्तिवाली, तथा रेवती के मुँह की (पान इत्यादि की) झूठन से पवित्र पुटवाली अपनी आँखों को घुमाते हुए, आलिङ्गन की लोभिनी वधू के कुचकाठिन्य की साक्षिणी वनमाला को, अभिमान के कारण गरम मुँह की साँसों से, कुम्हलाते हुए, शत्रु के प्रति द्वेष के कारण रक्तवर्णवाले शरीर पर स्वेद-कणों को—जो साँझ के लाल बादलों में चमकते हुए तारों के समान मालूम पड़ते थे—धारण किये हुए, तथा रेवती के मुँह में रहने के कारण उनके (रेवती के) मुँह की ख़ुशबू जिसमें आगई थी ऐसी मदिरा से संसर्ग रखनेवाली अपने मुँह की ख़ुशबू को फैलाते हुए—बलराम जी बोले।]

पूर्वोक्त पंक्तियों में बलराम को हद से ज़्यादा क्रोधी, कामी और शराबी दिखलाया गया है।

बलराम में सिपाहीपन अधिक और राजनीति का ज्ञान बहुत कम है। उनकी नीति का क्षेत्र केवल यहीं तक पहुँचता है "आत्मोदयः परज्यानिर्द्वयं नीतिरितीयती" अर्थात् 'अपनी उन्नति और शत्रु की हानि—इतनी ही तो नीति है। अपमानित होने पर किसी दशा में भी स्वस्थ रहना उनकी समझ में बड़ी भूल है।

पादाहतं यदुत्थाय मूर्द्धानमधिरोहति ।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः ॥

[वह धूल भी जो कि पैरों से आहत होने पर सिर पर चढ़ती है उस मनुष्य से अच्छी है जो कि अपमानित होने पर भी उदासीन रहता है।]

बलराम की समझ में नम्रता बड़ा भारी दोष है।

अङ्काधिरोपितमृगश्चन्द्रमा मृगलाञ्छनः ।
केसरी निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथो मृगाधिपः ॥

[चन्द्रमा, जिसने गोद में हरिण को बैठा लिया है मृगलाञ्छन कहलाता है; पर निठुराई से मृग-समूह को मारनेवाला सिंह मृगाधिप कहलाता है।]

शत्रु से बदला लेने के सामने उन्हें मित्र के कार्य्य की भी परवा नहीं।

यजतां पाण्डवः स्वर्गमवत्विन्द्रस्तपत्विनः ।
वयं ह नाम द्विषतः सर्वः स्वार्थं समीहते ॥

[पाण्डव यज्ञ करें, इन्द्र स्वर्ग की रक्षा करें, सूर्य्य प्रकाश करें और हम शत्रुओं को मारें—सभी अपने अपने स्वार्थ को खोजते हैं।]

बस वे तो केवल यह स्वप्न देखते हैं कि—

प्राप्यतां विद्युतां सम्पत्संपर्कादर्करोचिषाम् ।
शस्त्रैर्द्विषच्छिरश्छेदप्रोच्छलच्छोणितोक्षितैः ॥

[शत्रुओं के सिर काटने से बहते हुए रक्तद्वारा सिञ्चित हमारे शस्त्र सूर्य्य की किरणों के सम्पर्क से विद्युत् की शोभा पावें।]

बलराम का ऐसा चित्र खींचने के कारण माघ कवि इहकालिक अनेक समालोचकों की अकृपा के पात्र बने हैं। ऐसे समालोचकों से हमारा यह कथन है कि सचमुच बलराम का यह चित्र अच्छा नहीं; पर साथ ही उनसे हम यह पूँछते हैं कि क्या प्राचीन कवियों में केवल माघ ही ने ऐसा अपराध किया है? क्या पुराणों से लेकर छोटे छोटे कवियों के ग्रन्थों तक में बलराम का ऐसा ही चित्र नहीं खींचा गया है? फिर माघ पर यह कोप क्यों? देखिए—

द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च ।
रामः क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिमावहन् ॥
... ...
वरुणप्रेपिता देवी वारुणी तरुकोटरात् ।
पतन्ती तद्वनं सर्वं स्वगन्धेनाध्यवासयत् ॥

तं गन्धं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः।
आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ॥
... ...
वनेषु व्यचरत्क्षीवो मदविह्वललोचनः।

और भी देखिए—

प्रेमोन्नामितरेवती मुखगतामास्वाद्य कादम्बरी-
मुन्मत्तं क्वचिदुत्पतत्क्वचिदपि भ्राम्यत्क्वचित्प्रस्खलत्।

इस प्रकार के असंख्य उदाहरण दिये जा सकते हैं। हमारे विचार में तो यह आता है कि जैसे कवियों ने अनेक बातों को मान रक्खा है वैसे ही बलराम के मदिरा-पान को भी मान रक्खा है, इसीलिए जैसे हम उन पर यह कहने के लिए कुपित नहीं होते कि स्त्रियों के पैर के मारने से अशोक-तरु फूल जाता है, उसी प्रकार बलराम के मदिरा-पान को भी समझना चाहिए, यद्यपि दूसरा पहले की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक है।

संस्कृत-साहित्य में इस महाकाव्य का स्थान जानने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि पहले उक्त साहित्य के विकाश का क्रम भली भांति समझ लिया जाय। विद्वानों का मत है कि साहित्य का पूर्वांश स्वाभाविक, प्राकृतिक और प्रसादगुण-पूर्ण है। उसमें अर्थ की ओर विशेष ध्यान है, शब्दों की ओर कम। पर जैसे जैसे समय बढ़ता गया वैसे वैसे कविता से पूर्वोक्त गुण दूर होने लगे, यहां तक कि काव्य-साहित्य के अन्तिम भाग में शब्द-वैचित्र्य दिखलाना कविता का बड़ा भारी गुण समझा जाने लगा। अर्थ की प्रधानता न रही, किन्तु 'अर्थ' और 'शब्द' दोनों की बराबरी समझी जाने लगी। प्रसादगुण के स्थान में क्लिष्टार्थता को स्थान मिला और कविता का प्राकृतिक गुण कपूर की तरह उड़ गया; उसके स्थान पर एक प्रकार की अनैसर्गिकता या बनावटीपन का सिक्का जम गया। काव्य-साहित्य के अन्तिम भाग के प्रायः सभी काव्य इसी ढँग के हैं।

जैसे कालिदास की रचनायें काव्य-साहित्य के प्रथम भाग की प्रतिनिधि हैं उसी प्रकार यह उसके अन्तिम भाग का धान प्रतिनिधि है। तभी तो इसमें स्वाभाविकता और प्रसादगुण प्रधानतया नहीं हैं। तभी तो इसमें अर्थ की ओर जितना ध्यान दिया गया है उतना ही शब्दों की ओर। कहीं कहीं तो अर्थ की ओर बहुत कम ध्यान रखकर शब्द-वैचित्र्य तथा शब्दालङ्कारों पर ही विशेष ध्यान है। उदाहरणार्थ—

इह मुहुर्मुदितैः कलभैरवः
प्रतिदिशं क्रियते कलभैरवः।
स्फुरति चानुवनं चमरीचयः
कनकरत्नभुवां च मरीचयः॥

क्या ही विचित्र शब्द-वैचित्र्य है! शब्दालङ्कारों की क्या ही भरमार है! पर मतलब केवल यही है कि यहां (रैवतक पर्वत पर) हाथी शब्द किया करते हैं, चमरी-मृग इधर-उधर घूमते हैं और यहां सोने और रत्नों के स्थान हैं।

अधिक कहने की आवश्यकता नहीं; काव्य-साहित्य के अन्तिम भाग की सभी विशेषता इसमें विद्यमान है। यथा

१. वर्णन-प्राचुर्य्य
२. भाव-गाम्भीर्य्य
३. कठोरपदोपन्यास तथा अद्वितीय शब्द-बन्ध।

ऊपर हमने जिन विशेषताओं का उल्लेख किया है वे केवल इसी काव्य में नहीं, बरन उस समय के सभी काव्यों में किसी न किसी हद तक अवश्य पाई जाती हैं। मालूम होता है कि उक्त समय के कवियों को अपनी काव्य-रचनाओं में संस्कृत-भाषा की खूबियों को दिखाने का बड़ा चाव रहता था, इसी कारण ये गुण उनकी कविता में स्वतः आजाते थे। किसी भाषा की खूबियां ज़्यादातर किसी महीन भाव या दृश्य के वर्णन में भली भांति प्रकट होती हैं—इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि इनमें कवि को अधिक स्वतन्त्रता मिलती है। इसीलिए कथा की आड़ में वे प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन लिखते हैं। हम ऊपर कह चुके हैं कि माघ-काव्य का आधे से अधिक भाग प्राकृतिक वर्णनों से भरा पड़ा है, जिनमें कवि कथा के सूत्र को बिलकुल भूल-से जाते हैं। ये वर्णन चाहे हम काव्य में अनावश्यक भले ही समझें; पर यह तो हमें मानना ही पड़ेगा कि इनमें संस्कृत-भाषा के सच्चे जौहर प्रकट होते हैं।

भावगाम्भीर्य्य, आज-कल के कुछ समालोचक दोष बतलाते हैं; पर वास्तव में किसी भाषा का गौरव जितना इससे प्रकट होता है उतना किसी और से नहीं। किसी

मामूली बात का वर्णन करते हुए या किसी मामूली भाव का चित्रण करते हुए उसे प्रसिद्ध प्राकृतिक दृश्यों से उपमा देकर समझा देना सरल बात है, पर हृदय के महीन महीन अन्तरङ्ग भावों को स्पष्टरूप से चित्रण कर देना, मानसिक विकारों को उनके सच्चे रङ्ग-रूप में दिखाना प्रत्येक भाषा में सम्भव नहीं और न हर कोई इसे कर ही सकता है। इसके लिए पहले तो भाषा पर्य्याप्त हो, फिर कोई उक्त भाषा का पूर्ण विद्वान् हो जो उक्त भावों को उपर्युक्त शब्दों में प्रकाशित कर सके। तभी यह सम्भव है। ऐसा करने में बहुधा कवि को अपने शब्दों को बहुत घुमाव या हेर-फेर से रखना पड़ता है। माघ-काव्य में किन्हीं किन्हीं स्थलों पर भावगाम्भीर्य्य को देखकर दाँतों-तले अँगुली दबानी पड़ती है।

साथ ही माघ-काव्य में जैसा अद्वितीय शब्द-ग्रन्थ है वैसा साहित्य में बिरले ही स्थलों में देखने को मिलता है। कालिदास के कुल ग्रन्थ पढ़ जाइए, अमर-कोष से बाहर का एक भी शब्द न मिलेगा। पर, माघ के अध्ययन के लिए बड़े बड़े कोष भी पर्य्याप्त नहीं। वास्तव में इस कहावत में बहुत कुछ सत्यता है कि 'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते'। इन गुणों के कारण कुछ समालोचकों ने माघ-काव्य की बड़ी निन्दा की है। उनके मत में यह इतना क्लिष्ट तथा अनैसर्गिकतायुक्त है कि इसमें कविता का आनन्द ही नहीं आता। वे कालिदास और माघ की तुलना करते हैं और कहते हैं कि कालिदास की कविता में स्वतः प्रवाह (spontaneous flow) है; उसके लिखने में कवि को प्रयास नहीं उठाना पड़ा तथा अधिक सोच-विचार की ज़रूरत नहीं पड़ी। उनके मत में माघ-काव्य में प्रयास की बू आती है तथा इस काव्य की रचना में कवि को बहुत सोच-विचार की ज़रूरत पड़ी है, क्योंकि

कविता वनिता चैव सरसा स्वयमागता।
बलादाकृष्यमाणा चेत् सरसा विरसायते॥

इसलिए कालिदास की कविता सरस है, तथा माघ की नीरस।

इन लोगों से हमारा केवल यह कथन है कि किसी काव्य को उसके समय से अलग करके उसकी आलोचना करना अन्याय है और शायद ऐसा करने से बिरले ही काव्य प्रशंसनीय ठहरेंगे। वास्तव में माघ-काव्य और कालिदास की रचनाओं में उतना ही अन्तर है जितना शेक्सपियर और मिल्टन की रचनाओं में। एक की कविता स्वाभाविक तथा प्रसादगुण-पूर्ण है। दूसरे की इन गुणों से सर्वथा भिन्न है। क्यों? कारण?—उनका समय। शेक्सपियर और कालिदास का समय कविता का बाल्यकाल है; इसलिए उनके काव्यों में बाल्योचित सरलता है, मृदुता है और सरसता है। मिल्टन और माघ का समय कविता का प्रौढत्व-काल है। तभी तो उनके काव्यों में कठोरता है, गाम्भीर्य्य है, शब्द-वस्त्रों का चमत्कार है, पद पद पर अलङ्कारों की झनकार है—साथ ही साथ एक उच्चकोटि की सरसता है।

हम मानते हैं कि एक मामूली विद्यार्थी की दृष्टि से माघ-काव्य बड़ा क्लिष्ट है और इसका एक एक श्लोक लोहे का चना है; पर यह कोई दोष नहीं। 'माघे मेघे गतं वयः' की शिकायत से इस काव्य का गौरव घट नहीं सकता, उलटा बढ़ता ही है।

इस सम्बन्ध में हमारी केवल यह प्रार्थना है कि किसी काव्य के गुण-दोषों पर विचार करते समय काव्य-काल को भी ध्यान में रखना चाहिए, नहीं तो वर्तमान आलोचना की वेदी पर सभी प्राचीन काव्यों का बलिदान हो जायगा।

जो कुछ हो, माघ-काव्य का साहित्य-रसज्ञों में सदैव से आदर रहा है। इसका इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है कि इस पर आठ टीकायें हुई हैं। मल्लिनाथ के अतिरिक्त, वल्लभदेव, दिनकर मिश्र, चारित्रवर्द्धन प्रभृति विद्वानों ने भी इस पर लेखनी उठाई है।

हमारे विचार में तो माघ-काव्य के सम्बन्ध में यह उक्ति बहुत कुछ ठीक है—

ऐदंयुगीनलोकस्य सारसारस्वतायितम्।
शिशुपालवधं काव्यं प्रशस्तिर्यस्य शाश्वती॥

भूपनारायण दीक्षित, बी० ए०

गङ्गा में दीपक।

[धुन—श्यामकल्यान]

मैं प्रकाश का पुञ्ज मौत अँधियारी से घबड़ाऊँ क्यों?
आज कि कल आवेहीगी, फिर बिना बात भय खाऊँ क्यों?

मेरे सिर पर मौत खेलती, मैं उसके सिर खेल रहा ;
जाता आत्मानन्द सिन्धु में मैं निर्भय निर्द्वन्द बहा ।
ऊपर मेरे पवन मौत है, नीचे है सुरसरी-प्रवाह ;
मेरी नाव बनी काग़ज़ की मौज उड़ाता उसमें वाह !
जीवन के आधार तेल बाती को काल कर रहा छीन ;
यह भी डर है—कहीं नाव में लग जावे न आग मतिहीन ।
पर है मुझे भरोसा उसका जो दुर्जन-कुल-घालक है ;
अनिल, अनल, जल का तो है ही मेरा भी प्रतिपालक है ।
जब तक उसकी मरज़ी है तब तक न किसीका कुछ भय है;
वरना फिर तो अनिल, अनल, जल एक बहाना निश्चय है ।
इसीलिए हूँ मौज उड़ाता, नहीं सोच का कुछ कारण ;
अन्त समय जब आया तब उच्चाटन क्या मारण-जारण ।
धन्यवाद है उसे कि जिसने अब तक मुझे बचाया है ;
करके कृपा असीम घड़ी भर मुझको खेल दिखाया है ।
उसकी आज्ञा बिना न पल भर भी मैं यहाँ बिताऊँगा ;
अन्त ?—उन्हीं चरणों में शीश नवाऊँगा—मिल जाऊँगा ।

बदरीनाथ भट्ट

दो हज़ार वर्ष पहले की पुलिस ।

नाटककार प्रायः अपने नाटकों में उन भावों और विचारों का वर्णन करते हैं जो तत्कालीन समाज में प्रचलित होते हैं । नाटकों से एक लाभ यह भी होता है कि देश तथा काल की दशा ज्ञात हो जाती है । उनको एक प्रकार का तत्कालीन इतिहास समझना चाहिए । संस्कृत-नाटकों में मृच्छकटिक एक प्रसिद्ध नाटक है जिसकी बाबत यह कहा जाता है कि उसे शूद्रक नामी राजा के नाम से किसी कवि ने लिखा है । बहुत से लोगों के मत के अनुसार वह कवि "दण्डी" था । राजा शूद्रक की दण्डी पर विशेष कृपा होने से उसने इस नाटक को अपने आश्रयदाता के नाम से ख्याति दी । प्रोफ़ेसर मेकडानल ने इस नाटक का रचना-काल छठी शताब्दी में निश्चित किया है । परन्तु प्रोफ़ेसर विलसन का मत है कि राजा शूद्रक ईसा के पूर्व पहली या दूसरी शताब्दी में हुआ था । मोटे तौर पर जिस काल के मनुष्यों की दशा का वर्णन इस नाटक में है उसको बीते हम २००० वर्ष मान सकते हैं । देखा जाता है कि आज-कल भी बहुधा 'चालबाज़ी', 'कपट', 'मिथ्या अभियोग चलाने' आदि का दोषारोपण पुलिस पर किया जाता है । जनता का यह कथन सत्य है अथवा असत्य, इससे हमारे लेख को कोई सरोकार नहीं है । हमको तो केवल भाव देखना है । जो रुचि पुलिस के प्रति आधुनिक प्रजा के हृदय में है और पुलिस दारोग़ा का जो चित्र आधुनिक कवि खींचने को तैयार है, वही चित्र शूद्रक के मृच्छकटिक में पाया जाता है ।

नाटक लिखे २००० वर्ष बीत गये । उस समय से आज तक सब कुछ बदला; परन्तु पुलिस की ओर से प्रजा का ख़याल नहीं बदला ।

ऊपर कही हुई बात सिद्ध करने के लिए जहाँ तक मृच्छकटिक की कहानी आवश्यकीय है वह नीचे लिखी जाती है ।

उज्जयिनी के राजा पालक का साला "संस्थानक" उसी राज्य का कोतवाल भी था—"कडुवा और नीम-चढ़ा" । इसके घमण्ड का क्या ठिकाना था—तृणवत् मन्यते जगत् ! यह बड़ा मूर्ख और कुटिल था । इसी उज्जयिनी में एक बड़ी धनवती वेश्या वसन्तसेना रहती थी । चारुदत्त एक ब्राह्मण था जो किसी समय में बड़ा धनवान् था; परन्तु काल-वश अपना सब धन खो चुका था । तोभी उसके चित्त से उदारता नहीं गई थी । वसन्तसेना की आँख चारुदत्त से लग गई और वह चारुदत्त के गुणों को देखकर उन पर आसक्त थी और अपना सर्वस्व उनके अर्पण करने को प्रस्तुत थी । संस्थानक वसन्तसेना को चाहता था । मूर्ख का चाहना ही क्या ? और वसन्तसेना चारुदत्त के सामने ऐसे गुण-हीन मनुष्य से

क्यों मिलने लगी ? एक दिन अँधेरी रात में वसन्तसेना अपने घर से चारुदत्त के घर जारही थी। संस्थानक और उसके साथियों ने मार्ग में उसे पकड़ लिया और बहुत तङ्ग किया। एक साथी के इशारे से अवसर पाकर वह अँधेरे में अपने आभूषण उतारकर काँख में दबाये, चुपके से चारुदत्त के घर में घुस गई। मूर्ख संस्थानक ने बहुत कुछ यत्न किया, परन्तु वसन्तसेना न मिली। ऐसी ऐसी बातों से चारुदत्त से संस्थानक बहुत रुष्ट हो गया था।

एक दिन वसन्तसेना चारुदत्त के घर आई और पावस की मदमाती सेना से डरी हुई रात में घर न लौटसकी। वहीं सो रही। सबेरे उसकी बहली उसे लेने घर से आई और चारुदत्त के घर के सामने खड़ी थी। वसन्तसेना को कपड़ा बदलने में देर हुई। गाड़ीवान गद्दी भूल आया था, उसे लेने के लिए गाड़ी वापस लेगया। इसी बीच में संस्थानक की गाड़ी जो पुष्पकाण्ड बाग़ को जाती थी, रास्ते में भीड़ होने के कारण चारुदत्त के घर के सामने रुक गई और गाड़ीवान भीड़ को हटाने चला गया। वसन्तसेना यह समझकर कि गाड़ी मेरी ही है चारुदत्त के घर से निकलकर संस्थानकवाली गाड़ी में सवार हो गई।

एक अहीर के लड़के आर्यक को पालक के स्थान में लोग राजा बनाना चाहते थे। पालक ने इसी भय से उसको पकड़वाकर बन्दी कर रक्खा था। उसके एक मित्र ने उसे बन्दी-गृह से छुड़ा दिया था वह भागा जारहा था कि इसी बीच में वसन्तसेना की गाड़ी लौटी और उसे ख़ाली देखकर चोरी से आर्यक उसमें सवार होगया। चारुदत्त ने अपनी दयालुता से यह सब वृत्तान्त जानकर भी आर्यक को बचा लिया।

संस्थानक की गाड़ी वसन्त-सेना को लिये हुए पुष्पकाण्ड बाग़ में पहुँची जहाँ संस्थानक अपने सहचरों के साथ मौजूद था। वसन्तसेना को देख उसने अनेक प्रकार से धमकाया और फुसलाया। जब वह किसी प्रकार से वश में न आई और चारुदत्त की ही प्रशंसा गाती रही, तब संस्थानक ने उसे जान से मारडालने की जी में ठानी। सहचरों ने ऐसा निन्दित कर्म करने से इनकार कर दिया और संस्थानक को भी उससे रोकना चाहा; परन्तु यह कब माननेवाला था! सहचरों को तो झूठे झूठे बहाने से उसने भेज दिया और स्वयं वसन्तसेना को मारकर पत्तों में छिपा आया। जब सहचर लौट आये तब उसने उनको झूठी झूठी बातें बनाकर बहका दिया। जब उन्हें यह बात प्रकट होगई तब उसने यह कोशिश की कि उनमें से कोई इस हत्या का दोष अपने ऊपर ले ले। जब इस में भी सफलता न हुई तब उसने उनको झूठा साक्षी बनाना चाहा और फिर उन पर झूठा दोष लगाने की चेष्टा की। उनमें से एक तो उसका साथ छोड़कर भाग गया और दूसरे को इस भय से कि वह हत्या का सच्चा हाल न प्रकाशित कर दे, संस्थानक ने अपने घर में बन्द कर दिया और फिर स्वयं न्याय-गृह में जाकर चारुदत्त पर यह अभियोग लगाया कि आभूषण लेने के लालच से इसने वसन्तसेना को मार डाला।

चारुदत्त बुलाया गया। वसन्तसेना की मृत्यु का हाल सुनकर उसे बड़ा खेद हुआ। उसने पहले तो जुर्म से इनकार कर दिया। फिर यह सोचकर कि बिना वसन्तसेना के जीवन वृथा है उसे अपने सिर ओढ़ लिया। इसी अभियोग में न्यायाधीश को और सेठ कायस्थ को जो व्यवस्था देने के लिए न्यायाधीश के पास बैठे थे, संस्थानक का धमकाना, उन पर बारम्बार अपना और राजा का सम्बन्ध जताना, अनेक प्रकार से उनका तिरस्कार करना, साक्षियों को घुड़की देना, ये सब बातें कोतवाल के चरित्र का परिचय देती हैं। बेचारे न्यायाधीश ने यही ठहराया कि अभियोग सिद्ध है और चारुदत्त को फाँसी पाने की आज्ञा मिली।

चाण्डाल ढँढोरा पीटते हुए उसको ले चले। ढँढोरा सुनकर वह सहचर जिसे संस्थानक ने इस भय से बन्द कर रक्खा था कि वह कदाचित् साक्षी न बन जाय बन्दीगृह के ऊपर से कूद पड़ा। उसने सच्चा वृत्तान्त कह सुनाया। तुरन्त संस्थानक की पुलिस-बुद्धि काम आई। संस्थानक ने उसको एक सोने का आभूषण पकड़ा दिया और कहा कि तुम झूठी साक्षी दे दो और इसको ले लो। जब वह राज़ी न हुआ तब उस पर संस्थानक ने यह दोष लगाया कि यह नौकर चोर है, इसने मेरे घर में चोरी की है, इसलिए बन्द किया गया है और द्वेष से झूठा साक्षी बनता है। चाण्डाल कोतवाल के सामने नौकर की क्यों सुनने लगे थे? वह हटा दिया गया।

एक संन्यासी जिसके साथ संन्यास लेने से पहले चारुदत्त और वसन्तसेना दोनों उपकार कर चुके थे तालाब में स्नान करके अपना वस्त्र सुखाने गया। उसकी दृष्टि कटी हुई वसन्तसेना पर पड़ी। उसको पहचानकर वह अपनी झोपड़ी पर ले आया और सेवा करके उसको मरने से बचा लिया। वसन्तसेना जीवित हो गई। चारुदत्त के मरने का समय समीप आया। वसन्तसेना और संन्यासी घर जा रहे थे। जब उन्होंने अन्तिम ढँढोरा सुना तब तुरन्त वहाँ पहुँचे। वसन्तसेना को देखते ही संस्थानक के होश ने उसके शरीर से और संस्थानक ने उस स्थान से प्रस्थान कर दिया।

राजा पालक का राज्य जाता रहा। आर्यक राजा हो गया। वसन्तसेना के सच्चा हाल बताने पर चारुदत्त निर्दोष ठहरा। पुराना उपकार याद करके आर्यक ने चारुदत्त को बड़ा अधिकार सौंपा। अपने किये हुए का दण्ड पाने के लिए संस्थानक पकड़ा हुआ चारुदत्त और राजा के सम्मुख लाया गया।

अब उसका चरित्र देखिए। वह चारुदत्त की शरण चाहता है, उसके चरणों पर गिरता है और प्राण-दान माँगता है। उदारशील चारुदत्त उसे क्षमा करता है और उसके पहले पद पर उसे नियुक्त करता है। संस्थानक का चरित्र एक पुलिस-अधिकारी का नमूना है। ऐसे अभियोग कितने न सुनने में आये होंगे?

खड्गजीत मिश्र, एम० ए०,
एल-एल० बी०

हमारा व्यापार।

"इस बात से देश के औद्योगिक विकास की अच्छी तरह परख की जा सकती है कि देश में से तैयार माल की निकासी के परिमाण में कच्चे माल की कितनी निकासी होती है और कच्चे माल की आमदनी के परिमाण में तैयार माल की कितनी आमदनी होती है। साधारण रीति से यह बात मानी हुई है कि तैयार माल के निकास और कच्चे माल की आमद पर देश के उद्योग की अभिवृद्धि होती है, और कच्चे माल के निकास और तैयार माल की आमद पर अवनति। औद्योगिक अर्थ-शास्त्र का यह विश्वसनीय नियम है।"—श्रीमान् सयाजीराव गायकवाड़।

सरकार के वणिज् व्यापार-विभाग से प्रतिवर्ष हमारे देश के उद्योग-व्यापार-सम्बन्धी अङ्कों के नक़्शे प्रकाशित किये जाते हैं। ये वृत्तान्त एकत्र छपवाने के लिए इस विभाग की ओर से बहुत कुछ ख़र्च किया जाता है। परन्तु सर्वसाधारण भारतवासियों के अभाग्य से सारी हक़ीक़त अँगरेज़ी में प्रकट होती है, जिससे इस विषय की ओर जनता का पूरा पूरा ध्यान नहीं खिँचने पाता। इन्हीं अङ्कों के आधार पर, सरकार, एँग्लोइण्डियन अँगरेज़ी समाचार-पत्र, और अन्यान्य हमारे हितैषी कहते हैं कि इस साल इतना व्यापार हुआ और अमुक साल इतना ही हुआ था; आयात में जो इतनी वृद्धि हुई सो भारत की आर्थिक दशा के सुधरने का सबूत है, इत्यादि। ये भ्रामक बातें न केवल विदेशियों को, प्रत्युत सम्पूर्ण भारत की सर्व-साधारण प्रजा को भी, देश की सच्ची स्थिति के ज्ञान से वञ्चित रखने के लिए काफ़ी जान पड़ती हैं। कहीं कहीं इस

भूलभुलैयां में से निकालकर, हमें माननीय जोशी, न्याय-मूर्ति रानडे, माननीय गोखले और सर दीनाशा वाचा ऐसे सज्जन सत्य मार्ग बतलाते हैं और पूर्वोक्त वाग्जाल के भँवर में डूबने से हमें बचाते हैं।

किसी भी देश की निकासी और आमदनी के अङ्कमात्र से यह ध्यान में नहीं आ सकता कि देश की वास्तविक आर्थिक स्थिति कैसी है। यदि अङ्क पर ही विश्वास रक्खा जा सकता हो तो कितने ही वर्षों से आमदनी की अपेक्षा हिन्दुस्तान की निकासी बढ़ी हुई है। इसका परिणाम यह होना चाहिए था कि हमारे यहां ज़्यादा पैसा आता और उसका प्रभाव सारी प्रजा पर पड़ता। परन्तु बात ऐसी नहीं है। यह सच है कि आमदनी से निकासी ज़्यादा है; परन्तु ऐसा होने का सच्चा कारण यह है कि भारत के सिर पर जो बड़ा भारी क़र्ज़ है (भारत ने जो क़र्ज़ में रुपया लिया है) उसका व्याज भरना पड़ता है, अँगरेज़ अफ़सरों की पेंशन विलायत में चुकाई जाती है और सेक्रेटरी आफ़ स्टेट के दफ़्र इत्यादि का ख़र्च देना पड़ता है। अर्थात् आमदनी और निकासी के ऊपर रचा हुआ जो अभिवृद्धि का महल है वह इस तरह ऊपर का ऊपर हवा में उड़ जाता है।

इसके सिवा, जो देश केवल तैयार माल मँगवाता है और उसके एवज़ में असंशोधित सुवर्ण के ऐसा कच्चा (raw) माल भेजता है उस देश की अपेक्षा वह देश सदा बहुत ही अच्छी स्थिति में रहेगा जो कच्चे माल की आमदनी कर तैयार माल की निकासी करता होगा। कच्चे माल की निकासी करने से हमारी प्रजा की हानि होती है। उसे तैयार माल करने की रोज़ी, नफ़ा, व्याज और व्यापार का मुनाफ़ा नहीं मिलता—अर्थात् कारीगर को रोज़ी नहीं मिलती, पूँजीवाला व्याज से महरूम रहता है और व्यापारी नफ़े से कोरा रह जाता है। परिणाम में देश पर ख़राब असर पड़ता है। इसके विरुद्ध तैयार माल की निकासी बढ़ने से ऊपर बताये हुए सारे लाभ देश को होते हैं और उद्योग-धन्धों का पोषण होने से पैसा बढ़ता है और सभी प्रकार से देश की आर्थिक स्थिति का सुधार होता है। यही बात सयाजीराव गायकवाड़ ने संक्षेप में, कलकत्ते में कही थी जिसका अवतरण इस लेख के प्रारम्भ में किया है।

इतना उपोद्घात लिखने के बाद अब हम अपने देश के व्यापार-सम्बन्धी कुछ अङ्कों का अवलोकन करते हैं।

लड़ाई के पहले और पीछे की आमदनी और निकासी के अङ्क नीचे लिखे मुआफ़िक हैं।—

			लड़ाई के बीच में
सन्	१९१०–११	१९१३–१४	१९१५–१६
कुल आमदनी	१७३·४४ करोड़	२३५ करोड़	१४९ करोड़
कुल निकासी	२१७·०९ ,,	२५६ ,,	२०८ ,,
कुल योग	३९०·५३	४९१	३५७

(चांदी, सोना और सरकारी सामान सहित)

लड़ाई शुरू होने से पहले १९१०–११ में ४३·६५ करोड़ और १९१३-१४ में २१ करोड़ की निकासी ज़्यादा थी और लड़ाई के बीच में भी ५९ करोड़ की निकासी ज़्यादा थी। यह ज़्यादती स्थूल दृष्टि से सामान्य मनुष्य को भूल में डाल देने के लिए काफ़ी है।

प्रति मनुष्य की औसत के हिसाब से आमदनी और निकासी नीचे लिखे मुआफ़िक है—

		आमदनी	निकासी	कुल योग
सन् १९००–१ (बस्ती २९,४०,००,०००)	रु०	३–८–०	४-०-०	७-८-०
सन् १९१० – ११ (बस्ती ३१,५०,००,०००)	,,	५ ८ ०	६-१४-४	१२-६ ४

अन्यान्य देशों की सुख-समृद्धि के साथ तुलना करने से हमारी मनुष्यवार आमदनी का औसत बहुत ही कम है। इस विषय में करांचीवाले चन्द्र महाशय ने नीचे लिखे मुआफ़िक व्यापार-विषयक आमदनी की तुलना की है—

आस्ट्रेलिया	रु०	४४१
कनेडा	,,	३६–१–०
युनाइटेड किंगडम (इँग्लेंड वग़ैरह)	,,	३ २
फ़्रांस	,,	२१२–४-०
जर्मनी	,,	२०१–१२–०
इटली	,,	९५–४–०
तुर्किस्तान	,,	४२–०–०
भारतवर्ष	,,	१३–८–०

इस तुलना के देखने से भली भांति समझ में आ जाता है कि अँगरेज़ों के न्यायी, शान्त और सुलह-पूर्ण कहे जाने-

वाले राज्यतन्त्र के नीचे आने पर भी अन्यान्य देशों के साथ की तुलना में भारत की क्या स्थिति है।

लड़ाई के कारण से आमदनी और निकासी में बहुत कमी हुई है। इससे अख़ीरी सत्तावार अङ्कों के साथ लड़ाई के पहले अर्थात् १९१३–१४ सन् में हमारे देश का व्यापार कितना था, सो नीचे के अङ्कों से समझ पड़ेगा। ज़्यादातर ध्यान को खींचनेवाली बात तो यह है कि लड़ाई होने की हालत में भी दियासलाई, साबुन, ताश आदि की आमदनी बढ़ी है। अ, आ, इ, में बतलाई हुई चीज़ों को हमारे यहाँ तैयार करने में बहुत ही कठिनाई का डर नहीं है। इनमें से कितनी ही चीज़ें तो ऐसी आती हैं, जो भारतवासियों को नीचा दिखानेवाली हैं। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि मौज-शौक़ के लिए हमें कितना कर देना पड़ता है।

अ

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न या संख्या	१९१५–१६ वज़न या संख्या	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
बिस्किट (सील)	९३,४५,०००	६६,२४,०००	४४,८१,०००	३५,२७,०००
बनावटी दूध (रतल)	१,५६,८१,०००	९७,७०,०००	४१,५१,०००	३३,३०,०००
आटे की बनी हुई और पेटेन्ट खुराक (हंडरवेट)	२,९८,०००	२,५२,०००	४७,७५,०००	४३,५५,०००

आ

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न या संख्या	१९१५–१६ वज़न या संख्या	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
हारमोनियम (आरगिन सहित), नग	५६८	३२१	६०,०००	३०,०००
पियानो ,,	८१८	४३७	४,५०,०००	२,५०,०००
ग्रामोफ़ोन			१०,७०,०००	४,६०,०००
सेंट वग़ैरह			५,००,०००	३,३०,०००
शृङ्गार की फुटकल चीज़ें			२२,०३,०००	१९,०२,०००
ताश वग़ैरह			६,३०,०००	८,००,०००
फ़रनीचर			३३,६०,०००	२५,३०,०००
बाइसिकल, नग	३४,५७७	१९,३४२	३४,७२,०००	२१,२१,०००
मोटर, साइकल और उसका सामान	४,४१९	४,३०४	१,५३,००,०००	१,२९,००,०००

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न या संख्या	१९१५–१६ वज़न या संख्या	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
गाड़ी, नग	१३,६१८	५,०७०	२५,३८,०००	८,१४,०००
बूट, शूज, जोड़ी	३२,९५,०००	१४,१९,०००	७९,२६,०००	३७,५०,०००
काच के मणके और खोटे मोती (हंडर०)	३२,०००	१६,०००	२४,५०,०००	११,००,०००
कांच की चूड़ियां			८०,४५,०००	२३,१६,०००
साबुन (हंडर०)	३,६३,०००	४,७४,०००	७५,०६,०००	८४,५३,०००
छाते । नग	१९,६७,५६०	१०,५७,८५९	५३,१०,०००	३१,६९,०००
पहनने के कपड़े			८३,२१,०००	६५,४३,०००
टोपियाँ, हैट् वग़ैरह			२१,१७,०००	१२,१४,०००
उतरे कपड़े (सेकंड-हैंड)			१०,६४,०००	६,७४,०००
अलूमेनियम का सामान			२५,५१,०००	१४,३०,०००
मीना चढ़ाई हुई चीज़ें			२७,६७,०००	८,६८,०००
चाकू, कैंची, वग़ैरह लोहे की चीज़ें			१८,७०,०००	७,६८,०००
खिलौने			४४,१७,०००	३१,१०,०००

इ

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न या संख्या	१९१५–१६ वज़न या संख्या	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
ईंट की नलियां	२,५०,३७,०००	१,९२,४२,०००	२४,७०,०००	२१,११,०००
बोतलें, ग्लास	३,५७,०००	३,३७,०००	२१,९३,०००	१६,१७,०००
कुल कांच का सामान			१,९४,५३,०००	१,०६,४४,०००

जिन्स का नाम	१९१३-१४ वज़न या संख्या	१९१५-१६ वज़न या संख्या	१९१३-१४ रुपये	१९१५-१६ रुपये
सीमेंट (हंडर०)	२९,३०,०००	२६,३३,०००	६५,८५,०००	७०,३५,०००
लोहे की पटड़ी, टन	३१,०००	३१,०००	४३,१८,०००	६४,००,०००
कीले, स्क्रू वग़ैरह, टन	२७,०००	२५,०००	६१,८७,०००	७९,४४,०००
तांबे का सामान (हंडर०)	६,६७,०००	९६,०००	३,६५,६७,०००	६,२०,४०,०००
दीपक और उसके मुताल्लिक सामान			५२,४७,०००	२८,८३,०००
रङ्ग (रतल)	१,६१,७३,०००	७,१५,०००	१,४१,२९,०००	४५,१३,०००
टाइप राइटर्स	६,०००	४,०००	१०,०५,०००	७,६४,०००

नीचे लिखे हुए कोष्टकों में और भी चौंका देनेवाले हाल दर्ज किये जाते हैं। हमारे यहां कैसी और कितनी चीज़ें आती हैं! यदि हमारे सेठ, साहूकार इधर ध्यान देवें तो अवश्य लाभ हो सकता है।

अ

जिन्स का नाम	१९१३-१४ वज़न या संख्या	१९१५-१६ वज़न या संख्या	१९१३-१४ रुपये	१९१५-१६ रुपये
सब प्रकार की मदिरा (गेलन)	६७,८६,०००	४८,२६,०००	२,२३,७१,०००	१,८७,३४,०००
शकर (हंडरवेट)	१,७९,३७,०००	१,२८,५५,०००	१४,९५,६९,०००	१६,६१,७८,०००
दियासलाई (ग्रोस)	१,३८,९४,०००	१,८३,०५,०००	८९,६५,०००	१,३८,३१,०००
नमक (टन)	६,०७,०००	५,४९,०००	८७,६६,०००	१,२५,०१,०००
पेटेन्ट दवाइयां			२६,४०,०००	२०, ६३,०००
भरने, गूँथने और सीने की कलें			४०,७०,०००	२९,८२,०००
रेल के लिए स्लीपर्स (हंडरवेट)	१०,५०,०००	१,४०,०००	३८,२७,०००	५,२६,०००
रेलगाड़ियां और उसके विभाग			४,६९,५९,०००	१,४४,८३,०००
निब, पैंसिल वग़ैरह			७०,००,०००	२६,८०,०००
तमाखू या उससे बने हुए पदार्थ (रतल)	२९,५८,०००	२४,३७,०००	७५,३०,०००	८०,१५,०००

आ

जिन्स का नाम	१९१३-१४ वज़न या संख्या	१९१५-१६ वज़न या संख्या	१९१३-१४ रुपये	१९१५-१६ रुपये
मोज़े, गंजीफराक वग़ैरह सूती			९१,७७,०००	६४,००,०००
रूमाल, शाल वग़ैरह (नग)	३,८०,८८,०००	८३,०६,०००	८८,९२,०००	१४,९३,०००
सीने के धागे (रतल)	१,७०,०५,०००	१९,२०,०००	३९,००,०००	४३,७६,०००
पेटीकोट्			५४,१२,०००	४३,६४,०००
लेस			६,३०,०००	७,८०,०००
सूती साड़ियाँ			१,८४,१०,०००	८४,७५,०००
सफेद धोती, लुंगी वग़ैरह			१६,६५,००,०००	११,०५,००,०००
सारा सूती माल			६६,५७,६६,०००	४३,३३,८६,०००
सारा रेशमी माल			४,३७,१९,०००	३,८४,१८,०००
गरम शाल (नग)	२१,०१,०००	२,६३,०००	५६,४२,०००	७,४५,०००
सारा ऊनी माल			४,०५,१६,०००	१,१९,११,०००

जो माल हमारे देश में न तो तुरन्त मिल ही सकता है और न बनाया जा सकता है उसकी आमदनी नीचे लिखे मुआफ़िक हुई है --

जिन्स का नाम	१९१३-१४ वज़न या संख्या	१९१५-१६ वज़न या संख्या	१९१३-१४ रुपये	१९१५-१६ रुपये
बीम्स गर्डर्स (टन)	९०,०००	२६,०००	१,१५,५५,०००	४१,७०,०००
तांबे के पतरे (हंडर०)	८०,०००	२०,०००	४६,१४,०००	१२,११,०००
जर्मन सिल्वर ,,	२६,०००	२,०००	२२,१६,०००	२,१३,०००
रुई सन वग़ैरह के मिलों के लिए साँचे			३,२७,९९,०००	२,१७,४९,०००
बाइलर्स			३५,५४,०००	२१,२३,०००

जिन्स का नाम	१९१३-१४ वज़न या संख्या	१९१५-१६ वज़न या संख्या	१९१३-१४ रुपये	१९१५-१६ रुपये
सब प्रकार के सांचे			७,७५,८३,०००	४,७७,७४,०००
सारा रेलवे का सामान डब्बों सहित			१०,०३,४७,०००	४,२१,८५,०००
इंजन			१,९०,३४,०००	१,४४,२४,०००
कागज़ और पुट्ठे			१,५८,७७,०००	१,४४,२४,०००
रबर			५२,९०,०००	६१,४१,०००
घड़ी और उसके मुताल्लिक सामान (नग)	८,४६,२७१	५,३५,३८९	२६,६३,०००	१९,६७,०००

आनेवाली चीज़ों का हाल हमें मालूम हुआ। अब हम हमारे यहां से निकास होनेवाली चीज़ों का अवलोकन करें। मोटी निगाह से देखनेवाले को भी जान पड़ेगा कि निकासी की चीज़ों में बहुत बड़ा हिस्सा कच्चे माल का ही है। आवश्यक है कि 'ख' और 'ग' पर ख़ास तौर पर ध्यान दिया जावे।

क

जिन्स का नाम	१९१३-१४ वज़न	१९१५-१६ वज़न	१९१३-१४ रुपये	१९१५-१६ रुपये
रंगने और चमड़ा कमाने के उपयोगी सामान (हं०)	१४,६७,०००	१६,८०,०००	१,०४,०३,०००	३,१३,०३,०००
लाख (हं०)	३,३९,०००	४,१७,०००	१,६६,५८,०००	१,७१,७६,०००
हड्डियाँ (टन)	१,०५,०००	५१,०००	७८,३३,०००	३५,३४,०००
सींग (हं०)	८०,०००	२३,०००	१५,९०,०००	५,८४,०००
तम्बाखू (रतल)	२,७८,१७,०००	२,४२,५०,०००	३१,७७,०००	३०,१९,०००
घी (रतल)	५५,६९,०००	५२,९१,०००	३४,९४,०००	३०,७७,०००
कच्ची धातु (टन)	७,२६,०००	४,७८,०००	१,५४,६१,०००	१,३९,१९,०००

ख

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न या संख्या	१९१५–१६ वज़न या संख्या	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
गायें के चमड़े (हं०)	७,४३,०००	६,८९,०००	५,९०,५५,०००	५,६१,५९,०००
बछड़ों के चमड़े (हं०)	२६,०००	३०,०००	१८ ३१,०००	२३,६०,०००
सब प्रकार के कच्चे चमड़े (हं०)	१६,३२,०००	१३,३५,०००	११,७२,२९,०००	९,७९,५३,०००
गाय का पका चमड़ा (हं०)	१,५८,०००	२,४७,०००	१,४७,४०,०००	२,८३,८९,०००
सब तरह का पका चमड़ा (हं०)			४,२५,०२,०००	५,६३,८२,०००
सन (टन)	७,६८,०००	६,००,०००	३०,८२,६४,०००	१५,६४,२०,०००
सन के रेशे (हं०)	७,१२,०००	६,०८,०००	१,०२,३५,०००	१,०२,५४,०००
रुई (हं०)	१,०६,२६,०००	८८,५४,०००	४१,०४,२५,०००	२४.९२,८९,०००

ग

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न	१९१५–१६ वज़न	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
गेहूँ (हंडरवेट)	२,४०,४४,०००	१,३०,५८,०००	१३,१३,३४,०००	८,४४,०७,०००
चावल ,,	४,९०,०७,०००	२,७३,४८,०००	२६,६०,६५,०००	१५,४५,५३,०००
चना	१३,९२,०००	६,५०,०००	६२,२७,०००	३३,६९,०००
सब प्रकार का अनाज	८,३८,९५,०००	४,८७,१९,०००	४५,१४,१४,०००	२९,०७,१२.०००
अलसी	८२,७७,०००	३८,६०,०००	६,६८,७०,०००	२,९७,४२,०००
सरसों	४९,८०,०००	१९,०४,०००	४,२७,७६,०००	१,४०,७९,०००

जिन्स का नाम	१९१३–१४ वज़न या संख्या	१९१५–१६ वज़न या संख्या	१९१३–१४ रुपये	१९१५–१६ रुपये
मूँगफली	५५,५८,०००	३५,०९,०००	४,८८,१४,०००	२,५०,३४,०००
बिनोले	५६,८७,०००	१९,१३,०००	२,१२,५१,०००	६६,७६,०००
सब प्रकार के बीज	३,१६,५३,०००	१,३९,९९,०००	२५,६७,५४,०००	१०,१२,२६,०००

१९१३–१४ ई० में कुल माल २३५ करोड़ का आया। इसमें सरकारी स्टोर को अलग कर देने पर इँग्लेंड (यूनाइटेड किंगडम) से १,१७,५८,२६,२५५ रुपये का माल नीचे लिखी हुई मुख्य वस्तुओं से मिलकर होता है। (इसी अर्से में ७,५०,२०,५५० का माल विलायत से सरकारी स्टोर के रूप में आया था।)

माल	क़ीमत	माल	क़ीमत
रेशमी और गरम कपड़े पहनने के तैयार कपड़ों सहित	३,२२,३५,४०५ रुपये	शराब	१,४१,०३,६४५
सूती कपड़ा और सूत	५९,७५,१४,३५० ,,	काग़ज़ किताबें वग़ैरह	१,८६,२६,३२५
धातु और कच्ची धातु	१४,०४,९९,१०५	दवा	१,२३,२८,१५५
रेलवे का सामान	९,३२,८८,३४१	साबुन	६८,२४,४१५
सांचे	६,९५,७७,७८५	नमक	२०,४४,८१५
हार्डवेअर—कटलरी	२,४४,०७,२३५	छत्री	३०,३०,३३०

यहां पर इस बात का विचार करना भी अनुपयुक्त न होगा कि आख़िरी ४० वर्ष में नीचे लिखे हुए देशों से किस क़दर माल की आमदनी बढ़ती गई।

सन्	युनाइटेड किंगडम	बेलजियम	आस्ट्रिया हङ्गरी	जर्मनी	जापान
१८७५–७६	३२,२७,६१,०००	२,१७०	९,५५,४००	२,३५,२००	५३,५००
१८७५–८४ तक	३७,९०,६६,०००	५,०७,३८०	२२,०४,१००	६,२८,८००	१,०६,४००
१८८५–९४ तक	५१,८३,६०,०००	१,०१,६०,३००	८६,८९,५००	९४,०३,५००	८,८०,३००

सन्	युनाइटेड किंगडम	बेलजियम	आस्ट्रिया हङ्गरी	जर्मनी	जापान
१८६५-०४ तक	५६,४१,५२,०००	२,७१,१५,८००	२,५६,६८,६००	२,५३,२०,६००	७३,७५,६००
१६१०-११	८३,११,५१,०००	५,८१,४८,६००	३,१६,५१,८००	५,१५,७४,१००	३,३५,८६,०००
१६१३-१४	१,२५,०८,४६,८००	४,२८,२३,०००	४,२६,१६,१००	१२,६७,७१,५००	४,७८,०३,२००

इस तरह विदेशी तैयार माल ज़्यादा ज़्यादा हमारे यहाँ आकर खपता रहा और उसके एवज़ में हम कच्चे माल का निकास करते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत की प्रजा को इस बात की ज़्यादा से ज़्यादा ज़रूरत पड़ती गई कि वह खेती पर अपनी गुज़र करे। इसका ख़याल नीचे लिखे कोष्ठक से होगा।

सन्	बस्ती	टके	कितनों का खेती पर गुज़र होता है
१८६१	२८,७०,००,०००	६२	१७,७६,४०,०००
१६०१	२६;४०,००,०००	६८	१६,६६,२०,०००
१६११	३१,५०,००,०००	७१	२२,३६,५०,०००
स्वर्गीय गोखले और अन्यान्य लोक-नेताओं के मत से १६११ ईसवी में	३१,५०,००,०००	८०	२५,२०,००,०००

स्टेटिस्टिक (अङ्क-संग्रह) के डाइरेक्टर फेंडले शिरास महाशय ने १६१५-१६ के वणिज्-व्यापार का अवलोकन करते हुए, हमारी हालत के विषय में नीचे लिखे हुए विचार प्रकट किये हैं—

"लड़ाई प्रारम्भ होने के समय से भारत में व्यापार की जो विलक्षण स्थिति रही है उससे नीचे लिखी हुई दो भावनायें विशेष दृढ़ हुई हैं। (१) यह कि इस देश का बहुत बड़ा आधार अपने कच्चे माल की निकासी पर है और (२) इन निकासी की वस्तुओं की खपत बहुत ज़्यादा तादाद में यहीं करके उद्योग-हुनर के द्वारा तैयार माल यहीं बनाना चाहिए। भारत के मनुष्यों का खेती पर बेहद आधार है। इस आश्रय का परिणाम अनावृष्टि आदि के सालों में बड़ा ही गम्भीर होता है। लोग बेरोज़गार हो जाते हैं और भयङ्कर दुकाल पड़ जाते हैं। इस बात में मत-भेद नहीं है कि इस पराधीनता को, नये नये कल-कारख़ाने खोल और उद्योग-हुनर की उन्नति कर, कम करना चाहिए। कहने का तात्पर्य्य यही है कि वणिज्-व्यापार और रोज़गार-धन्धे के बारे में भारत जिस प्रकृति-विरुद्ध रीति को अङ्गीकार कर बैठा है उसे दूर करना चाहिए।"

आनेवाले माल के परिमाण में वह माल स्वयं यहाँ पर कितना तैयार होता है, यह आगे लिखे कोष्ठक से जान पड़ेगा।

सन् १९१३–१४

चीज़ें	आनेवाला माल		यहाँ तैयार होनेवाला माल		
	वज़न (रतल)	क़ीमत (रुपये)	वज़न (रतल)	क़ीमत (रुपये)	कारख़ानों की संख्या
काग़ज़ (रतल)	१२,९०,४०,०१६	१,६६,८३,३८३	६१,०५,९३,०००	८०,३७,०००	९
बनावटी ऊन का माल (रतल)	ठीक हाल नहीं मिला	३,९१,१९,६०९	५१,५०,०००	६१,६१,०००	७
नमक (टन)	६,०६,९४०	८७,६६,४८३	१४,७३,११६	८१,२१,००७	...
कोयला	६,४४,९३४	१,४८,०६,२०२	१,६२,०८,००८	५,६९,७२,०५५	...
पेट्रोलियम (गेलन)	३६,८७५	४२,०१५	२७,७५,५५,२२५	१,५५,१८,७९४	...
केरोसिन तैल (गेलन)	६,८८,४९,९७३	२,८५,६४,५११	१०,६१,१८,९९८	क़ीमत नहीं मिली	...
शराब	६७,८६,०००	२,२३,७१,२८७	३६,५४,५२१	...	२१
सूत (रतल)	३,७३,५२,६६७	४,१६,४२,४४९	६८,२७,७६,८५१	...	...
सूती बुना हुआ माल (रतल)	अलहदा ठीक विगत मालूम नहीं		२७,४३,८८,५५०	...	...
कुल सूती माल	...	६१,७८,९०,१६९	...	१६,०९,८३,०५७	२१६
सीसा (टन)	३९५२	१५,६४,५६०	५८५८	१०,७२,६७४	...

भारतवर्ष में जो कुछ थोड़ासा यह उद्योग है सो भी केवल भारतवासियों के हाथ में नहीं है। क़रीब क़रीब वे सारे उद्योग विदेशियों के हाथ में हैं, क्योंकि उनमें विशेष पूँजी, साहस और उच्च प्रकार के शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता होती है। सन् १९१३–१४ तक ६८८८ कम्पनियाँ यहाँ पर रजिस्टर हुई थीं जिनमें २७४४ कम्पनियाँ ही चालू रही थीं। इनका मंजूर हुआ मूलधन २,३३,२३,६१,३९८ था। इसमें ८७,३०,४३,४७५ के शेअर निकाले गये थे जिनमें ७६,२६,१८,२७४ के शेअर भर गये।

२७४४ कम्पनियों में मुख्य मुख्य आगे लिखे मुआफ़िक थीं—

कम्पनी	संख्या	पूँजी (रुपये)
बैंक और सर्राफ़ी दूकानें	५५२	७,६१,५१,४००
बीमा के मुताल्लिक	२१४	४६,०८,८७१
जहाज़ के मुताल्लिक	२३	१,२३,६६,४८६
रेल्वे और ट्राम्बे के मुताल्लिक	४३	७,०६,४४,५८२
कपड़े और सूत की मिल	२०९	१५,५६,९८,१७८
सन की मिल	३५	७,४४,९४,८३०
रुई और सन के प्रेस	१४५	२,७२,४४,५६८
ऊन, रेशम, आदि की मिल	१७	१,२८,९५,२३२
चाय के मुताल्लिक	२०१	४,०६,०५,३९५
कोयले के मुताल्लिक	१३७	५,८६,५८,४२६
ज़मीन और पुल वग़ैरह के मुताल्लिक	३५	१,९१,५८,२६८

इनके सिवा १९१३-१४ ई० तक हमारे देश में व्यापार करने के लिए ५७९ कम्पनियाँ क़ायम हुई हैं; परन्तु इनके प्रधान कार्य्यालय विदेश में हैं और ये वहीं रजिस्टर हुई हैं। यह स्वाभाविक बात है कि इन्हें जो कुछ नफ़ा होता है वह विदेश में जाता है। विदेश में रजिस्टर हुई इन ५७९ कम्पनियों की मंज़ूर पूँजी ८,४३,४७,४३,९१५ रुपये में से ३,००,७०,९५,८८८ रु० वसूल हुए और इनके सिवा ८७,९३,०२,१७५ के डिबेंचर्स निकले हैं।

५७९ कम्पनियों में मुख्य इस प्रकार हैं—

बैंक और सर्राफ़ी की दूकानें	१५
बीमे के मुताल्लिक	८१
रेल्वे ट्राम	३१
जहाज़ चलाने के मुताल्लिक	८
रुई की मिल	७
सन की मिल	९
चाय, काफ़ी के मुताल्लिक	१६८
खान से सोना निकालने के मुताल्लिक	१७
कोयले के मुताल्लिक	९

ऐसे अङ्क होने पर भी और वणिज्-व्यापार सालों-साल बढ़ते रहने पर भी, भारत की आर्थिक दशा सुधरने के बदले बिगड़ती जाती है। देश के घर घर में दरिद्रता दर्शन दे रही है। सर विलियम डिग्बी, अङ्क और प्रमाणों के साथ कहते हैं कि सुलह-शान्तिवाली अँगरेज़ी हुकूमत के नीचे हिन्दुस्तान ग़रीब होता चला जारहा है।

बे-सरकारी गिनती के मुआफ़िक़ १८५० ई० में भारतवासियों की आय का दैनिक औसत दो आने

रोज़ था और चौंतीस रुपये तीन आने छः पाई सालाना आय का औसत था। फिर १६०० ई० में सब प्रकार की आय का पृथक्करण करके तहकीकात करने पर दैनिक औसत)॥। और वार्षिक १७-)॥। निकला। लार्ड कर्ज़न के समय की १६०२-३ की गिनती के अनुसार दैनिक आय लगभग ०—१—३॥। और वार्षिक ३०) से ज़्यादा न होसकी। इस आय को अन्यान्य देशों की आय से तुलना करने पर मालूम हो जायगा कि सब देशों से यहीं की आय कम है।

भारतवर्ष	३०)
इटली	१८३)
आस्ट्रिया	२३२॥)
फ्रांस	४१७)
जर्मनी	४६५)
युनाइटेड स्टेट्स	६००)
युनाइटेड किंगडम	६००)

भारत में क्यों ग़रीबी बढ़ती जाती है और भारत क्यों दिन दिन दरिद्र होता जाता है? इसका मुख्य कारण यहाँ के कच्चे माल की निकासी है। कच्चे माल की निकासी कर तैयार माल की आमदनी होने देने से, देश को जो जो लाभ मिलने चाहिएं, वे नहीं मिलने पाते, बल्कि भयङ्कर हानि होती है। यह हानि हज़ारों या लाखों से नहीं गिनी जासकती। इसकी गिनती करोड़ों रुपयों से हो सकती है। यह बात किसी अंश में ध्यानस्थ होने के लिए यहां पर कुछ उदाहरण देना अनुचित न होगा। विचारशील सज्जनों को इन पर ध्यान देना चाहिए—

(१) यहां से ११-१२ करोड़ रुपये के कच्चे चमड़े का निकास होता है। यदि हम कच्चे चमड़े की क़ीमत १॥) मानें और पके चमड़े की कम से कम औसतन ७) मानें, तो सालोंसाल हिन्दुस्तान ५० करोड़ रुपये खोता है। इस बात को तो कोई भी सामान्य बुद्धिवाला मनुष्य मान लेगा कि इस प्रकार के ५० करोड़ रुपये किसी भी विदेशी प्रजा को समृद्ध करने के लिए काफ़ी हैं।

(२) बिनौले का तैल निकालने के उद्योग के सम्बन्ध में, सुतरिया महाशय नीचे लिखे मुआफ़िक सम्मति प्रकट करते हैं—

रुई की पैदावार पर विचार करने से जान पड़ता है कि प्रतिवर्ष १६,००,००० टन बिनौले निकलते हैं। इनमें से १/१० बोने के लिए गिनने और २,५०,००० टन विदेश जाने के लिए अलग कर देने पर १२,००,००० बच रहते हैं। इनका उपयोग बहुत करके जानवरों को खिलाने में होता है। यदि इनका तेल निकालने का प्रयत्न यहां पर किया जाय तो देश को नीचे लिखे मुआफिक लाभ होवे। विशेष कर ध्यान देने की बात तो यह है कि जानवर ख़ालिस बिनौलों को पचा नहीं सकते; तेल निकालने के बाद जो खली बच रहती है वह जानवरों के खाने के योग्य होती है, क्योंकि बिनौलों में से १२/१०० परिमाण में तेल निकलता है।

लाभ इस प्रकार से हो सकता है—

१२,००,००० टन बिनौलों में कम से कम

१,२०,००० टन तेल निकलेगा—प्रतिटन	४५०	रुपये के भाव से रु०	५,४०,००,०००
५,३०,००० खली ,,	५०	,,	२,६५,००,०००
५,५०,००० फोक वग़ैरह ,,	२०	,,	१,१०,००,०००
		बिनौलों की कुल पैदावार	६,१५,००,०००
१२,००,००० टन बिनौलों की ५० रु० टन के हिसाब से क़ीमत निकाल देने पर			६,००,००,०००
		लाभ	३,१५,००,०००

हमारे देश में रहे हुए बिनौलों का इस तरह उपयोग करने से, ख़र्च निकाल देने पर भी, तीन करोड़ से ऊपर का लाभ होता है। हमारे यहां से अलसी, दाने (पोस्त), सरसों, तिल, मूँगफली, बिनौले आदि मिलकर कुल

बीज (Seeds) कोई २५½ करोड़ की क़ीमत के बाहर जाते हैं। यदि इनमें से यहीं तेल आदि निकाले जायँ तो देश को कितना लाभ न हो? छः करोड़ के बिनौलों में जब तीन करोड़ का लाभ होता है तब इस बात को समझना कठिन नहीं है कि इस हिसाब से लगभग छब्बीस करोड़ के बीजों में गये-बीते तौर पर भी बारह-तेरह करोड़ का लाभ अवश्य हो सकता है।

(३) यदि हम रुई का उदाहरण लेवें तो यह बात और भी अधिक आवश्यक जान पड़ती है कि देश में स्वदेशी उद्योग का विकास होना चाहिए। सन् १९१३-१४ में यहाँ से ३०,३६,०८८ गाँठें रवाना हुईं। यदि ३½ हंडरवेट की एक गाँठ मानें तो १,०६,२६,३१२ हंडरवेट रुई का निकास हुआ। सरकारी काग़ज़ात में इसकी क़ीमत ४१,०४,२४,८२५ रु० दर्ज हुई है। यह रुई की असली क़ीमत है। इससे बने हुए माल की असली क़ीमत प्रायः १,२३,१२,००,००० रुपये होगी। अब इसमें से रुई की क़ीमत अलग करदें तो बचत इस प्रकार होगी—

रुई के बने हुए माल की क़ीमत	१२३ करोड़
निकास की हुई रुई की क़ीमत	४१ ,,
बचत	८२ करोड़

हमारे हिसाब में थोड़ा फेर-फार भी मान लें तोभी ७५ करोड़ की बचत मान लेना किसी तरह भी अयोग्य नहीं है। कच्चे माल की ख़ूब बिक्री करने पर भी हिन्दुस्तान निर्धन रहता है। इसका कारण यह है कि नफ़ा, ब्याज, रोज़ी वग़ैरह मिलाकर ७५ करोड़ रुपया एक रुई का पक्का माल यहाँ तैयार न होने की वजह से विदेशों में रहता है। यदि रुई का निकास न कर उसकी कताई कर यहीं बुनाई होती तो यह रुपया यहीं रहता और काम आता। इस तरह अन्यान्य कच्चे माल के निकास से हमारा रुपया जादू के छू-मन्त्र की तरह पराये मुल्कों में परदेशियों की जेबें भरने के लिए निकल जाता है। हमारे व्यापार की यथार्थ स्थिति ऊपर लिखे मुआफ़िक़ है। हितैषी सेठ, साहूकारों और महाजनों का ध्यान इस ओर जाने में कल्याण है।

एक देशहितैषी।

सुलोचना।

[रामचरितचन्द्रिका से उद्धृत]

नरक में धर्मदेवी यदि विचरती,
गढ़े में राजहंसी यदि विचरती।
तदपि अचरज न था, पर दैत्य-कन्या,
सती हो क्यों हुई त्रैलोक्य-धन्या ॥१॥

असुर-कुल को सुनयना यों मिली थी;
मनों दावाग्नि में कोई खिली थी।
मनों मरुभूमि में गङ्गा बही थी;
गरलनिधि से सुधा-सरिता बही थी ॥२॥

असुर-पति भाग्य में तेरे लिखा था;
मनों विधि ने अनय करना सिखा था।
करीरों में मनों कोयल बसी थी;
मनों करि-कन्यका कीचड़ फँसी थी ॥३॥

किया तूने तथा सेवन स्वपति का;
धतूरे पर यथा हो कल्प-लतिका।
तुझे पा धन्य थे लङ्का-निवासी;
जहाँ तू थी वहीं थी गुप्त काशी ॥४॥

जगत में और कुछ तूने न जाना;
स्वपति को विश्वपति के तुल्य माना।
तुझे प्रिय था वही, कोई न दूजा;
उसे तज की न तूने अन्य-पूजा ॥ ५ ॥

सदा अनुकूल पति के तू रही थी;
तुझे श्लाघा किसीकी भी नहीं थी।
बिना पति के न गति मिलती सती को;
बिना संकल्प फल हो क्यों व्रती को ॥६॥

किसी विध का रहे भर्ता, कहीं हो,
सती का मन उसीमें हो; वहीं हो।
रहा इस भाँति का ही चित्र तेरा;
अपर नर पर न तूने नैन फेरा ॥७॥

कभी तूने कहा कुछ भी न उससे;
नहीं पल भर रही तू हीन उससे।
मरा वह जब, हुई अनुगामिनी तू;
मनों राकेश था वह, यामिनी तू ॥८॥

निशाचर-राज रण में मरगया जब;
विभीषण से मिली मन्दोदरी तब ।
सतीपन फिर तुम्हें कैसे मिला था ?
कमल विषवल्लरी में क्यों खिला था ? ॥९॥
सिया से सीख थी क्या प्राप्त तुझको ?
मिला उपदेश कैसे आप्त तुझको ?
सती क्यों राक्षसी होके हुई तू ?
त्रिपथगा कर्मनाशा से हुई तू ॥१०॥
राम-शिबिर में गई; लिया पति का सिर तूने ।
शीश हँसाकर दिया सती-परिचय फिर तूने ॥
विस्मित रघुपति हुए देख तेरा पातिव्रत ।
चढ़ी चिता पति सङ्ग, मिला तुमको फल अभिमत ॥११॥
सतियों में तव नाम सुनयने, होगा तब तक,
प्रभा सूर्य से अलग नहीं होवेगी जब तक ।
वह लङ्का है धन्य, जहाँ पर तू रहती थी ।
मनों म्लेच्छ के ग्राम वियद् गङ्गा बहती थी ॥१२॥

रामचरित उपाध्याय ।

मुग़ल सम्राट् बाबर के इतिहास की सामग्री ।

हिन्दी भाषा में इतिहास-लेखन का कार्य्य अभी गम्भीरता के साथ और नियमपूर्वक आरम्भ ही नहीं हुआ है। यही कारण है कि इस भाषा में भारतवर्ष क्या, किसी देश का—किसी देशांश का भी—स्वतन्त्र, विचार-पूर्ण, खोज-पूर्ण, सप्रमाण इतिहास नहीं मिलता । अधिकतर जो इतिहास मिलते हैं, अन्य भाषाओं के अनुवाद मिलते हैं और ये अनुवाद भी प्रायः त्रुटि-पूर्ण रहते हैं । हिन्दी में स्वतन्त्र पुस्तकें मध्यम अथवा निकृष्ट श्रेणी की हैं; प्रथम श्रेणी की पुस्तकों का तो नितान्त अभाव है । तोभी यह अभाव हमारी भाषा की हीनता को नहीं प्रमाणित करता । हाँ, इससे हमारी प्रयत्नहीनता अवश्य स्पष्ट होती है ।

मेरे विचार में इस अभाव का वर्णन ही पुनरुक्ति-दोष है । इस अभाव को दूर करने का उपाय होना चाहिए । परन्तु कार्य्य बड़ा है । यह छोटा-सा लेख इस महत्कार्य की पूर्ति में किञ्चिन्मात्र सहायता देने के उद्देश्य से उपस्थित किया जाता है ।

सम्राट् ज़हीरुद्दीन मुहम्मद (उपनाम) बाबर भारतीय इतिहास के एक प्रधान वंश का स्थापनकर्ता है । इसके वंश ने भारत में लगभग तीन शताब्दियों तक बहुत बल-पूर्वक और मानपूर्वक शासन किया । अकबर और औरङ्ग-ज़ेब दोनों इसीके वंशज थे । यह सम्राट् स्वयं अमीर तैमूर के वंश में उत्पन्न हुआ था ; और इसीके शरीर में मातृ-पक्ष से, मध्य-एशिया के विकराल चङ्गीज़ ख़ाँ का रक्त भी प्रवाहित था; बाबर भारत के इतिहास का एक प्रधान पुरुष है । इसके वंश के इतिहास का अध्ययन करने के पूर्व खुद इसीके इतिहास का जानना परमा-वश्यक है ।

यद्यपि बाबर का नाम भारतीय इतिहास के पृष्ठों में अमिट है, और यद्यपि यह नाम संसार के इतिहास में अपने भारतीय साम्राज्य द्वारा ही प्रसिद्ध है, तोभी यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि बाबर के जीवन का प्रायः सम्पूर्ण अंश भारतवर्ष के बाहर व्यतीत हुआ था । सन् १५२६ ई० की पानीपत की लड़ाई में इसने हिन्दुस्तान के लोदी वंश के सुल्तान इब्राहीम को परास्त किया । इसी समय इसके साम्राज्य का सूत्रपात हुआ, और सन् १५३० ई० में ही इसकी मृत्यु होगई । इन चार वर्षों के बीच भी इसे अपने साम्राज्य को स्थिर करने का अवसर न मिला । इसका सम्पूर्ण समय भिन्न भिन्न प्रान्तों के विजय करने में व्यतीत हुआ । बाबर की अड़तालीस वर्ष की अवस्था के केवल चार वर्ष भारत में व्यतीत हुए । बाबर के जीवन के शेष वृत्तान्त के लिए हमें मध्य-एशिया के इतिहास का आश्रय लेना पड़ेगा । इसीसे कुछ लोगों का विचार है कि बाबर भारत का वास्तविक सम्राट् था ही नहीं । बाबर के जीवन-वृत्तान्त का वर्णन अथवा उसके विषय में किसी प्रकार का वाद-विवाद इस लेख के तात्पर्य के बाहर है । इस लेख में केवल यही लिखा जायगा कि किन पुस्तकों के आधार पर बाबर के वृत्तान्त की रचना हो सकती है । अवश्य, खोज का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, और इस विषय पर अन्तिम शब्द उच्चारण करना कठिन

ही नहीं, बरन असम्भव है। तथापि एक मार्ग दिखलाया जा सकता है और यही इस लेख का निर्दिष्ट है।

बाबर के जीवन-सम्बन्धी प्रमाणों का विभाग निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

(क) मुख्य प्रमाण।

(ख) साधारण प्रमाण।

इनके अतिरिक्त यदि आधुनिक पुस्तकों का आश्रय भी लिया जाय तो एक तीसरा विभाग किया जा सकता है, अर्थात्—

(ग) आधुनिक लेख।

मुख्य प्रमाण सभी तुर्की या फ़ारसी भाषा में हैं। इनके अनुवाद (एक पुस्तक को छोड़कर) हिन्दी भाषा में नहीं हुए हैं। सुगमता के लिए, इनमें से जिनके अँगरेज़ी भाषा में अनुवाद हो चुके हैं उन्हींका परिचय दिया जायगा। यही नियम साधारण प्रमाणों के विषय में भी पालन किया जायगा, क्योंकि साधारण प्रमाण सभी फ़ारसी भाषा में हैं। आधुनिक लेख भिन्न भिन्न भाषाओं में हैं; परन्तु खेद है कि हिन्दी भाषा में कोई ऐसा महत्त्व-पूर्ण लेख नहीं है जिसका वर्णन किया जा सके। अतएव यहाँ भी अँगरेज़ी भाषा ही की शरण लेनी पड़ेगी।

प्रमाणों की गम्भीरता नियत करने के लिए ऊपर किया हुआ विभाग आवश्यक है; परन्तु यदि हम बाबर के जीवन का भी विभाग कर लें तो हमें इस पुरुष के इतिहास के समझने और अध्ययन करने में और भी सुगमता हो जायगी। यद्यपि मनुष्य का जीवन एक-मात्र जीवन है तथापि इस जीवन के विभाग – उसकी भिन्न भिन्न अवस्थाओं और जीवन की घटनाओं को देखते हुए—किये जा सकते हैं। बाबर के जीवन का विभाग तीन खण्डों में किया जा सकता है—

(१) प्रथम काल, जब कि बाबर तुर्किस्तान में समरक़न्द के आधिपत्य के लिए प्रयत्न करता रहा (जन्म से १५०४ ई० तक)।

(२) द्वितीय काल, जब बाबर काबुल पर राज्य करता रहा (१५०४ ई० से १५२६ ई० तक)।

(३) तृतीय काल, जिसमें बाबर ने हिन्दुस्तान पर विजय प्राप्त की (१५२६ ई० से १५३० ई० तक)।

प्रमाणों के वर्णन में यह बात आवश्यक होगी कि कौन-सी प्रमाण-पुस्तक किस काल के लिए श्रेष्ठ है।

अन्त में यह बतला देना भी उचित होगा कि बाबर के इतिहास के अध्ययन के लिए आवश्यक है कि कुछ देशों के समकालीन इतिहासों का भी अध्ययन किया जाय।

बाबर एक बड़ा साहसी और पराक्रमी पुरुष था, और यह आजन्म एक देश से दूसरे देश का पर्यटन करता रहा। अन्त में इसके पाँव भारत में आकर स्थिर हुए। सत्य तो यह है कि वे यहाँ भी स्थिर न होने पाये थे कि इसकी मृत्यु हो गई। मध्य तुर्किस्तान में, तैमूर के घराने में (जैसा कह आये हैं) इसका जन्म हुआ। मङ्गोलिस्तान के ख़ाँ, यूनूस ख़ाँ की बेटी इसकी माता थी। उत्तर-पश्चिमी तुर्किस्तान की उज़बेग जाति के शैबानी ख़ाँ से जन्म भर इसकी शत्रुता रही। तुर्किस्तान से परास्त होकर यह काबुल और ग़ज़नी की ओर आया। यहाँ फ़ारस के शाह सफ़वी वंश के इस्माइल शाह से इसका सम्बन्ध हुआ और फिर वैर भी हुआ। अन्त में यह काबुल भी छोड़कर हिन्दुस्तान में आया। इसलिए इसके इतिहास के अध्ययन करने के साथ ही आवश्यकता है कि समकालीन तुर्किस्तानी, मङ्गोलिस्तानी, काबुली, फ़ारसी और भारतीय इतिहास का अध्ययन भी किया जाय और उस समय की इन सब देशों की ऐतिहासिक अवस्था का मनन किया जावे।

प्रमाणों का वर्णन इस प्रकार है—

मुख्य प्रमाण।

(१) तुज़ुके-बाबरी, वाक़याते-बाबरी, बाबर-नामा अर्थात् बाबर का आत्मचरित—मुख्य प्रमाणों में सबसे श्रेष्ठ स्थान बाबर के आत्मचरित को दिया जायगा। बाबर ने यह आत्मचरित तुर्की भाषा में लिखा था। यद्यपि यह मानना पड़ेगा कि अपने द्वारा लिखा हुआ वृत्तान्त निष्पक्ष नहीं हो सकता, तथापि बाबर का आत्म-वृत्तान्त एक सङ्कुचित हृदय के लेखक का लेख नहीं है। इसने अपनी पुस्तक में अपनी त्रुटियों और दोषों का वर्णन उतनी ही स्पष्टता के साथ किया है जिस स्पष्टता के साथ इसने अपने साहस का वर्णन किया है। बाबर का आत्मचरित और आधारों से मिलान करने

पर प्रायः सभी अंशों में सत्य प्रमाणित होता है। बाबर आजन्म सैनिक रहा है; परन्तु इसकी पुस्तक में साहित्य का आनन्द आता है। बाबर अच्छे प्रकार पढ़ा-लिखा मनुष्य था। तुर्की तो उसकी मातृ-भाषा ही थी। इसके अतिरिक्त यह फ़ारसी भाषा भी जानता था, और ग़ज़लें कहता था। स्वयं इसके हस्त-लिखित कुछ पद्यों की प्रति नवाब रामपुर के पुस्तकालय में अब तक है। आदमी के स्वभाव की इसे बड़ी भारी परख थी। इसकी पुस्तक में हमें कितने ही मनुष्यों का वर्णन मिलता है। इसकी बुद्धि अनोखी थी। यह बड़ा साहसी था। इसकी पुस्तक को पढ़ने ही से यह भाव हमारे हृदयों में उत्पन्न होजाता है कि लेखक की बातें झूठी नहीं हैं। यह किसी बात को छिपाने का प्रयत्न नहीं करता था।

इस पुस्तक में बाबर के जय-पराजय दोनों का अच्छा चित्र मिलता है। अभाग्यवश यह पुस्तक पूर्ण नहीं, किन्तु खण्डित है। सन् १५०३ - १५०४, १५०८—१५१६ और १५२०-२५ तक के अंशों का पता नहीं है। यह बात अभी निश्चित नहीं है कि ये अंश बाबर ने लिखे ही नहीं या लिखे तो अप्राप्य हैं। इन अंशों के प्राप्त न होने के कारण इतिहास के विद्यार्थियों की बड़ी हानि हुई है। बाबर के इतिहास के इन अंशों की पूर्ति और और प्रमाणों द्वारा करनी पड़ती है। इन अंशों के दुष्प्राप्य होने से बाबर के 'आत्म-चरित' के तीन टुकड़े हो गये हैं। ध्यानपूर्वक देखने से मालूम पड़ता है कि लेखन-शैली में अन्तिम भाग प्रथम दो भागों से कुछ हीन है। कदाचित् बाबर को इस अन्तिम भाग को दुहराने का अवसर नहीं मिला और बीच ही में मृत्यु होगई। बाबर अपने इस रोज़नामचे को बहुत प्यार से रक्खा करता और अपने मित्रों को भी इसकी नक़लें कराकर भेट किया करता था।

बाबर की यह पुस्तक, जैसा कह चुके हैं, तुर्की भाषा में है। इल्मिनिस्की ने सन् १८५७ ई० में इसकी प्रति छपाई थी। सन् १९०५ ई० में श्रीमती बेवरिज महोदया ने इस पुस्तक की एक प्रतिलिपि छपाई। हैदराबाद पुस्तकालय में इसकी मूल पुस्तक है, और विद्वानों का मत है कि बाबर की हस्तलिखित पुस्तक की यह ख़ास नक़ल है। तुर्की भाषा से इस पुस्तक के फ़ारसी में कई अनुवाद हुए हैं जिनमें से दो मुख्य हैं। एक अनुवाद तो पयांदा हसन का है और दूसरा अनुवाद मिरज़ा अब्दुर्रहीम का। अँगरेज़ी भाषा में इस पुस्तक के कई अनुवाद हैं। उनमें से मुख्य दो हैं। एक अनुवाद अर्सकीन और लीडन साहब ने मिलकर किया था। यह अनुवाद सन् १८२६ में प्रकाशित हुआ था; पर अब दुष्प्राप्य है। यह मिरज़ा अब्दुर्रहीम के फ़ारसी अनुवाद का अनुवाद है। इसकी भाषा बहुत सुन्दर और चलती हुई है; परन्तु मूल पुस्तक से अर्थ कहीं कहीं भिन्न होगया है। दूसरा अनुवाद श्रीमती बेवरिज महाशया का है जो बाबर के इतिहास की पण्डिता हैं। बहुत श्रम से और खोज तथा प्रमाण के साथ इनका अनुवाद सन् १९१८ में समाप्त हुआ है। अभी बेवरिज महाशया की भूमिका भी नहीं निकली है। यह अनुवाद अर्सकीन और लीडन के अनुवाद से श्रेष्ठ है। यह हैदराबाद लाइब्रेरी की प्रति पर आश्रित है और इसमें टीका-टिप्पणियों की अधिकता है। यह अनुवाद बहुत शुद्ध माना जाता है।

फ़्रांसीसी भाषा में इसका अनुवाद तुर्की प्रति से महाशय पैवेट डि कोर्टील ने सन् १८७१ ई० में किया था। श्रीमती बेवरिज महाशया का अनुवाद निकलने के पूर्व सम्पूर्ण यूरोप में अभी तक यही अनुवाद सबसे प्रतिष्ठित माना जाता था।

हिन्दी भाषा में भी यह पुस्तक उपस्थित है। इसे अनुवाद नहीं कहना चाहिए किन्तु बाबर के आत्मचरित के आधार पर लिखा हुआ इतिहास। यह इतिहास हिन्दी के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ जोधपुर के मुंशी देवीप्रसादजी का लिखा हुआ है। यह पुस्तक हमारे सम्मुख है। इसे हम बहुत उच्च स्थान नहीं दे सकते। इसकी भाषा और अर्थ, दोनों में त्रुटियाँ हैं; तथापि यह कम सौभाग्य की बात नहीं कि हिन्दी में भी यह पुस्तक उपस्थित है। मुंशी देवीप्रसादजी इस पुस्तक की भूमिका में इस प्रकार लिखते हैं—

"बाबर का यह इतिहास तुज़ुक बाबरी से लिखा गया है जो उन्हींका अपना लिखा हुआ रोज़नामचा है। कहीं कहीं दूसरी तवारीख़ों से भी कुछ टीका-टिप्पणी की गई है और असल में जहाँ कहीं कुछ हाल बाक़ी रह गया था वह हबीबुल-सियर और तवारीख़ फ़िरिश्ता वग़ैरह से पूरा कर दिया गया है।"

(२) तारीखे-रशीदी, लेखक मिरज़ा हैदर, दोग़लात। बाबर की पुस्तक में जहां कहीं कुछ हाल बाक़ी रह गया था, उसकी पूर्ति मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ़ ने हबीबुल-सियर और तवारीख़-फ़िरिश्ता वग़ैरह से की है। बाबर के इतिहास के विद्यार्थियों के लिए इन हालात की पूर्ति का मुख्य आश्रय तारीखे-रशीदी है। इस पुस्तक के लेखक का सम्बन्ध बाबर से था और हैदर दोग़लात बाबर का भाई लगता था। काबुल में जब बाबर आधिपत्य कर रहा था, उस समय यह बाबर की शरण में आया था और बाबर ने इसे शरण दी थी। बाबर अपने सम्बन्धियों और अपरिचित व्यक्तियों को भी शरण दिया करता था। मिरज़ा हैदर ने मध्य एशिया के मुग़लों का इतिहास लिखा है। इसमें बाबर का भी वर्णन है। बाबर के निकटस्थ होने के कारण बाबर के विषय में जानने का इसे अच्छा अवसर मिला था। यह भारत में भी आया था और बाबर के पुत्र हुमायूँ के भी साथ रहा है। इसने अपनी पुस्तक फ़ारसी भाषा में लिखी है। इसकी पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है। यूरोप के कितने ही विद्वानों ने इसकी पुस्तक का परिचय दिया है। इसके तुर्की भाषा में भी कुछ खण्डित अनुवाद हो चुके हैं। अँगरेज़ी भाषा में अर्सकीन साहब ने इसके अंशों का भाषान्तर भी किया था; परन्तु वह प्रकाशित नहीं हुआ, ब्रिटिश अजायबघर में रक्खा हुआ है। मूल भाषा की कुछ हस्त-लिखित प्रतियाँ भी ब्रिटिश अजायबघर में हैं और तुर्की के खण्डित अनुवादों की कुछ प्रतियाँ भी। अँगरेज़ी में एकही अनुवाद प्रकाशित हुआ है। इसके अनुवादक हैं ईलियस साहब और डेनिसन रॉस साहब। यह अनुवाद १८९५ ई० में प्रकाशित हुआ था। अनुवाद बहुत उत्तम और विद्वत्ता-पूर्ण है। इस पुस्तक की भूमिका में अनुवादकों ने मिरज़ा हैदर दोग़लात का पूरा हाल भी दिया है। इस लेखक की पुस्तक में मुग़लों का साधारण हाल है। पुस्तक के दो भाग हैं—दूसरे भाग में बाबर का हाल है। जिस समय बाबर काबुल में था उस समय (हम ऊपर कह चुके हैं) मिरज़ा हैदर बाबर की शरण में आया था। उस समय का इसका हाल विशेष रूप से मान्य है। बाबर की अपनी जीवनी के हालात की पूर्ति इसके द्वारा की जा सकती है। परन्तु एक बात विचार रखने के योग्य है। मिरज़ा हैदर कट्टर सुन्नी था, और फ़ारस के शाह इस्माइल को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखता था। इस कारण अपनी संपूर्ण पुस्तक में इसने बाबर के वैरी उज़बेगों का (सन् १५१० में) पक्ष लिया है। इस अवसर पर इसका वृत्तान्त कम विश्वसनीय है, यद्यपि इसने बाबर की कृपा स्वीकार की है, और अपनी पुस्तक में भी इसका वर्णन किया है। हैदर मिरज़ा ने बाबर की चापलूसी नहीं की है। स्वयं लेखक एक उच्चवंश का वंशज था और अपनी मानहानि नहीं स्वीकार कर सकता था।

(३) हबीबुल-सियर, लेखक ख्वाँदमीर। मुंशी देवीप्रसादजी ने इस पुस्तक से सहायता ली है। इस पुस्तक की लीथो में छपी हुई प्रतियाँ बम्बई और टहरान में प्रकाशित हुई हैं। यह एक साधारण इतिहास है। इस पुस्तक के तीसरे खण्ड के तीसरे और चौथे अध्याय बाबर के इतिहास-लेखक के लिए उपयोगी हैं। बाबर और फ़ारस के शाह इस्माइल के बीच जो सम्बन्ध थे उनका पता इससे अच्छे प्रकार चलता है। इस पुस्तक का लेखक बाबर का समकालीन था। सामयिक राजनीति का इसे अच्छा ज्ञान था। जब बाबर हिन्दुस्तान में था तब इसका लेखक बाबर से मिला भी था। परन्तु यह किसी प्रकार से बाबर पर आश्रित न था; इसलिए इसकी पुस्तक में निष्पक्ष विचारों और हालों का मिलना स्वाभाविक है। यह पुस्तक हिज्री सन् ९२७ में आरम्भ की गई थी और हिज्री सन् ९३५ में समाप्त हुई थी। अभी तक इतिहास-लेखकों ने इसका बहुत उपयोग नहीं किया है। प्रयाग यूनिवर्सिटी के अध्यापक रशब्रुक विलियम्स साहब ने इस पुस्तक की बातों का समावेश अपनी पुस्तक में किया है। इसके अनुवाद अँगरेज़ी भाषा में नहीं हुए हैं। कदाचित् यही कारण है कि इस पुस्तक का अभी तक बहुत उपयोग नहीं किया गया है। यह पुस्तक भी फ़ारसी भाषा में लिखी है।

(४) शैबानी-नामा—लेखक, मिरज़ा मुहम्मद सलेह। शैबानीख़ाँ, उज़बेग बाबर का सबसे बड़ा वैरी था। इसने बाबर को तुर्किस्तान से भगाया था, और काबुल में भी बाबर को चिन्तित रक्खा था। बाबर ने इससे कई बार अपने राज्य लेने का प्रयत्न किया; परन्तु

इसमें बाबर की सफलता न हुई। शैबानी ख़ाँ, मध्य एशिया का एक बड़ा बली सम्राट् होगया है। यह शैबानी-नामा उसीकी प्रशंसा में लिखा गया इतिहास है। यद्यपि इस इतिहास में ग्रन्थकार ने शैबानी ख़ाँ का पक्ष स्पष्ट रूप से लिया है; तथापि बाबर और शैबानी ख़ाँ की लड़ाइयों के सम्बन्ध में उज़बेग़-पक्ष की बातें जानने के लिए पुस्तक बहुत उपयोगी है। यह पुस्तक प्रशंसा में तो लिखी ही गई थी और इसमें शैबानी की बहादुरी का बहुत बढ़ा-चढ़ा वर्णन है; पर इसका पद्य में होना भी प्रशंसा का एक अङ्ग था। यह पुस्तक तुर्की भाषा के पद्यों में है। अँगरेज़ी भाषा में इसका अनुवाद नहीं हुआ है। ए० वैम्ब्री महोदय ने—जिन्होंने बुख़ारा का प्रसिद्ध इतिहास भी लिखा है—इस पुस्तक का अनुवाद जर्मन भाषा में किया था। अध्यापक रशब्रुक विलियम्स ने इस पुस्तक का भी उपयोग किया है।

(५) हुमायूँ-नामा—लेखिका, गुलबदन बेगम। बेगम गुलबदन सम्राट् बाबर की पुत्री थी। इसने अपने भाई के नाम पर पुस्तक लिखी है और उसमें अपने पिता का भी प्रसङ्गवश वर्णन किया है। यह बाबर की पुत्री ही थी, इसलिए अपने पिता का हाल इसने आत्मीयतावश लिखा है। बाबर से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण इसका लेख बहुत उपयोगी है; परन्तु इसकी पुस्तक का उपयोग करते समय एक बात का ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि यह लेख नितान्त निष्पक्ष नहीं है। जहां पर लेखिका ने बाबर का अपने पुत्रों के साथ व्यवहार दिखलाया है वहां सत्य की मात्रा से उस पार वर्णन किया है। अन्यथा पुस्तक प्रामाण्य है। श्रीमती बेवरिज महोदया ने इस पुस्तक का अनुवाद और सम्पादन बहुत विद्वत्ता-पूर्ण किया है।

(६) अहसानुस्सियर—लेखक, मिरज़ा बरख़ुरदार तुर्कमान। इस पुस्तक का भी प्रयोग अध्यापक रशब्रुक विलियम्स साहब ने किया है। इस पुस्तक की एक ही प्रति, और वह भी खण्डित, प्राप्त हुई है। यह प्रति रामपुर (संयुक्त प्रान्त) के नव्वाब अब्दुस्सलम ख़ाँ के पुस्तकालय में है। यह किताब फ़ारस के शाह इस्माइल को समर्पण की गई थी। इसमें शाह इस्माइल और बाबर के सम्बन्ध का विस्तृत वर्णन है। इस पुस्तक के सम्बन्ध में एक बात जानने योग्य है। इसका लेखक शिया था। सुन्नी लेखक ख़ांदमीर के हबीबुल-सियर की अशुद्धियों को शुद्ध करने के लिए ही यह पुस्तक लिखी गई थी। यद्यपि इसे एक शिया ने लिखा था तोभी मुख्य मुख्य सभी बातों में इसका और हबीबुल-सियर का साहमत्य है। इससे हबीबुल-सियर की सत्यता और भी पुष्ट होती है। अहसानुस्सियर सन् ९३१ हिज्री में समाप्त हुई थी।

(७) आलिम-आराई-अब्बासी—लेखक, मिरज़ा सिकन्दर मुंशी। इस पुस्तक में फ़ारस के सफ़ावी वंश की उत्पत्ति से लेकर सन् १०–११ हिज्री तक का वर्णन है। इसमें मुख्यतः सफ़ावी वंश के शाह अब्बास (सन् १५८८ से १६२८ ई० तक) का वर्णन है; पर बाबर और शाह इस्माइल के सम्बन्ध का भी उल्लेख है।

इन मुख्य प्रमाणों के अनन्तर साधारण प्रमाण निम्न-लिखित हैं—

साधारण प्रमाण।

(८) अकबर-नामा—लेखक, अबुल फ़ज़ल। अबुल फ़ज़ल सम्राट् अकबर का प्रसिद्ध सलाहकार था। अकबरनामे के भूमिका-भाग में इसने बाबर का भी वर्णन किया है। इसका वर्णन स्वयं बाबर के 'आत्मचरित' पर आश्रित है। इसने बाबर की बहुत बड़ाई की है; मुख्यतः इसलिए कि उसका स्वामी अकबर बाबर का वंशज था। कहीं कहीं इसकी पुस्तक पढ़ने योग्य है। यह बिब्लियाथिका इण्डिका में प्रकाशित हुई है। इसके अनुवादक महाशय एच० बेवरिज हैं। मूल पुस्तक फ़ारसी में है।

(९) तबक़ाते-अकबरी—लेखक, निज़ामुद्दीन अहमद। यह हिन्दुस्तान का मुसलमानों के आक्रमण से लेकर १६ वीं शताब्दी के अन्त तक का साधारण इतिहास है। इसमें बाबर का भी हाल है। पुस्तक लखनऊ में, लीथो छापे में प्रकाशित हो गई है।

(१०) मन्तख़बुल-तवारीख़—लेखक, अब्दुल-क़ादिर अलबदौनी। यह पुस्तक भी बिब्लियाथिका इण्डिका में प्रकाशित है और यह भी साधारण इतिहास है। इसमें बाबर और शाह इब्राहीम लोदी के आधिपत्य का वर्णन पाठ्य है।

(११) तारीख़े फ़िरिश्ता—लेखक, मुहम्मद बिन क़ासिम फ़िरिश्ता। मुंशी देवीप्रसाद, जोधपुर ने इसका

भी उपयोग किया है। यह पुस्तक फ़ारसी से अँगरेज़ी में महाशय ब्रिग्ज़ द्वारा अनूदित है। अनुवाद में त्रुटियां हैं; परन्तु वह कलकत्ते में छपा हुआ है और सुगमता से प्राप्य है। फ़िरिश्ता दक्षिण देश का रहनेवाला था। इसकी पुस्तक से भी बाबर के आत्मचरित में छूटे हुए अंशों की पूर्ति हो सकती है। यद्यपि यह बाबर का समकालीन नहीं था, तथापि इसकी पुस्तक बाबर के विषय में बहुत पाठ्य है। इसने अकबर तक का हाल दिया है।

(१२-१३) तारीख़े-हक़ी—लेखक, शेख़ अब्दुल हक़ बिन सैफ़ुद्दीन दिहलवी और अहसानुत्तवारीख़—लेखक, हसन। अध्यापक रशब्रुक विलियम्स ने अपनी पुस्तक में इन दो इतिहासों का भी वर्णन किया है। इन इतिहासों की हस्त-लिखित प्रतियां आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी के पुस्तकालय में रक्षित हैं। इनमें से पहली पुस्तक में तो लोदी वंश का वर्णन है और दूसरी में शाह इस्माइल और शाह तमस्प का। परन्तु पुस्तक खण्डित है। इसमें सन् ९१३—९३१ हिज्री तक का अंश नहीं है। बाबर के सम्बन्ध में वर्णन अधिक लाभदायक नहीं है।

मुख्य प्रमाणों और साधारण प्रमाणों के अनन्तर जब हम आधुनिक लेखों की ओर आते हैं तब हमें पुस्तकें अधिक मिलती हैं। हिन्दी भाषा में तो कोई भी पुस्तक मेरी जानकारी में ऐसी नहीं है; परन्तु भिन्न भिन्न देशी और विदेशी दोनों भाषाओं में कुछ पुस्तकें निकल चुकी हैं। उर्दू भाषा की कई पुस्तकों में हमें बाबर का हाल मिल सकता है। इसी प्रकार जर्मनी, फ़्रांस आदि देशों की भाषाओं में भी वृत्तान्त मिलते हैं। रायल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल खोज-सम्बन्धी विषयों पर अमूल्य प्रमाणित हुआ है। इसी प्रकार जर्नल एशियाटिक (फ़्रांसीसी) भी बहुत उपयोगी है। यहाँ पर केवल कुछ प्रसिद्ध अँगरेज़ी पुस्तकों का परिचय देना उचित होगा—

(१४) टाड साहब का राजस्थान का इतिहास[1]। इस पुस्तक के एक से अधिक हिन्दी अनुवाद हो चुके हैं। इस पुस्तक के मेवाड़-खण्ड में राना सांगा, बाबर के प्रसिद्ध राजपूत वैरी का इतिहास मिलेगा। पुस्तक को लिखे बहुत दिन हो गये। यह पुस्तक इँगलेंड के चौथे जार्ज को समर्पित की गई थी। यह विशेष कर उदयपुर के पक्ष के राजपूत इतिहासों पर आश्रित है।

आधुनिक लेख।

(१५) अर्सकीन महोदय की पुस्तक **"बाबर और हुमायूँ के समय का भारत का इतिहास[1]"** है। यह पुस्तक १८५४ ई० में प्रकाशित हुई थी। यह बड़ी उत्तम और विद्वत्ता-पूर्ण पुस्तक है। ऐसी पुस्तक कोई नहीं। इसके पहले भाग में बाबर का वृत्तान्त है। मध्य भारत से लेकर वृत्तान्त लिखा गया है; और मध्य भारत की भी अच्छी चर्चा है। पुस्तक अमूल्य है और साथ ही अप्राप्य भी है।

(१६) इसके बाद अध्यापक एल्० एफ़० रशब्रुक विलियम्स की पुस्तक[2,3] है। यह पुस्तक बहुत खोज के साथ लिखी गई है। अभी १९१८ ई० में प्रकाशित हुई है। यह अर्सकीन की पुस्तक से छोटी है। अँगरेज़ी में बाबर का ऐसा उत्तम संक्षिप्त वृत्तान्त और कोई नहीं है। पुस्तक प्रयाग यूनिवर्सिटी की ओर से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भी हो रहा है और आशा है, शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

(१७) लेनपूल महाशय की पुस्तक 'बाबर' रूलर्स आफ़् इण्डिया सीरीज़ में प्रकाशित हुई है। अध्यापक रशब्रुक विलियम्स की पुस्तक निकलने के पूर्व छोटी पुस्तकों में इसीका आदर था। पुस्तक अच्छी है। महाशय लेनपूल मुसल्मानी इतिहास के स्वयं अच्छे विद्वान् हैं और इन्होंने 'मध्य-कालीन भारत' नामक पुस्तक भी लिखी है।

(१८) 'बाबर की जीवनी[4]' शीर्षक एक पुस्तक

---

१ Tod's Annals and antiquities of Rajasthan.

१ A History of India in the time of Babur and Humayun.

२ An Empire Builder of the XVI Century (Longmans).

३ Medieval India (T. Fisher Unwin—Story of the Nation.)

४ Life of Babur.

कैल्डिकाट महाशय की भी है। यह विशेष कर बाबर के आत्मचरित पर आश्रित है, और साधारणतः अच्छी पुस्तक है। इनके अतिरिक्त इलिफ़न्स्टन इत्यादि के इतिहास में बाबर का संक्षिप्त और अच्छा वृत्तान्त मिल सकता है।

यों तो, जैसा कह चुके हैं, खोज का क्षेत्र विस्तृत है और इतिहास-लेखन का कार्य बड़ा कठिन और गम्भीर है—मनुष्य एक विषय पर जितना चाहे अध्ययन कर सकता है—तोभी आशा की जा सकती है कि ऊपर लिखी पुस्तकों से बाबर के इतिहास की अच्छी सामग्री मिल सकती है।

रामचन्द्र टण्डन, बी० ए०

बाणासुर की तपस्या।

निदाघ-ऋतु का घोर, भूमण्डल पर राज्य है।
मानों नृपति कठोर, सता रहा हो निज प्रजा ॥

× × × × ×

इन्हीं दिनों एक वनस्थली में,
प्रसिद्ध बाणासुर नाम दैत्य।
समाधि साधे शिव को रिझाने,
सुशान्ति से था करता तपस्या ॥ १ ॥

यथा वरोहों-युत शान्त भारी,
स्वरूप दीखे वट-वृक्ष का है।
जटादि से भूषित अङ्ग सारा,
तथा तपस्वी नृप बाण का था ॥ २ ॥

अतीव सूखा तरु दीखता ज्यों,
हुआ तपस्याकृत पिण्ड त्योंही।
शरीर में केवल अस्थियाँ हैं,
परन्तु है आनन में शुभ-श्री ॥ ३ ॥

विराजता है हठ-योग साधे,
प्रशान्त पद्मासन को लगाये।
सुमूर्त्ति मानों दृढ़ साधना की,
विराजती हो, वन में अनूठी ॥ ४ ॥

अरण्य सारा वह दुर्ग सा है;
दशा वहाँ है गढ़ के समान।
अगम्य होता पथ दुर्ग का ज्यों,
अरण्य का भी पथ लुप्त त्यों है ॥ ५ ॥

घिरा हुआ है वन शैल से यों,
रहे घिरा ज्यों गढ़ कोट से है।
खड़े हुए हैं बहु वृक्ष ऊँचे,
सिपाहियों की समता सजाये ॥ ६ ॥

कभी कभी हिंसक जन्तुओं का,
अरण्य में गर्जन गूँजता है।
यथा शतघ्नी कर शब्द भारी,
गभीरता से गढ़ है गुँजाती ॥ ७ ॥

विघर्ष से कानन-वेणुओं के,
कृशानु जागा सहसा प्रचण्ड।
हुआ महा उग्र शनैः शनैः सो,
यथा बढ़े आपस का विरोध ॥८॥

भयावनी मूर्ति लगी दिखाने,
विशाल ज्वाला बिजली सरीखी।
उठा घना ऊपर धूम फैला,
समीप मानों लय-काल आया ॥ ९ ॥

सहायकर्त्री अति घोर आँधी,
लगी गिराने विटपी सहस्रों।
विरोध स्वाभाविक सोच मानों,
सरोष लेती बदला द्रुमों से ॥ १० ॥

लगी सहस्रों फटने शिलायें,
प्रतप्त अत्यन्त कृशानु से हो।
निनाद होता उनसे कि मानों,
शतघ्नियों का रव हो कठोर ॥११॥

अतीव होके भयभीत पक्षी,
अरण्य में से नभ को सिधारे।
सशीघ्र सारे वन-जीव भागे,
जहाँ जहाँ प्राप्त हुआ ठिकाना ॥१२॥

चिघाड़ते हैं भयभीत हाथी,
मृगेन्द्र भी कातरता दिखाते।

भयार्त्त भारी वन-प्राणियों के,
निनाद से व्योम भरा अनन्त ॥१३॥

प्रचण्ड दावा विकरालता से,
लगी जलाने सब प्राणियों को।
स्वयं वहां धारण मूर्त्तिमान,
स्वरूप मानों यम ने किया हो ॥१४॥

कराल दावानल से अवस्था,
अरण्य की है उस दुर्ग जैसी।
विनष्ट होता रण-काल में जो,
प्रघातिनी शत्रु-शतघ्नियों से ॥१५॥

प्रक्रुद्ध हो भीषणता बढ़ाता,
कृशानु आया नृप के समीप।
परन्तु तौभी वह धैर्यशाली,
डरा न किंचित् उसको विलोक ॥१६॥

सुजान जो हैं अति धैर्यवाले,
उद्देश्य से भ्रष्ट कभी न होते।
प्राणान्त चाहे उनका भले हो,
अवश्य पूरी करते प्रतिज्ञा ॥१७॥

यों बाणासुर की विलोक दृढ़ता,
अत्यन्त सन्तुष्ट हो।
श्री शूली प्रकटे वहां उदित हों,
मार्त्तण्ड ज्यों पूर्व में॥

हो उद्देश्य अवश्य पूर्ण उनका,
ऐसे रहें जो व्रती।
आशा है फल की वृथा न जब लों,
कर्त्तव्य की टेक है ॥१८॥

गोविन्ददास

प्लेटो।

प्लेटो यूनान का एक प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता हो गया है। उसीका दूसरा (अरबी) नाम अफ़लातून है। पश्चिमी देशों में प्राचीन काल से लगाकर आज तक जितनी प्रतिष्ठा इसकी हुई है उतनी और किसीकी नहीं हुई। इतना ही नहीं, पूर्वी देशों के तत्त्वज्ञानियों में भी प्लेटो का नाम आदरपूर्वक लिया जाता है। प्लेटो के गुरु का नाम साक्रेटिस अर्थात् सुक़रात था। सुक़रात ज़हर पिलाकर मार डाला गया था। एथेंस के निवासियों ने सुक़रात को देश-द्रोही और देव-द्रोही समझा था। अतएव उन्होंने यही इलज़ाम लगाकर उस पर मुक़द्दमा चलाया था।

सुक़रात के दो शिष्य संसार में विख्यात हैं। एक प्लेटो, और दूसरा अरस्तू* (अरिस्टाटल)। योरप का तत्त्वज्ञान इन्हीं दोनों के सिद्धान्तों पर निर्म्मित हुआ है। हम यहाँ पर संक्षेप से प्लेटो के सिद्धान्तों का वर्णन करेंगे। साथ ही उसके और अरस्तू के सिद्धान्तों में जो समानता या विभिन्नता है उसको भी दिखलाने की चेष्टा करेंगे। योरप की उन्नति में इन दोनों के सिद्धान्तों ने बड़ा काम किया है।

ईसा के ४२७ वर्ष पूर्व प्लेटो विद्यमान था। इसके प्रयत्न से एथेंस में धार्मिक और राजनैतिक दोनों प्रकार की उन्नतियाँ हुईं। प्लेटो भारतवर्ष के उपनिषदों के आचार्यों और बौद्ध विद्वानों से नीची श्रेणी का तत्त्ववेत्ता था; पर राजनैतिक विषयों में इसका ज्ञान बहुत ऊँचा था। भारतवर्ष के तत्त्ववेत्ताओं ने धार्मिक विचारों के सामने राजनैतिक विचारों की अवहेलना की है। इसीसे आजकल भी हम लोग धार्मिक विचारों की ओर अधिक

---

* कई कारणों से अरस्तू को भी सुक़रात का शिष्य मानना पड़ता है। लेखक।

झुकते हैं, और राजनैतिक विचारों से बहुत कुछ उदासीन रहते हैं। प्लेटो ने अपने बुद्धि-बल तथा अपने आचार्यों की शिक्षा से जिस तत्त्वज्ञान का आविष्कार किया है उससे हमारे देश के वेदान्तियों का सिद्धान्त बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

प्लेटो के सिद्धान्त अरस्तू के सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक सरल और स्वाभाविक हैं। अरस्तू के ग्रन्थ पढ़ते समय मन में क्लान्ति आ जाती है, क्योंकि वे क्लिष्ट और नीरस हैं। पर प्लेटो के ग्रन्थ पढ़ते समय मन प्रफुल्लित हो जाता है। सुक़रात का शिष्य होने पर भी विचार-स्वातन्त्र्य में प्लेटो उससे भी आगे बढ़ गया है। एक मित्र ने इसके लिए एक पाठशाला (एकेडमी) खोल दी थी। यह उसीमें लड़कों को शिक्षा दिया करता था। इसीसे इसके अनुयायी एकेडमीशियन्स (Academicians) कहे जाते थे। सुक़रात साधारण जीवन व्यतीत करता था; वह ग़रीब और अमीर सब किसीको शिक्षा देने में ज़रा भी न हिचकता था। प्लेटो एकान्त में बड़े आराम से रहता और बहुत कम लोगों से मिलता-जुलता था। प्लेटो ने अपने सिद्धान्तों को गुरु-शिष्य के संवाद-रूप में (Dialogues of Plato) प्रकाशित किया है।

प्लेटो के एक शिष्य का नाम था हरिकुल्टेस। उसके विचारों की भी छाया प्लेटो के सिद्धान्तों में पाई जाती है। शिष्य के लिए यह बड़े ही गर्व की बात है। प्लेटो ने हरिकुल्टेस से यह शिक्षा ग्रहण की कि संसार परिवर्तनशील है। इस परिवर्तन के सम्बन्ध में सत्य की खोज करना व्यर्थ परिश्रम करना है। साथ ही इन्द्रियों द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह भी भ्रमपूर्ण है। अपने गुरु सुक़रात से प्लेटो ने यह शिक्षा ग्रहण की कि मनुष्य अपनी आत्मा के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इटली के तत्त्ववेत्ता पैथागोरस से प्लेटो ने न्यायशास्त्र सीखा। अर्थात् जिससे जो उपादेय शिक्षा मिल सकी उसे लेने में प्लेटो ने ज़रा भी सङ्कोच नहीं किया।

प्लेटो विचारवादी (Idealistic) है। पर उसे सङ्कल्पवादी भी कहना अनुचित न होगा। वह केवल सङ्कल्प पर विश्वास करता था। संसार सङ्कल्पमय है। उसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय, सभी सङ्कल्प ही पर अवलम्बित है। सांसारिक मनुष्य, पशु, पक्षी, सभीके पीछे सङ्कल्प का पचड़ा लगा हुआ है। ध्यान, धारणा, मनन और अध्ययन आदि, सभी पर सङ्कल्प ही का साम्राज्य है। सङ्कल्प के कारण ही इन सब वस्तुओं में हम नित नई नई हलचल देखते हैं। सङ्कल्प की सृष्टि ईश्वर की इच्छा से है। जितनी वस्तुएँ हम देखते हैं सब नाश को प्राप्त होंगी, केवल सङ्कल्प शेष रह जायँगे। संसार के अधिकांश विद्वान् अब भी यही मानते हैं कि उन्हें इन्द्रियों के द्वारा ही ज्ञान-प्राप्ति होती है। पर प्लेटो का कथन है कि सङ्कल्प-शक्ति की स्थूल छाया ही इन्द्रियादिक नामों से पुकारी जाती है। हमारे मन के सङ्कल्प सब अपूर्ण और अशक्त होते हैं। इस संसार का चक्र केवल ईश्वर ही के सङ्कल्प से चलता है।

सौन्दर्य के विषय में प्लेटो के विचार बड़े विचित्र हैं। ग्रीस देश के निवासी पहले ही से सौन्दर्य के बड़े उपासक थे। सुन्दर चित्रकारी और शिल्पकला के अद्वितीय नमूने ग्रीस देश में ही अधिकता से मिलते हैं। प्लेटो कहता है कि सौन्दर्य कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे कोई देख सके। वह एक निराकार तत्त्व के सदृश है। संसार में जितने सुन्दर नर-नारियाँ और वस्तुएँ दिखाई देती हैं वे सब उसकी सुन्दरता की छाया-मात्र हैं जो अदृश्य संसार में वर्तमान है।

संसार क्या है? उसकी उत्पत्ति कैसे हुई? वह सत्य है या असत्य? ऐसे प्रश्नों के उत्तर में प्लेटो के ग्रन्थों में पूर्वापर विरोध पाया जाता है। इसके सङ्कल्पवाद में संसार की सत्यता के लिए कोई स्थान नहीं। ग्रीस के निवासी संसार को सत्य

और स्थायी मानते थे। उन्हींके विचारों के संस्कार से प्लेटो कभी तो जड़-प्रकृति की सत्यता स्वीकार करता है और कभी उसे सत्य (चैतन्य) की छाया-मात्र मानता है। पर इसके ग्रन्थों से संसार की सत्यता सिद्ध नहीं होती।

मनुष्य क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में प्लेटो कहता है कि मनुष्य संसार का केन्द्र है। मनुष्य का प्रत्येक अङ्ग एक एक विशेष कार्य चलाने के लिए बनाया गया है। मनुष्य का मस्तिष्क शरीर के ऊपरी भाग में इसलिए बनाया गया है कि वह ज्ञान का स्थान है। उसका आकार गोल है। (ग्रीस में गोल आकार बड़े महत्त्व का समझा जाता था।) मनुष्य का हृदय उसके भावों का अधिष्ठान है और उसका उदर उसकी वासनाओं का घर। मनुष्य की वासनाओं के बुरे प्रभाव को रोकने के लिए उदर में एक और भी अवयव* (organ) है। वहाँ से बुद्धि का—ज्ञान का—प्रकाश वासनाओं पर पड़ता है।

संसार में तत्त्ववेत्ता लोग समाज के मस्तिष्क का काम देते हैं, सैनिक हृदय का, कृषक, व्यवसायी और दास पेट का। प्लेटो के समय ग्रीस में यही वर्ण-व्यवस्था प्रचलित थी। यह व्यवस्था जन्म पर नहीं, किन्तु योग्यता और वृत्ति पर अवलम्बित थी। इन तीन वर्णों या वर्गों के लिए तीन विशेष गुणों की आवश्यकता है। ये गुण हैं ज्ञान, साहस और संयम। ज्ञान मस्तिष्क का गुण है, साहस हृदय का और संयम उदर का। तत्त्ववेत्ता इन तीनों ही गुणों को प्राप्त कर सकता है। पर और वर्णवाले ऐसा नहीं कर सकते। बस, प्लेटो का समाज-शास्त्र इन्हीं तीनों गुणों के आधार पर बना है।

समाज की रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का पहला कर्तव्य है। स्वयं कष्ट और क्लेश सहकर भी मनुष्य को समाज की उन्नति करने में सर्वदा तत्पर रहना चाहिए। अपने बच्चों को समाज की सेवा के लिए ही शिक्षा देनी चाहिए। एक से तीन वर्ष की उम्र तक उनकी रक्षा आदि का भी पूर्ण प्रबन्ध करना चाहिए। तीन से छः वर्ष तक बालकों को कहानियों के बहाने शिक्षा देनी चाहिए। छः से दस वर्ष तक उन्हें व्यायाम और दस से तेरह वर्ष तक लिखना-पढ़ना सिखाना चाहिए। तेरह से सोलह वर्ष तक कविता, सोलह से अठारह वर्ष तक गणित और अठारह से बीस वर्ष तक अस्त्र-शस्त्र अर्थात् सिपहगरी सिखलाना भी समाज के हित के लिए प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य होना चाहिए।

ग्रीस में पूर्वोक्त रीति से शिक्षा पाये हुए युवकों का चुनाव बीस वर्ष की उम्र में होता था। इस चुनाव में उत्तीर्ण युवक ग्रीस के राज्य-प्रबन्ध और सेना-विभागों में भरती किये जाते थे। तीस वर्ष की उम्र में एक बार फिर भी चुनाव होता था। इस चुनाव में उत्तीर्ण होनेवाले लोग तत्त्वज्ञानी अर्थात् फिलासफर (Philosophers) कहे जाते थे। इस चुनाव के १५ वर्ष बाद एक और चुनाव होता था। यह अन्तिम चुनाव रहता था। इसमें उत्तीर्ण, ४५ वर्ष की उम्र के प्रौढ़ जन राजनीतिज्ञ कहाते थे। ग्रीस में राजनैतिक विषयों पर विचार करने का अधिकार केवल इन्हीं लोगों को था। औरों को इन विषयों पर कुछ भी कहने सुनने का अधिकार न था।

संसार में प्रायः दो प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं—एक सांसारिक सुख भोगनेवाले, दूसरे उसका त्याग करनेवाले; अर्थात् एक तो संसार से अनुरक्त, दूसरे उससे विरक्त। यदि इनमेंसे कुछ लोग किसी प्रयत्न द्वारा बीच के पथ पर लाये जा सकें तो वे ऐहिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार की उन्नति कर सकते हैं। ऐसे लोग सांसारिक जनों को सुमार्ग दिखलाकर अपना परमार्थ और जगत् का स्वार्थ,

* भारत के योगी इस अवयव को कुण्डलिनी कहते हैं। —लेखक।

दोनों सिद्ध कर सकते हैं। अतएव ऐसे ही लोग श्रेष्ठ पुरुष, देश के नेता बनने की योग्यता प्राप्त कर सकते हैं। प्लेटो में यह योग्यता वर्तमान था। अद्वैत-वाद का प्रचारक होने पर भी, प्लेटो ने राजनैतिक विषयों में भी बड़ी उन्नति की। योरप के आधुनिक राजनीतिज्ञों ने प्लेटो और उसके समान दो एक और विद्वानों के सिद्धान्तों पर ही वर्तमान राजनीति की स्थापना की है। यह इन्हीं सिद्धान्तों की कृपा का फल है जो योरप में आज-कल मनुष्य को हर प्रकार के अधिकार मिलने का अवसर प्राप्त है।

ब्रजमोहनलाल वर्म्मा

रेल में बिजली।
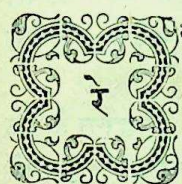
रेल में यात्रा करनेवाले महाशयों ने अक्सर अपने डिब्बों में बिजली की रोशनी होती हुई और पङ्खा चलता हुआ देखा होगा। शायद उन्हें अचरज भी हुआ हो कि इस रोशनी को उत्पन्न करनेवाली और पङ्खों को चलानेवाली शक्ति बिजली क्योंकर और कहाँ से उत्पन्न होती है। इसका हाल सुनिए।

थोड़े दिन हुए आपने समाचारपत्रों में पढ़ा होगा कि फ़ीरोज़ाबाद के निकट दो रेलगाड़ियाँ आपस में लड़ गई थीं जिससे अनेक डिब्बे यात्रियों और उनके असबाब के सहित जलकर भस्म हो गये। आग लगने का कारण यह था कि इन डिब्बों में बिजली की रोशनी के बदले गैस की रोशनी होती थी जिसके वास्ते डिब्बों के पेंदों में गैस भरी हुई थी। गाड़ियों के लड़ने पर इस गैस में आग लग गई जिससे दम की दम में तमाम गाड़ी निरपराध यात्रियों और उनके माल के सहित जलकर राख हो गई। यदि गैस के स्थान पर बिजली की रोशनी होती तो आग कदापि न लगती और इतने जान और माल का नुकसान न होता। क्योंकि बिजली के सामान में साधारणतः कोई वस्तु ऐसी नहीं होती जो अग्निवर्द्धक हो और दूसरे, गाड़ी में किसी प्रकार का धक्का आने से केवल मशीन बिगड़ जाती है और बिजली का उत्पन्न होना बन्द हो जाता है।

रेलगाड़ियों में बिजली उत्पन्न करने के साधारणतः दो प्रकार के प्रबन्ध होते हैं। एक तो यह है कि धीरे चलनेवाली और स्थान स्थान पर ठहरनेवाली छोटी गाड़ियों (Metre gauge) में केवल बिजली की बैटरी होती है जो लैम्पों को रोशन करने और पङ्खों को चलाने के लिए शक्ति देता है। इस बैटरी में बिजली भरने के लिए दूर दूर पर बिजली के कारखाने स्थापित करने पड़ते हैं, जिनमें एञ्जिन और मशीन द्वारा बिजली उत्पन्न करके बैटरियों में डालते हैं और फिर बिजली से भरी हुई इन बैटरियों को गाड़ी के डिब्बों में रखकर तार द्वारा लैम्पों और पङ्खों से जोड़ देते हैं। जब तक इन बैटरियों में बिजली भरी रहती है तब तक ये लैम्पों को रोशन करती और पङ्खों को चलाती रहती हैं। बाद को इनमें से बिजली निकल जाती है। इसलिए कुछ कुछ दूर के स्टेशनों पर यह प्रबन्ध किया जाता है कि बिजली ख़तम हुई बैटरियाँ डिब्बों से निकाल ली जावें और उनके स्थान पर बिजली भरी हुई नई बैटरियाँ रख दी जावें। बिजली द्वारा रोशनी होने और पङ्खे चलने का यह प्रबन्ध आपने गोरखपुर B. N. W. Ry., फर्रुख़ाबाद, कासगञ्ज B.B. & C.I. Ry., सीतापुर R. K. Ry., इत्यादि स्थानों की यात्रा करते समय देखा होगा। यह प्रबन्ध उसी अवस्था में सम्भव हो सकता है जब गाड़ी स्थान स्थान पर बहुत देर तक ठहरती हो जिससे बैटरियाँ बदली जा सकें और जब गाड़ियों में थोड़े ही से पङ्खे और रोशनी हो जिससे बैटरी कुछ घंटों तक उन्हें उधार ली हुई बिजली दे सके।
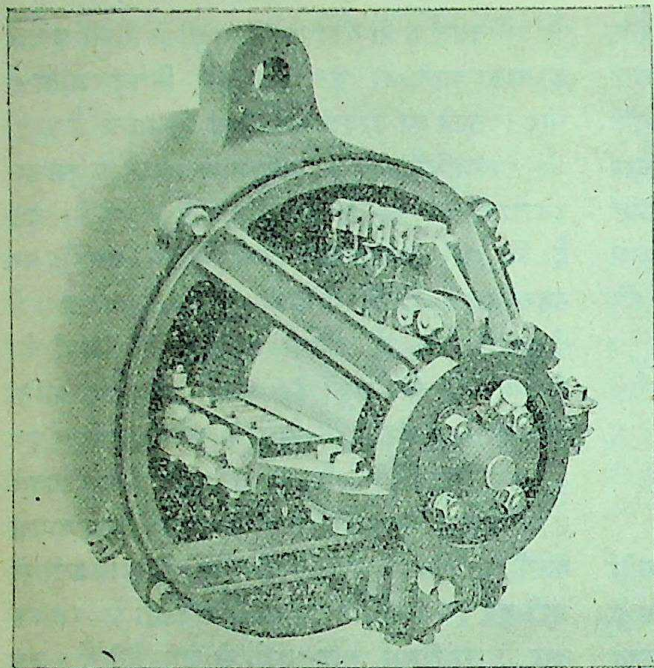
रेल में बिजली द्वारा रोशनी और पङ्खा चलाने की दूसरी विधि वह है जो तेज़ चलनेवाली और स्टेशनों पर कम ठहरनेवाली बड़ी गाड़ियों (Broad gauge) में की जाती है। यहाँ पर प्रत्येक गाड़ी (carriage) के नीचे एक बिजली उत्पन्न करनेवाली डाइनमो नामक मशीन होती है और उसीके पास बिजली की तेज़ बैटरी रहती है। इनके साथ अपने आप खुल जानेवाली और बन्द हो जानेवाली एक स्विच (Automatic Switch) लगी होती है जिसके द्वारा रेल के चलते समय तो पङ्खों और रोशनी का सम्बन्ध डाइनमो से हो जाता है; परन्तु गाड़ी के ठहरते ही डाइनमो से सम्बन्ध खुलकर बैटरी से हो जाता है। इस प्रकार चाहे रेल खड़ी हो वा चलती, बिजली पङ्खों और लैम्पों में सदैव पहुँचती रहती है।

रेलगाड़ियों में रोशनी पहुँचानेवाला डाइनमो।

डाइनमो मशीन का यह सिद्धान्त है कि जब वह एक ख़ास चाल से चलती रहे तभी
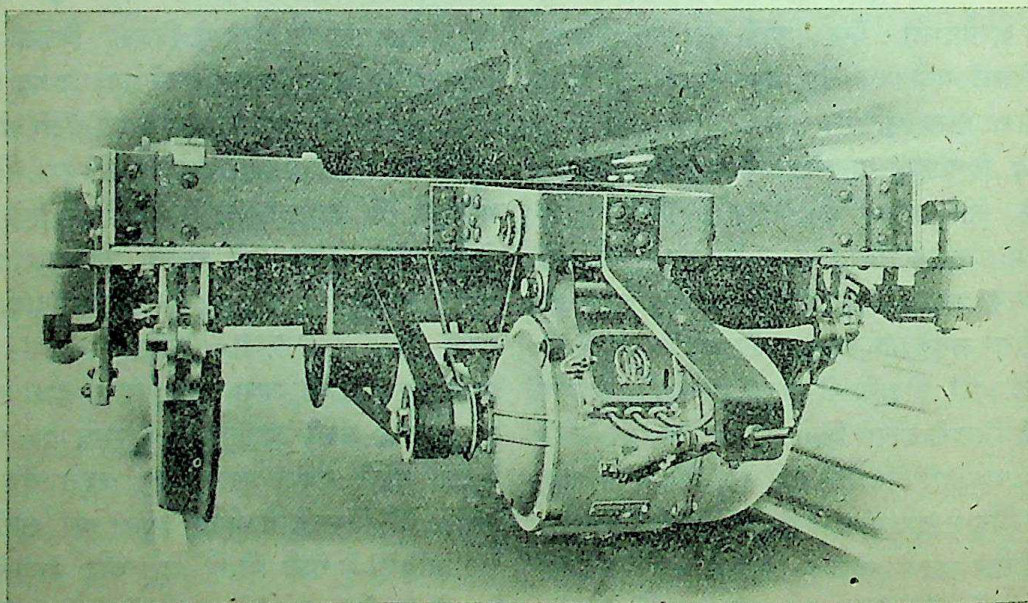
गाड़ी में जड़ा हुआ डाइनमो।

बिजली पैदा करेगी। इसलिए यह मशीन रेल के पहियों के धुरे से पट्टे (Belt) द्वारा लगा दी जाती है जिससे रेल के चलने पर यह मशीन भी चलने लगती है और चलने पर बिजली उत्पन्न करती है। अब प्रश्न यह है कि रेल की चाल तो कम ज़्यादा होती रहती है, तब डाइनमो की बिजली एक-सी
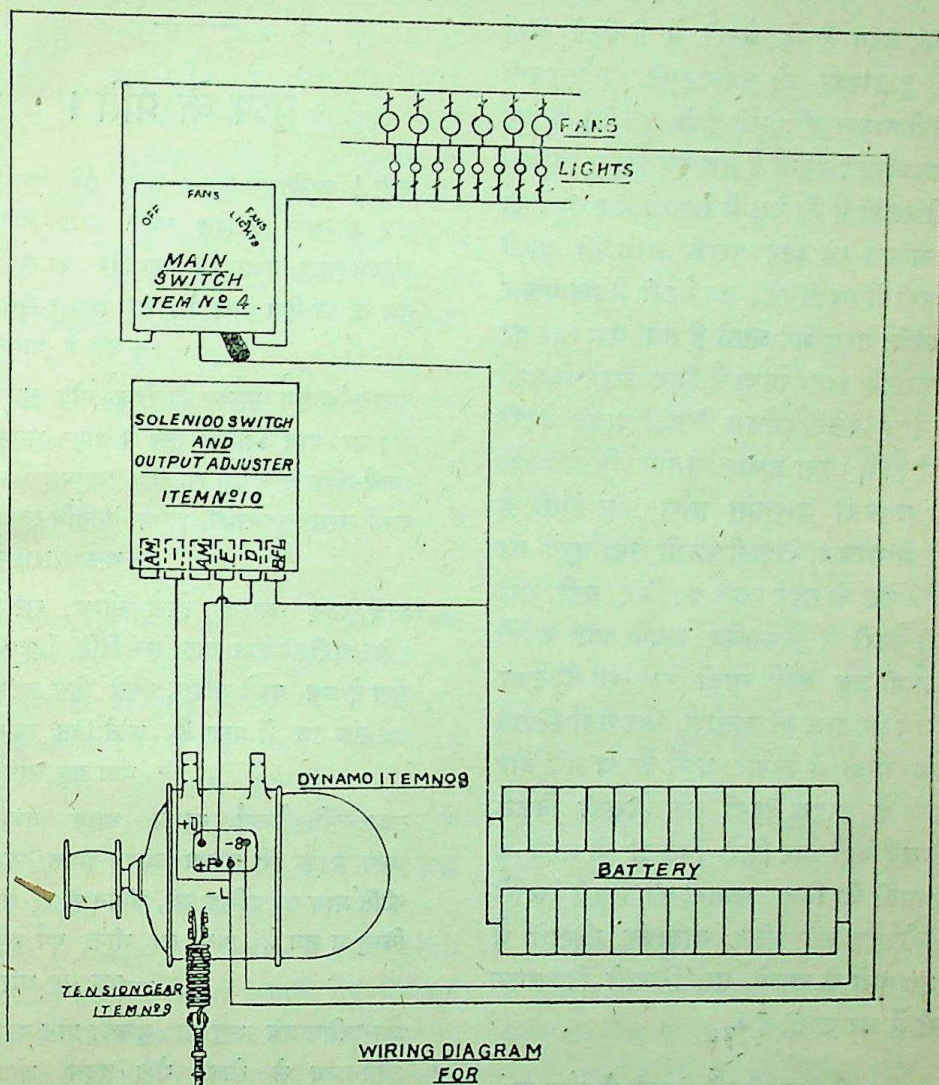
रेलगाड़ियों में डाइनमो द्वारा पङ्खे चलाने और रोशनी करने की विधि।

कैसे बनी रहे जिससे रोशनी न्यूनाधिक न होने पावे? इसके वास्ते यह डाइनमो ऐसा बनाया जाता है और इसके साथ इस प्रकार के उपाय लगाये जाते हैं कि इसकी चाल कितनी ही हो; पर, वह बिजली एक ही तेज़ी से देती रहे। जब रेल के ठहरने के समय इसकी चाल एक ख़ास चाल

से नीचे हो जाती है तब स्विच डाइनमो से खुल कर बैटरी से लग जाती है। उस समय बिजली बैटरी से निकलने लगती है।

अब यह प्रश्न है कि बैटरी में बिजली कहाँ से आती है? इसका भी उत्तर सुनिए। डाइनमो मशीन इतनी ताक़त की होती है कि जब रेल के धुरे के साथ यह चलती रहती है तब यह इतनी बिजली पैदा करती रहती है कि रेल में रोशनी और पङ्खों का काम भी चलता रहे और उसके साथ ही बाक़ी बिजली बैटरी में भरती रहे। जब बैटरी में इस प्रकार बिजली अच्छी तरह भर जाती है तब एक तार का पेच जो बैटरी में लगा रहता है फिर उसमें बिजली नहीं जाने देता जिससे अधिक बिजली पाकर बैटरी ख़राब नहीं होती। इस प्रकार तमाम बिजली रेल के धुरे की चाल से डाइनमो द्वारा पैदा होती है और बैटरी में भरकर, रोशनी करती तथा पङ्खों को चलाती है। रेल के ठहर जाने पर फिर वही भरी हुई बिजली बैटरी से निकलकर अपना काम करती है। कभी कभी जब कोई गाड़ी रेल से काटकर किसी स्टेशन पर डाल दी जाती है, और वहाँ स्टेशन के लोगों के गाड़ी में जाकर पङ्खों के चलाने और रोशनी करने के कारण बैटरी की बिजली निकल जाती है, तब वहाँ पर फिर बिजली के भरने के लिए उस गाड़ी को बिना सवारी की किसी रेल से जोड़कर सौ दो सौ मील दौड़ाकर लौटाते हैं जिससे डाइनमो के चलने पर बिजली निकलकर फिर बैटरी में भर जाती है।

इस प्रकार की बिजली की रोशनी से और पङ्खों से यात्रियों को कितना आराम पहुँचता है और कितनी प्रसन्नता रहती है और आग लगने का डर किस प्रकार बिलकुल मिट जाता है, इसका अनुमान अब पाठकगण करें। बिजली द्वारा जितना सुभीता रेल के और अनेक कामों में हुआ है उतना ही बिजली की रोशनी और पङ्खों से भी मिला है।

जगन्नाथ खन्ना

पुष्प के प्रति।

अहो! कान्तिमय कुसुम, सखा तेरे मुरझाये।
क्रम से सबने परहित प्यारे प्राण गँवाये॥
सहृदय-सुहृद-वियोग में, क्या जीवन का सार?।
तुम भी पर-हित प्राण दो, यह असार संसार॥
—यही है प्रार्थना॥ १॥

सुख-पूर्वक तुम मधुकर को निज गोद झुलाते।
मधु का पान कराकर सुख से अङ्क सुलाते॥
स्वार्थ-रहित पुनि प्रेम से, कर अनुपम शृङ्गार।
करते सरस सुवास से, उचित अतिथि-सत्कार॥
—धन्य आराधना॥ २॥

मन्द मन्द मारुत द्वारा सौरभ सरसाते।
रुचिर छबीली छटा चारु सब दिशि छिटकाते॥
सुख दे मन करते मुदित, बनते हिय का हार।
जब तक तन में प्राण हैं, करते नित उपकार॥
- धन्य यह साधना॥ ३॥

सकल-सृष्टि-सौन्दर्य स्वरूप अनूप तुम्हारा।
अल्प काल में बुझता जीवन-दीपक प्यारा॥
कीर्तिमान का क्षणिक भी, जीवन सुखद अपार।
किन्तु न जग में व्यर्थ का, जीना वर्ष हज़ार॥
—उच्च यह धारना॥ ४॥

प्रेम-अमिय-मय मधु का मुझको पान कराओ।
ज्ञान-गन्ध से सोता मेरा हृदय जगाओ॥
मम नीरस मन में करो, नव-जीवन-सञ्चार।
बनूँ तुम्हारे तुल्य मैं, निश्छल, विमल, उदार॥
—यही है कामना॥ ५॥

भवानीशङ्कर याज्ञिक

भाग्य-चक्र ।

बाबू चन्द्रशेखरसहाय, मुन्सिफ़ के इजलास में आज लोगों की बहुत अधिक भीड़ लगी है। जितने लोग वहां हैं सब यही प्रतीक्षा कर रहे हैं कि किसकी जय होती है—धर्म्म की अथवा अधर्म्म की। कोई मुन्सिफ़ साहब की ओर देख रहे हैं, कोई पेशकार साहब पर दृष्टि-पात कर रहे हैं। मुन्सिफ़ साहब ने बहुत सोच-विचारकर घर पर ही फ़ैसला लिख डाला था, तथापि लोगों की उत्सुकता बढ़ाने के विचार से वे इजलास पर भी फ़ैसले के पन्नों को कई बार उलट-पलट कर रहे हैं। लोगों ने वेशुमार शोर-गुल करना आरम्भ कर दिया ताकि फ़ैसला जल्दी सुना दिया जाय। मुन्सिफ़ साहब समझ गये कि अब लोग बहुत व्यग्र हो गये हैं; अतः उन्होंने फ़ैसला अपने पेशकार को देकर घर की ओर प्रयाण किया। पेशकार साहब ने ज़ोर से कहा—

सुनते जाइए। मुन्सिफ़ साहब ने जो फ़ैसला किया है उसका असल मतलब यह है कि रघुवीरसिंह की स्त्री, मुसम्मात तारादेवी पर ठाकुर अशर्फ़ीलाल ने जो दावा पेश किया है वह बहुत दुरुस्त और ठीक है। पचास हज़ार असल और पैंतीस हज़ार सूद, सब मिलाकर पचासी हज़ार रुपये तारादेवी ठाकुर अशर्फ़ीलाल को पन्द्रह दिन के भीतर दे दें, नहीं तो उनकी जायदाद नीलाम कर मुद्दई के जो रुपये बाक़ी हैं वे दे दिये जायँगे।

तारादेवी पर यह फ़ैसला वज्राघात से बढ़कर हुआ। तारा वहीं डोली में मूर्छित हो गई। लड़के और लड़कियाँ अपनी माता की यह अवस्था देखकर चिल्लाने लगीं। जब वह होश में आई तब कई लोगों ने उसे सान्त्वना प्रदान की। तारादेवी घर पर पहुँचाई गई।

इधर ठाकुर अशर्फ़ीलाल भी बाजे-गाजे के साथ घर पर आये। सत्यदेवजी की पूजा हुई। मित्रों की राय ठहरी कि रण्डी का नाच होना भी बहुत ही आवश्यक है। लखनऊ की सुन्दर-जान सौ रुपये रोज़ पर आई। भाई-बन्धुओं ने भी इस कार्य में पूरा साथ दिया। सारी रात मदिरा-पान और वेश्या-नृत्य में ख़तम हुई। प्रातःकाल लोगों के मुँह से यही निकलता था—वाह! वाह! क्यों न हो! अशर्फ़ी ने तो अपने जन्म को सार्थक बना ही डाला! उसके साथ साथ हम लोग भी तर गये!

(२)

बाबू रघुवीरसिंह धरहरा गाँव के एक बड़े ज़मींदार हैं। इनकी ज़मींदारी कई पुश्तों से चली आती थी। इसी कारण लोगों में इनकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। उच्च वंश के होने की वजह से इनमें बहुत से स्वाभाविक गुण थे; परन्तु आत्माभिमान इनमें बहुत हो गया था। विद्वान्, गुणवान्, सदाचारी, चतुर, न्यायशील तथा कार्यतत्पर रहने पर भी अहङ्कार के कारण इनका पतन बहुत शीघ्र हो गया। सब कोई इनके यहां आते थे; परन्तु दूसरों के यहां जाना ये पाप समझते थे। अपने यहाँ कार्य्य-प्रयोजन में ये दूर दूर के गुणी पण्डितों को बुलाते थे और उनका आदर-सत्कार करते थे।

इनका विवाह सर्वगुणसम्पन्ना श्रीमती तारादेवी के साथ हुआ। तारा के पिता भी एक ज़मींदार थे। जिस समय इनकी ख़ूब बनी थी उसी समय रघुवीर जी के एक पुत्र हुआ जिसका नाम बुद्धेश्वरसिंह रक्खा गया। कालान्तर में इनके दो कन्यायें हुईं जिनके नाम सरस्वती और लक्ष्मी थे। दोनों बहिनों में ऐसी प्रीति थी कि एक के बिना दूसरी रह नहीं सकती थी। ईश्वर के प्रकोप से सरस्वती महामारी रोग से पीड़ित हुई और जल्दी ही मृत्यु को प्राप्त हुई। लक्ष्मी भला ऐसी दशा में कब ठहरनेवाली थी! वह भी उसी रास्ते चल बिदा हुई।

ठाकुर अशर्फ़ीलाल लालपुर का एक सुखी गृहस्थ था। वह बड़ा साहसी, कार्य्यकुशल, धैर्य्यवान्, परन्तु छली था। उसका एक-मात्र उद्देश्य धन बढ़ाना था। यदि इस कार्य के लिए उसे घोरतम पाप भी करना पड़ता तो उसे वह न्याय ही समझ कर डालता था। इससे और रघुवीर से लेन-देन होता था। दो बार रघुवीरसिंह ने हैण्डनोट पर इससे क्रमशः चार और पाँच सौ रुपये भी लिये थे।

इसी बीच में रघुवीरजी की मृत्यु हो गई। स्तम्भ के गिरने से घर की दशा ख़राब हो गई। ख़र्च का कोई हिसाब ही नहीं रहा। नौकर-चाकर जो चाहते वही करते। आम-

दनी घटती गई और ख़र्च बढ़ता गया। आसामियों ने भी ज़मीन दबाना शुरू किया। रघुवीरसिंह के घर की ऐसी दशा देखकर अशर्फ़ीलाल ने अपना कार्य्य साधने का अच्छा अवसर पाया।

जालसाज़ी का षड्यन्त्र रचा गया। रघुवीरसिंह के अक्षर की नक़ल कर पचास हज़ार का एक तमस्सुक तैयार किया गया। इसके अनन्तर अशर्फ़ी ने रघुवीरसिंह के यहाँ के नौकरों को मिलाना प्रारम्भ किया। कलक्टर आदि बड़े बड़े अफ़सरों के यहाँ डाली पहुँचना शुरू हुई। अशर्फ़ी का भाग्य भी चमकने लगा। खेत में उपज भी ख़ूब होने लगी। वह सूद पर रुपये भी लगाने लगा और एक बड़ा व्यापार भी करने लगा। कुछ ही वर्षों में अशर्फ़ी एक भारी ज़मींदार हो गया।

आज-कल अशर्फ़ीलालजी शहर में ही रहते हैं। इनकी कोठी सिविलियनों की सी है। अब यह पुराने गृहस्थ नहीं रहे। इस समय इन्हें लोग आदर की दृष्टि से देखते हैं। ऐसी अवस्था में, जब कि सब नौकर मृत स्वामी के विरुद्ध हो रहे हैं और अशर्फ़ीलाल इस ऊँचे पद पर आसीन हुए हैं, यदि अशर्फ़ी ने तारादेवी पर पचास हज़ार की नालिश ही कर दी तो कौन विश्वास कर सकता है कि यह सरासर जाल ही है।

(३)

रघुवीरसिंह के घर में आज हाहाकार मचा हुआ है। रघुवीर के मर जाने पर अशर्फ़ी सेठ बनकर बैठा हुआ है। रघुवीरसिंह की ज़मींदारी नीलाम होकर अशर्फ़ी के अधीन हो चुकी है। रघुवीर के नौकर भी आज अशर्फ़ी के कहलाते हैं। रघुवीर का धन अशर्फ़ी का है और रघुवीर का मकान अशर्फ़ी का हो रहा है। या यों कहिए कि रघुवीर और अशर्फ़ी का आज उलट-फेर हो गया है। इसीको कहते हैं—भाग्यचक्र।

जब से तारादेवी के स्वामी की मृत्यु हुई और उसका दुर्दैव आया है, तब से उसे न दिन दिन जान पड़ता है और न रात रात ही। जो तारा महल में रहती थी वही आज झोपड़ी में वास करती है; जो तारा पूरी-पकवान खाती थी वही साग-सत्तू के लिए भी तरसती है। यह क्या है?—केवल दिनों का फेर।

तारा गहने बेचकर पेट-पूजा करती थी। इस समय भी उसे तीन आदमियों के लिए ख़र्च उठाना पड़ता है—अपने लिए, बुद्धेश्वर के लिए और विमला के वास्ते। बुद्धेश्वर तारा का प्रिय पुत्र है और विमला उसकी चेरी। इस विपत्ति में विमला ने तारा का साथ नहीं छोड़ा। विमला ने तारा के शाक को अमृत समझा; परन्तु अशर्फ़ी की मिठाई को विष। यही विमला तारा के गहने बाज़ार में ले जाकर बेचती थी। जब एक एक करके सब गहने ख़तम हो चुके, तब विमला अपनी ही कमाई से सबका पोषण करने लगी। दिन भर परिश्रम कर वह जो कुछ लाती उसे सबमें बांटकर खाती थी। बुद्धेश्वर अभी पांच ही वर्ष का था। इसे देखकर विमला के हृदय के टुकड़े टुकड़े होते थे; और वह केवल आह भरकर ही रह जाती थी।

एक दिन विमला बुद्धेश्वर के पैर के तलुए को देखकर चौंक उठी। तारा के पूछने पर उसने उत्तर दिया, तारा, देखो तो बुद्धू के पैर में कमल के चिह्न हैं! यह क्या साधारण मनुष्यों में पाया जा सकता है! मैंने अपने स्वामीजी को कहते सुना था कि जिसके पैर में कमल का फूल होता है वह बड़ा धनी और यशस्वी ... ... ।

धनी का नाम सुनतेही तारा की आँखों से एकदम आंसुओं की धारा बह चली।

× × ×

तारा ने विमला से कहा, विमला, इस देश (गांव) में मेरा जी नहीं लगता। कहीं दूसरी ही जगह चलो। वहाँ कम से कम मन तो आनन्दित रहेगा।

प्रातःकाल तारा ने चलने की तैयारी की; पर इसी बीच में इसके सिर में अचानक बड़ा दर्द होने लगा। अब ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता जाता था त्यों त्यों तारा बेहोश होती जाती थी। फिर लगभग दो घण्टे में वह एकदम ही बेहोश होकर गिरपड़ी। विमला तारा तारा कहकर पुकारने लगी। परन्तु तारा तो अब तारा में मिलचुकी थी! वह सदा के लिए सोगई! विमला ने उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया की।

विमला ने बुद्धू को गले लगाया और प्रण किया कि मैं यावज्जीवन तारा की दासी बनकर रहूँगी और बुद्धू का पालन करूँगी। तारा के पुत्र के सुख में मेरा सुख होगा

और तारा के पुत्र के दुःख में मेरा दुःख। तारा ने इस स्थान को त्यागने का विचार किया था; इस कारण में अब यहां एक पल भी नहीं ठहर सकती। चलो, बुद्धू, कुछ दिन के लिए जन्म-स्थान को भूल जाओ। इसीमें आनन्द है।

(४)

विमला बुद्धू के साथ एक निर्जन स्थान में रहती है। इसकी झोपड़ी से दो कोस पर वागमती नदी बहती है। इसीके तीर पर एक मन्दिर में श्रीकृष्ण की सुन्दर प्रतिमा स्थापित है। जब से विमला यहां आई है वह प्रति रविवार को बुद्धू के साथ श्रीकृष्ण आनन्दकन्द के दर्शनार्थ जाती है। यहां कन्द-मूल की कमी नहीं है।

समय समय पर यहां लोग भी आजाया करते हैं; परन्तु इने-गिने लोग ही। हां, साधु-महात्माओं की कमी नहीं रहती। साधुओं को एकान्त स्थान प्रिय होता है; परन्तु गृहस्थों को नहीं। इसी कारण गृहस्थ संयोग से ही यहां भूले-भटके आजाया करते हैं।

विमला प्रति रविवार को बुद्धू के साथ इस मन्दिर में आती थी। साधुओं में विशेष भक्ति रहने के कारण वह सवेरे ही से आती थी और संध्या को लौटकर चली जाती थी। दूसरे दिनों की तरह आज भी वह यहां आई है; पर आज वह अधिक प्रसन्न थी। क्या रास्ते में कोई मङ्गलजनक शकुन तो नहीं हुआ था?

विमला ने बुद्धू से श्रीकृष्ण को प्रणाम करने के लिए कहा और स्वयं भी उन्हें प्रणाम किया। जब वह बाहर लौटी तब उसने वहां एक संन्यासी को देखा। विमला ने श्रद्धा से इन्हें प्रणाम किया। संन्यासी बोले—बेटी क्या चाहती है? विमला ने कहा—आशीर्वाद।

संन्यासी—तू झूठ क्यों बोलती है? साफ़ साफ़ क्यों नहीं कहती कि बुद्धू को अपनी ज़मींदारी हासिल होजाय!

विमला संन्यासी के चरणों पर गिर पड़ी और बोली, महात्मन्, मुझे क्षमा करें। आप तो अन्तर्यामी हैं। सब कुछ:......।

वह अधिक बोल भी नहीं सकी कि संन्यासी ने कहा, अच्छा, तेरा अभीष्ट सिद्ध हो जायगा।

विमला घर पर लौट आई; परन्तु वह आनन्द से विकल हो रही थी। उसे रात भर नींद नहीं आई। वह बड़ा ही आश्चर्य करती थी कि संन्यासी ने मेरे अभिप्राय को क्यों कर जान लिया! वह सोचने लगी कि वे मुझको और बुद्धू को कैसे पहचानते हैं, और बुद्धू को ज़मींदारी क्यों कर प्राप्त होगी? इतने में ही एक साफ़ आवाज़ ने कहा—आश्चर्य मत कर। आगामी रविवार को ही सब कार्य्य सम्पन्न हो जायगा। परन्तु तेरी और बुद्धू की भेंट दूसरे वर्ष होगी। सच्चिदानन्द पर विश्वास कर।

(५)

ठाकुर अशर्फ़ीलाल ने प्रचुर धन इकट्ठा कर लिया है; परन्तु इससे उन्हें आनन्द नहीं मिलता। वे रात दिन चिन्तित रहते थे; पर जब से स्वामी सच्चिदानन्द से भेंट हुई है वे उतने दुःखी अथवा चिन्तित नहीं रहते। अब उन्हें न कलक्टर के यहां जाना पसन्द है और न जज के यहां डाली पहुँचाना। एक प्रकार से वे विरक्त होगये हैं और यही कहते हैं कि जब पुत्र ही नहीं तब मैं धन लेकर क्या करूँगा? हा, यह तो मुझे एक भार सा ही मालूम होरहा है!

ठाकुर अशर्फ़ीलाल कोठरी में बैठे बैठे राम-नाम का जप कर रहे हैं। इतने में ही एक नौकर ने आकर कहा कि स्वामी सच्चिदानन्द जी द्वार पर खड़े हैं। अशर्फ़ीलाल ने उन्हें सादर बुला लाने के लिए अपने सेवक से कहा।

जब स्वामी जी समीप आगये तब अशर्फ़ीलाल ने उठकर उन्हें प्रणाम किया और आसन पर बैठाकर बोले, स्वामिन्, यदि आपने मुझे बराबर ज्ञानोपदेश न दिया होता तो आज में पागल होकर संसार में मारा मारा फिरता। यह आपकी ही कृपा है कि न तो मुझे धन से प्रेम है और न पुत्र पाने की इच्छा है।

स्वामी०—यदि तुझे इतना ज्ञान हो गया है तो और चाहिए ही क्या? परन्तु मेरी राय है कि तू पाप के प्रायश्चित्त के लिए अपने आधे धन को कृष्णार्पण कर दे और शेष को एक पोष्य-पुत्र के अधीन कर दे। वही श्रीकृष्ण के धन का मैनेजर और तुम्हारे शेष धन का अधिकारी होगा।

अशर्फ़ी०—महाराज ! पोष्य-पुत्र चुनने का भार मैं आपही पर छोड़ता हूँ।

स्वामी०—अच्छा, इसके लिए तुझे चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी।

× × × ×

आज स्वामी सच्चिदानन्द और अशर्फ़ीलाल ठाकुर दोनों ही श्रीकृष्ण के मन्दिर में बैठे हुए हैं। पास ही आठ वर्ष का एक लड़का खड़ा है। स्वामीजी ने अशर्फ़ी से कहा—अशर्फ़ी, इसे तू पोष्य-पुत्र बना। इससे तेरा कल्याण होगा। यह लड़का बड़ा ही भाग्यवान् मालूम होता है। इसके हाथ में राजा के लक्षण दीख पड़ते हैं।

अशर्फ़ी०—आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है; परन्तु मैं एक वर्ष से अधिक गृहस्थाश्रम में नहीं रहूँगा। मेरी इच्छा संन्यास लेने की है। इस बीच में पोष्य-पुत्र लेने का विषय समाचारपत्रों में प्रकाशित करा दूँगा और सरकारी कचहरी में भी इसकी आज्ञा ले लेता हूँ। इसके अतिरिक्त एक मैनेजर भी क़ायम कर देता हूँ जो मेरे पुत्र को उचित शिक्षा-दीक्षा देवें।

स्वामी०—हाँ, यह बात तो ठीक है; परन्तु एक बात मैं कह देना उचित समझता हूँ कि इस लड़के को मैं चुराकर लाया हूँ। यद्यपि इस का वारिस कोई नहीं है; पर यह एक उच्च वंश का होनहार बालक है।

इसका असल भेद मैं तब बतलाऊँगा जब तुम संन्यास लेलोगे।

× × ×

अशर्फ़ीलाल ठाकुर ज्ञानानन्द कहलाने लगे। स्वामी सच्चिदानन्द से ही इन्होंने दीक्षा ली है। स्वामीजी के द्वारा यह सुनकर उन्हें बहुत हर्ष है कि बुद्धू रघुवीरसिंह का लड़का है। अब उन्होंने उस घोर पाप का प्रायश्चित्त कर डाला है जो उन्हें रघुवीर के विरुद्ध जाल रचने के कारण लगा था। ज्ञानानन्द जी को इस पुण्य-कार्य्य से जो हर्ष हुआ है उसकी सीमा नहीं है।

× × ×

इतने दिनों तक विमला उसी झोपड़ी में रहती है, जहाँ वह पहले आई थी। बुद्धू के खो जाने का उसे बहुत दुःख है; पर स्वामीजी की बात पर विश्वास कर वह वर्ष पूर्ण होने की राह देख रही है।

आज वर्ष समाप्त हो गया। स्वामी सच्चिदानन्द और ज्ञानानन्दजी विमला की झोपड़ी के पास जाकर खड़े हो गये; जहाँ विमला बुद्धू के शोक में एक वर्ष से दिन काट रही थी। स्वामी जी ने विमला को पुकारा और अपने साथ लेकर बुद्धेश्वर के महल पर पहुँच गये। फिर स्वामीजी ने बुद्धेश्वर को पुकारा। ज्योंही वह बाहर आया त्योंही विमला को देखकर बोल उठा—विमला ! विमला ने प्रत्युत्तर में कहा—बुद्धू !

तब ज्ञानानन्द ने विमला से कहा—सच्चिदानन्द की ओर तो देखो। क्या यही न एक दिन तुम्हारे प्रिय पति थे जो अपने स्वामी रघुवीरसिंह के घर की बुरी अवस्था के कारण विरक्त होकर संन्यासी हो गये थे ?

इस पर सच्चिदानन्द ने कहा—और बुद्धू को जमींदारी देनेवाले यही ज्ञानानन्द हैं जो पहले रघुवीरसिंह के कट्टर शत्रु अशर्फ़ीलाल ठाकुर थे।

सब एक दूसरे की ओर एक-टक देखते रहे।

'कण्टक'

विविध विषय।

१—झालरापाटन में नागरिक अधिकार।

अभी थोड़े दिन हुए झालावाड़ के पूर्ण शिक्षित तथा प्रजा-प्रिय महाराजा रानाजी ने अपनी राजधानी के नागरिकों को स्थानीय स्वराज्य के सम्पूर्ण अधिकार प्रदान करने की कृपा की है। इन अधिकारों के आधार पर जो संस्था बनेगी उसके सदस्य वोट (राय) द्वारा चुने जायँगे और उसके उप-सभापति का चुनाव सदस्यों द्वारा होगा। इस संस्था के सभापति का आसन स्वयम् महाराजा सुशोभित करेंगे।

इस अधिकार-प्रदान में सबसे अधिक महत्त्व की

बात यह हुई है कि महाराजा ने स्त्रियों को भी वोट देने का अधिकार प्रदान किया है। सदस्यों के चुनने में वहाँ स्त्रियाँ भी अपनी रायें दे सकेंगी।

अपनी राजधानी के नागरिकों को पूर्वोक्त अधिकार प्रदान करते समय महाराजा राना ने एक बड़ा सारगर्भित भाषण किया था जिसमें आपने सदस्यों को सम्बोधन कर कहा—

"आप लोग अपनेको अधिकारी न समझें; किन्तु सार्वजनिक सेवक। आप लोगों को इन अधिकारों के लेने में जितना हर्ष हो रहा है उससे कहीं अधिक आनन्द मुझे इनके देने में है।" आपने अपने भाषण में टाड साहब के राजस्थान से निम्न-लिखित पंक्तियाँ उद्धृत करके अपनी उच्च-शिक्षा तथा उदार भाव का विशेष परिचय दिया है—"यह हिन्दुस्तान का एकही नगर है जिसमें नागरिक स्वतन्त्रता के अङ्कुर पाये जाते हैं और इन अङ्कुरों में नागरिक नियम बनाने की शक्ति है।" आज महाराजा ने उन अङ्कुरों को एक मनोहर पौधे के रूप में परिणत कर दिया है। हम यह शीघ्र सुनने की आशा करते हैं कि उक्त राजधानी के नागरिक अपनेको इन अधिकारों के पाने के पूर्ण उपयुक्त प्रमाणित करेंगे। इस युगान्तर के लिए महाराजा राना और उनकी प्रजा दोनों को सहर्ष बधाई है।

२—नये मेट्रापालिटन।

भारतवर्ष में क्रिश्चियन चर्च का सङ्गठन भी प्रायः वैसा ही है जैसा कि गवर्नमेंट का। क्रिश्चियन चर्च से हमारा अभिप्राय क्रिश्चियनों के उस विशेष सम्प्रदाय से है जिसे चर्च आफ़ इँगलेंड कहते हैं। यों तो क्रिश्चियन धर्म के अनेक सम्प्रदायों के अनुयायी और उनके पुरोहित इस देश में मौजूद हैं; परन्तु हमारे शासकों का सम्प्रदाय चर्च आफ़ इँगलेंड ही है। जैसे भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में एक गवर्नर रहता है और उसके नीचे प्रत्येक ज़िले में कलक्टर और फिर सब गवर्नरों के ऊपर गवर्नर जनरल हैं, उसी प्रकार प्रत्येक ज़िले में क्रिश्चियनों का एक पुरोहित रहता है जिसे चेपलेन कहते हैं और समस्त प्रान्त के पुरोहितों के ऊपर बिशप रहते हैं और फिर सब बिशपों के ऊपर मेट्रापालिटन। कलकत्ते के लार्ड बिशप मेट्रापालिटन कहलाते हैं।

किसी समय में बङ्गाल के गवर्नर ही गवर्नर जनरल होते थे। कालान्तर में काम बढ़ जाने से वहाँ के गवर्नर का पद पृथक् कर दिया गया। कुछ दिन पहले तक कलकत्ता ही भारतवर्ष का मेट्रापालिस (राजधानी) था। इसीसे कलकत्ते के बिशप को ही प्राधान्य प्राप्त रहा
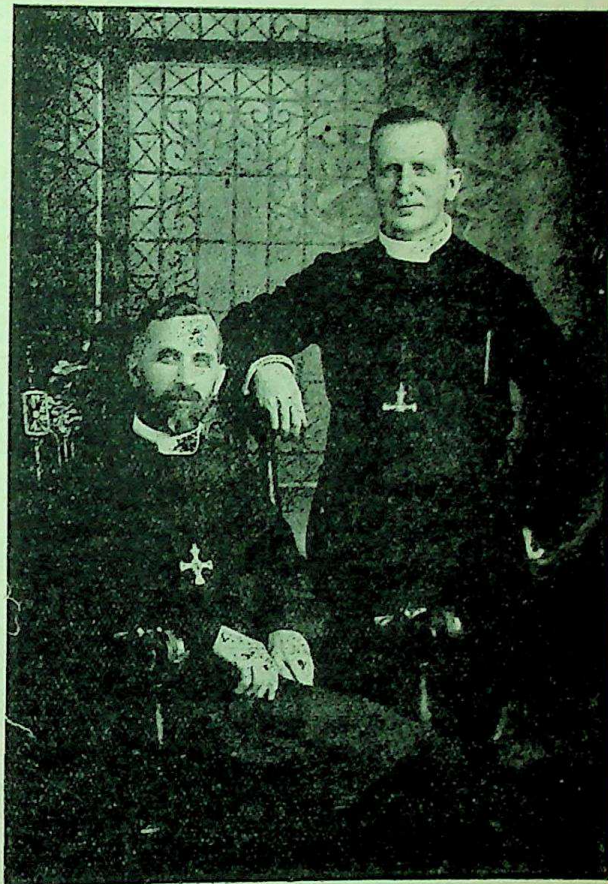
कलकत्ते और लखनऊ के लार्ड बिशप।

कलकत्ते के परलोकवासी लार्ड बिशप लेफ़राय के विषय में हम पहले लिख चुके हैं। इस संख्या में हम उनके उत्तराधिकारी, लार्ड बिशप फ़ास वेस्टकट का चित्र पाठकों की भेंट करते हैं। यद्यपि इन्हें इस पद के लिए नामाङ्कित

हुए कई मास हुए, तोभी इनके मेट्रापालिटन के आसन पर आसीन होने का संस्कार अभी हाल ही में किया गया है।

इनका जन्म २३ अक्टोबर सन् १८६३ में हुआ था। इन्होंने पहले चेल्टन स्कूल में शिक्षा पाई और तदनन्तर पीटर हाउज़ केम्ब्रिज में। स्कूल और कालेज में ये क्रिकेट के प्रसिद्ध खिलाड़ियों में थे। कालेज में शिक्षा पाने के बाद सेन्ट-पिटर्स-बिशप वियरमाउथ सेंडर्लेंड में क्योरेट नियुक्त हुए। वहां तीन वर्ष रहने के बाद ३० नवम्बर १८८६ में आप कानपुर पधारे। १६०५ में ये छोटा नागपुर के बिशप बनाये गये और अब इस वर्ष से मेट्रापालिटन के पद को सुशोभित करते हैं।

कालेज में, और भारतवर्ष आने पर १६०५ तक, ये अपने बड़े भाई रेवरेन्ड जार्ज वेस्टकट के साथ रहे। इनके बड़े भाई भी जो चित्र में इनके साथ खड़े हैं, आज-कल संयुक्त-प्रदेश के बिशप हैं। इन दोनों भाइयों की गणना सङ्कीर्ण हृदयवाले पादरियों में नहीं है। इनमें उदारता और स्वार्थत्याग के भाव बहुत ही बढ़े हुए हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि हिन्दुस्तानियों के साथ, चाहे वे किसी धर्म या सम्प्रदाय के हों इनकी सदैव सहानुभूति रहती है। दूसरे धर्मों की व्यर्थ निन्दा करना और लोगों को येन-केन-प्रकारेण ईसाई बना डालना आप अच्छा नहीं समझते।

३—क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल।

क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल इलाहाबाद के विषय में हम पहले भी लिख चुके हैं। यह संस्था दिनोंदिन उन्नति कर रही है। इस वर्ष इसके सञ्चालकों ने अस्सी हज़ार रुपये के खर्च से एक नया बोर्डिङ्ग हाउज़ भी

क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल से मेट्रीक्यूलेशन की परीक्षा देनेवाली लड़कियां और उनकी अध्यापिका।

बनवा दिया जिसमें १०० लड़कियां बड़े आनन्द से रह सकती हैं। बोर्डिङ्ग हाउज़ में शौच, स्नान, भोजनादि का अच्छा प्रबन्ध है। लड़कियों के साथ उनके निरीक्षण के लिए

क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल, इलाहाबाद।
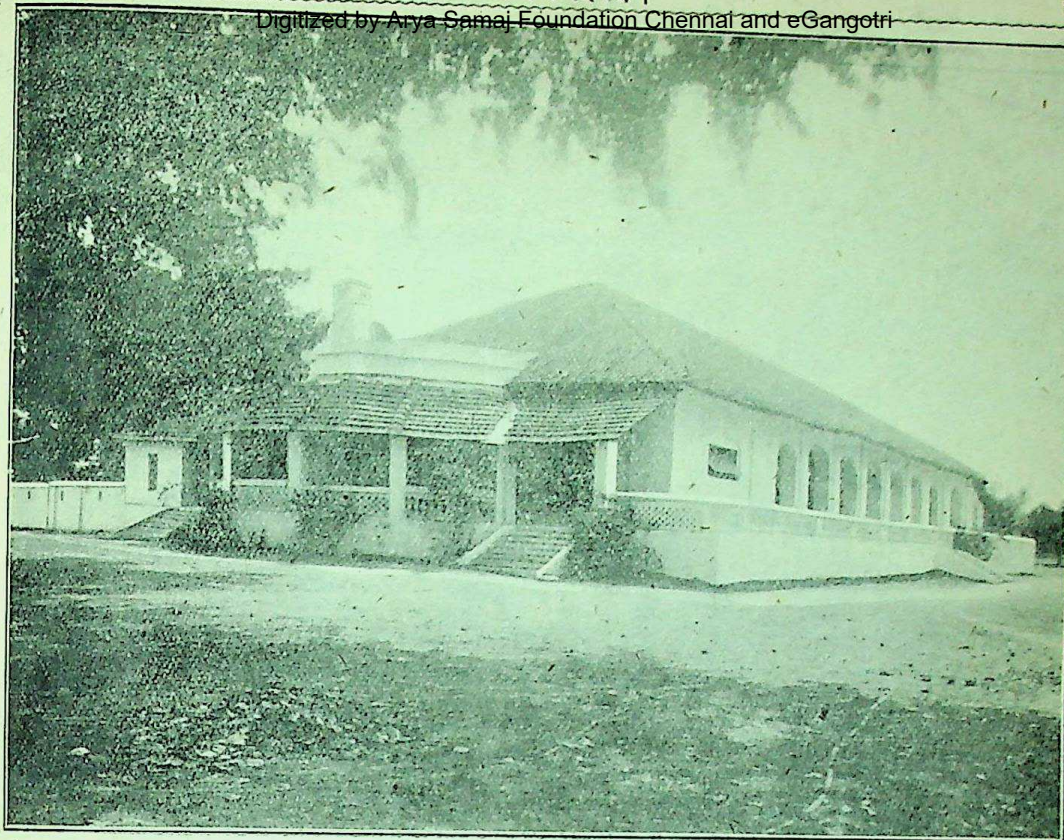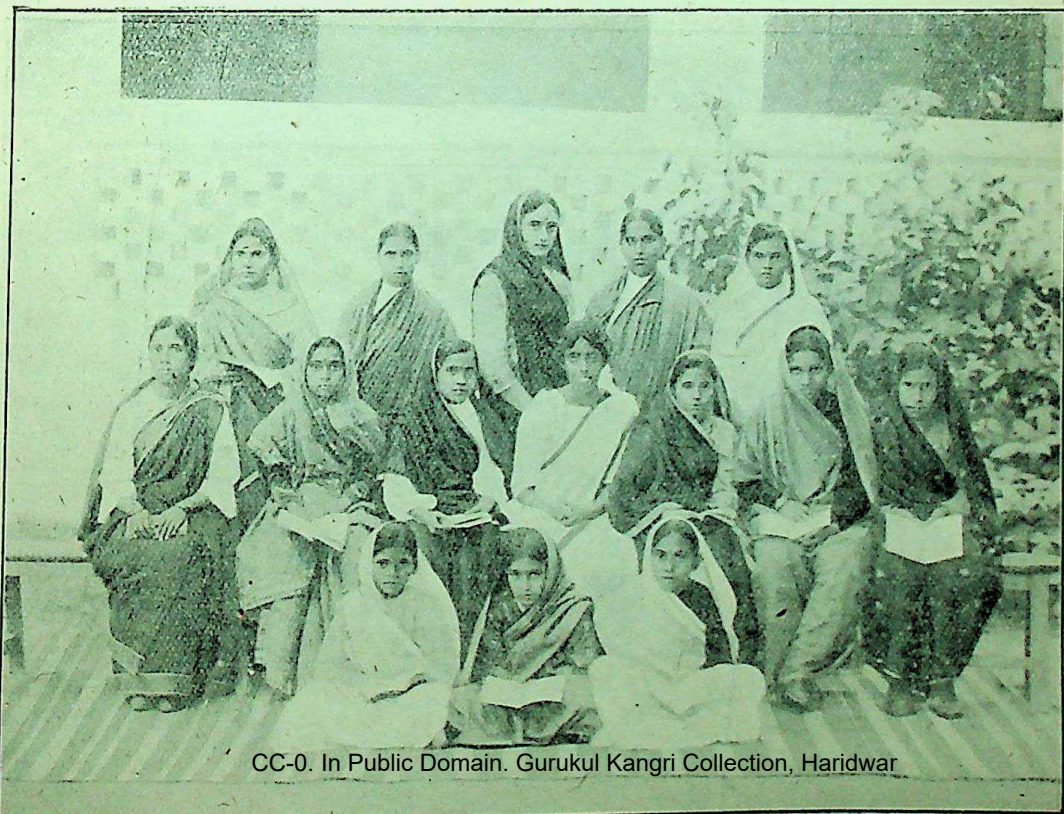
क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल से अँगरेज़ी मिडिल की परीक्षा में सम्मिलित होनेवाली लड़कियाँ।

क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल के छोटे दर्जों की बालिकायें और अध्यापिकायें ।

क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल के हिन्दू छात्रालय की कुछ लड़कियाँ ।
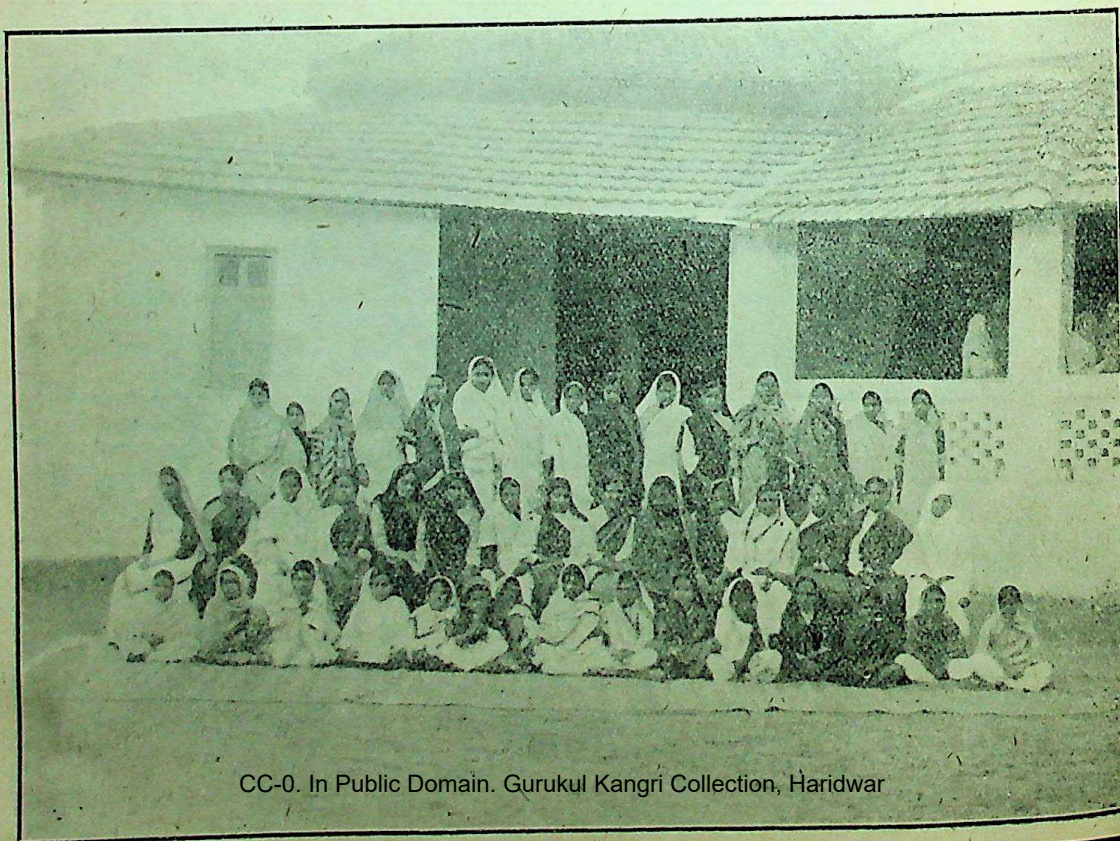
अध्यापिकायें भी रहती हैं। यदि कोई लड़की अस्वस्थ हो गई तो उसका इलाज भी वहीं बोर्डिङ्ग हाउज़ के अस्पताल में हो जाता है। भोजन सहित यह सब सुभीता सिर्फ़ आठ रुपये माहवार में कर दिया जाता है।

इस स्कूल की प्रधानाध्यापिका मिस मानकर बी० ए० का देहान्त हो गया। उनके स्थान पर मिस कृष्णाबाई तालस्कर, एम० ए० नियुक्त हुई हैं। मिस तालस्कर ने पहले बम्बई में शिक्षा पाई। वहाँ केमिस्ट्री (रसायनशास्त्र) और एस्ट्रानमी (ज्योतिष) का अध्ययन कर डाक्टरी पढ़ने के लिए अमेरिका गईं। बाटनी, ज़ूआलोजी, फ़िज़ीआलजी आदि शास्त्रों को पढ़ उन्होंने इतिहास पढ़ना आरम्भ किया और शिकागो यूनिवर्सिटी से इस विषय में एम० ए० की पदवी प्राप्त की। तदनन्तर अध्यापन में कोलम्बिया यूनिवर्सिटी की एम० ए० की परीक्षा पास कर भारतवर्ष लौटीं। बम्बई के सेवासदन में वे अवैतनिक काम कर रही थीं। श्रीमती कृष्णाबाई तालस्कर ऐसी सुयोग्य अध्यापिका का, क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल में आजाना उस संस्था के लिए सौभाग्य की बात है। उनके आते ही प्रबन्ध पहले से भी अच्छा हो चला है। स्कूल के बोर्डिङ्ग हाउज़ में अनेक प्रान्तों की ८० लड़कियाँ रहती हैं। स्कूल में शिक्षा मेट्रीक्यूलेशन तक दी जाती है। इस वर्ष ११ लड़कियाँ यह परीक्षा देंगी। लड़कियों को रोगियों की सेवा करना, घर-गृहस्थी का प्रबन्ध करना भी सिखाया जाता है। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस संस्था के सञ्चालकों ने अभी तक सङ्गीत सिखलाने का यथेष्ट प्रबन्ध नहीं किया। बिना सङ्गीत के स्त्रियों की शिक्षा अपूर्ण ही समझनी चाहिए। आशा है कि इस त्रुटि को भी स्कूल के सञ्चालक शीघ्र ही दूर कर देंगे।

४—प्रथम प्राच्य-सम्मेलन।

प्रथम प्राच्य-सम्मेलन सानन्द समाप्त हो गया। दूसरा अधिवेशन अगले वर्ष कलकत्ते में होगा। सम्मेलन के सभापति सर आर० जी० भाण्डारकर का सम्भाषण उन ऐसे विद्वान् के अनुरूप ही था। उनका शिक्षाप्रद और गम्भीर-व्याख्यान सभी विद्वानों के, विशेष कर पुरानी चाल के पण्डितों के पढ़ने योग्य है। व्याकरण, न्याय, काव्य, दर्शन, वेद, प्राचीन इतिहासादि अनेक शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने की वर्तमान शैली को दिखलाते हुए, उसकी त्रुटियों को दूर करने के लिए, अपनी सम्मति प्रकट की। व्याकरण में महाभाष्य पढ़ने-पढ़ाने के लिए उन्होंने ज़ोर दिया और न्याय में जगदीश भट्टाचार्य्य और गदाधर भट्टाचार्य्य ही के पीछे पड़े रहने को मना किया। गौतम और वात्स्यायन के ग्रन्थों का उद्धार करने का आग्रह किया। जिस छानबीन और खोज के साथ योरप के विद्वान् पढ़ते हैं, वैसी ही गवेषणा करने के लिए उन्होंने भारतवर्ष के पण्डितों को भी सम्मति दी। योरप और भारतवर्ष के पण्डितों में सत्यान्वेषण के लिए परस्पर प्रेम होना चाहिए।

शिला-लेखों, ताम्र पत्रों और विदेशियों की लिखी हुई उन पुस्तकों के पढ़ने के लिए उन्होंने ज़ोर दिया जिनमें हमारे ग्रन्थों और हमारे देश की घटनाओं की चर्चा है।

५—नरेन्द्र-मण्डल।

गत तीसरी नवम्बर को चीफ़्स कान्फ़रन्स के अधिवेशन में जो दिल्ली में हुआ था वाइसराय ने एक महत्त्वपूर्ण वक्तृता देते हुए यह प्रकट किया कि गवर्नमेन्ट आफ़ इण्डिया तथा हिज़ मेजिस्टीज़ गवर्नमेन्ट का विचार भारतवर्ष में एक नरेन्द्र-मण्डल स्थापित करने का है। इस संस्था का नाम नरेन्द्र-मण्डल ही रहेगा या और कुछ रक्खा जायगा यह तो उसके सभ्यगण ही निश्चित करेंगे परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह होगी अपूर्व और प्रभावशालिनी। इसका प्रभाव न केवल उन रियासतों ही पर होगा जिनके शासक इस संस्था के सदस्य होंगे किन्तु ब्रिटिश इण्डिया पर भी इस नरेन्द्र-मण्डल का बहुत कुछ असर पड़ेगा। जो हो भारतवर्ष की अनेक रियासतों के राजाओं का एकत्र होकर अपने देश, साम्राज्य और संसार की स्थिति पर विचार करना उनके और देश के लिए कल्याणकारी ही होगा।

संसार की राजनैतिक स्थिति की ओर राजाओं और महाराजाओं का ध्यान आकर्षित करते हुए वाइसराय महोदय ने उन्हें अपनी अपनी रियासतों की दशा सुधारने, तथा देश, काल, अवस्थानुसार शासन-पद्धति में क्रमशः परिवर्तन करने की सलाह दी।

भारतवर्ष के छोटे-बड़े अनेक राजाओं का किसी एक

सभा का सदस्य बनाना आसान नहीं। उन सन्धि-पत्रों पर जो ब्रिटिश सरकार और रियासतों के बीच लिखे गये हैं बहुत कुछ ध्यान देना पड़ेगा; परन्तु ब्रिटिश-राजनीति-कौशल के सामने सभी कठिनाइयां हल हो जाती हैं।

पूर्वोक्त नरेन्द्र-मण्डल के सङ्गठन के नियमोपनियम का अन्तिम रूप क्या होगा अभी से नहीं कहा जा सकता, पर आरम्भ में इस मण्डल के सदस्य वे नराधिप तो होवेंगे ही जिनकी ग्यारह या ग्यारह से अधिक तोपों की सलामी होती है; परन्तु इनके अतिरिक्त वे नरेन्द्र भी इस मण्डल में सम्मिलित किये जायँगे जिनकी ९ तोपों की सलामी होती है और जो अपने राज्य के शासन में स्वतन्त्र हैं। ऐसे राजाओं के विषय में जिनकी ९ तोपों की सलामी तो होती है परन्तु शासन में स्वतन्त्र नहीं हैं, फिर से शीघ्र ही विचार होगा और जहां तक हो सकेगा उन्हें भी शासन में स्वतन्त्र करके पूर्वोक्त नरेन्द्र-मण्डल में सम्मिलित होने का अधिकार दे दिया जायगा। ऐसे राजाओं का भी जिनकी सलामी नहीं होती किसी प्रकार इस मण्डल में योग हो यह विषय भी विचाराधीन है।

मण्डल के अधिवेशनों में नराधिपों का स्वयं उपस्थित होना अथवा वोट देना आवश्यक न होगा। मण्डल से केवल परामर्श या मन्त्रणा होती रहेगी। उसे प्रबन्धकारिणी संस्था का कार्य्य न करना होगा।

६—मलेरिया से बचने का सहल उपाय।

ग्वालियर के कृषि-विभाग ने कृषकों को मलेरिया से बचने के लिए निम्नलिखित उपाय बतलाये हैं।

(१) अपने निवास-स्थान के इर्द-गिर्द जल इकट्ठा न होने दो। ऐसे प्रत्येक स्थल में मच्छड़ों की वृद्धि होती है जिससे मलेरिया पैदा होता है।

(२) कुछ चिरायते का अर्क या क्विनाइन खाना उचित है।

(३) मलेरिया से बचने की एक और सहज दवा यह है। नीम की पत्ती धूप में सुखा ले, फिर उसे पीस कपड़े से छान ले। यह चूर्ण एक तोले लेकर उतना ही गुड़ मिला ८ गोलियां बना ले। दिन भर में चार गोलियां खानी चाहिए। जिन पत्तियों से चूर्ण बनाया जाय वे न तो बहुत पुरानी हों और न नई।

(४) महीने में एक दफ़ा सनाय की पत्ती का जुलाब ले लेना चाहिए या चौबीस घंटे का अनाहार व्रत रख लेना चाहिए।

(५) सुस्त कभी न रहना चाहिए।

७—इलाहाबाद में शिक्षा-विभाग की कुछ नई इमारतें।
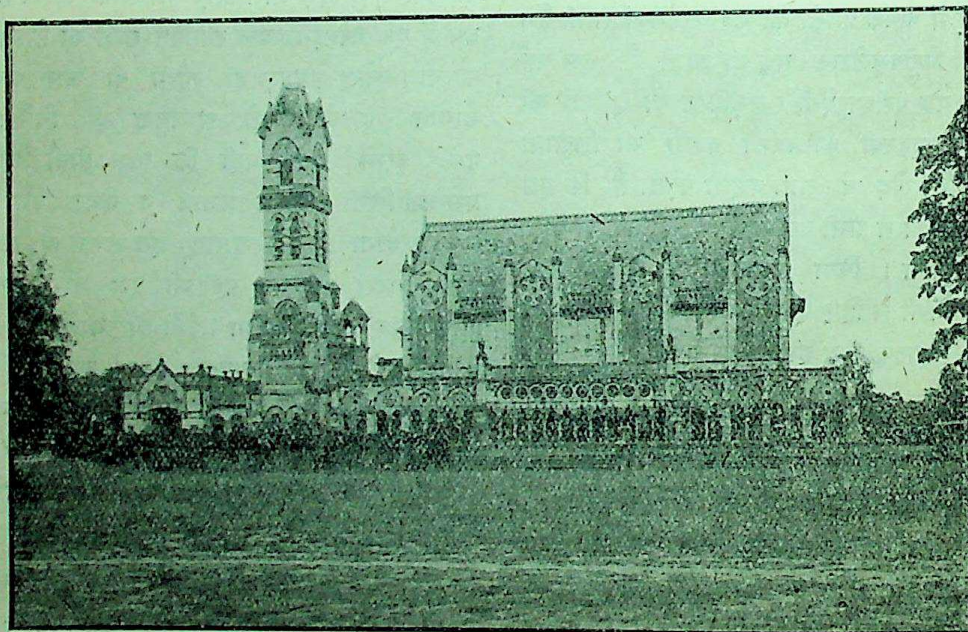
इलाहाबाद की पबलिक लाइब्रेरी।
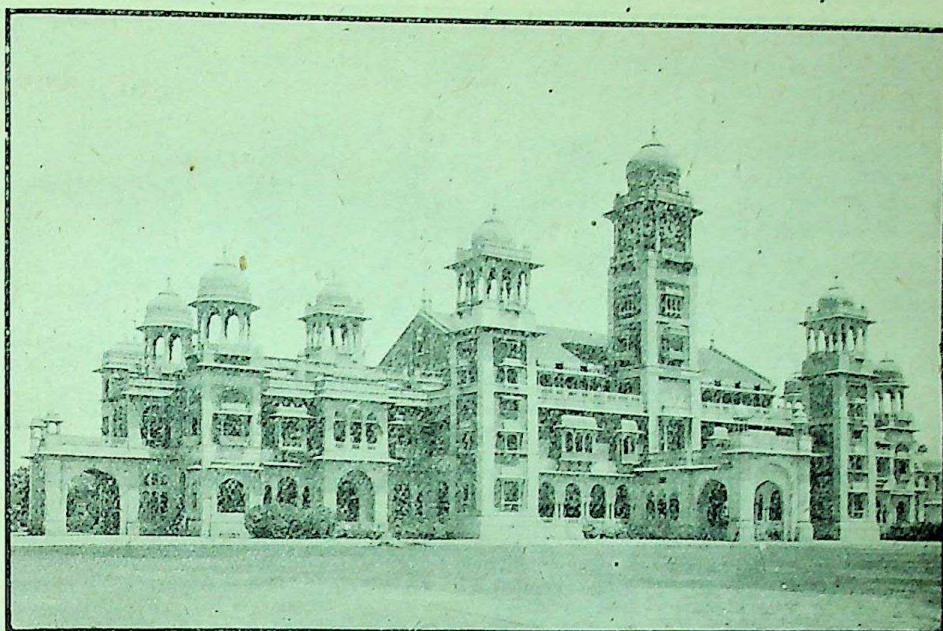
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का सेनट हाल।
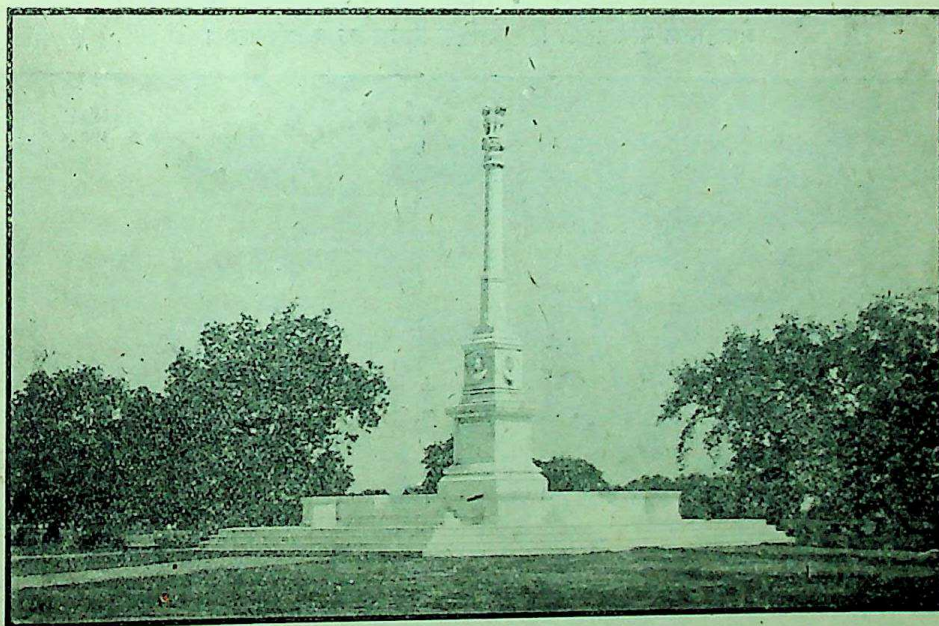
इलाहाबाद के मिन्टो मेमोरियल पार्क में प्रोक्लेमेशन पिलर।
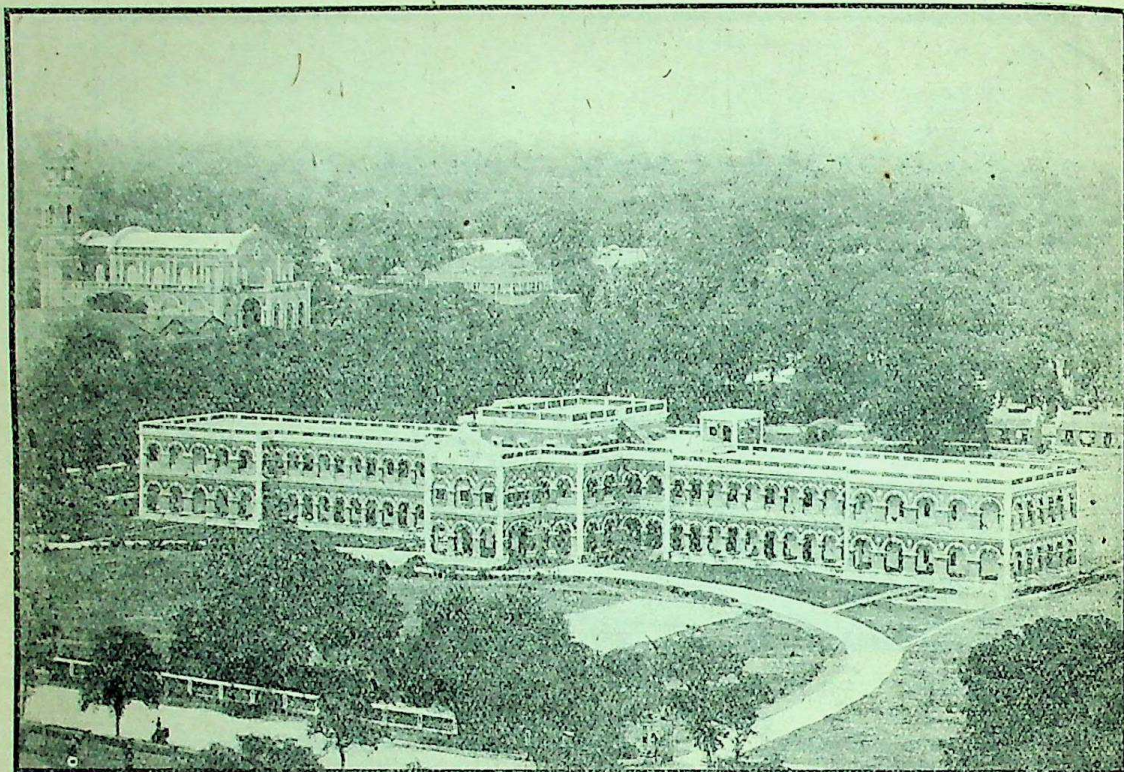
मेकडानल यूनिवर्सिटी हिन्दूबोर्डिङ्ग हाउस का बाहरी दृश्य।
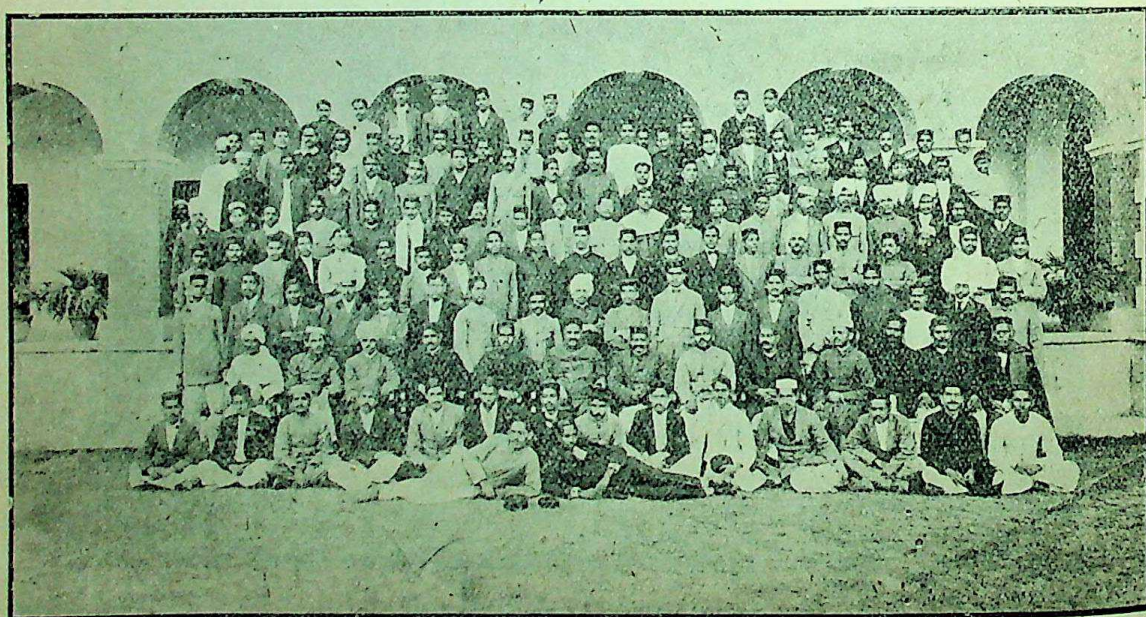
मेकडानल यूनिवर्सिटी हिन्दूबोर्डिङ्ग हाउस में रहनेवाले विद्यार्थी।

इलाहाबाद संयुक्त-प्रदेश की राजधानी और प्रयाग विश्वविद्यालय का केन्द्र होने के कारण दिनों-दिन उन्नति कर रहा है। थोड़े ही दिनों में यहां कई कालेज और कितने ही छात्रालय होगये हैं। क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल की चर्चा हम पिछले एक नोट में कर ही चुके हैं। म्योर कालेज और मेयोहाल, पबलिक लाइब्रेरी इत्यादि पुरानी इमारतें तो थीं ही परन्तु अब कायस्थ-पाठशाला कालेज, इविङ्ग क्रिश्चियन कालेज प्रभृति अनेक शिक्षा-विभाग की इमारतें बन गईं और बननेवाली हैं। सेनट हाल जहां प्रान्त भर के कालेजों के विद्यार्थी ऊँचे दर्जे की परीक्षाएँ देते हैं, हाल ही में बना है। माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय ने कुछ ही दिन हुए अपने उद्योग से भारत के भूतपूर्व गवर्नर जनरल लार्ड मिन्टो महोदय का स्मारक मिन्टो-पार्क बनवा दिया है और वहीं एक स्तूप स्थापित किया है जिसमें वे प्रतिज्ञायें हैं जोकि सन् १८५७ के बाद महारानी विक्टोरिया ने भारतवर्ष की प्रजा से की हैं।

प्रयाग के कालेजों में पढ़नेवाले हिन्दू विद्यार्थियों को निवास-स्थान का बड़ा कष्ट था। उसकी बहुत कुछ निवृत्ति माननीय मालवीयजी ने अपने उद्योग से मेकडानल यूनिवर्सिटी हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस बनवाकर कर दी। सर एन्टनी मेकडानल ने इस कार्य्य में बहुत सहायता की थी। इसीसे इनका नाम इस छात्रालय से संयुक्त कर दिया गया है। पहले इसमें केवल ८४ विद्यार्थियों के रहने और आराम का प्रबन्ध था। अब यह इमारत और भी बढ़ा दी गई और अब इसमें २१६ विद्यार्थी रहते हैं। यद्यपि इस बोर्डिङ्ग हाउस के बनने में ३ लाख रुपये से अधिक ख़र्च हो चुका है परन्तु इसमें व्यायाम-शाला, पाकशाला, स्नानागार, सन्ध्या-मन्दिर, आदि स्थानों और खेल-कूद के लिए मैदानों की कुछ कमी है। मालवीयजी ने इस कमी के दूर करने के लिए अपील की है। आशा है कि जिन राजाओं और रईसों की मदद से यह सुप्रसिद्ध छात्रालय बना है उनकी और अन्यान्य लक्ष्मीजी के कृपा-पात्रों की उदारता से अवशिष्ट त्रुटियां भी दूर हो जायँगी।

८—संस्कृत-सम्मेलन।

अखिलभारतवर्षीय संस्कृत-सम्मेलन (All-India Sanskrit Conference) का सप्तम अधिवेशन इस वर्ष कलकत्ते में होना निश्चित हुआ है। स्वागतकारिणी कमेटी के सभापति हैं सर आशुतोष मुकर्जी, और मन्त्री श्रीयुत सतीशचन्द्र विद्याभूषण। पण्डितों से विनय है कि आगामी १ दिसम्बर तक निम्नलिखित विषयों पर निबन्ध लिखकर मन्त्री महोदय के पास भेज दें।

विषय

१ अलङ्कार-शास्त्र की उन्नति।
२ वेद, षट् अङ्ग, श्रौत और गृह्य-सूत्र।
३ मीमांसा, धर्म्म-शास्त्र, क़ानूनी फ़ैसले और उनका परस्पर सम्बन्ध।
४ ऋषि-प्रणीत आस्तिक और नास्तिक दर्शन-शास्त्र, उनमें परस्पर समानता और भेद।
५ सांख्य, योग, पाशुपत और अन्यान्य दर्शनों की उपयोगिता।
६ न्याय और वैशेषिक।
७ वर्तमान व्याकरण-शास्त्रों की विशेषता और उपयोगिता।
८ भारतवर्षीय और पाश्चात्य ज्योतिष।
९ प्राच्य और पाश्चात्य आयुर्वेद।
१० पुराण, भारतीय महापुरुषों की कथायें।

९—सङ्गीत-सम्मेलन।

अखिलभारतवर्षीय सङ्गीत-सम्मेलन इस वर्ष १९ से २२ दिसम्बर १९१९ तक काशी में होगा। महाराज बनारस सभापति के आसन को सुशोभित करेंगे और उपसभापति होंगे राजा मुंशी माधवलाल साहब। स्वागतकारिणी सभा के सदस्यों से ५०) फ़ीस ली जायगी और दर्शकों और प्रतिनिधियों से १५)। भोजन और निवास-स्थान के लिए अलग देना होगा। निरामिष भोजन के लिए २), नौकरों के लिए ॥)। जिन सङ्गीत-वेत्ताओं को स्वागत-कारिणी आमन्त्रित करेगी उनकी सवारी, भोजनादि का ख़र्च कमेटी की ओर से दिया जायगा और सब अधिवेशनों में बिना किसी प्रकार की फ़ीस दिये वे जा सकेंगे। उन्हें सोने और चांदी के पदक भी प्रदान किये जायँगे। जो सज्जन सङ्गीत का पेशा नहीं करते उन्हें उपाधियां दी जायँगी। दर्शकों और प्रतिनिधियों को ३० नवम्बर तक अपनी फ़ीस मिस्टर एस. बासू जनरल सेक्रेटरी आल इंडिया थर्ड म्यूज़िकल कानफ़रन्स बनारस के पास भेज देनी चाहिए।

पुस्तक-परिचय ।

पुस्तक-पञ्चक—पण्डित रामदहिन मिश्र ने, बांकीपुर के ग्रन्थमाला-कार्य्यालय से पांच पुस्तकें भेजने की कृपा की है। सभी पुस्तकें एक ही—मँझोले—आकार की हैं और अच्छी छपी हैं। विवरण—

पहली पुस्तक—**भारत भूगोल** :—है। इसकी भाषा संस्कृत है। विहार की मध्यपरीक्षा के लिए तैयार होनेवाले छात्रों के लिए यह पुस्तक बनाई गई है। केवल संस्कृत भाषा पढ़नेवालों के लिए अब तक नये ढङ्ग का कोई भूगोल न था। इस पुस्तक ने इस अभाव को दूर कर दिया। इसमें यत्र-तत्र ज्योतिष-ग्रन्थों के प्रमाण देकर पृथ्वी के आकार, गति, स्थिति और आकर्षण आदि के विषय में भारत के प्राचीन पण्डितों की विशेषज्ञता भी सूचित कर दी गई है। भाषा सरल है। इसकी भूमिका में लिखा है—

(१) आसीच तेषां (प्रचीनानां) निरवधि भूगोल-ज्ञानम्।

(२) आंग्लभाषोल्लिखिता भूगोलाः सर्वथा दुर्बोधाः।

(३) प्राकृतभाषानिबद्धाश्च ते (भूगोलाः) निस्साराः।

लेखक, मिश्रजी, की इन उक्तियों से हम सहमत नहीं। पुस्तक की पृष्ठ-संख्या ८० और मूल्य ॥) है।

दूसरी पुस्तक का नाम है—**साहित्य-सुषमा**। इसकी पृष्ठ-संख्या १२० है; पर मूल्य इसका भी ॥) ही है। इसमें चन्द बरदाई से लेकर ग्वाल तक २४ पुराने और ११ नये कवियों की कविताओं का संग्रह है। संग्रह अच्छा है। स्कूलों और मदरसों के छात्रों के लिए उपयोगी है। शृङ्गार-रस की कविता इसमें नहीं रक्खी गई। नई और पुरानी, सभी तरह की कविताओं के नमूने छांट छांटकर रक्खे गये हैं। इसमें अनेक कवितायें नीति पर भी हैं। इसके सङ्ग्रहकार पूर्वोक्त मिश्र जी ही हैं।

तीसरी पुस्तक है—**सिखों का बलिदान**। बङ्गला-पुस्तक "सिखेर बलिदान" का यह हिन्दी अनुवाद है। अनुवादक हैं पण्डित राधामोहन मिश्र। इसमें तेग़बहादुर आदि ६ सिक्ख वीरों के धर्मार्थ प्राण-विसर्जन का वर्णन है। पुस्तक है तो छोटी—केवल ३२ सफ़े की, पर बड़ी अच्छी है। मूल्य है ३ आने।

चौथी पुस्तक का नाम है—**रामचरित्रचन्द्रिका**—इसकी पृष्ठ-संख्या ६२ और मूल्य ॥) है। पद्य में है। लेखक इसके पण्डित रामचरित उपाध्याय हैं। इसके नाम से इसके विषय का ठीक ठीक अनुसन्धान नहीं हो सकता। दशरथ, कौशल्या, कैकेयी, राम, लक्ष्मण, जनक, अङ्गद, हनुमान, रावण और मेघनाद आदि उन २५ व्यक्तियों के चरित की आलोचना है जिनका वर्णन रामायण में पाया जाता है। आलोचना में गुणों और दोषों, दोनों, का दिग्दर्शन है। पर कविजी की आलोचना में कहीं कहीं अतिरञ्जना और कहीं कहीं निष्ठुर कटुवाद भी है, यह पुस्तक अपने ढङ्ग की पहली ही है और अनोखी है।

पाँचवीं पुस्तक है—**बिहार का विहार**। इसकी पृष्ठ-संख्या १५० और मूल्य ॥।) है। इसे बाबू शिवपूजन-सहाय ने लिखा है। यह बिहार और उड़ीसा प्रान्त का भूगोल है। ऐतिहासिक, प्राकृतिक और भौगोलिक, इन तीनों दृष्टियों से इसकी रचना की गई है। ऐतिहासिक बिहार के वर्णन में प्राचीन समय की अनेक बातें ढूँढ़ ढूँढ़कर लिखी गई हैं। पुस्तकारम्भ में १२ पृष्ठों का एक उपक्रम है। वह पण्डित रामदहिन मिश्र का लिखा हुआ है। इसमें भी प्राचीन बिहार के इतिहास आदि का सुन्दर वर्णन है। पुस्तक सुपाठ्य है।

चित्र-परिचय ।

सरस्वती की वर्तमान संख्या का रङ्गीन चित्र जबलपुर के हिन्दी-हितैषी बाबू गोविन्ददास जी की कृपा से प्राप्त हुआ है। इस कृपा के लिए हम बाबू साहब को धन्यवाद देते हैं। चित्र सरस्वती के परिचित चित्रकार पं० गणेशराम मिश्रजी की रचना है। बाबू साहब की एक अप्रकाशित पुस्तक के लिए आपने जो कई चित्र बनाये हैं उनमें से यह एक है। इस चित्र में वन का दृश्य; बाणासुर की दृढ़ तपस्या, वन में दावाग्नि का उत्पन्न होना, वन-जीवों की विकलता और अन्त में शिवजी का प्रादुर्भाव योग्यता-पूर्वक अङ्कित किया गया है। मिश्रजी की यह चित्रण-चातुरी प्रशंसनीय है।

इस चित्र से सम्बन्ध रखनेवाली, बाबू साहब की रची हुई कविता इसी संख्या में अन्यत्र प्रकाशित की गई है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

लेख-सूची।

चित्र-सूची।

ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

ईश्वर की कृपा से इस संख्या के साथ सरस्वती का २०वाँ वर्ष समाप्त होता है। जनवरी सन् १९२० से वह अपने जीवन के २१वें वर्ष में पदार्पण करेगी। दिसम्बर की संख्या के साथ जिन ग्राहकों का चन्दा समाप्त होता है उनकी सेवा में जनवरी १९२० की सरस्वती ४।) के वी० पी० द्वारा भेजी जावेगी (४) सरस्वती का वार्षिक मूल्य और ।) रजिस्टर्ड वी० पी० तथा मनीआर्डर कमीशन आदि)। इतने दिनों से जो हिन्दी-हितैषी सज्जन सरस्वती के प्रकाशन में हमें आश्रय देते आये हैं, आशा है वे आगे भी ऐसी ही कृपा रखकर सहर्ष वी०पी० स्वीकार करेंगे। जो ग्राहक मनीआर्डर द्वारा सरस्वती का वार्षिक मूल्य भेजने का विचार करें वे इस बात की सूचना देदें तो उनकी सेवा में वी० पी० न भेजा जाय। यदि कोई सज्जन किसी कारण, जनवरी की संख्या वी० पी० से न मँगाना चाहें तो कृपाकर १५ जनवरी १९२० तक हमें इस बात की स्पष्ट सूचना देदें। आशा है, राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रेमी सज्जन सरस्वती पर सदा की भाँति कृपा-दृष्टि बनाये रहेंगे

भवदीय
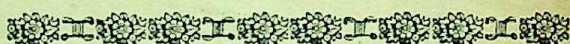
मैनेजर इंडियन प्रेस, प्रयाग

सुग्रीव का राज-तिलक।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।
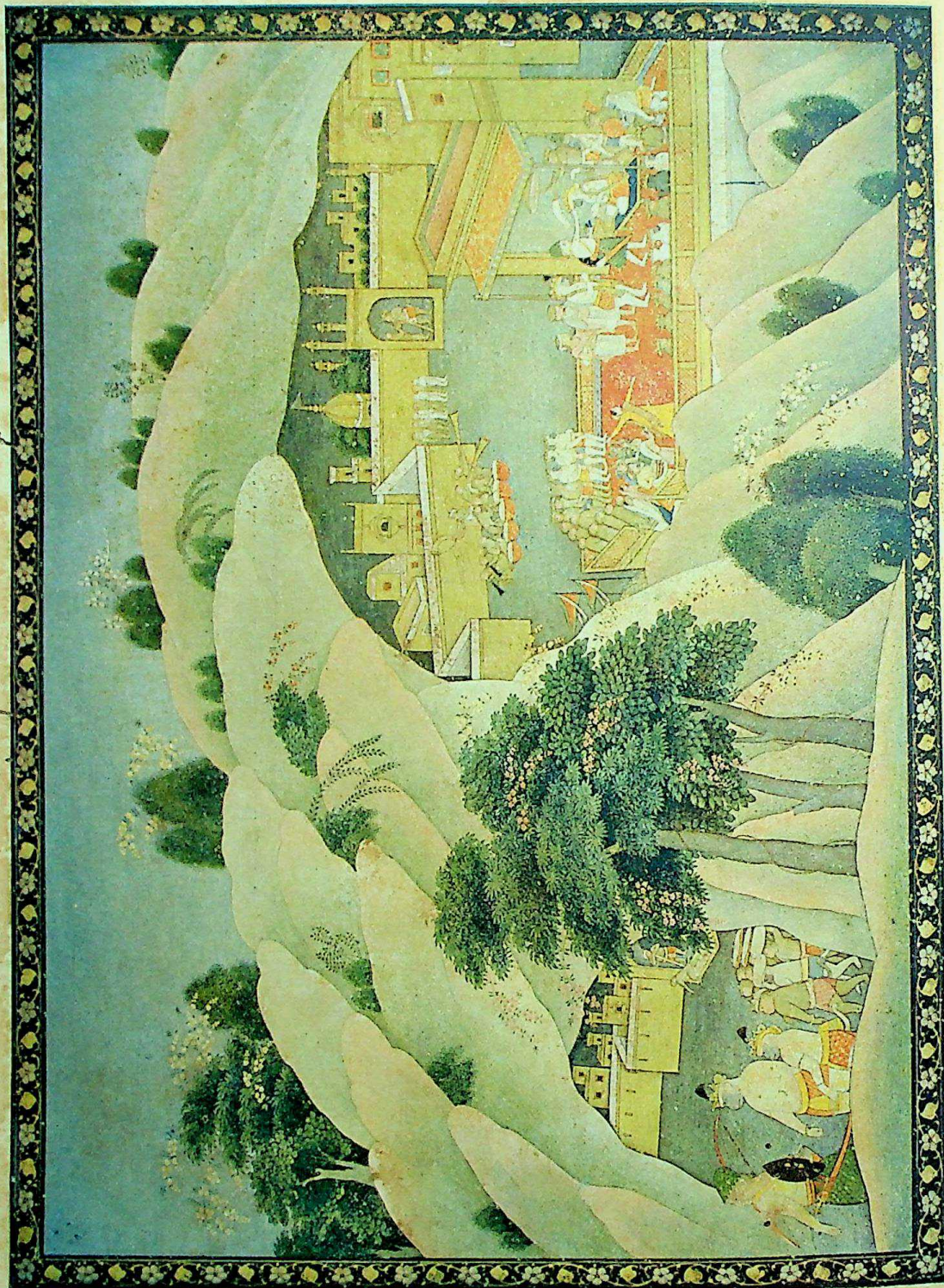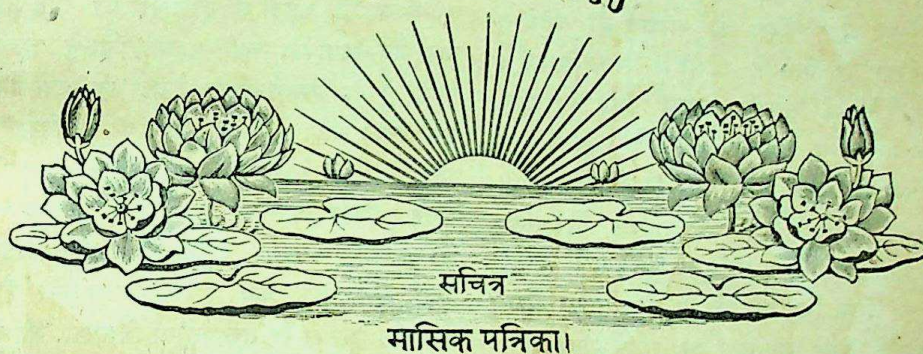
भाग २०, खण्ड २] दिसम्बर १९१९—पौष १९७६ [संख्या ६, पूर्ण संख्या २४०

विरह।

यद्यपि प्रातःकाल मही का, दृश्य मनोहर होता है।
पवन मन्द गति बह बह करके, कुसुम-सुरभि बहु ढोता है॥
वालातप की रश्मि-राशि भी, नील गगन में छाती है।
जिन्हें देखकर कमल-कली निज, ठण्ढी करती छाती है॥

मृदु कलरव से नदियाँ गाकर, सिन्धु-मिलन को धाती हैं।
नीड़ों से निज चिड़ियाँ उड़ उड़, गान मनोरम गाती हैं॥
सूर्य-किरण से पुष्प-निचय के, सूख अश्रु सब जाते हैं।
पाकर इष्ट हृदय का अपने, सब आनन्द मनाते हैं॥

अलि-दल टूट टूट फूलों पर, मधुमय रस ले जाते हैं।
भूँ भूँ स्वर से गा गाकर वे, श्रवण-सुधा बरसाते हैं॥
उठते हैं रवि को लख नभ में, कार्यलीन नर होते हैं।
कृषक-वृन्द तज आलस अपने, खेत जोतते बोते हैं॥

दिन के श्रम से थके सूर्य फिर, मातृ-क्रोड़ में सोते हैं।
सारा तेज, प्रताप, रश्मि-बल, क्षण भर में सब खोते हैं॥
तारों और सुधाकर के सँग, सती यामिनी आती है।
प्राणाधार चातकी पाकर, सारा क्लेश भुलाती है॥

किन्तु मुझे हा! बिना तुम्हारे, सुन्दर दृश्य न भाते हैं।
ठण्ढी वायु गरम लगती है, प्राण व्यथित हो जाते हैं॥
नदियों, भ्रमरों और खगों की, प्रिय बोली दुख देती है।
कुसुम-सुरभि यह बिना तुम्हारे, सब धीरज हर लेती है॥

कार्त्तिकेय।

—

राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ ।

(State Socialism.)

हमने अपने पिछले लेख में बताया है कि सामाजिक पन्थ के जितने उपभेद हैं उनमें सिर्फ़ राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ ही बहुत कुछ यशस्वी होता जा रहा है। सभ्य देशों की सरकार पर इसके मत का दबाव दिन दिन पड़ता जा रहा है। धीरे धीरे वह इसके उद्देशों को न्याययुक्त मानने लगी है। योरप और भारत की सरकार की वर्तमान असली अर्थ-नीति इस पन्थ के उद्देशों में सम्मिलित है। बिना इन उद्देशों के समझे, उनकी नीति का ठीक स्वरूप ध्यान में आना अत्यन्त कठिन है; बिना इस कुञ्जी के, उस वर्तमान अर्थ-नीति के भीतर प्रवेश करना असम्भव है। इसलिए इसके उद्देशों का कुछ विस्तृतरूप से अवलोकन करना इस लेख का मुख्य कार्य्य है।

समाज की भिन्न भिन्न श्रेणियों में सम्पत्ति की विषमता को रोकने के लिए, इस पन्थ का सबसे पहला और सबसे प्रिय उद्देश यह है कि देश की सब ज़मीन पर एक मात्र सरकार का अधिकार हो। ज़मीन पर, कहीं भी, किसी भी पुरुष का निजू अधिकार न हो। किसी भी व्यक्ति की 'निजू जायदाद' में ज़मीन का समावेश न हो। अब यह देखना है कि यह उद्देश कहाँ तक न्याययुक्त है, और इसमें इस पन्थ के अनुयायी योरप और भारत में कहाँ तक फलीभूत हुए हैं।

योरप में देश की सरकार या राजा, राष्ट्र की ज़मीन का मालिक नहीं। कहीं कहीं छोटे छोटे किसान, परन्तु विस्तृत रूप में विशेषकर वहाँ के ज़मीन्दार ही ज़मीन के मालिक माने गये हैं। ये अपनी ज़मीन के स्वतन्त्र मालिक हैं। अपनी इच्छानुसार लगान पर ये अपनी ज़मीन किसी भी किसान या काश्तकार को दे सकते हैं। इसमें किसी प्रकार की रोक-टोक नहीं। सरकार या राजा इसमें किसी प्रकार का कोई भी दख़ल नहीं दे सकता। राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ को यह बात पसन्द नहीं। उसकी दृष्टि से ज़मीन्दार मुफ़्त का खानेवाला है। किसान या काश्तकार दिन-रात कड़ी मिहनत करके अन्न पैदा करता है, परन्तु इसके बदले में उसे पेट-भर खाना नहीं मिलता। यह ज़मीन्दार बेकार बैठा रहता है, एक तिनका इधर से उधर नहीं सरकाता और रोज़ मिष्टान्न पर हाथ मारता है! यह भारी अन्याय है।

ज़मीन से ज़मीन्दार को एक और मुफ़्त का बड़ा भारी फ़ायदा है। रिकार्डो ने अपने "लगान के नियम" की विवेचना करते हुए कहा है कि देश की जन-संख्या ज्यों ज्यों बढ़ती जाती है, त्यों त्यों अनाज महँगा होता जाता है और त्यों त्यों साथ ही साथ लगान भी बढ़ता जाता है। जन-संख्या की बढ़ती में ज़मीन्दार का कोई हाथ नहीं। वह जन-संख्या को नहीं बढ़ाता, परन्तु जन-संख्या की बढ़ती से जो लगान बढ़ता है वह ज़मीन्दार को पूरा का पूरा बिना कुछ श्रम किये, मुफ़्त ही में मिल जाता है। जन-संख्या की बढ़ती से इस प्रकार इधर ज़मीन्दार तो धनवान् होता जाता है, उधर उसी बढ़ती से मज़दूर, या काश्तकार के श्रम की क़ीमत कम होती जाती है। एक बिना कुछ श्रम किये मालामाल हो रहा है; दूसरा दिन रात सिर से पैर तक पसीना निकाल, जी तोड़ मिहनत करते रहने पर भी भूखों मरता है! एक के पास द्रव्य है; वह दिनों-दिन धनवान् ही धनवान् होता जाता है। दूसरे के पास पैसा नहीं; वह कङ्गाल से भी कङ्गाल होता जा रहा है। "जिसके पास है उसको दिया जायगा और जिसके पास नहीं है उसके पास जो थोड़ा सा है, वह ले लिया जायगा"—बाईबिल के इन वचनों का प्रत्यक्ष उदाहरण वहाँ पाया जाता है। सामाजिक पन्थियों का कहना है कि यह अनुपार्जित बढ़ती सिर्फ़ ज़मीन्दारों ही को क्यों मिलनी चाहिए? ज़मीन्दार 'श्रम' को यानी मज़दूरों को पूरा वेतन नहीं देते। 'श्रम' का योग्य वेतन वे ख़ुद दबा लेते हैं। यह बड़ा भारी अन्याय ज़मीन को 'निजू जायदाद' में रखने से होता है। यही ज़मीन अगर सरकार की हो जाय तो उस अनुपार्जित बढ़ती का हिस्सा अकेले एक आलसी ज़मीन्दार को न मिलकर, सारे समाज को मिलेगा।

मिल सरीखे सम्पत्ति-शास्त्री भी सामाजिक पन्थ के इस उद्देश को मानते थे। उनके मत से देश की सारी

ज़मीन पर अनुपार्जित आय होती ही है। इस आय पर किसी एक व्यक्ति का कुछ भी हक़ नहीं। इस आय का मुख्य कारण उत्तम राज्य-प्रबन्ध है। इस आय में व्यक्ति-विशेष का कुछ भी हाथ नहीं। इसलिए अगर इसका कोई अधिकारी है, तो वह देश की सरकार ही है—अर्थात्, देश की ज़मीन पर सरकार का अधिकार रहना अधिक न्याययुक्त है। मिल के कहने का सिर्फ़ एक ही हेतु है, और वह यह कि देश में स्थायी बन्दोबस्त न हो। परन्तु हेनरी जार्ज सरीखे दूसरे राष्ट्रीय सामाजिक पन्थी इतने पर सन्तुष्ट नहीं। वे चाहते हैं कि सरकार ज़मीन्दारों से किसी न किसी तरह ज़मीन लेकर, उसे अपने अधिकार में कर ले और फिर वह उसे छोटे छोटे किसानों को लगान पर दे दे। मिल ज़मीन्दारों को रखना चाहता है; परन्तु ज़मीन पर सरकारी अधिकार रहना अधिक न्याययुक्त मानता है। इधर सामाजिक पन्थी ज़मीन्दारों को रखना ही नहीं चाहते। मिल और सामाजिक पन्थियों में यही सूक्ष्म अन्तर है। सामाजिक पन्थ चाहता है कि ऊपर लिखा हुआ अन्याय अब समाज में न हो। इसके लिए सर्वोत्तम उपाय यही है कि ज़मीन्दारी प्रथा उठा दी जाय और देश की सारी ज़मीन पर एक मात्र सरकार का अधिकार हो जाय।

सामाजिक पन्थियों के अनुसार, ज़मीन दो रीतियों से सरकार की हो सकती है। प्रथम तो यह कि सरकार वर्तमान ज़मीन के मालिकों को ज़मीन की पूरी क़ीमत देकर, उनसे ज़मीन ख़रीद ले। दूसरी रीति यह कि बिना कुछ क़ीमत दिये सरकार ज़मीन को अपने क़ब्ज़े में कर ले। ऐसा करने से भी सरकार को कुछ भी दोष नहीं लग सकता। पुराने ज़माने में ज़मीन का मालिक समाज था। किसान खेती करता था; परन्तु ज़मीन का स्वामित्व सब गाँववालों के पास था। समाज से सरकार का विकास हुआ है। इस विकास-काल के आरम्भ में ज़मीन पर कुछ व्यक्ति-विशेष, अधिकारी बनाये गये, जोकि उस समय समाज के प्रतिनिधि थे। उस समय सरकार को ऐसा करने का कोई भी अधिकार न था। ऐसा करना बेक़ायदा हुआ। इसलिए अब सरकार यदि फिर से अपनी ज़मीन उन विशेष व्यक्तियों से वापस ले ले, तो इस कार्य्य में कुछ भी अन्याय न होगा।

ऊपर लिखी दूसरी रीति का तर्क भ्रमपूर्ण है। इस समय जिसके पास ज़मीन है, उसने वह किसी समय पूरी क़ीमत देकर ही पाई होगी। प्राचीन काल में कैसी भी स्थिति हो, परन्तु पीढ़ी दर पीढ़ी जिस वंश ने जिस ज़मीन पर अधिकार किया है, उस पर उसका स्वत्व रहना अधिक न्याययुक्त है। सरकार, इस कारण, बिना कुछ क़ीमत दिये, ज़मीन को किसी भी व्यक्ति के पास से नहीं निकाल सकती। अगर वह ज़मीन लेना चाहे तो उसे प्रत्येक दशा में ज़मीन की पूरी क़ीमत देनी पड़ेगी। 'निजू जायदाद' की रक्षा करना सरकार का एक प्रमुख कर्तव्य है। यह सरकार का कर्तव्य वर्तमान सुख-सम्पत्ति का मुख्य कारण है। अब यदि सरकार उस कर्तव्य की अवहेलना कर ख़ानगी जायदाद पर ज़बरदस्ती अपना अधिकार जमाने की चेष्टा करे तो इसका परिणाम देश की औद्योगिक और साम्पत्तिक स्थिति पर बड़ा ही अनिष्टकारी होगा। साधारण बुद्धिवाला भी यह बात निडर होकर कह सकता है। इस तरह इस दूसरी रीति का अमल में लाया जाना सर्व-साधारण के लिए विशेष आपत्तिजनक होगा।

अब ज़मीन की पूरी क़ीमत देकर वर्तमान ज़मीन के मालिकों से उसके ख़रीदे जाने का प्रश्न रहा। इँगलिस्तान सरीखे देशों में ज़मीन को बाज़ार-भाव से ख़रीदना अत्यन्त कठिन कार्य है। गिफ़िन नामक एक लेखक ने हिसाब करके बताया है कि वहाँ सब ज़मीन ख़रीदने में सरकार को कम से कम दो अरब पौण्ड देने पड़ेंगे! अर्थात् इँगलिस्तान को अपने वर्तमान (इस युद्ध के पहले का) राष्ट्रीय क़र्ज़ का तिगुना द्रव्य क़र्ज़ लेना पड़ेगा। इस भारी क़र्ज़ का बोझ इतना भयङ्कर होगा कि उसके आगे अनुपार्जित बढ़ती हज़ारों वर्ष तक किसी गिन्ती में न रहेगी। इँगलिस्तान सरीखे देशों में ज़मीन का लगान हद से अधिक बढ़ गया है। अनुपार्जित आय का इससे आगे बढ़ना असम्भव है। अनुपार्जित बढ़ती की कल्पना की इमारत सिर्फ़ रिकार्डो के 'लगान के नियम' के पाये पर खड़ी है। यह कोई ज़ोर देकर नहीं कह सकता कि यह कल्पना सत्य ही है। यह भी कोई दावे के साथ नहीं बता सकता कि लगान सदैव, हर एक स्थिति में, बढ़ता ही जायगा। अनुभव से जाना गया है कि लगान कम भी होता है।

इस दशा में, जब कि सरकार अनुपार्जित बढ़ती पर कर लगाकर फ़ायदा उठाती है, तब अनुपार्जित कमी की नुकसानी उसे क्यों न भर देनी चाहिए? अनुपार्जित आय सिर्फ़ ज़मीन के लगान से ही नहीं निकलती। दूसरे दूसरे धन्धों में भी अनुपार्जित या आकस्मिक लाभ होता है। इस अनुपार्जित या आकस्मिक लाभ पर सरकार क्यों हाथ नहीं लगाती? सारांश, रिकार्डो के नियम पर उठाई हुई मिल की इस अनुपार्जित बढ़ती की कल्पना में असत्यता का अंश अधिक है। देश के लिए ऐसी कल्पना उपयोगी नहीं।

इस उद्देश पर एक और आक्षेप है। सामाजिक पन्थियों ने यह उद्देश सिर्फ़ ग़रीब किसान की स्थिति सुधारने के लिए निकाला है। परन्तु ज़मीन सरकारी हो जाने पर भी ग़रीब की स्थिति का सुधरना कठिन है। ज़मीन सरकारी हो जाने पर, सरकार उसे सबसे अधिक लगान देनेवाले काश्तकार को ही देगी। इस तरह सरकार और ज़मीन्दार में कुछ भी अन्तर न रहा। अब मान लिया जाय कि सरकार कम लगान पर या किफ़ायती दर से ही काश्तकारों को ज़मीन देगी। इससे भी अनर्थों की उत्पत्ति हुए बिना न रहेगी। एक तो, जिस क़र्ज़ से सरकार ज़मीन ख़रीदेगी, लगान की कमी से शायद ही उसका ब्याज तक वसूल हो। यह किसी दूसरे नये कर या करों से ही पट सकता है। इससे सर्वसाधारण पर करों का बोझ अधिक होगा। दूसरे, सिर्फ़ वसीलेवाले इस कम लगान का अच्छी तरह उपभोग कर सकेंगे, सब नहीं। इससे घूँस सरीखे अनीतिकारक उपाय भी शुरू हो सकते हैं। सारांश, ज़मीन सरकारी करनेवाले उद्देश में दोष बहुत हैं। इससे बहुजन समाज को फ़ायदा कुछ भी नहीं।

सन् १९०३ में आयर्लेण्ड में खेती का जो नया क़ायदा पास हुआ है वह कुछ सामाजिक पन्थियों के इस उद्देशानुसार है। वहाँ सरकार ग़रीब काश्तकारों को क़र्ज़ देती है। काश्तकार इस द्रव्य से ज़मीन्दार की ज़मीन ख़रीदता है। सरकार काश्तकार से अपना क़र्ज़ ४०–५० वर्ष में किस्त से वसूल करती है। इस सुधार में कुछ भी दोष नहीं। इसका सुपरिणाम शीघ्र ही आयर्लेण्ड में दिखाई पड़ेगा। इस पर यह प्रश्न हो सकता है कि जब यह सुधार आयर्लेण्ड में इतना यशस्वी और फलप्रद हुआ, तब यह दूसरे देशों में भी क्यों न सफल हो सकेगा?

यह प्रश्न बहुत ठीक है। केवल सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ही हम इसका उत्तर दे सकेंगे। आयर्लेण्ड में इस सुधार के सफल होने के कई कारण हैं जो और दूसरे देशों में लग नहीं सकते।

(१) आयर्लेण्ड एक बहुत ही छोटा द्वीप है। यह द्वीप उन लोगों के स्वाधीन है जिनको वहाँ के मूल निवासी बिलकुल नहीं चाहते।

(२) आयर्लेण्ड की विस्तृत खेती की प्रथा।

(३) आयर्लेण्ड की ज़मीन्दारी प्रथा भी विचित्र है। वहाँ की ज़मीन के मालिक या ज़मीन्दार ख़ुद उस द्वीप के निवासी नहीं किन्तु विदेशी अँगरेज़ हैं।

(४) ये ज़मीन्दार अपनी ज़मीन्दारी में नहीं रहते; प्रायः सभी इँगलिस्तान में रहते हैं। इँगलिस्तान में बैठे बैठे ये लोग अपने मुनीम या गुमाश्ते के द्वारा आयर्लेण्ड में अपनी ज़मीन्दारी चलाते हैं। राजा अपनी प्रजा पर, स्वामी सेवक पर, ज़मीन्दार काश्तकार पर प्रेम-भाव रख सकता है; परन्तु ज़मीन्दार और काश्तकार के बीच का यह मुनीम काश्तकारों को कभी अपना कहकर न समझेगा और न कभी उनसे प्रेम-भाव रक्खेगा। यह बात अनुभव-सिद्ध है। इसलिए आयर्लेण्ड के किसान या काश्तकार इन मुनीमों या गुमाश्तों द्वारा ख़ूब ही सताये जाते हैं।

इन सब कारणों से वहाँ के किसान इस अनोखी ज़मीन्दारी-प्रथा से बहुत असन्तुष्ट हैं। आयर्लेण्ड में सैकड़ों वर्षों से जो असन्तोष फैला हुआ है उसका एक असली कारण यह भी है। ज़मीन्दार लोग वहाँ के मूल-निवासी के समान नहीं हो सकते। जब तक वे वहाँ रहने के लिए मजबूर नहीं किये जा सकते, तब तक मुनीम-गुमाश्तों की नादिरशाही का अन्त नहीं हो सकता। इन सब कारणों से आयर्लेण्ड में ऊपर लिखा सुधार सफल हुआ है। जहाँ कहीं यह दशा होगी, वहाँ यह सुधार भी फलप्रद होगा।

इससे यह सिद्ध है कि आयर्लेण्ड की ज़मीन्दारी-प्रथा का दोष 'ख़ानगी जायदाद' की कल्पना पर नहीं, किन्तु

वहाँ की 'विस्तृत खेती' की प्रथा पर है। विस्तृत खेती के बदले, छोटी खेती शुरू की जाय तो बहुत भला होगा। परन्तु छोटी खेती की सफलता के लिए स्थायी बन्दोबस्त की ज़रूरत है। ज़मीन "ख़ानगी जायदाद" में गिनी ही जानी चाहिए। बात सिर्फ़ यही है कि वह इने-गिने आयर्लेण्ड के से ज़मीन्दारों अथवा किसी सरकार की न हो, असल में वह कमानेवाले किसान या काश्तकार की हो।

इस प्रकार मिल की अनुपार्जित बढ़ती और स्थायी बन्दोबस्त का तर्कशास्त्र देश के लिए उपयोगी नहीं। योरप के किसी भी राष्ट्र में यह सिद्ध नहीं हुआ। परन्तु जो बात योरप या इँगलेण्ड के लिए असम्भव हुई वह भारतवर्ष के लिए सम्भव है। मिल की ऊपर लिखी तर्कना का भारतवर्ष में इस समय ख़ूब ही उपयोग किया गया है। प्रायः भारत भर में स्थायी बन्दोबस्त का फैलाव करनेवाली यही मिल की कल्पना है।

इसका सबब भी ज़बरदस्त है। भारत में परम्परा से यह बात मानी जाती है कि देश की ज़मीन की मालिक सरकार है। मुसलमानी राज्य में इस रूढ़ि का विशेष उपयोग किया गया। भारत के किसान परम्परा से निर्धन और कङ्गाल होते आये हैं। उनकी निर्धनता और ग़रीबी का मुख्य कारण देश की यह रूढ़ि है। बर्नियर सरीखे बहुश्रुतज्ञ, राजनीतिज्ञ, विदेशी भारत-प्रवासियों ने भी इसी बात पर ज़ोर दिया है। यहाँ की निर्धनता का मुख्य कारण, उन्होंने भी, इसी रूढ़ि को बताया है। अँगरेज़ी राज्यारम्भ में प्रायः सब अँगरेज़ राजपुरुष इस बात को क़ुबूल करते थे। वे सदैव इस रूढ़ि को समाज से बाहर करने की कोशिश में रहते थे। लार्ड कार्नवालिस का बङ्गाल का स्थायी बन्दोबस्त इस बात का प्रमाण है। वे चाहते थे कि सारे भारत में स्थायी बन्दोबस्त हो जाय। भारत को श्रीमान् करने का यही एक मुख्य साधन था। अगर वह अमल में लाया जाता तो आज कल सारा भारतवर्ष बङ्गाल के समान हो जाता। परन्तु मिल के 'अनुपार्जित बढ़ती' के सिद्धान्त का उदय होते ही इन सब विचारों पर पानी फिर गया। यहाँ के अँगरेज़ राजपुरुष मिल के इतने अनुयायी हो गये कि उन्हें स्थायी बन्दोबस्त में सिवा दोष के गुण कुछ भी दिखाई नहीं दिया। भारत में 'ज़मीन-कर' न लगाने का वचन देते हुए भी, उन्होंने बङ्गाल के ज़मीन्दारों पर 'ज़मीन-कर' लगा ही दिया!

सर टामस मनरो ज़मीन्दारी-प्रथा का घोर विरोधी था। मद्रास और बम्बई-प्रान्तों में ज़मीन्दारी तोड़कर रैयतवारी बन्दोबस्त आरम्भ करनेवाला यही इतिहास-प्रसिद्ध पुरुष था। मनरो चाहता था कि विस्तृत खेती की प्रथा न हो। ज़मीन्दार ज़मीन का मालिक न हो। ज़मीन का असली मालिक किसान या काश्तकार हो। रैयतवारी बन्दोबस्त से उसका यही हेतु था कि इटली के समान भारत में भी ज़मीन छोटे छोटे किसानों की 'ख़ानगी जायदाद' हो जाय। वह समझता था कि देश के किसानों की, परम्परा से नष्ट हुई लक्ष्मी का उद्धार करने का यही एक साधन है। केवल इसी उपकारी बुद्धि से उसने रैयतवारी आरम्भ की। वह स्थायी बन्दोबस्त की रैयतवारी का प्रचार करनेवाला था। अगर यह भी सिद्ध हो जाता तो आज भारत के किसान इटली के किसानों के समान ऋद्धि-सिद्धि-सम्पन्न रहते। परन्तु मिल की 'अनुपार्जित बढ़ती' ने इस पर भी पानी फेर दिया। बम्बई और मद्रास प्रान्त के अस्थायी बन्दोबस्त की वर्तमान रैयतवारी में कोई किसान सुखी हो, ऐसा कहीं भी सुनने में नहीं आता।

ऊपर लिखी बातों से यह सिद्ध है कि ज़मीन को सरकारी करने का, सामाजिक पन्थ का उद्देश इस देश के लिए हितकर नहीं। ज़मीन का 'ख़ानगी जायदाद' में गिना जाना ही अधिक न्याययुक्त और लाभकारी है। बात सिर्फ़ यही है कि वह सर टामस मनरो तथा न्यायमूर्ति रानडे के मतानुसार, किसी बड़े ज़मीन्दार की ख़ानगी जायदाद में न हो, वरन उसे कमानेवाले, उस पर असली मिहनत करनेवाले किसान की जायदाद में हो।

देश की भिन्न भिन्न श्रेणियों में सम्पत्ति की विषमता होने का दूसरा कारण पूँजी की बाढ़, यन्त्रों की बाढ़ और विस्तृत कारख़ानों की प्रथा है। सामाजिक पन्थियों का उद्देश है कि देश की पूँजी और कारख़ाने सरकारी हो जायँ। यह उद्देश भी ठीक नहीं, क्योंकि यह आज़माई हुई बात है कि ख़ानगी कामों की अपेक्षा सरकारी कामों में अधिक ख़र्च पड़ता है। इस समय सम्पत्ति की जो आश्चर्यजनक बाढ़ हुई है उसका मुख्य कारण यन्त्रशक्ति

का उपयोग, श्रम-विभाग, विस्तृत कारखाने की प्रथा और निजू जायदाद है। विस्तृत कारखाने की प्रथा का नाश करना मानों सम्पत्ति के नाश करने के बराबर है।

देश में कई एक धन्धे ऐसे अवश्य हैं जिनका सरकार के हाथ में रहना अधिक फ़ायदेमन्द है। पोस्ट, तार इत्यादि धन्धे व्यापार के उपयोग के हैं; परन्तु किसी व्यक्तिविशेष की अपेक्षा, इन धन्धों में सरकार लोगों का अधिक भला कर सकती है। वह इससे अपना कुछ भी मुनाफ़ा न ले, सस्ते दर से सर्वसाधारण को बहुत लाभ पहुँचा सकती है। सामाजिक पन्थियों के अनुसार पोस्ट, तार, रेलवे के सामान, आवागमन के साधन, खेती के उपयोग में पड़नेवाले, नहर सरीखे कार्य्य सरकारी हों। इस पन्थ का यह उद्देश अधिक श्रेयस्कर और लोकोपकारी है। क्योंकि अगर किसी कम्पनी या व्यक्ति के ख़ानगी अधिकार में ऐसे धन्धे चले जायँ तो वह उनसे सिर्फ़ अपना ही भला करने का हद से अधिक प्रयत्न करेगा। इससे सर्वसाधारण और विशेषकर ग़रीबों का बड़ा नुक़सान हो सकता है। परन्तु सरकार के अधिकार में इन धन्धों के जाने से इस अनिष्ट की सम्भावना नहीं हो सकती।

सम्पत्ति की विषमता का तीसरा कारण सम्पत्ति की अदला-बदली की प्रथा है। ख़ानगी जायदाद वंश-परम्परा की होती है। पिता की सारी जायदाद या मिलकियत का मालिक कहीं कहीं उसका सिर्फ़ बड़ा लड़का और कहीं कहीं सब लड़के होते हैं। एक पुरुष ने बहुत सी सम्पत्ति पैदा की। वह सारी सम्पत्ति पीढ़ी दर पीढ़ी उसीके वंश में रहती है। इससे एक अनर्थ होता है। वह यह कि बिना परिश्रम जायदाद पानेवाले लड़के बहुधा निकम्मे और आलसी हो जाते हैं। इस तरह इस प्रथा से देश में आलसियों का एक झुण्ड पैदा होता है। सामाजिक पन्थियों का कहना है कि इस प्रथा में सुधार किया जाय। सबसे सीधा सुधार ऐसी जायदाद पर भारी कर लगाना हो। कर लगाने से दूसरे दूसरे लोगों के कर का बोझ कम होगा। सरकार को आय का एक सीधा रास्ता मिल जायगा और कर का बोझ बिना परिश्रम सम्पत्ति पानेवाले पर पड़ेगा। इसमें कुछ अन्याय भी नहीं। योरप की प्रायः सब सुधरी हुई सरकार इस सुधार को अमल में ला रही हैं।

सम्पत्ति की विषमता का चौथा कारण शिक्षा का ख़र्च है। सम्पत्ति की उत्पत्ति का एक प्रत्यक्ष कारण शिक्षा है। देश के सुधार के साथ शिक्षा का ख़र्च बढ़ता जाता है। इससे ग़रीब लोग शिक्षा से जैसा चाहिए वैसा लाभ नहीं उठा सकते। इसका सब फ़ायदा पास में पैसा रहने के कारण, धनवान् ही उठाते हैं। इस प्रकार धनवान् सुशिक्षित ही सुशिक्षित होता जाता है। सुशिक्षित होने से वह उत्तरोत्तर श्रीमान् होता जाता है। ग़रीब मूर्ख का मूर्ख ही रहता और दिन दिन दरिद्रता के पङ्क में धँसता जाता है। इसलिए यदि सम्पत्ति की समता करना ज़रूरी है, तो ग़रीबों को पढ़ने के लिए बहुत सहूलियत दी जानी चाहिए। शिक्षा राष्ट्रीय हो जाय और उसका ख़र्च सरकार चलावे। सामाजिक पन्थियों का कहना है कि सरकार लोगों को अधिक सस्ते में पढ़ा सकती है। वह सामान्य और औद्योगिक शिक्षा मुफ़्त कर दे और प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य्य कर दे। योरप के शिक्षित देशों में यह सुधार अमल में लाया जा चुका। भारत में, एक दो देशी राज्यों को छोड़, यह सुधार कहीं भी नहीं। जब भारत-सरकार सामाजिक पन्थ के और और उद्देशों के मानने में सबसे आगे है, तब उसे इसी एक उद्देश के मानने में सबसे पीछे क्यों रहना चाहिए?

विस्तृत कारख़ाने की प्रथा से समाज में एक बड़ा भारी अनर्थ पैदा होता है। इससे समाज का एक बड़ा भारी हिस्सा केवल रोज़ी पर पेट भरनेवाला मज़दूर बन जाता है। इसके पास न तो किसी प्रकार की पूँजी रहती है और न कोई बुद्धि। इसलिए बीमारी में या बुढ़ापे में इसकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती है। ऐसे समय वह काम नहीं कर सकता और इसलिए उसे ऐसी दुरवस्था में भूखों मरना पड़ता है। घरेलू धन्धे की प्रथा में इसके पास थोड़ी न थोड़ी पूँजी रहती ही है, जिस पर अगर वह नहीं, तो उसके घरवाले पास-पड़ोसियों की सहायता से पेट चलाने लायक़ काम कर लेते हैं। उनकी रोज़ी एकदम बन्द नहीं होती। परन्तु विस्तृत कारख़ाने की प्रथा से वह एकदम बन्द हो जाती है। अगर यह मज़दूर-वर्ग अपनी रोज़ी से कुछ हिस्सा बचा रक्खे तो वह उसकी, बीमारी या चोट लगने पर या उसके बुढ़ापे में बहुत कुछ मदद दे सकता है। परन्तु उसकी मज़दूरी इतनी कम रहती है कि देश की उन्नति के

साथ साथ अधिक अधिक महँगाई होने के कारण, वह उसमें से कुछ भी नहीं बचा सकता। इस प्रकार इसकी दशा दिनों-दिन गिरती जाती है। सामाजिक पन्थ का कहना है कि सरकार का धर्म है कि वह मज़दूर की इस दशा में सुधार करे। इस सुधार को अमल में लाने के लिए वागनर की सलाह से प्रिन्स बिसमार्क ने जर्मनी में सबसे पहले 'बीमा' का क़ानून पास किया।

इस क़ानून के अनुसार प्रत्येक मज़दूर को बीमा कराना ज़रूरी है। बीमे की पूरी रक़म में ⅓ हिस्सा कारख़ानेवाला देता है और ⅔ हिस्सा मज़दूर। बीमारी के तीसरे दिन से लगाकर तेरह हफ़्ते तक इस रक़म में से मज़दूर को आधी मज़दूरी मिलती है। इसके बाद भी अगर वह बीमार रहा तो उसका बन्दोबस्त अनाथालय से होता है।

मज़दूर को चोट लगने पर उसके ख़र्च-पानी का सब बन्दोबस्त कारख़ाने के मालिक को करना पड़ता है। इस नियम से कारख़ाने का मालिक अपने कारख़ाने की सफ़ाई और सुरक्षा का ज़िम्मेदार बनाया जाता है।

इन दोनों क़ायदों की अपेक्षा 'बुढ़ापे के बीमे' का तीसरा क़ायदा अधिक प्रसिद्ध है। यह क़ानून सन् १८८९ में जर्मनी में पास हुआ। इसके अनुसार ७० वर्ष की अवस्था पूरी होने पर प्रत्येक मज़दूर को पेन्शन मिलती है। मज़दूर को कम से कम २४ वर्ष तक बीमे की रक़म भरना पड़ती है। किस मज़दूर को कितनी पेन्शन मिलनी चाहिए, इन सब क़ायदों का वर्णन किया हुआ है। मज़दूरों के पांच विभाग किये गये हैं। बीमे की आधी रक़म कारख़ानेवाला और आधी मज़दूर देता है और प्रत्येक पेन्शन पर ५० शिलिंग सरकार देती है।

बीमे के इन क़ायदों पर अँगरेज़-सम्पत्ति-शास्त्रियों के कई आक्षेप हैं। वे कहते हैं कि (१) इससे मज़दूरों के स्वावलम्बन में धक्का पहुँचता है, क्योंकि इससे वे प्रत्येक बात में सरकार पर अधिक अवलम्बित रहेंगे। (२) इन बीमों का ख़र्च अन्त में मज़दूरों के सिर पर ही पड़ता है। पहले-पहल इसका ख़र्च कारख़ाने के मालिक पर पड़ेगा। वह उसे पूरा करने के लिए या तो अपनी वस्तुओं की क़ीमत बढ़ावेगा या फिर मज़दूर कम रक्खेगा। इन दोनों रीतियों से उद्योग-धन्धे की कमी होगी और इससे मज़दूरों का ही नुक़सान अधिक होगा।

इन आक्षेपों पर बीमों के समर्थकों का कहना है कि इनसे कुछ भी नुक़सान नहीं। स्वावलम्बन की प्रकृति समाज के सब पुरुषों में और सब श्रेणियों में नहीं होती। वह कुछ इने-गिने लोगों में होती है। सरकार बहुजन-समाज के कल्याण पर अधिक ध्यान दे, न कि इने-गिने लोगों के। इँगलिस्तान में पहले-पहल इस सुधार का बड़ा ही विरोध हुआ; परन्तु वहाँ ज्यों ज्यों मज़दूर-दल का ज़ोर बढ़ता चला, त्यों त्यों इस सुधार पर लोगों की सहानुभूति होती चली। बुढ़ापे में पेन्शन देने के क़ायदे पर लोकमत का अधिकाधिक ज़ोर पड़ने लगा; यहाँ तक कि ख़ुद इँगलिस्तान में, सन् १९०८ में, 'लिबरल-दल' की प्रभुता से यह क़ानून पास ही हो गया। भारतवर्ष में इस हलचल का अभी कहीं नामो-निशान नहीं।

ऊपर लिखी बातों से यह सिद्ध है कि इस सामाजिक पन्थ का प्रभाव योरप के समस्त राष्ट्रों पर है। सब सुधरी हुई सरकारें दिनों-दिन इसके उद्देश को ठीक मानने लगी हैं। यह पन्थ ख़ानगी जायदाद की कल्पना का अन्ध शत्रु नहीं। यह ख़ानगी जायदाद को उखाड़ना नहीं चाहता। परन्तु उसमें जो बुराइयाँ घुसी हुई हैं उन्हें दूर करने के प्रयत्न में है। विस्तृत कारख़ाने की प्रथा से मज़दूरों का बहुत नुक़सान होता है। ख़ानगी जायदाद से श्रीमान् लोगों का बहुत फ़ायदा होता है। इस सम्पत्ति की विषमता को दूर करने के लिए यह पन्थ चाहता है कि सरकार अपने क़ायदे-रूपी अस्त्र से इस विषमता को दूर करे। जिसे अधिक फ़ायदा होता है उससे उसके फ़ायदे का कुछ अंश लेकर सरकार उसे उन लोगों को दे, जिन्हें कम लाभ है। इस पन्थ का यह प्रयत्न युक्ति-पूर्ण है, इसमें सन्देह नहीं।

इस पन्थ को योरप में अपने उद्देश फैलाने के लिए बड़े बड़े कष्ट सहने पड़े। परन्तु भारत में ये उद्देश एकदम, बिना रोक, प्रचलित हो गये। यहाँ बहुत काल से सरकार लोगों की मा-बाप समझी जाती है। लोगों का विश्वास है कि सरकार जो कुछ करती है सबके भले के लिए करती है। यहाँ लोग तो अशिक्षित हैं, परन्तु

सरकार बहुत शिक्षित है। आरम्भ से ही सरकार ने बड़े बड़े महत्त्व के काम यहाँ अपने हाथ में ले लिये हैं। यहाँ सारी ज़मीन सरकार की है। पोस्ट, तार, रेलवे, सड़क, नहर वग़ैरह, आवागमन के साधन सरकारी हैं। जङ्गल, खदानें, नमक के कारख़ाने वग़ैरह सब सरकारी हैं। अर्थात् यहाँ राष्ट्रीय सामाजिक पन्थ का प्रत्यक्ष राज्य है। इस राज्य में यहाँ की प्रजा को कितना फ़ायदा हुआ है, या हो रहा है, या आगे होगा, यह एक विकट प्रश्न है। प्रत्येक भारतवासी का यह एक मुख्य धर्म है कि वह इस प्रश्न पर अवश्य ध्यान दे और इसे हल करने का प्रयत्न करे।*

लक्ष्मण गोविन्द आठले।

प्राकृत के कुछ सुभाषित।†

(१)

मोती जैसी कविता, स्वभाव-विमला, सुवर्ण-जटिता, तब
खिलती है, जब पड़ती, श्रोता के कर्ण-छिद्रों में॥ (८)

(२)

आपस में राग-भरी, सालङ्कारा, सलक्षणा, रसिका।
क्या गाथा क्या रमणी, दुख देती है न आने से॥ (१०)

(३)

साँठे की सी पेरी, कुचली निर्दय गँवार दाँतों से।
गाथा! तू टूटेगी, या लघुता विवस पावेगी॥ (१६)

(४)

गाथा का, गीतों का, वीणा-ध्वनि का, सरस-महिला का।
जो लोग रस न जानें, दण्ड उन्हींको वही समझो॥ (१७)

(५)

मन्दर-गिरि-सम चिन्ता की मथनी से, अथाह सागर सा।
कवि-मन विपुल मथित हो, उपजाता काव्य-रत्नों को॥ (१६)

(६)

अपशब्द शब्द पै डर, पद पद पर होय कुछ न कुछ चिन्तित।
कष्टों से कवि पावे कविता को, अर्थ को तस्कर॥ (२३)

(७)

भाता दोष दिखाना, कवि-रचना में उसी सुजन का है।
जो काट कुपद को झट, सुन्दर पद दूसरा धर दे॥ (२६)

(८)

यह कौन काल गर्जन का? हे कलिकाल, मत्त गजराज!
सज्जन-सिंह-पदों की, पृथ्वी पर हैं अभी लगी छापें॥ (४३)

(९)

पर-छिद्र लक्ष रक्खे, चितकबरा, घोर, दो जीभवाला।
टेढ़ी चाल चलै, उस खल से या सर्प से कहाँ सुख हो? (४७)

(१०)

कुल से शील भला है, दारिद है रोग से भला, विद्या
राजपद से भली है, क्षमा भली है तपस्या से॥ (८३)

(११)

औरों की रहने दो, जो अपने पाँच भूत तन में हैं।
काम किया तज देवें तो उनसे भी लजाते हैं॥ (६३)

---

*प्रो० भाटे, प्रो० काले और न्यायमूर्त्ति रानडे के अर्थशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों की विशेष सहायता से लिखित—लेखक।

† श्वेताम्बर जैन कवि जयवल्लभ ने 'वज्जालग्ग' नामक एक बहुत बड़ा सुभाषित-सङ्ग्रह रचा है। उसमें 'बहु-कवियों की रचिता गाथाओं में से भली भली चुनकर' इकट्ठी की हैं। कवि का यह दावा है कि—

श्रृङ्गार युत, रसीली, कामिनि-मन-भाविनी, मिठास-भरी।
प्राकृत कविता रहते संस्कृत को कौन है पढ़ता?

मैं उन गाथाओं का मिलते हुए आर्या या गीति छन्दों में अनुवाद कर रहा हूँ। मेरे पास एक हस्तलिखित प्रति थी। अनुवाद जहाँ तक बन पड़ा मूल प्राकृत से किया गया है, संस्कृत-छाया का अनुसरण कहीं कहीं ही किया है। भाषा, भाव, श्लेष आदि के निभाने का यत्न किया गया है। एक जर्मन विद्वान् का सम्पादन किया हुआ मूल, संस्कृत-छाया सहित, 'बिब्लोथिका इंडिका' में भी छपने लगा है। उसकी संस्कृत-छाया दोष-रहित नहीं है। आज उसी 'वज्जालग्ग' की कुछ गाथाओं के नमूने 'सरस्वती' के पाठकों को भेट किये जाते हैं। कहीं कहीं टिप्पणी भी दिये देता हूँ।

गाथा २—आना = स्मरण होना। (दूसरे पक्ष में) आना = पास आना,

गाथा ९—चितकबरे रङ्ग का, (दूसरे पक्ष में) छितकपटा।

(१२)

मेरु तभी तक ऊँचा, जलनिधि दुस्तर गिना तभी तक है।
कार्य-गति कठिन तब तक, धीर जभी तक न हथियाते॥ (१०३)

(१३)

तृणसा मेरु, गगन-तल हाथ-लुआसा, उदधि क्षुद्र-नदी।
घर के आँगन जैसा स्वर्ग, सदा साहसी जन को॥ (१०५)

(१४)

रे दैव! धीर के संग, होड़ा-होड़ी जमायगा जो तू।
ऐसा कलङ्क होगा, जो धोये से न जावेगा॥ (११२)

(१५)

जो जो शाखा पकड़े, जिस जिसका हाथ धर सहारा ले।
वह चट करती टूटे, यदि होवे दैव प्रतिकूल॥ (१२४)

(१६)

परिणाम पूर्व-कर्मों का, यह देखो समुद्र-मन्थन में।
हर के हित विष उपजा, स्तन-भर-लचकी रमा हरि के॥(१३१)

(१७)

लेते समुद्र-जल यत्नों से मेघ श्याम हो जाते।
बरसाने पर धौले, लेते देते निरख यह भेद॥ (१३७)

(१८)

धन-वायु के झकोरों के मारे चाल जो चलें टेढ़ी।
यदि सीधे वे हों तो होते द्रारिद-दवाई से। (१४२)

(१९)

सूर्य खिले पर खिलता, सिमटे रवि तो सिकुड़ सा जाता।
दीन-कुटुम्ब विचारा, जाड़े में कमल हो रहता॥ (१४६)

(२०)

'ढलकें स्तन', इस भय से, जनमे ही धाय को दिये जावें।
वे प्रभु नीच-प्रेमी होवें, यह दूध की गिनो महिमा॥ (१४९)

(२१)

विरस हुए हो राजन्! अब जावें, आप धर्म में रहना।
चित्र-लिखे हाथीसा दान कभी आपका नहीं देखा॥ (१५४)

(२२)

और सब सेवकों के, कटहल से नाथ! पास-फल-वाले।
पार्थिव! हमने माँगा, तो भी तरु-ताल-से रहे आप!॥ (१५५)

(२३)

दे पाँव दाँत पै, रख दूजा सिर पै, धरे कहाँ तीजा?
यों गज पर झट चढ़ता, बलि-बन्धक विष्णु ज्यों नभ में॥ (१७२)

(२४)

इनकी पङ्ख-हवा से प्रभु की मूर्छा हटे, विचार यही।
पास पड़ा, गीधों से, आँतों को वीर नुचवाता॥ (१७७)

(२५)

जानेगा, जब चिकनी फिसलन में, भार से, धँसे पहिया।
भोले पटेल! यों तो, धवलों से विमुख तू रहता॥ (१८२)

(२६)

काले काले गज के, भीतरिये दाँत, माल नित्य चरें।
विपदा के जो साथी वे धौले हैं सदा बाहर! (१९३)

(२७)

हिलते दन्त-मुसल हैं, मद उतरा है, गई जवानी भी।
तो भी सनाथ वन है, यूथाधिप! आपके बैठे॥ (१९०)

(२८)

चिरकाल के विहारों को करके याद, साँस यों भर ली।
गजपति ने, तृणकौरा, सूखा झट सूँड में लगा जलने॥ (१९६)

(२९)

हथिनी-निज-कर सौंपे, कोमल-सेली-कवल सुमरन कर।
यदि गज मरे न तो क्या, दुबला भी वह नहीं होवे? (१९९)

(३०)

ये पाँच वस्तु छीजें ज्यों ज्यों बढ़ते रोज व्याधी के।
कटि, पति, धनु, सब छैले बस्ती के, और निज सौतें॥ (२०८)

(३१)

व्याधवधू के स्तन-युग को देती अर्घ हथिनियाँ सब आ।
सुन्दरि! मिला रँडापा हमको न कृपा तुम्हारी से॥ (२११)

(३२)

दल हैं तो बास नहीं, बास नहीं तो न प्रचुर मकरन्द।
मधुकर एक कुसुम में गुण दो या तीन तो नहीं मिलते॥ (२३७)

गाथा १७,२६—धौले = श्वेत (दूसरे पक्ष में) निर्मल।
गाथा २१—'धर्म में रहना' = जाते समय का आशीर्वाद, जैसे, प्रसन्न रहना।
दान = देना, (दूसरे पक्ष में) मद।

गाथा २५—धवल = सफ़ेद बलवान् बैल।
गाथा २६—भीतरिये = भीतर के (दूसरे पक्ष में) अन्तरङ्ग (जैसे कि बड़े मन्दिरों में होते हैं)

(३३)

गुणविरहित फूलों ने 'भ्रमर भ्रमर' है कलङ्क यह थोपा।
रस-निपुण मालती को पाकर देखें भ्रमर तो, भ्रम ले॥ (२४७)

(३४)

चित-कांटे पै तौलें जग को, फिर जोख नयन-पलड़ों से।
काम करें, उन बनिये-चतुरों की काट कौन कर सकता? (२७७)

(३५)

पञ्चम गाना सुनते, वृष-वाहन देव पूजते निसदिन।
मन-भावन से रमते, जग में है सार इतना ही॥ (२८०)

चन्द्रधर शर्म्मा।

अमृतसर नेशनल कांग्रेस के सभापति, पं० मोतीलाल नहरू।

पं० मोतीलाल नहरू ने पञ्जाब में मारशल-ला से पीड़ित देशवासियों के साथ जो उपकार किया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है। उन्होंने दुःखित और व्यथित पञ्जाबी भाइयों की तन-मन-धन से सेवा की। जब कि वहाँ बहुत से वकील फँस गये थे, कुछ लोग कर्मचारियों से भयभीत हो रहे थे, इधर-उधर के बैरिस्टरों और वकीलों को लोभ ने आ घेरा था, उसी समय देश की आर्त्त और दीन दशा को दृष्टिगोचर कर पण्डितजी ने इलाहाबाद में अपनी बढ़ी-चढ़ी वकालत की ओर कुछ भी ध्यान न दिया और पञ्जाब में दुःखित भाइयों की सेवा करने को तत्पर हो गये। वहाँ उन्होंने कठिन परिश्रम किया; लोगों की अपीलें तैयार कर प्रीवी-कौन्सिल में दायर करने के लिए भेजीं और श्रीमान् मालवीयजी के साथ घूम घूमकर जनता को सान्त्वना दी और उनकी अनेक प्रकार से सहायता की। देशवासियों ने उनकी सराहनीय सेवा और उपकार के उपलक्ष में उन्हें नेशनल कांग्रेस का सभापति निर्वाचित किया है। पण्डित मोतीलालजी इस अनुपम प्रतिष्ठा के सर्वथा योग्य हैं। भारत इससे अधिक किसीका क्या सम्मान कर सकता है?

पं० मोतीलाल नहरू का जन्म सन् १८६१ ईसवी में हुआ था। दुर्भाग्य-वश उनके पिता का देहान्त चार महीने पहले ही हो गया था। आप देहली में कोतवाल थे। पण्डितजी का पालन-पोषण उनके ज्येष्ठ भ्राता पं० नन्दलाल नहरू ने किया। बारह वर्ष की अवस्था तक उन्होंने घर पर अर्बी और फ़ारसी का अध्ययन किया। तत्पश्चात् उन्होंने गवर्नमेंट स्कूल कानपूर में अँगरेज़ी पढ़ने के लिए प्रवेश किया और वहीं से एन्ट्रेन्स परीक्षा पास की। उच्च शिक्षा की प्राप्ति के निमित्त उन्होंने म्योर सेन्ट्रल कालेज इलाहाबाद में नाम लिखाया। कालेज के प्रिन्सिपल मि० हैरिसन उनसे विशेष प्रसन्न रहते थे। वह वहाँ चार वर्ष रहे, परन्तु बी० ए० की परीक्षा नहीं दी। फिर इलाहाबाद-हाईकोर्ट की वकालत की परीक्षा में सफलता प्राप्त की और उत्तीर्ण विद्यार्थियों में सबसे श्रेष्ठ पद लाभ किया। क़ानूनी योग्यता का पदक भी उन्हें पारितोषिक रूप में मिला।

उन्होंने कानपूर में वकालत आरम्भ की। तीन वर्ष पश्चात् १८८६ ईसवी में वे हाईकोर्ट में वकालत करने के लिए इलाहाबाद चले आये। उनके ज्येष्ठ भ्राता भी इस-समय हाईकोर्ट में वकालत करते थे और उनकी आय भी अच्छी थी। दुर्भाग्य से आगामि वर्ष उनका स्वर्गवास हो गया। अब पं० मोतीलाल नहरू को केवल अपना सहारा रह गया; इसके अतिरिक्त उनको एक बड़े कुटुम्ब के पालन-पोषण का भी भार सहसा उठाना पड़ा। इसलिए पण्डितजी ने अपने व्यवसाय में कठिन परिश्रम करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने ऐसी योग्यता से कार्य किया कि उनके भाई के सब मुवक्किल उनके पास आने लगे। पाँच ही वर्ष में उनका यश इधर-उधर फैल गया और उनकी आमदनी भी १५००) से २०००) रुपया मासिक तक हो गई। धीरे धीरे वे वकालत में उन्नति करते गये और इलाहाबाद-हाईकोर्ट ने उन्हें ऐडवोकोट बना दिया।

पण्डितजी के एक पुत्र और दो कन्याएँ हैं। उनके पुत्र पं० जवाहरलाल नहरू, केम्ब्रिज यूनीवर्सिटी के ग्रेजुएट और बैरिस्टर हैं। उनकी ज्येष्ठा कन्या ने भी घर पर

गाथा ३३—भ्रम ले = भटक ले, घूम ले।
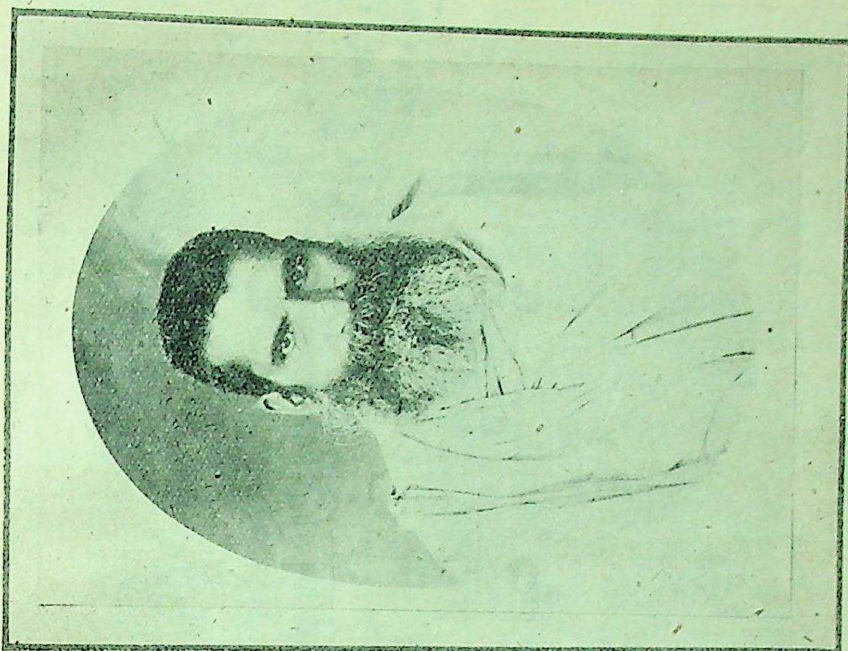
स्वामी श्रद्धानन्द ।

पण्डित मोतीलाल नहरू
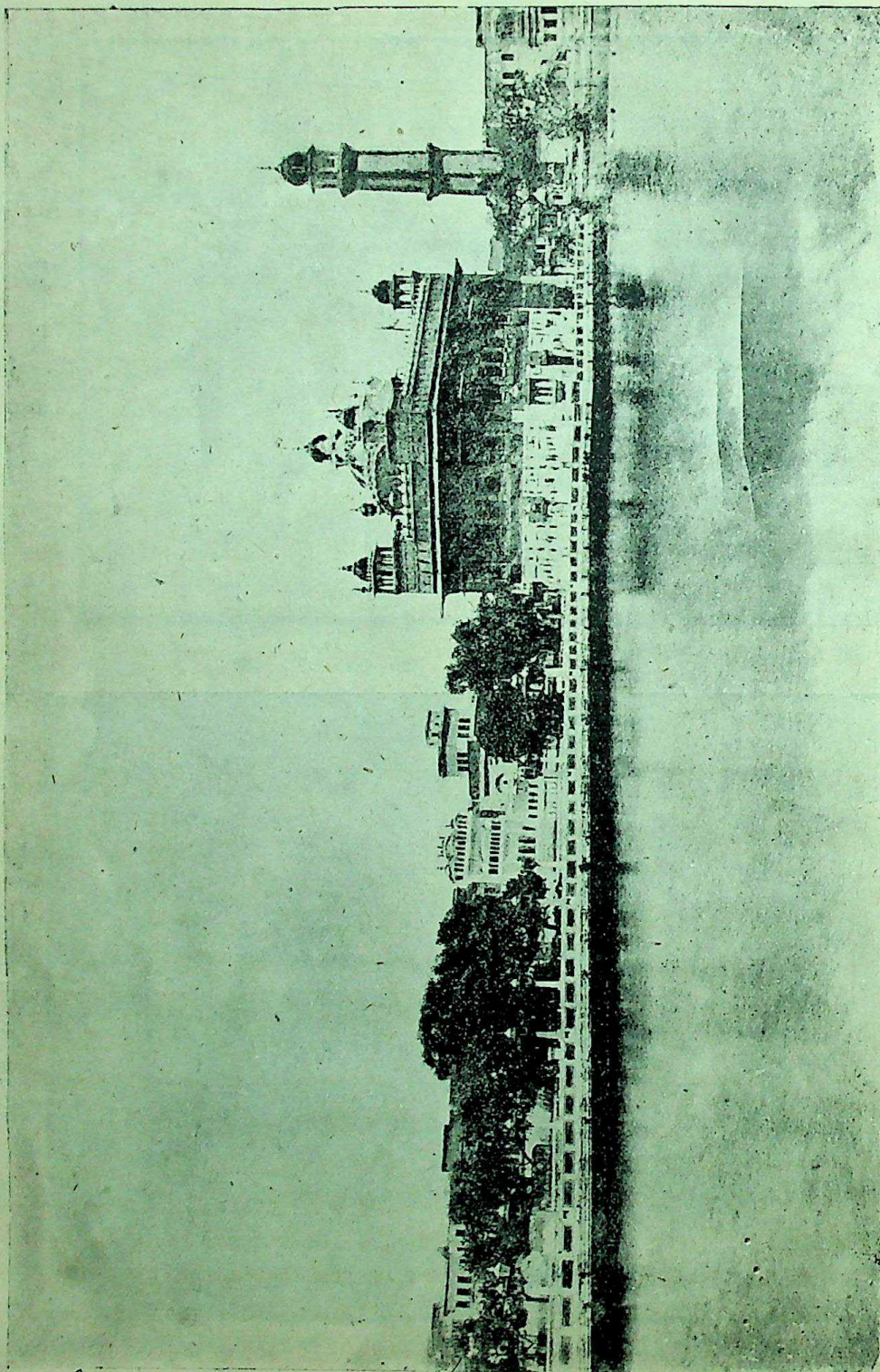
स्वर्ण-मन्दिर का एक और दृश्य।

उच्च कोटि की शिक्षा पाई है। पण्डितजी योरप का कई बार भ्रमण कर चुके हैं।

पण्डितजी को आरम्भ ही से राजनैतिक विषयों में रुचि थी। पहले वे नरम दल से सहानुभूति रखते थे और राजनैतिक क्षेत्र में साधारण ही भाग लेते थे। संयुक्त प्रान्त की प्रथम कान्फरेंस जो १९०७ ईसवी में इलाहाबाद में हुई थी, उसके सभापति पण्डितजी ही चुने गये थे। समय के अनुसार उनकी वक्तृता अच्छी थी। १९०९ से वे आल इन्डिया कांग्रेस कमेटी के सभासद और लगभग सात वर्ष से संयुक्त प्रान्त की कांग्रेस कमेटी के सभापति रह चुके हैं। उन्होंने मिन्टो मेमोरियल-कमेटी में सेक्रेटरी के पद पर कार्य किया है। आप सेवा-समिति प्रयाग के उप-सभापति, विद्या-मन्दिर हाई स्कूल की प्रबन्ध-कारिणी सभा और हाईकोर्ट के वकील-असोसियेशन के सभापति हैं। पण्डितजी कुछ समय तक लीडर प्रेस के डाइरेक्टर भी थे और अब इन्डिपेन्डेन्ट प्रेस के डाइरेक्टरों के सभापति हैं। गवर्नमेंट ने बहुधा उन्हें सिलेक्ट कमेटियों में भी नियुक्त किया है। वे संयुक्त प्रान्त के पबलिसिटी बोर्ड के भी मेम्बर रह चुके हैं और उन्होंने गवर्नमेंट की भारत-रक्षा-सेना के सङ्गठन में भी सहायता की थी।
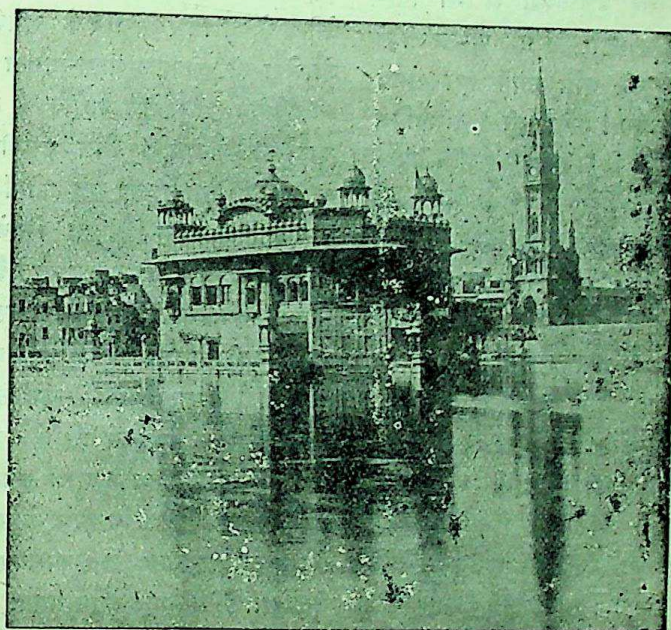
अमृतसर का स्वर्ण-मन्दिर।

हैं। आगरे में प्रान्तीय सामाजिक कान्फरेंस, लखनऊ में विशेष राजनैतिक कान्फरेंस, और समस्त भारतीय पटेल-मैरेज बिल कान्फरेंस में भी पण्डितजी ने ही सभापति का आसन ग्रहण किया था। १९०९ ईसवी से वे संयुक्त प्रान्त के छोटे लाट की कौन्सिल के भी मेम्बर हैं। आप इलाहाबाद म्यूनिसिपैलिटी के भी दो वर्ष तक मेम्बर

यद्यपि १९१५ में जहांगीराबाद प्रस्ताव का समर्थन करने और मुसलमानों को म्युनिसिपैलिटी में कुछ अधिक स्थान दिये जाने के पक्ष में होने के कारण हिन्दू-जनता उनके कार्य से असन्तुष्ट हो गई थी, तो भी वे अपने विश्वास से विचलित न हुए। आप थोड़े ही दिन पश्चात् फिर जनता के प्रेम-पात्र हो गये।

१९१५ ईसवी तक पण्डितजी ने राजनैतिक प्रश्नों में साधारण भाग लिया; परन्तु देशानुराग की ज्वाला उनमें सदैव विद्यमान रही। १९१६ ईसवी में १६ जून को एक ऐसी घटना हुई जिसने उनकी देश-प्रेम की ज्वाला को और भी प्रज्वलित कर दिया और उन्होंने राजनैतिक क्षेत्र में नवीन उत्साह के साथ कार्य करना आरम्भ कर दिया। यह घटना श्रीमती मिसेज़ बेसेन्ट के राजनैतिक कारागार में भेजे जाने की थी। जब पण्डितजी ने यह दुःखद समाचार सुना तब उनके रोष का वारापार न रहा। एक ओर भारत के उत्थान के लिए मिसेज़ बेसेन्ट का अविरल परिश्रम, तन-मन-धन से देश की सेवा और असाधारण त्याग; दूसरी ओर वृद्धावस्था में भी निरपराध कारागार और कठोर व्यवहार—बस, पण्डितजी से न रहा गया। देश-प्रेम की अग्नि उनमें इस समय भड़क गई। फिर क्या कहना था! पण्डितजी ने राजनैतिक आन्दोलन को खूब ही उत्तेजित किया। श्रीमान् सी० वाई० चिन्तामणि और डाक्टर तेजबहादुर सप्रू ने भी योग दिया और इलाहाबाद, बरन संयुक्त प्रान्त की राजनैतिक स्थिति में एक विशेष नवीन जीवन का सञ्चार हो गया। पण्डितजी ने एक बँगला किराये पर लेकर उसमें होमरूल-लीग खोल दी। सभासदों ने उन्हीं को सभापति चुना और सर्वत्र आन्दोलन होने लगा। पण्डितजी ने देश-दशा और जनता के कर्तव्य पर अनेक बार सारगर्भित व्याख्यान दिये। उनकी वक्तृता मनोहर और हृदय-ग्राहिणी होती थी और उनके प्रत्येक शब्द से देशानुराग झलकता था। प्रान्त-भर में प्रबल आन्दोलन होता रहा और देश-दशा पर विचार करने के लिए लखनऊ में एक विशेष कान्फ़रेंस हुई। उसके भी सभापति पण्डितजी बनाये गये और उन्होंने एक बड़ा सारगर्भित व्याख्यान दिया।

धीरे धीरे पण्डितजी की सहानुभूति गर्म दलवालों की ओर होने लगी। मान्टेगू-चेम्सफ़ोर्ड-सुधार-स्कीम के प्रकाशित होने पर नर्म दल और गर्म दल में और भी मतभेद बढ़ गया। इस समय संयुक्त प्रान्त में एक ऐसे राष्ट्रीय दैनिक की परम आवश्यकता समझी गई जो जनता के वास्तविक हृदय के उद्गारों और विचारों को प्रकाश कर स्कीम की यथार्थ समालोचना करे। इस अभाव की पूर्ति के लिए पं० मोतीलाल नहरू ने बड़ा प्रयत्न किया। उन्होंने राजा महमूदाबाद और अन्य महाशयों की सहायता से मि० सैयद हुसेन के सम्पादकत्व में "इन्डिपेन्डेन्ट" नाम का अँगरेज़ी दैनिक पत्र निकलवाया।

पं० मोतीलाल नहरू वकालत ही में अग्रसर नहीं, उनके सामाजिक विचार भी बहुत बढ़े हुए हैं। वे देश के उत्थान के लिए जाति-पाँति का विचार बहुत कम करते हैं। आडम्बर से तो वे सदा दूर भागते हैं। फ़ैशन में भी वे बहुत बढ़े-चढ़े हैं। उनकी राजसी रहन-सहन इलाहाबाद में प्रसिद्ध है।

पहले पण्डितजी के विचार कैसे ही रहे हों; परन्तु मिसेज़ बेसेन्ट के कारागार में जाने के समय से उन्होंने देश की जो सेवा की है उसका जीता-जागता प्रमाण संयुक्त प्रान्त की वर्तमान राजनैतिक जागृति है। संयुक्त-प्रान्त के छोटे लाट की कौंसिल में जिस स्वाधीनता से उन्होंने अपने कर्तव्य को निभाया वह सब लोगों पर प्रकट है। हाँ, यह अवश्य मानना पड़ेगा कि वे शान्ति और आपस में समझौते को अधिक पसन्द करते हैं। देहली कांग्रेस में भी फूट को निवारण करने का प्रयत्न उन्होंने किया था। श्रीमान् मालवीयजी को फिर से बड़े लाट की कौंसिल में आग्रह कर भेजना पण्डितजी की राजनीतिज्ञता को प्रकट करता है। नर्म दल और गर्म दल के पक्षपात को छोड़कर यदि निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं कि पण्डितजी उच्च कोटि के महानुभाव हैं और उनकी निर्भीकता, स्वतन्त्रता, कर्तव्यपरायणता, व्यावहारिक बुद्धि, देशानुराग और अपूर्व त्याग सर्वथा प्रशंसनीय है।

इस वर्ष अमृतसर में पण्डितजी ही नेशनल कांग्रेस के सभापति का आसन सुशोभित कर अमृत-रूपी भाषण करेंगे। ईश्वर करे वे इसी भाँति अविश्रान्त देश-सेवा करते रहें और "जननीजन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" को स्मरण रखते हुए जीवन का सुख भोगें।

गुरुनारायण मेहरोत्रे (बिलग्रामी), बी० ए०।

घटना-चक्र।

(१)

बी० ए० फ़ेल और बी० ए० पास लोगों को भी नौकरी मिलने में अनेक कठिनाइयां उठाते देख—विशेषकर उन्हें विवाहीन अतएव अविनयी रईसों की पदधूलि को इसलिए ग्रहण करते देख कर कि वे लाट साहब से सिफ़ारिश कर देंगे—बी० ए० पास करने पर मेरी तबीयत नौकरी से हट गई। सबसे अधिक दुःख मुझे इस बात का था कि मैं अपने प्रिय विषय संस्कृत में फ़ेल था। संस्कृत-प्रोफ़ेसर की चिट्ठी आई; उन्होंने आश्चर्य्य और दुःख प्रकट करते हुए लिखा कि एक बार तुम्हें और परिश्रम करना चाहिए। पर मेरी तबीयत ने कहा—"खाने के लिए घर में दो मुट्ठी अन्न है, नौकरी की पर्वा नहीं; अब हृदयनाथ, कुछ दिनों इधर-उधर घूम।"

जो लड़के संस्कृत लेकर फ़ेल होते हैं और आगे पढ़ने का विचार नहीं रखते वे प्रायः दो काम करते हैं—(१) हरद्वार-यात्रा और (२) मिसेज़ बिसेंट की गीता का अध्ययन। मैंने एक पद-दलित मार्ग का त्याग करके काशी की यात्रा की।

पिताजी ऐंट्रेंस के बाद ही आगे पढ़ने के लिए मना करते थे। वे कहते थे, घर का काम-काज देखो, मेरा बुढ़ापा है; ज़मींदारी से परिचय प्राप्त कर लो, आगे पढ़कर क्या करोगे? किन्तु पहले वर्ग में प्रवेशिका परीक्षा पास करके आगे न पढ़ना अनुचित समझकर मैं कालेज चला गया। बी० ए० फ़ेल होकर जब मैं घर आया तब पिता से बढ़कर माता प्रसन्न हुईं। सबसे अधिक आश्चर्य्य की बात यह हुई कि इस बार माता ने मेरे विवाह का प्रस्ताव न उठाया—फ़ेल हो जाने के कारण मुझे सुस्त देखकर उन्हें कदाचित् भय हुआ कि कहीं यह इस बार अधिक न चिढ़ जाय। पर घर पर मेरी तबीयत न लगती थी। ख़ाली समय में बहुत से उपन्यास पढ़कर "रोमेन्स" (Romance) की धुन दिल में समा गई थी। इसीलिए पिताजी से आज्ञा लेकर मैंने काशी की यात्रा की। माताजी भी साथ चलने के लिए कहने लगीं; पर मैं चाहता था कि इस यात्रा में यथेच्छ विहार करूँ और उपन्यासों में इस विषय के जो वर्णन पढ़े हैं, हो सके तो उनका भी प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करूँ। इसलिए किसी तरह उन्हें समझा-बुझाकर मैं अकेला ही विश्वनाथपुरी की ओर चल दिया।

अवश्य ही मेरे मन में संस्कृत पढ़ने का चाव छिपा हुआ था; किन्तु प्रधान उद्देश सैर-सपाटा ही था।

शाम के समय गाड़ी बनारस के स्टेशन पर पहुँची। जाड़ों की शाम थी, अतएव स्टेशन पर निर्जनता का हलका-सा रँग चढ़ा हुआ था। मैं अपने कम्बल को उठाकर गाड़ी से उतरा और रेल-बाबू को टिकट देकर पुल पार कर बाहर आया। कालेज के चार वर्षों के वास ने मेरे कपड़ों और उनके कारण मेरे स्वरूप में इतना परिवर्त्तन कर दिया था कि मेरे पास खड़े यात्रियों के नाम-धाम और गोत्र की पड़ताल करनेवाले पण्डों ने मुझे अपने प्रश्नों का लक्ष्य नहीं बनाया।

सूर्य्य अस्त हो चुके थे। पश्चिम-दिशा उन्हें थका-मांदा पाकर लाललाल हो रही थी। मैं भी काफ़ी थका हुआ था, पर मुझे थका हुआ देखकर प्रेम से लाल होने-वाला वहां कोई न था। तबीयत ने कहा, "रोमेन्स" का श्रीगणेश यहीं होता है।

मैं एक पेड़ के नीचे बैठ गया और किसी इक्केवाले की प्रतीक्षा करने लगा। शरत्सायङ्काल की मनोहर छटा का मेरे हृदय पर कुछ अधिक प्रभाव न पड़ा, क्योंकि जठराग्नि की तीव्रता उसकी मनोहरता का अपहरण कर रही थी। चौक के पास एक धर्म्मशाला में ठहरने का विचार था, और यह इच्छा थी कि सायङ्काल का पतला अन्धकार कुछ घना होने पर मैं काशीपुरी में प्रवेश करूँ।

इक्का न मिलने पर मैं पैदल ही काशीपुरी की ओर बढ़ा। जिस सड़क पर मैं जा रहा था उसी पर एक सज्जन जा रहे थे। उनका प्रशस्त ललाट और सौम्य बदन देखकर मेरी उनमें एक तरह की श्रद्धा हुई। वे बड़े ही निश्चिन्त भाव से पदचारण कर रहे थे। उन्होंने मानो मेरे मनोभाव को ताड़-कर मुझसे पूछा—मालूम होता है आपका स्थान काशी में नहीं है।

मैंने कहा—जी नहीं। मैं इसी समय यहां आया हूँ। मेरा स्थान अजमेर के पास है।

वृद्ध ने बड़े आश्चर्य से कहा—फिर आप इधर कहाँ जा रहे हैं ? यह सड़क तो जङ्गल को जाती है ! काशी में कोई आपके परिचित हैं ?

मैंने कहा—नहीं। कृपया बता दीजिए, मुझे किस सड़क से शहर को जाना चाहिए।

वृद्ध ने मेरा नाम-धाम, शिक्षा और आने का उद्देश पूछकर कहा—यदि आप अनुचित न समझें तो मेरे स्थान पर चले चलिए। वहाँ रहकर आप एक पन्थ दो काज कर सकते हैं। मेरे बच्चों को पढ़ाइए और स्वयं भी शिक्षा प्राप्त कीजिए।

मैंने वृद्ध को सभी बातें ठीक बताई थीं। संस्कृत-शिक्षा प्राप्त करने का विचार भी मैंने उन पर प्रकट कर दिया था। उनके शान्त मुख को देखकर मैं उनसे कुछ भी न छिपा सका। मुझे चुप देखकर वृद्ध बोले—आप यदि मेरे बच्चों को न पढ़ाना चाहें तो भी मेरे यहाँ रह सकते हैं। मुझे बच्चों के लिए शिक्षक की आवश्यकता है; इसलिए मैंने आपसे कहा था। मुझे एक ऐसा शिक्षक चाहिए जो मेरे ही घर पर रहे और मेरी पोती और पोते को मेरे उद्भावित शिक्षा-नियमों के अनुसार शिक्षा दे।

मैंने पूछा—महाशय ने शिक्षा के किन नियमों का उद्भावन किया है ? बहुत सम्भव है, मैं उनके अनुसार काम न कर सकूँ।

वृद्ध ने कहा—वे बड़े सीधे-सादे हैं। मान लीजिए, आप मेरे बच्चे को अँगरेज़ी रीडर पढ़ायँगे, और उसमें एक पाठ लन्दन-नगरी पर है। तब मेरे नियम के अनुसार आप पहले अच्छी तरह उस विषय का अध्ययन करें; फिर उस पर मेरी आपसे बातचीत हो। इस उपाय से मैं देखूँगा कि उस विषय पर आपका अध्ययन पुस्तक से अलग कितना है; तब उस विषय पर जो कुछ मैं जानता हूँ वह आपको बता दूँगा। इसके पश्चात् मैं आपको उस विषय के पढ़ाने की शास्त्रीय रीति बताऊँगा। मेरी आपकी यह बातचीत प्रातःकालीन भ्रमण के समय होगी। आठ से दस तक आप बच्चों को पढ़ायँगे, दस से शाम तक आप स्वतन्त्र हैं। सात बजे सन्ध्या को आध घण्टे तक बच्चों को हिसाब पढ़ाना होगा। रात को सोने से पहले आपको अगले दिन का पाठ स्वयं पढ़ना होगा जिससे दूसरे दिन प्रातःकाल आप मुझसे उस विषय पर बातचीत करने के लिए तैयार हो जायँ। एक वर्ष में दो मास की छुट्टी रहती है। सप्ताह में शनिवार को अवकाश होता है और उस दिन हम सब जल-क्रीड़ा या और कोई विहार करते हैं। छुट्टी के दो महीने आप हमारे साथ पर्वत-यात्रा में काट सकते हैं या जहाँ आपकी इच्छा हो जा सकते हैं। मकान, भोजन, वस्त्र आदि के अतिरिक्त आपको ४०) मासिक वेतन मिलेगा।

वृद्ध ने ये बातें धीरे धीरे इस ढङ्ग से कहीं कि मेरे चित्त पर जम गईं। मैंने मन में कहा—अजीब इत्तफ़ाक़ है, बड़ी अच्छी नौकरी है, वृद्ध का सत्सङ्ग, दिन भर की छुट्टी और खाने-पहिनने से बेफ़िक्री ! विश्वनाथजी की पुरी में प्रवेश करते ही उनके विश्वम्भर होने का परिचय खूब प्राप्त हुआ ! मैंने विनय दिखाते हुए कहा—धन्यवाद। मुझे आपकी नौकरी मञ्ज़ूर है; किन्तु मेरे विषय में आप किससे पूछताछ कीजिएगा ? मेरे सर्टीफ़िकेट भी मेरे पास यहाँ नहीं हैं।

वृद्ध ने अपनी बड़ी, पर शान्त भाव-पूर्ण आँखों को मेरे चेहरे पर जमाते हुए कहा—मैंने तुम्हारे चेहरे से सब पूछताछ कर ली है। तुम मुझसे बातचीत करना चाहते थे; इसीलिए तो मैंने तुमसे कहा था कि तुम्हारा स्थान काशी नहीं है। ३५ वर्ष जासूस-विभाग में नौकरी करके मैं १० वर्ष से काशी-सेवन कर रहा हूँ। मेरे लिए ऐसी बात जान लेना कुछ कठिन नहीं है।

मैं वृद्ध की बात सुनकर चकित रह गया। हम लोग कोई दो मील के क़रीब बाहर निकल आये थे। वृद्ध की बातों और बातों से उत्पन्न हुए आश्चर्य और हर्ष के कारण मुझे कुछ भी थकान प्रतीत नहीं होती थी। तबीयत ख़ुश थी। कुछ दूर पहुँचने पर वृद्ध ने कहा—आइए, यही मेरी कोठी है। शहर से बाहर रहने में बहुत सुख है। बड़े शहरों में सफ़ाई का प्रबन्ध न होने से कोई न कोई रोग सदा ही बना रहता है और फिर यह तो विश्वनाथपुरी है; इसमें जो आ जाता है उसका जी जाने को नहीं करता। यहाँ रोगों के लिए भी यही उत्साह है। यह कहते कहते वृद्ध महाशय अपनी विशाल कोठी के प्रशस्त

सोपानों पर नवयुवकों की तरह खटाखट चढ़ गये। मैं भी साथ था। उन्होंने आवाज़ दी—अन्नपूर्णा!

'जी' की सुकोमल ध्वनि के साथ १३-१४ वर्ष की एक बालिका कोठी के एक कमरे से बाहर निकल आई। वृद्ध ने उससे कहा—बेटी, ये तुम्हारे शिक्षक, हृदय बाबू हैं। इन्हें पश्चिम के कमरे में ठहराओ और चुन्ना कहार से कह दो कि इनके लिए जल आदि का प्रबन्ध कर दे।

अन्नपूर्णा सफ़ेद साड़ी और कोहनी तक कुर्ती पहिने हुए अपने अङ्ग की कान्ति से साड़ी के सफ़ेद रङ्ग का मानो मुक़ाबला कर रही थी। सिर खुला हुआ था। उसने मेरी ओर देखा और कहा—आइए, महाशय! मैं उसकी बात सुनकर अवाक् रह गया। उसमें नाम को हिचक न थी; पर लज्जा ज़रूर थी। इस बात का पता मुझे उसके आकर्णविस्तृत नेत्रों से ज़रूर मिलता था। वह स्लीपरों से मानो ताल देती हुई आगे आगे चलने लगी। कमरे में पहुँचते ही उसने पूछा—आप मुझे पढ़ाइएगा? आपने क्या पास किया है? बालिका की बातों में भोलेपन की मात्रा यथेष्ट थी। मैंने कहा—बी० ए० तक पढ़ा है।

उसने तत्काल कहा—तब यों कहिए कि एफ़० ए० पास किया है।

मैं झेंप गया। उसने 'पास' की बात पूछी थी और मैंने बी० ए० फ़ेल विद्यार्थियों की प्रथा का पालन करते हुए 'पढ़ने तक' की बात कही। अन्नपूर्णा मुझे कमरा दिखाकर चली गई और मैं निश्चिन्त होकर उस साफ़ सुथरे और सादगी से सजे कमरे में लेटकर शुक्लपक्ष की सप्तमी के चन्द्रमा का शरद्विलास देखने लगा।

(२)

दूसरे दिन सूर्योदय से पहले ही वृद्ध तैयार होकर मेरे कमरे के द्वार पर आ मौजूद हुए। मैं भी तैयार था। उनके साथ टहलने चल दिया। उन्होंने बातों बातों में कहा—आप मेरे बच्चों के स्वतन्त्र स्वभाव से रुष्ट न हों। वे अविनयी नहीं हैं; किन्तु उन्हें जिस तरह पाला गया है उससे उनके स्वाभाविक उत्कर्ष में बाधा नहीं पड़ी है। वे अपने मन की बात साफ़ कह देते हैं। इन बातों से आप नाराज़ न हूजिएगा।

वृद्ध के साथ घूमकर मैं साढ़े सात बजे कोठी पर लौट आया। वृद्ध अपनी दिनचर्या में लग गये। मैं उनकी कार्य्य-पद्धति और रहने के अमायिक ढङ्ग को देखने लगा।

वृद्ध के पुत्र रमाप्रसाद एम० ए० का देहान्त ३० वर्ष की अवस्था में हैज़े से हो गया था। तभी से वृद्ध काशीवास कर रहे हैं। अन्नपूर्णा और नवीन रमाप्रसाद की सन्तति हैं। वृद्ध ने इन्हें बड़े प्रेम से पाला है। ये ही दोनों उनके जीवन का आश्रय हैं।

आज शनिवार था। भोजनोपरान्त हम सब लोग जङ्गल में चले गये। वहाँ गाना-बजाना हुआ। वृद्ध को गाने-बजाने का बड़ा शौक़ है। कण्ठ भी बड़ा कोमल है। उनके गान को सुनकर कोई न समझ सकता था कि ६० वर्ष का बूढ़ा गा रहा है। अन्नपूर्णा ने भी भजन गाये। कैसा कोमल कण्ठ और हृदयस्पर्शी लय थी! लड़का नवीन हिन्दू कालेज के दूसरे वर्ष का विद्यार्थी था। हम तीनों की एक दौड़ हुई। दो मील की दौड़ थी। मैं थककर रास्ते में बैठ गया। वे लोग जब लौटे तब मैं फिर उनके साथ हो लिया। वृद्ध के पुरुषार्थ को देखकर मैं चकित था। उन्होंने हँसते हुए कहा—हृदय बाबू, अगले मास में आप नहीं थकेंगे।

मैं अन्नपूर्णा को हिन्दी और नवीन को संस्कृत पढ़ाने लगा। पहले दिन मुझे 'भारतीय किसान' पर उसे पाठ पढ़ाना था। रात को मैंने उस पाठ को पढ़ा, मुझे उसमें कोई कठिन बात दिखाई न दी; पर प्रातःकाल को जब बड़े बाबू के साथ टहलने गया और उन्होंने मुझ से प्रश्न करने शुरू किये तब मुझे मालूम हुआ कि 'भारतीय किसान' भी कितना प्रणिधान-योग्य विषय है। बड़े बाबू ने अन्य देशों के किसानों के साथ भारतीय किसान की तुलना की। वृद्ध को भूखण्ड के सभी सभ्य देशों के किसानों का हाल मालूम था। उन्होंने कहा, भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है, इसलिए यहाँ के किसानों की उन्नति से देश की उन्नति होगी। किन किन देशों को भारत कितना कितना अनाज देता है, यह वृद्ध को ज़बानी याद था। अन्य देशों के किसान थोड़ी भूमि में अधिक अनाज पैदा करके कैसे अपनी आर्थिक उन्नति कर रहे हैं—इसका उन्होंने बड़ा अच्छा वर्णन किया।

बाबू का हर विषय में अच्छा अनुभव था। जासूस-विभाग में ऊँचे पद पर काम करने से उनका मनुष्य-स्वभाव-सम्बन्धी ज्ञान बहुत ही बढ़ गया था।

कोठी पर आकर मैंने पाठ पढ़ाना आरम्भ किया। अन्नपूर्णा ने भी उस पाठ को पहले दिन थोड़ा-बहुत पढ़ लिया था। मैंने पुस्तक उठाकर एक तरफ़ रख दी। प्रश्नोत्तर की रीति पर खेती के विषय को सीधी-सादी भाषा में ख़ूब समझाया। अन्नपूर्णा को जहाँ सन्देह होता था वह उँगली उठा देती थी। मैं उस वाक्य की समाप्ति पर रुक जाता था और उसका सन्देह दूर कर देता था। पौन घण्टे तक मूल विषय पर वार्तालाप हुआ; इसके पीछे पुस्तक का पाठ किया गया।

बड़े बाबू की आज्ञा थी कि पढ़ाने में कोई बात चिल्लाकर न कही जाय, धीरे से कही जाय। धीरे से कही बात का प्रभाव सुननेवाले पर अच्छा पड़ता है। चिल्लाकर बात कहने में बात का बहुत सा प्रभाव आवाज़ की कर्कशता में नष्ट हो जाता है। उनका यह भी कहना था कि शिक्षक आप अधिक न बोले, किन्तु शिष्य को ही स्पष्टता से और सम्मानपूर्वक बोलने के लिए उत्तेजित करे। पाठ के बाद अन्नपूर्णा लिखने बैठती थी और मैं उसे मासिकपत्रों के उन लेखों में से जिन पर बड़े बाबू पढ़कर निशान लगा देते थे, कुछ मज़मून बोल देता था। हिसाब के सहज सवाल ज़बानी पूछता था और वह उनको ज़बानी ही हल करती थी। स्लेट का प्रवेश निषिद्ध था। पाठ समाप्त होने पर वह प्रणाम करके चली जाती थी और मैं उसकी बुद्धि, विनय, विचार और भोलेपन की बातों को बैठा बैठा सोचता रहता था।

एक सप्ताह बाद मैंने मकान को पत्र लिखा और अनायास नौकरी पाने का समाचार भी लिखा। यथासमय पिता का पत्र मिला। वे मेरी नियुक्ति पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने लिखा, जब तक चाहो वहाँ रह सकते हो।

पत्र पढ़कर तबीयत का बोझ उतर गया। मुझे डर था कि पिता कहीं घर पहुँचने की आज्ञा न लिख भेजें।

(३)

छः महीने बीत गये।

नवीन मुझसे संस्कृत पढ़ता था; पर सच यह है कि मैं ही उससे संस्कृत पढ़ता था। वह मुझसे तन्न तन्न करके हर एक बात पूछता था और मुझे उसको जवाब देने के लिए तैयार होना पड़ता था। तैयारी के लिए मुझे विशेष अध्ययन करना पड़ता था। मेरे पढ़ाने से नवीन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपनी प्रसन्नता बड़े बाबूजी पर भी प्रकट कर दी। एक दिन टहलते हुए उन्होंने मुझ से कहा—हृदय बाबू, आपका पढ़ाने का ढङ्ग बहुत अच्छा है। इस बार नवीन संस्कृत में सर्व-प्रथम हुआ। वह कहता है कि यह आपके ही पढ़ाने का फल है।

मैंने नम्रता दिखाते हुए कहा—नवीन बाबू की बुद्धि बड़ी पैनी है, वे विषय को ख़ूब समझते हैं और परिश्रम करते हैं। मैं तो स्वयं बी० ए० की परीक्षा में संस्कृत में फ़ेल हुआ हूँ!

बड़े बाबू ने कहा - इस बात को न कहिए। अधिक रोशनी भी आँखों को अन्धा कर देती है; बड़ी आवाज़ भी कानों को नहीं सुनाई देती। इसी तरह बहुत तेज़ लड़के भी कभी अपनी तेज़ी से फेल हो जाते हैं। अगले वर्ष से आप भी हिन्दू कालेज में भरती हो जाइए और बी० ए० की परीक्षा दे डालिए।

मैंने कहा, नवीन बाबू भी उस दिन यही कहते थे; आप लोगों की यही आज्ञा होगी तो मैं कालेज में फिर पढ़ने लगूँगा।

दूसरे दिन अन्नपूर्णा ने पूछा—आप भी हिन्दू कालेज में भरती हूजिएगा?

मैंने कहा—हाँ।

उसने कहा—बहुत अच्छी बात है। फिर तो आप को बहुत परिश्रम करना पड़ेगा। देखिए, अधिक परिश्रम करने से स्वास्थ्य ख़राब न हो जाय।

यह सुनकर मैंने उसकी ओर देखा। उस समय उसके इन्दुसम उज्ज्वल मुख पर ज़रा भी बनावटी भाव न था। वह सरलता से हँस रही थी। मेरे आश्चर्य को देखकर उसने कहा—बाबूजी, हमें रात को पढ़ने नहीं देते, वे कहते हैं कि रात में पढ़ने से नेत्रों में विकार उत्पन्न हो जाता है। दस बजे के बाद कमरों में रोशनी बुझा दी जाती है।

मैंने कहा—ठीक है।

(४)

और एक वर्ष बीत गया। अन्नपूर्णा का वह सरल भाव अब कम होने लगा है। यौवन के आरम्भ से उसमें सरलता का स्थान सङ्कोच ग्रहण कर रहा है। उसका रूप दिन दिन उज्ज्वल हो रहा है। पहले की तरह वह अब मुझसे खुलकर बातें नहीं करती है। मुझे भी उससे बात करने का साहस नहीं होता।

मुझे उससे अवश्य प्रेम हो गया है। पर क्या स्वर्ग का वह फूल कभी मेरा हो सकता है? इसे दुराशा समझकर ही अब तक मैंने अपने तरुण हृदय को प्रेम के मृदु-स्पर्श से उत्पन्न हुए घात-प्रतिघातों से दूर रक्खा है। एक सद्गृहस्थ के घर में जहाँ मैं इतने सुख से रहता था, प्राकृतिक होने पर भी प्रेम का यह प्रवेश मुझे बहुत अनुचित मालूम होता था। इसीलिए मेरा चित्त अस्वस्थ रहता था। एक दिन अन्नपूर्णा ने पूछा—आपका शरीर अच्छा तो है?

मैंने कहा—अच्छा है, अब मैं घर जाना चाहता हूँ। आप लोगों के साथ रहकर मेरा समय बहुत अच्छी तरह कटा; किन्तु पिता नहीं चाहते कि मैं अधिक दिनों बाहर रहूँ।

मेरी बात सुनकर अन्नपूर्णा का चेहरा उतर गया। उसके उज्ज्वल सुन्दर मुख पर भावों का उदय-अस्त स्पष्ट प्रतीत हो रहा था। मैंने अवश्य बात बनाकर कही थी। पिताजी ने मुझे वहाँ से आने के लिए नहीं लिखा था।

अनपूर्णा ने सूखे मुँह से कहा—आपको यहाँ कुछ कष्ट है? इस बार हमारे साथ नैनीताल न जाइएगा? बाबूजी एक सप्ताह बाद नैनीताल जायँगे। अबकी बार गवर्नमेंट-हाउस के पास किराये की कोठी ली है और वह साफ़ हो गई है। पिताजी को लिख दीजिए कि हम यहाँ अच्छी तरह हैं।

मैंने मन में कहा—अब बहुत दिनों तक मैं हृदय की परीक्षा नहीं कर सकता। पिछली बार नैनीताल-यात्रा में अन्नपूर्णा के साथ 'चाइनापीक' की यात्रा को मैं उम्र-भर नहीं भूलूँगा। पर अब उसके साथ रहने को मेरा साहस नहीं होता; उसके शरीर की आभा से अब मुझे आनन्द नहीं, भय होता है। जिस परिवार में मैं घर की तरह रहा हूँ, जिन देवसम मनुष्यों में मेरी मानसिक उन्नति हुई है, उनके साथ में वञ्चना नहीं करूँगा, उनके साथ धोखा नहीं करूँगा। अन्नपूर्णा से प्रेम करने का मुझे अधिकार नहीं; पर यहां से चले जाने का मुझे पूरा अधिकार है। पर प्रेम का अबाध प्रवेश अन्नपूर्णा के सुकोमल मानस-क्षेत्र में हो चुका था—यह बात मुझे मालूम थी; पर आज उसके उतरे हुए चेहरे को देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैंने बात टालने के लिए कहा—तुम्हारे यहाँ मुझे कुछ भी कष्ट नहीं है, इतना सुख तो मुझे अब तक कभी और कहीं प्राप्त नहीं हुआ। पर पिताजी वृद्ध हैं, उनकी आज्ञा है कि तुम मेरे पास रहो; फिर भी मैं उन्हें लिखूँगा।

मेरे यह कहतेही मैंने उस दिन का समाचार-पत्र सामने कर लिया। अवश्य ही मेरे नेत्र मेरे रुँधे हुए गले की तरह मेरे हृदय की दुर्बलता का परिचय देना ही चाहते थे।

अन्नपूर्णा उठ गई। बाबू साहब गमलों का निरीक्षण कर रहे थे। अन्नपूर्णा उनके पास जाकर फूलों से मन बहलाने लगी।

उसी रात्रि को अन्नपूर्णा को ज्वर हो गया। डाक्टर ने कहा, ज्वर मियादी है। परिचर्या में कुछ कसर न थी। मेरा जी चाहता था कि दिन-रात उसके पलङ्ग के पास बैठा रहूँ; पर बाबूजी की तीक्ष्ण दृष्टि के भय से मैं बिना बुलाये न जाता था। बाबूजी को मेरे हृदय का भाव न मालूम हो जाय, इस बात की मैं सदा चेष्टा करता था। मैं अन्नपूर्णा की मानसिक अर्चना करता था, अपनी पूजा का भाव किसी तरह भी प्रकट न होने देता था। उसकी बीमारी देखकर मेरा हृदय बैठा जाता था। बाबूजी की आज्ञा से मैं रात को चार घंटे उसकी देख-भाल करता था। दिन में भी मैं उसके पास दो-तीन घण्टे बैठता था। बूढ़े बाबू रात-भर जागते थे। अब ज्वर का स्वरूप दिन दिन भयङ्कर होने लगा। हम सब लोग बारी बारी से उसकी शुश्रूषा करते थे। नवीन की माँ को भी दूसरे दिन ज्वर हो गया। बूढ़े बाबू को इतना चिन्तित मैंने कभी नहीं देखा था।

दूसरे दिन सिविल सर्जन ने कहा—लड़की को पहाड़ ले जाइए; बनारस की गर्मी में इसका अधिक रहना अच्छा नहीं।

उसी रात को मैं और नवीन अन्नपूर्णा को लेकर नैनीताल के लिए चल दिये। कोठी पहले से ही तैयार थी। वहाँ जाने के बाद ही उसे आराम होना शुरू हो गया। फिर वह हमारे साथ थोड़ी दूर तक टहलने लगी। मैं उसे देखकर अत्यन्त चञ्चल हो जाता था। उसने एक दिन क्षीण स्वर में कहा—हृदय बाबू, मेरी बीमारी के कारण आपका घर जाना रुक गया।

मैंने कहा—वहाँ जाने की अब ऐसी ज़रूरत नहीं। पिताजी ने मुझे यहाँ कुछ दिनों और रहने की अनुमति देदी है।

उसके दुबले चेहरे पर खुशी की रेखा झलक गई। उसने कहा—मेरी बीमारी ने अच्छा काम किया!

मैंने कहा—मुझे घर नहीं जाने दिया।

उसने मुस्कुराकर कहा—हाँ, और आपका स्वास्थ्य भी अच्छा कर दिया।

इसी समय नवीन ने हांपते हुए आकर कहा—You stood first in the B. A. Examination, here is Babuji's telegram. बधाई! बधाई!! यह समाचार सुनकर मैं हर्ष-विह्वल हो गया और अन्नपूर्णा—उसका कुम्हलाया हुआ मुख तो हर्ष के कारण दमकने लगा और नेत्रों से आनन्द के आंसू बहने लगे। उसने भी उत्तेजनापूर्ण स्वर में कहा—बधाई!

(५)

तीसरे दिन गज़ट में परीक्षा-फल आ गया। नवीन की माता का स्वास्थ्य भी अच्छा हो गया था। बड़े बाबूजी के साथ वे भी नैनीताल में आ गई थीं। मेरे पास होने की सबने खुशी मनाई।

दूसरे दिन बड़े बाबू छोटे लाट से भेट कराने के लिए मुझे अपने साथ ले गये। भारत-सरकार में बाबूजी का बड़ा मान था। छोटे लाट भी उनसे किसी किसी मामले में परामर्श करते थे। बड़े बाबूजी को उनके पास जाने का अबाध अधिकार था। मेरा परिचय सुनकर लाट साहब बहुत प्रसन्न हुए और मुझसे हाथ मिलाया। मुझे यथा-समय डिप्टीकलक्टर बनाने की भी उन्होंने स्वयं ही इच्छा प्रकट की। बाबू जी और मैंने उनका धन्यवाद किया।

बी० ए० में प्रथम होने और डिप्टीकलक्टर हो जाने के समाचार से बढ़कर मुझे पिताजी के उस पत्र को पढ़कर आश्चर्य हुआ जो उन्होंने मेरे अन्तिम पत्र के उत्तर में लिखा था। वह पत्र यह है—

बेटा हृदय,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। तुम्हारे पास होने और डिप्टी-कलक्टरी में नामज़द होने की बात सुनकर यत्परोनास्ति हर्ष हुआ।

आज तुम्हें एक बात लिखता हूँ। बाबू राधिकाप्रसाद्जी (मतलब है बड़े बाबूजी से) तुम्हें मुझसे माँगते हैं। जानते हो किस लिए? अन्नपूर्णा को पढ़ाने के लिए नहीं, उसको तुम्हें देने के लिए—उसके साथ तुम्हारा विवाह करने के लिए। बाबूजी के लिखने से और तहक़ीक़ात करने से यह भी मालूम हुआ है कि उनसे हमारा पुराना सम्बन्ध भी है; किन्तु वे चिरकाल तक बम्बई प्रान्त में रहे हैं और अपने एक-मात्र पुत्र की मृत्यु के बाद उसके दोनों बच्चों और विधवा स्त्री को लेकर काशीवास कर रहे हैं, इससे उन्हें इधर बहुत कम लोग जानते हैं। उनके पास रहकर तुम्हारा असीम उपकार हुआ है और लड़की की तुम स्वयं बहुत तारीफ़ करते हो; इसलिए मुझे इस सम्बन्ध को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं मालूम होती। अब तुम शीघ्र मकान चले आओ। अगले मास की १५ तारीख़ को तुम्हारा विवाह है।

जब से तुम्हारी माता ने तुम्हारे पास होने का समाचार सुना है वह ख़ुशी के मारे बावली हो रही है। मैंने उसे तुम्हारे विवाह का समाचार अभी नहीं सुनाया है। वह कमज़ोर है, कहीं हर्ष के समाचार उसे सचमुच पागल न कर दें। इस पत्र के उत्तर के बदले तुम स्वयं ही मेरे पास पहुँचना।

आशीर्वादक,
रामनाथ।

(६)

विवाह के बाद अन्नपूर्णा को लेकर जिस ट्रेन से मैं बनारस से चला था, वह भी शाम को ७ बजे वहाँ से चलती थी। वह ग्रीष्मकाल की सन्ध्या थी। दिन-भर की गर्मी के बाद शाम का सुहावना समय सन्तप्त प्रकृति को सान्त्वना दे रहा था। मुझे वह दिन याद आ गया जिस

दिन में एक कम्बल लेकर बनारस स्टेशन पर उतरा था। शरत्सायङ्काल और ग्रीष्म की सन्ध्या में जितना भेद है उस से कहीं अधिक आज मेरी अवस्था में भेद था। उस दिन में एक साधारण मुसाफ़िर था और आज बरात का अधिपति और अमूल्य स्त्रीरत्न अन्नपूर्णा का हृदय! अपने "रोमेन्स" की धुन से उत्पन्न हुई उस यात्रा का स्मरण करता हुआ मैं पहले से ही रिज़र्व किये फ़र्स्ट क्लास के कमरे में घुसा।

× × × ×

पिताजी की मृत्यु के बाद उनकी ख़ास सन्दूक़ में एक ज़रूरी काग़ज़ को ढूँढ़ते हुए एक चिट्ठी मिली जिसे बनारस से बाबूजी ने भेजा था। उसे पढ़कर मेरा "रोमेन्स" का गर्व काफ़ूर हो गया। उसमें लिखा था—

प्रिय पण्डितजी,

यदि हृदयनाथ बनारस आना चाहते हैं तो आने दीजिए। जिस ट्रेन से वह चलें उसकी सूचना ज़रूरी तार से मुझे दे दीजिए। मैं उन्हें स्टेशन पर पा लूँगा; वह यह न समझ सकेंगे कि मैं उनकी तलाश में हूँ। आजही मैंने अपने यहां के अध्यापक को बर्ख़ास्त किया है। मेरी बातों में आ गये तो उन्हींसे अपने बच्चों को पढ़वाऊँगा; यहां रहकर उनका मन बहुत जल्द पढ़ने में लग जायगा। आप निश्चिन्त रहें, यह रहस्य उनकी माता को भी मालूम न हो। स्त्रियों का कोमल हृदय अपनी सन्तान से किसी तरह के रहस्य की रक्षा नहीं कर सकता।

उनसे विवाह की इस समय बात चलानी आपकी तरह मुझे भी किसी तरह ठीक मालूम नहीं होती। अभी कुछ दिनों तक इस विषय में चुप रहना ही ठीक है, ख़ास कर जब कि वह ख़ुद इधर आ रहे हैं।

इस सप्ताह में कहीं न जाऊँगा।

भवदीय
राधिकाप्रसाद।

जिस काग़ज़ की तलाश में मैं व्यस्त था उसका मुझे घण्टों ध्यान न आया, बैठा बैठा इस पत्र को पढ़ता रहा। पिछली सब घटनायें जो 'रोमेन्स' के काल्पनिक सूत्र में गुथी हुई थीं, बिखर गईं और फिर उनमें मनुष्य की हित से भरी बुद्धि का मज़बूत और बारीक़ डोरा पुर गया। जिसे मैं सिर्फ़ 'घटना-चक्र' समझता था, अब मालूम हुआ उसमें पूज्य पिताजी के बुद्धि-कौशल से भरे आशीर्वाद का भी बहुत हिस्सा था—यह सोच कर कृतज्ञता और लज्जा दोनों तरह के भावों का मेरे हृदय में एक साथ उदय हुआ।

ज्वालादत्त शर्म्मा।

आत्मा।

मनुष्य में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ अर्थात् नाक, कान, नेत्र, जिह्वा और त्वक् हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये पाँचों के धर्म हैं, अर्थात् नाक का काम सूँघना, कान का सुनना, नेत्र का देखना, जिह्वा का स्वाद लेना और त्वक् का स्पर्श करना यानी छूना। इसी तरह पाँच कर्मेन्द्रियाँ भी हैं अर्थात् हाथ, पैर, अपान, उपस्थ और वाणी। काम करना, चलना, मल त्याग करना, मूत्र विसर्जन करना, और बोलना इनके काम हैं। इन दस इन्द्रियों के सिवा एक ग्यारहवीं इन्द्रिय और है जो मनुष्य के भीतर है और बाहर से दिखाई नहीं देती। इसे इसी कारण अन्तःकरण कहते हैं, यानी भीतर की इन्द्रिय। इसके चार भेद हैं, अर्थात् मन, चित्त, अहङ्कार और बुद्धि। सङ्कल्प-विकल्प करना मन का काम है; अच्छे-बुरे भाव जिन्हें वृत्तियाँ कहते हैं, उत्पन्न करना चित्त का काम है; किसी वस्तु में ममता उत्पन्न करना अहङ्कार का काम है, यानी अहङ्कार के द्वारा मनुष्य कहता है कि यह वस्तु मेरी है, यह स्त्री, पुत्र मेरे हैं, इत्यादि। किसी वस्तु का निश्चय करना, यानी अन्धकार में किसी वृक्ष की सूखी पीठ देखकर निश्चय करना कि यह मनुष्य नहीं है, पीठ है, यह काम बुद्धि का है। बुद्धि से ही विवेक और ज्ञान उत्पन्न होता है। जीवों की अनेक योनियों में मनुष्य की श्रेष्ठता बुद्धि की उत्कृष्टता के कारण ही है। इन चीज़ों के सिवा मनुष्य में प्राण हैं जिससे वह साँस लेता है। प्राण-वायु पाँच प्रकार की है।

इन सब चीज़ों के समूह को अर्थात् पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ पाँचों कर्मेन्द्रियाँ, पाँचों प्राण, मन (चित्त-सहित), बुद्धि (अहङ्कार-सहित) के समूह को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। इसका यह अर्थ है कि जैसे स्थूल-शरीर में ये सब चीज़ें हैं वैसे ही स्थूल शरीर के भीतर एक छोटा शरीर है जो इनका बनाया हुआ है। जब मनुष्य सोता है तब उसकी बाहर की दसों इन्द्रियाँ अपना अपना काम बन्द कर देती हैं। तथापि स्वप्न में यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि वह बाहरी इन्द्रियों के योग के बिना ही सब काम करता है। स्वप्नावस्था में मनुष्य देखता भी है, सुनता भी है, सूँघता भी है, चलता, फिरता भी है अर्थात् दसों इन्द्रियों के जो जो काम हैं वह सभी करता है। यह सब सूक्ष्म शरीर के द्वारा ही होता है। यदि सूक्ष्म शरीर न होता तो ये काम नहीं हो सकते थे।

इसी सूक्ष्म शरीर को वेदान्ती और सांख्य-मत-वाले जीव कहते हैं। तो क्या यही सूक्ष्म शरीर आत्मा है? नहीं। आत्मा इससे परे है। पर सूक्ष्म शरीर का आधार आत्मा पर ही है। यदि आत्मा न हो तो सूक्ष्म शरीर कुछ काम नहीं कर सकता। जैसे सूक्ष्म शरीर के बिना स्थूल शरीर कुछ काम नहीं कर सकता, वैसे ही आत्मा के बिना सूक्ष्म शरीर भी कोई काम नहीं कर सकता। कल्पना कीजिए कि एक लकड़ी या टीन धातु का ऐसा खिलौना बना है जिसके नाक, कान, नेत्र, मुँह, शरीर आदि सभी हैं। ये अवयव खिलौने के शरीर में इस प्रकार लगाये गये हैं कि यदि उसकी चाबी भर दी जाय तो वे सब हिलने लगते हैं, और अपना अपना काम वैसे-ही करने लगते हैं जैसे मनुष्य के शरीर के अवयव। जब तक चाबी से भरी हुई शक्ति खिलौने के भीतर रहती है तब तक उसकी कृत्रिम इन्द्रियाँ बराबर काम करती हैं। जब वह शक्ति जाती रहती है तब इनमें से कोई भी इन्द्रिय कुछ काम नहीं करती। उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर की शक्ति का मूलाधार आत्मा ही है। आत्मा में न स्थूल इन्द्रियाँ हैं न सूक्ष्म इन्द्रियाँ, न मन है न बुद्धि है। वह सर्वाकार-रहित अन्तिम चेतन-शक्ति है जो सूक्ष्म और स्थूल दोनों शरीरों को चलाती है। यदि यह चेतन-शक्ति अन्तर्हित हो जाय तो न स्थूल शरीर और न सूक्ष्म शरीर ही काम कर सकते हैं। यह चेतन-शक्ति सूक्ष्म शरीर में सदैव रहती है, उससे पृथक् नहीं होती। परन्तु मनुष्य की मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर इस शक्ति को लिये हुए पृथक् हो जाता है। इसी दशान्तर का नाम मृत्यु है। यही सूक्ष्म शरीर फिर दूसरे जन्म धारण करता है। जिस समय सूक्ष्म शरीर इस शक्ति से पृथक् हो जाता है उस समय मनुष्य की मुक्ति हो जाती है। सूक्ष्म शरीर के छूटने का नाम ही मुक्ति है। अब इस आलोचना से यह सिद्ध हुआ कि जिसको आत्मा कहते हैं वह न तो किसी इन्द्रिय का धर्म है, न प्राण, न मन, न बुद्धि है, बल्कि इन सबको अपने अपने कार्य में चलानेवाली अन्तिम चेतन-शक्ति है। यही भगवद्गीता में कहा है—

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते॥

इस आत्मा के रूप के विषय में यही कहा जा सकता है कि वह सत्यज्ञान-अनन्तरूप है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसी आत्मा के विषय में कहा है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥

इन श्लोकों का भावार्थ यह है—

आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है, न होकर नाश को प्राप्त होता है और न उसका जन्म होता है। वह अजन्मा, नित्य सदैव रहनेवाला और सनातन है। शरीर नाशवान् है। आत्मा अविनाशी है।

इसको न शस्त्र छेद सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल भिगो सकता है, न वायु सुखा सकती है। वह न कट सकता है, न जल सकता है, न भीग सकता है, न सूख सकता है; वह नित्य सर्वव्यापी, अचल, सनातन और अनन्तस्थितिवाला है।

कर्म ।

संसार में रहता हुआ मनुष्य जो कुछ कर्म करता है उसका फल अवश्य होता है। पर फल तत्काल ही नहीं हो सकता। कर्म के करने से जीव में संस्कार हो जाते हैं और समयानुसार इन संस्कारों से फल उत्पन्न होता रहता है। इन संस्कारों का होना और इनके फलों का भोगना ही बन्धन है, जिसके कारण जीव को बार बार जन्म लेना पड़ता है। क्योंकि एक जन्म इन कर्म-फलों को भोगने के लिए पर्याप्त नहीं है। कर्म बराबर होते रहते हैं, इनका चक्र कभी बन्द नहीं होता। पहले किये हुए कर्मों का फल-भोग समाप्त नहीं होने पाता कि नये कर्म और हो जाते हैं। इस प्रकार कर्म-फलों के ऋण का भार बढ़ता ही जाता है और जीव को अपना पहला ऋण विशेषतः एक जन्म में चुकाने का अवसर नहीं मिलता। इसलिए उसे बार बार जन्म अनेक योनियों में लेना पड़ता है। और जब तक सब कर्म परमात्मा की कृपा तथा योगबल या पूर्ण ज्ञान-विकास से दग्ध नहीं हो जाते तब तक उसका मोक्ष नहीं होता।

आवागमन ।

कर्म-बन्धन से बँधकर जीव के बार बार जन्म लेने को आवागमन कहते हैं। शास्त्रकारों ने लिखा है कि चौरासी लाख योनियाँ हैं। उन सबमें जीव को अपने कर्मानुसार जाना पड़ता है। आवागमन का सिद्धान्त संसार में बड़ा प्राचीन और माननीय है। प्राचीनकाल में यूनान, रोम, मिस्रादि देश-निवासी तथा ईसाई भी इसको मानते थे और बाइबिल आदि में इसके प्रमाण भी मिलते हैं। परन्तु करीब पिछले तीन सौ वर्ष से नवीन ईसाई इसको नहीं मानते और न मुसलमान ही मानते हैं। इस समय भी संसार के बड़े बड़े विद्वान्—वे किसी मत के क्यों न हों—इस सिद्धान्त के क़ायल हैं, क्योंकि इसके बिना संसार में विद्यमान दुःख, सुख तथा मनुष्य की दशा-परिवर्तन का और कोई सन्तोषदायक उत्तर नहीं हो सकता।

गीता में आवागमन के विषय में यह कहा है—

> वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
> नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
> तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
> न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को उतारकर नये वस्त्र पहनता है वैसेही जीव पुराने शरीरों को छोड़कर नये शरीर धारण करता है।

आत्मा का रूप सत्यज्ञानानन्त कहा है। ऐसी दशा में वह सुख-दुःख दोनों से परे है और न उसका किसी कारण से बन्ध ही होता है और न वह आवागमन के चक्र में ही है। दुःख, सुख और आवागमनादि सूक्ष्म शरीर को ही होते हैं जो चैतन्य के आधार पर स्थित हैं और इसका आभास जीव का काम देता है। यह मत वेदान्त और सांख्य-शास्त्रों का है; परन्तु न्याय और वैशेषिक शास्त्र जिन्होंने सूक्ष्म शरीर की पृथक् विवेचना नहीं की है, आत्मा अथवा जीव के ये लक्षण लिखते हैं—

> इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति।
> (न्यायदर्शन)

इच्छा करना, द्वेष करना, यत्न करना, सुख, दुःख का अनुभव करना, और ज्ञान प्राप्त करना।

> प्राणापाननिमेषोन्मेषमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः
> सुखदुःखेच्छाद्वेषौ प्रयत्नश्चात्मनो लिङ्गानि।
> (वैशेषिक-दर्शन)

प्राण (साँस बाहर निकालना), पान (साँस

भीतर खींचना), नेत्रों को खोलना, बन्द करना, मन, गति, (चलना फिरना) इन्द्रियों का अन्तर-विकार (क्षुधादि), सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ये सब लक्षण जीव के हैं।

ये लक्षण सांख्य, वेदान्त-मतानुसार सूक्ष्म या लिङ्ग शरीर में मिलते हैं; इसलिए इन्हें पृथक् नहीं समझना चाहिए। आवागमनादि-दृष्टि से दोनों बातें एक ही हैं; केवल लिखने का भेद है।

आत्मा एक है या अनेक हैं ?

न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग और पूर्वमीमांसा-दर्शनों की दृष्टि से जीव अनेक हैं। जितने प्राणी हैं उतने ही जीव हैं।

सांख्य-शास्त्रवाले, जीव को पुरुष के नाम से पुकारते हैं। केवल वेदान्त-दर्शन का ही कथन है कि आत्मा एक है; सूक्ष्म शरीर—जिन पर आत्मा का चिदाभास है—अनेक हैं और ये ही आवागमन के चक्र में हैं। जैसे आकाश एक है और घटाकाश, महाकाश, जलाकाश, मेघाकाश—एक ही आकाश की उपाधियों के कारण पृथक् पृथक् दिखाई देता है वैसे ही आत्मा एक है; पृथक् पृथक् सूक्ष्म शरीरों के अर्थात् उपाधियों के कारण वह पृथक् पृथक् दिखाई देता है। गीता में कहा है—

> अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
> भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥

उसके भाग नहीं हो सकते, तथापि सब प्राणियों में पृथक् पृथक् स्थित है। उसे सब प्राणियों का भर्ता जानो। वही खाता है, वही उत्पन्न करता है। जब ज्ञानादि वेदान्त-निर्दिष्ट साधनों से उपाधियों का लोप हो जाता है तब एक आत्मा ही रह जाता है।

जैसे सूर्य एक है और बादलों के आने से छिप जाता है, वैसे ही उपाधियों के आवरण से आत्मा का प्रकाश मलीन हो गया मालूम होता है। वास्तव में न तो सूर्य के ही स्वाभाविक प्रकाश में अन्तर आता है और न आत्मा के प्रकाश में ही। वास्तव में आत्मा एक ही है और वही आत्मा परमात्मा है। इस प्रकार दोनों में कोई भेद नहीं है; परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से आत्मायें पृथक् पृथक् दिखाई देती हैं। जब तक सूक्ष्म शरीर है और प्रत्येक सूक्ष्म शरीर अपने अपने कर्म-बन्धनों से आवागमन में पड़ा रहता है तब तक इन दोनों को पृथक् पृथक् कहना ही ठीक मालूम होता है।

कन्नोमल।

क्लाइव की आत्म-हत्या।

क्लाइव को १७६५ ई० में एक बार पुनः भारत आने का अवसर प्राप्त हुआ। इस बार आकर उसने देखा कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कामों में बड़ी गड़बड़ी फैली हुई है और शासकों की असावधानी के कारण देश में यत्किञ्चित् अंश में अराजकता और उद्दण्डता का भी प्रचार बढ़ रहा है। इसलिए उसने आतेही राजकीय-प्रबन्ध में परिवर्त्तन करना शुरू कर दिया। कम्पनी के नौकरों में घूस लेने, छिपकर अपने अपने नाम से व्यापार करने और लड़ाई के समय भत्ता के लिए सिर पीटने की चाट बेतरह पड़ गई थी। क्लाइव का पहला काम इनको ऐसा करने से रोकना और बदले में यथोचित वेतन बढ़ा देना हुआ। इससे लालची नौकरों में बड़ा असन्तोष फैला, किन्तु क्लाइव ने इस ओर रत्ती-भर भी ध्यान नहीं दिया। इसके बाद क्लाइव ने दूसरा और सबसे महत्त्वपूर्ण काम डबल गवर्नमेण्ट का किया। अधीनस्थ प्रान्तों का शासन-भार उसने कुछ तो कम्पनी के हाथ में और कुछ देशी नवाब के हाथ में रक्खा। कम्पनी का काम कर उगाहना, नौकरों को तनख़ाह देना, बादशाह के पास कर पहुँचाना, देश-रक्षा के लिए सेना का प्रबन्ध तथा बचे हुए

ख़ज़ाने की निगरानी करना, एवं नवाब का काम दीवानी, फ़ौजदारी श्रौर पुलिस का इन्तज़ाम रखना निर्धारित हुआ। यहाँ तक ते प्रबन्ध से किसी तरह की हानि नहीं देखी गई। लेकिन चालाक क्लाइव इतना ही करके आसूदा नहीं हुआ। उसने सोचा कि इस प्रकार लोगों के मन में कुछ सन्देह उत्पन्न हो सकता है। अतएव बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ उसने दीवानी, फ़ौजदारी श्रौर मालगुज़ारी वसूल करने का काम नवाब के कर्मचारी रज़ाखाँ श्रौर शिताबराय को दे डाला। लेकिन—ईश्वर की इच्छा—उसकी चालाकी में बट्टा लग गया। इधर क्लाइव यह प्रबन्ध कर भारत से अन्तिम बार बिदा हुआ, इधर कर्मचारियों ने बड़ा ही हल्ला मचाया। उन्होंने मनमाना लगान वसूल कर प्रजाओं का खून चूसना प्रारम्भ कर दिया। कम्पनी को केवल अपनी आमदनी का लोभ था, अतः उसने इस श्रोर कुछ ध्यान नहीं दिया। थोड़े ही दिनों में सारे देश में अन्याय श्रौर अत्याचार के मारे हाहाकार मच गया। लोग लगान श्रौर तावान चुकाते चुकाते कङ्गाल हो गये; श्रौर १७७० ई० में बङ्गाल को एक भयङ्कर दुर्भिक्ष का मुख देखना पड़ा, जिसके स्मरण-मात्र से आज भी कलेजा दहल उठता है। इस विकराल अकाल में सारा बङ्गाल निर्जन श्रौर उजाड़-सा हो गया। उसकी तिहाई आबादी भूख-प्यास से साफ़ हो गई। कुछ दिन बाद यह सब समाचार कानों-कान विलायत पहुँचा। वहाँ लोग कम्पनी के नौकरों की श्रौर साथ ही क्लाइव के शासन-प्रबन्ध की भी घोर निन्दा करने लगे। यह दुर्दृश्य देखकर पार्लियामेण्ट से भी चुप न रहा गया। वहाँ भी इसके तहक़ीक़ात की चर्चा होने लगी। आख़िर, दो वर्ष के उपरान्त १७७२ ई० के अप्रैल मास में जेनरल बरगोनी (General Burgoyne) की सिफ़ारिश से एक अनुसन्धान-सभा (Select Committee) क़ायम हुई, जिसमें ३१ सभासद नियत किये गये। बस यही सभा क्लाइव की आत्म-हत्या का मूल कारण हुई। न यह सभा बनती श्रौर न क्लाइव अपनी भरी जवानी में परलोक का यात्री होता। अपने निश्चय के अनुसार सभा ने छः ही सप्ताहों में दो रिपोर्टें तैयार कर उन्हें पार्लियामेण्ट में पेश कर दिया। किन्तु उस समय पार्लियामेण्ट की बैठक समाप्त हो रही थी, इसलिए उस पर कोई विशेष कार-रवाई नहीं हुई। इसके उपरान्त वहाँ के महामन्त्री लार्ड नार्थ ने कम्पनी के प्रबन्ध-संस्कार के लिए एक नये क़ानून की सृष्टि की, जिसका नाम India Regulating Act पड़ा। इसमें शासन-सुधार की अनेक गूढ़ बातों का समावेश है।

समय ज्यों ज्यों बीतता था, क्लाइव के विरोधियों की संख्या बढ़ती ही जाती थी। क्रमशः समय के प्रभाव से पार्लियामेण्ट श्रौर अनुसन्धान-समिति, दोनों जगह क्लाइव की बड़ी निन्दा हो रही थी। वे बङ्गाल के दुर्भिक्ष का सारा दोष इसीके माथे मढ़ते थे। लोगों की यह अटल धारणा हो गई थी कि क्लाइव भारत से अतुल सम्पत्ति लाकर श्रौर कम्पनी का रुपया पचाकर धनी हो गया है। जो लोग क्लाइव के शासन-प्रबन्ध को बुरा श्रौर हानिकर बताकर उस समय इसके शत्रु बन गये थे, उन्हें आज अच्छा मौक़ा हाथ लगा श्रौर वे लोग निर्भय होकर इसके विरुद्ध अभियोग चलाने लगे। विलायत में इसका सबसे बड़ा शत्रु बरगोनी था श्रौर वही अनुसन्धान-सभा का सभापति भी था। शत्रु कब दाव चूकनेवाला था। उसने अपने तीर का पहला निशाना क्लाइव ही को बनाया। उसने क्लाइव पर दो अभियोग ठहराये। एक यह कि तुमने एडमिरल वाटसन (Admiral Watson) का जाली हस्ताक्षर बनाया है। दूसरे, ऐसा कर तुमने बेचारे अमीचन्द को धोखा दिया है।

इस मामले का क़िस्सा यह है कि बङ्गाल के नवाब सिराजुद्दौला को सिंहासन-च्युत करने के लिए मुर्शिदाबाद में कुछ लोग षड्यन्त्र रच रहे थे।

मीर ज़ाफर को, जिसने अँगरेज़ों को कुछ रुपया देने की प्रतिज्ञा की थी, बङ्गाल की नवाबी देने के इरादे से, क्लाइव ने भी मिस्टर वाट नामक एक अँगरेज़ और अमीचन्द नामक एक बङ्गाली के साथ उस षड्यन्त्र में भाग लिया। कुछ समय बाद अमीचन्द ने मि० वाट को धमकाया कि यदि तुम मुझे अँगरेज़ों से ३० लाख रुपये नहीं दिला दोगे तो मैं यह भण्डा सिराजुद्दौला के आगे बहुत जल्द फोड़ दूँगा। वाट बना बनाया घर बिगड़ते देख बहुत डरा और किसी प्रकार अमीचन्द को शान्तकर उसने यह ख़बर कलकत्ते में रहनेवाले सिलेक् कमिटी के कुछ सभासदों के कान तक पहुँचा दी। क्लाइव ने इस पर एक उपाय सोच निकाला। उजले और लाल—दो रङ्ग के काग़ज़ों पर सन्धि-पत्र लिखे गये। उजला असल था जिसमें अमीचन्द का कोई ज़िक्र ही नहीं था; और लाल जाली था, उसमें अमीचन्द के पक्ष की बातें लिखी थीं। लेकिन एडमिरल वाटसन ने ईमानदारी से एक ही काग़ज़ पर जो असल था, दस्तख़त किया। इसपर क्लाइव ने दूसरे लाल काग़ज़ पर वाटसन का जाली दस्तख़त किसी से बनवा लिया। सिराजुद्दौला से सन्धि के होने के समय क्लाइव ने अमीचन्द को वही लाल काग़ज़ दिखलाकर काम निकाल लिया और दूसरा सफ़ेद काग़ज़ नवाब के पास भेजा। इस प्रकार क्लाइव ने अमीचन्द को धोखा दिया था।

क्लाइव पर विचारकों ने उसके अनेक महान् तथा गौरवान्वित कार्यों का तिलभर भी विचार न कर लाञ्छन लगाया, इसके लिए क्लाइव को कितना दुःख हुआ था, यह उसीके वीर मुख से सुन लीजिए। उसने एक बार बहुत सन्तप्त होकर अपने भाषण में कहा था—"I, their humble servant, the baron of Palassey, have been examined by the Select Committee more like a sheep-stealer than a member of this house!" मतलब यह कि मैं उनका तुच्छ दास और पलासी का वीर होकर, पार्लियामेण्ट के मेम्बर की अपेक्षा एक भेड़ी चुरानेवाले की भाँति सिलेक् कमिटी के द्वारा मुजरिम हुआ हूँ। इसके अतिरिक्त उसने और भी अनेक बार निर्भयता-पूर्वक और स्पष्ट रूप से अपनेको निर्दोष साबित किया है।

मई १७७३ ई० में बरगोनी ने पार्लियामेण्ट में क्लाइव पर लाञ्छन का प्रस्ताव (Vote of censure) पेश किया, जिसका कुछ अंश जो अनिवार्य था सभा से पास हो गया; किन्तु क्लाइव के दोषारोपण-सम्बन्धी प्रस्ताव में मेम्बरों में मत-भेद हो गया। अधिकता उन लोगों की हो गई, जो क्लाइव के पक्ष में थे। भीतर भीतर लाख चिढ़े रहने पर भी उनकी आत्मा ने उन्हें क्लाइव के विरुद्ध जाने से रोका और तदनुसार वेडरबर्न साहेब के पेश करने पर यह प्रस्ताव भी सर्व-सम्मति से पास हो गया—That Robert Lord Clive did at the same time render great and meritorious services to his country—कि राबर्ट लार्ड क्लाइव ने साथ साथ स्वदेश की महान् तथा प्रशंसनीय सेवा भी की है। इस प्रकार मुक़द्दमे में क्लाइव की सफलतापूर्वक जीत हुई। इस कार-रवाई ने उसके शत्रुओं के दाँत खट्टे कर दिये।

उस बड़ी बदनामी से क्लाइव को जितना दुःख हुआ था, इस छोटी सी जीत के हर्ष से वह कुछ भी कम न हुआ, बल्कि स्वभावतः इसने और भी उसे बढ़ा ही दिया। मुक़द्दमा फ़ैसल हो जाने के बाद से उसके जीवन में युगान्तर हो गया। जीते हुए अपमान और उसकी हानियों का स्मरण कर वह सन्तत चिन्तित रहने लगा। पूर्वोक्त घटनाओं ने उसके हृदय पर ऐसा गहरा आघात पहुँचाया, जिसका आराम होना पीछे कठिन ही नहीं, असम्भव हो गया। जीवन उसे भार सा मालूम पड़ने लगा। वह अपने आप प्रतिपल ग्लानि के मारे मरा जाता था। जो क्लाइव कभी कर्णाटक के मैदान में निर्भय होकर विचरता था—जो क्लाइव कभी बङ्गाल की शासन-सभा

में सिंह की भाँति घोर गर्जन से विरोधियों के मन में आतङ्क उत्पन्न करता रहता था, दैव-दुर्विपाक से वही क्लाइव आज अपने हाते में कभी तो देवदार के वृक्ष के नीचे, और कभी क्लेयरमॉण्ट के हाल में एक पागल सियार की भाँति डग मारते दिखाई देता है! सच्चे आत्म-सम्मान (Self-respect) से उत्पन्न चिन्ता ने उसके शरीर को जर्जर कर दिया था।

एक समय उसके यहाँ कोई स्त्री मेहमान आई। २२ नवम्बर १७७४ ईसवी का दिन था। बरकली स्क्वायर के मकान में बैठी वह स्त्री एक चिट्ठी लिख रही थी और क्लाइव उसी समय आत्म-चिन्ता में चूर बाहर टहल रहा था। इसी बीच उस लेखिका की क़लम टूट गई; उसने क्लाइव को क़लम बनाने के लिए बुलाया। क्लाइव उसके बुलाने पर आया और उसने चाकू लेकर क़लम भी बना दी। अवसर ताक वह चाकू लेकर कोठरी से बाहर निकल समीप की दूसरी कोठरी में चला आया। यहाँ आकर उसने प्रथम श्वास में देशवासियों को धिक्कारा, दूसरे में परमात्मा से अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगी। और फिर तीसरे में—नहीं अन्तिम में—उसने परम पिता को एक बार पुनः स्मरण किया और जी कड़ा कर देखते देखते अपने गले पर वही कठोर छूरी फेर ली! मुण्ड रुण्ड से विच्छिन्न भी न हो पाया था कि उस नर-शार्दूल का विशाल धड़, धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा और वह वहीं तत्काल शान्त हो गया! जिस वीर-हृदय महापुरुष का, पलासी और कर्णाटक के भयानक समराङ्गण में हिन्दू-मुसलमानों के सहस्र सहस्र अस्त्र-शस्त्र बाल बाँका न कर सके थे, उसके जीवन-नाटक का पटाक्षेप एक क़लम-तराश चाकू ने कर दिया—यह बात सोचकर बड़ी दया आती है! जिस सूरमा ने अपने देश और जाति की भावी भलाई का ख़याल कर भारत में अँगरेज़ों का सिक्का जमाया और बृटिश-शासन की नींव डाली, उस क्लाइव को अपने ही जातीय शत्रुओं से आहत होकर आत्मघात कर लेना पड़ा—यह अँगरेज़ जाति के लिए निस्सन्देह लज्जा और परिताप का विषय है।

लोगों का इस स्थल पर यह आक्षेप हो सकता है कि यह क्लाइव की आत्मिक दुर्बलता थी कि उसने सर्वसाधारण की निन्दा करने से अपनी आत्महत्या कर डाली। यदि वह निर्दोष था तो उसे इसकी कुछ परवा न करनी चाहिए थी। यह ठीक है। लेकिन यह बात क्लाइव की प्रकृति के विरुद्ध—एकदम विरुद्ध थी। जिन्होंने उसका जीवन-चरित ध्यानपूर्वक पढ़ा है, उनसे यह बात छिपी न होगी। उसमें शुरू ही से आत्माभिमान ठूस ठूसकर भरा था और वह इतना क़ायल था कि ज़रा ज़रा अपमान की बात उसे असह्य हो जाती थी। निन्दित जीवन बिताने से मृत्यु को वह सदा से श्रेष्ठतर समझता आया।

एक बार की बात है, मद्रास में क्लर्की के काम से जब उसका जी ऊब गया, तब उसने एक एकान्त कोठरी में पिस्तौल भरकर अपने सिर पर मारी, किन्तु इससे उसको कुछ हुआ नहीं और उसी बीच एक आदमी वहाँ आगया। उससे भी क्लाइव ने वातायन के बाहर से अपने (क्लाइव) के ऊपर गोली चलाने की प्रार्थना की। उसने वैसा ही किया; किन्तु उससे भी उसको कुछ नहीं हुआ, और वार ख़ाली गया। इस पर क्लाइव आनन्द से उछलकर चिल्ला उठा कि—"अवश्य मैं कोई विशेष कार्य करने इस संसार में आया हूँ!"

जनता के घृणित आक्षेपों ने क्लाइव के चरित को कलङ्कित कर दिया था सही, किन्तु फिर भी उसका गौरव अक्षुण्ण था। उसकी दुर्दमनीय शूर-वीरता के प्रताप से कीर्त्ति उसके चरणों पर लोटती थी। उत्तरीय अमरीका के महायुद्ध में, इङ्गलेण्ड की गौरव-ध्वजा फहराने के लिए वह सरकार की ओर से भेजा जानेवाला था। कौन कह सकता है कि यह अवसर उसके जीवन में और भी कितनी बड़ी मर्य्यादा का कारण होता। यही क्या, उस साहसी के लिए और

जितने ऐसे अवसर आते, उन सभों से वह कितना लाभ उठाता, इसका कुछ ठिकाना है! मृत्यु के समय वह पूरा पचास का भी न होने पाया था। शायद ईश्वर को यह स्वीकार ही नहीं था कि क्लाइव और भी भूतल पर अपना यश-विस्तार करे।

महावीरप्रसाद चौधरी, 'विभूति'।

जयपुर का "राम-निवास" बाग़ और अजायबघर।

राजपूताने में जयपुर सबसे बड़ा और सुन्दर नगर है। राजपूताने ही में नहीं, किन्तु भारतवर्ष के सब से सुन्दर नगरों में जयपुर भी एक समझा जाता है। यह नगर चारों ओर ऊँचे कोट से घिरा हुआ है जिसमें स्थान स्थान पर सात फाटक हैं। कोट के भीतर नगर बड़ी सुन्दरता से बसा हुआ है। नगर के अतिरिक्त जयपुर के आस-पास कई बाहरी स्थान भी दर्शनीय हैं। इन्हींमें से एक "राम-निवास" बाग़ है जिसका वर्णन इस लेख में किया जाता है।

यह बग़ीचा वर्तमान जयपुराधीश के पूर्वज महाराजा रामसिंहजी ने बनवाया था। उन्होंके नाम पर इस बग़ीचे का नाम "राम-निवास" रक्खा गया है। उद्यान नगर के कोट के बाहर की ६२५ बीघा-भूमि पर फैला हुआ है। बगीचे के चारों ओर लगभग ६ फुट ऊँची लोहे की रेलिंग-युक्त सुन्दर दीवार है जिसमें स्थान स्थान पर सुन्दर फाटक बने हुए हैं। उत्तरीय फाटक में घुसते ही भारतवर्ष के भूतपूर्व वाइसराय लार्ड मेयो की मूर्त्ति मिलती है। इस मूर्त्ति के दाहनी ओर "मेयो हासपिटल" नामक अस्पताल लार्ड मेयो के स्मारक-रूप में स्थापित है। भारतवर्ष में कदाचित् कहीं भी नगर के इतने सन्निकट ऐसा सुन्दर और इतना बड़ा उद्यान न होगा।

नगर के इतने पास होने के कारण बग़ीचे से नगर-निवासियों को बड़ा सुख है। प्रति दिन प्रातःकाल और सन्ध्या समय यहाँ सैकड़ों मनुष्य टहलने आते हैं। जिस समय ग्रीष्म-ऋतु में निदाघ का उत्ताप लोगों को पीड़ित करता है उस समय यही उद्यान उनको आश्रय देता है। कोई कोई मनुष्य तो प्रातःकाल से ले रात्रि के नौ बजे तक यहीं रहते हैं। बग़ीचे के भीतर अनेक चौड़े चौड़े मार्ग टहलने को बने हुए हैं। ये मार्ग बहुत स्वच्छ रक्खे जाते हैं और इनके दोनों ओर दूर्वा-दल-मण्डित लगभग ४ फुट चौड़ी भूमि ने इन मार्गों की शोभा को बहुत ही बढ़ा दिया है। इस भूमि में स्थान स्थान पर दोनों ओर लालटेन के सुन्दर खम्भे खड़े हैं तथा अनेक क्यारियाँ कटी हुई हैं जिनमें रङ्ग-बिरङ्गे पुष्प दर्शकों के चित्त को हरण करते हैं। कहीं कहीं इस भूमि के दोनों ओर घनी वृक्षावली है जिससे इस भूमि और मार्गों की शोभा बहुत ही बढ़ गई है और मार्ग बहुत ठंढे रहते हैं। ये समस्त मार्ग आड़े-टेढ़े घूमकर आगे एक-दूसरे से मिल जाते हैं।

उद्यान के मध्य में बाजा बजाने के लिए एक सुन्दर चबूतरा (बैण्ड स्टैण्ड) बना हुआ है जिस पर प्रति सोमवार और बुधवार को बाजा बजता है। इसके अतिरिक्त उद्यान में अनेक दूर्वा-दल-मण्डित चौक हैं जिनमें से कई एकों में सन्ध्या को सर्व-साधारण टेनिस, हाकी, फुटबाल आदि अँगरेज़ी खेल खेलते हैं। यहाँ खेलने आदि के लिए रोक-टोक नहीं है, न यहाँ खेलनेवालों से किसी प्रकार का कर ही लिया जाता है। भारतवर्ष में सर्व-साधारण को इतनी स्वतन्त्रता कदाचित् ही किसी उद्यान में दी गई हो। स्थान स्थान पर बग़ीचे में अनेक कुण्ड, नहरें, कुएँ और बङ्गले बने हैं। अनेक स्थलों पर पशु, पक्षी और जल-चर पले हैं। कहीं से सिंह का गर्जन सुन

पड़ता है, कहीं बन्दरों की किलकिलाहट गूँजती है। कहीं मृग चौकड़ी भरता हुआ दृष्टि-गोचर होता है, कहीं रीछ की कलोल दीख पड़ती है। कहीं कोयल कूकती है, कहीं मोर नाचता है और कहीं काकातुआ दूर्वा के चौकों, कहीं रङ्ग-बिरङ्गे पुष्पों की क्यारियों, कहीं जल के कुण्डों और फ़व्वारों से सुशोभित हैं।

इस उद्यान का प्रति वर्ष का व्यय एक लाख रुपये के लगभग है।
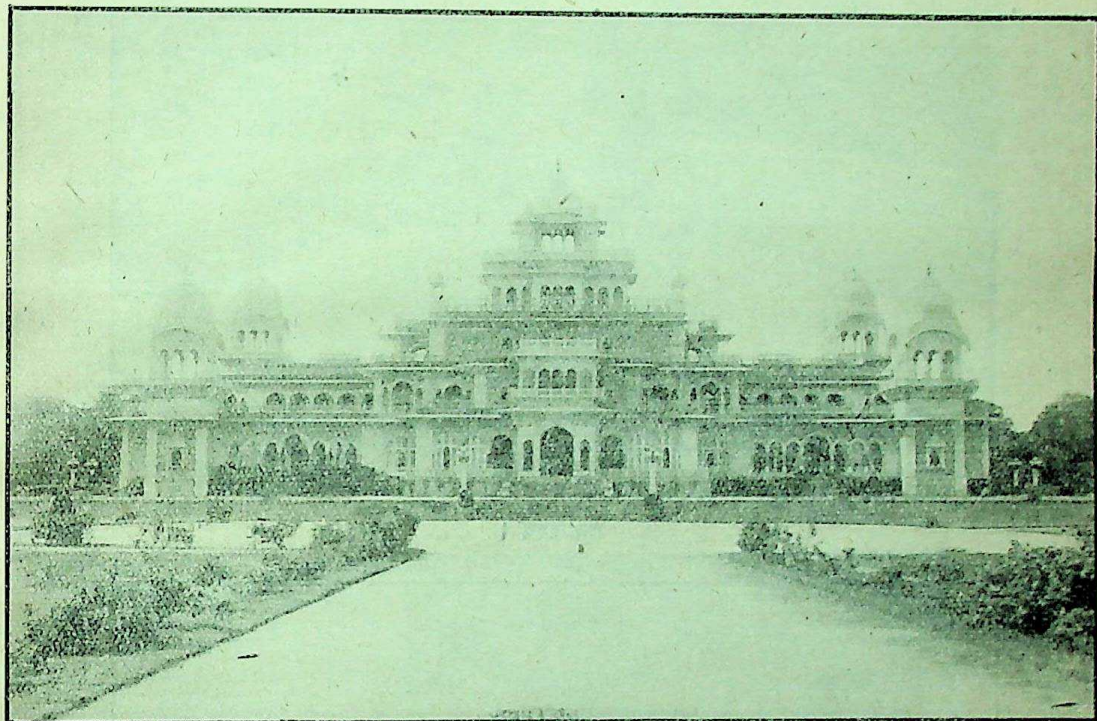
जयपुर का "आलबर्ट हाल" अर्थात् अजायबघर।

अपनी ही धुन में मग्न दिखाई देता है। जीवों को देख प्रकृति के वैचित्र्य का अनुभव होता है। यद्यपि अब यहाँ इन जीवों की संख्या पहले से बहुत कम हो गई है, तथापि अब भी कलकत्ते को छोड़कर भारतवर्ष के कदाचित् और किसी भी स्थान में पशु, पक्षी, चलचर आदि का ऐसा अच्छा सङ्ग्रह न होगा।

बग़ीचे की भूमि सम नहीं है। कहीं वह ऊँची है और कहीं नीची। इससे बग़ीचे की शोभा बहुत बढ़ गई है। जो स्थल नीचे हैं वहाँ उतरने को तथा जो स्थल ऊँचे हैं उन पर चढ़ने को सुन्दर सीढ़ियाँ और पुल आदि बने हैं। ये स्थल भी कहीं

इसी बग़ीचे में बेण्ड-स्टेण्ड के सामने दक्षिण ओर अजायबघर के रूप में पाँच खण्ड का एक सुन्दर और विशाल भवन बना हुआ है। सामने से इस भवन का दृश्य आगरे के सिकन्दरा-बाग़वाली अकबर बादशाह की कबर की इमारत से मिलता-जुलता है। इसकी पत्थर की खुदाई, जाली, पच्चीकारी, चूने आदि का काम बहुत सुन्दर बनाया गया है। यह काम आगरे के ताजमहल तथा सिकन्दरा, फतेहपुर-सीकरी और दिल्ली की, मुसलमानों के समय की इमारतों और आबू के प्राचीन जैन-मन्दिरों से मिलता हुआ है। इसका कारण यह है कि यह अजायबघर का भवन
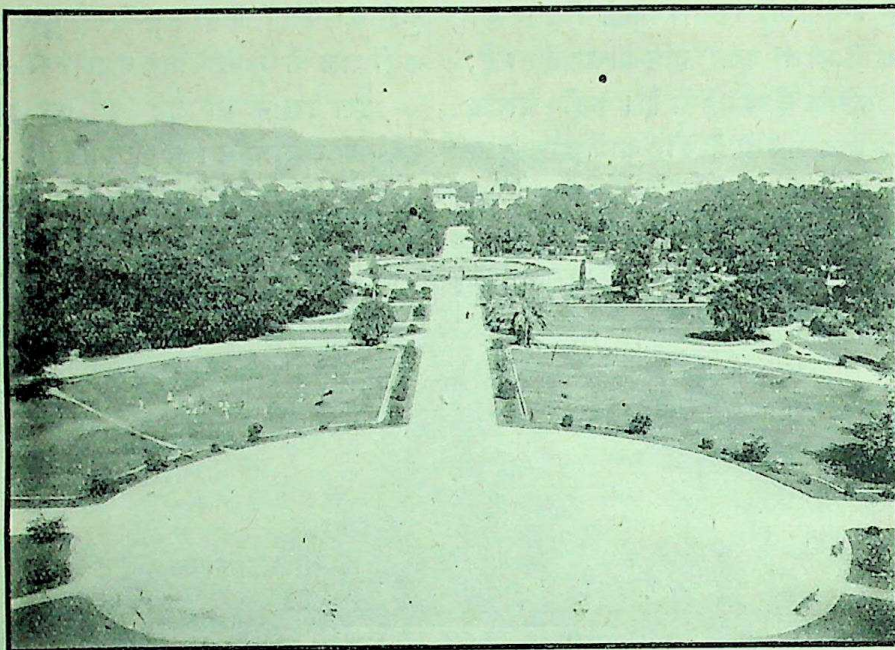
अजायबघर के भवन के पांचवें खण्ड से "राम-निवास" बाग़ और जयपुर नगर का एक दृश्य ।

"राम-निवास" बाग़ का बैण्ड स्टैण्ड ।

हवासिल।
इस जलचारी पक्षी को अँगरेज़ी में Pelican (पेलीकन) कहते हैं।
यह काश्मीर में पाया जाता है।
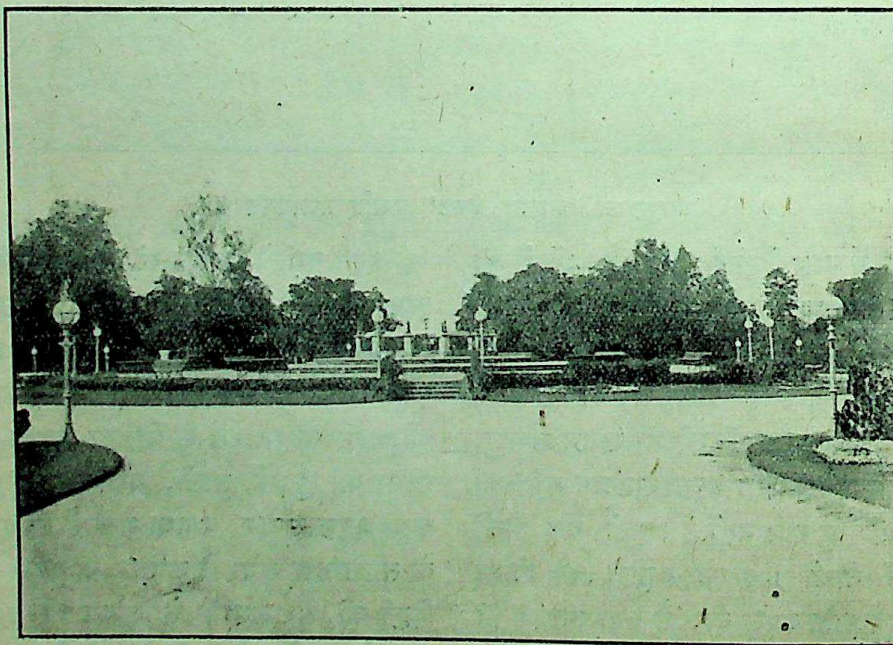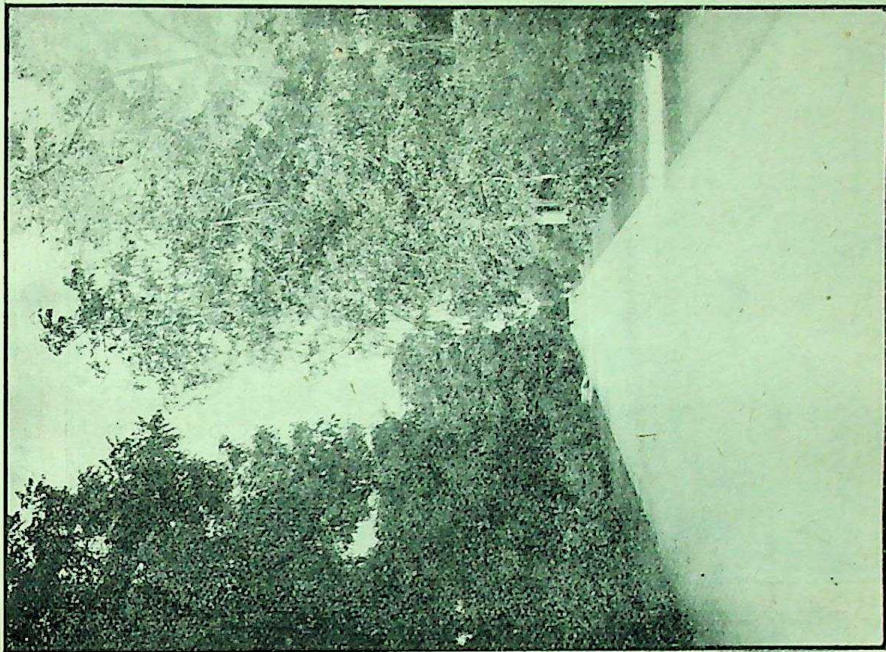
"राम-निवास" बाग़ का, घनी वृक्षावली से आच्छादित एक सुन्दर मार्ग।
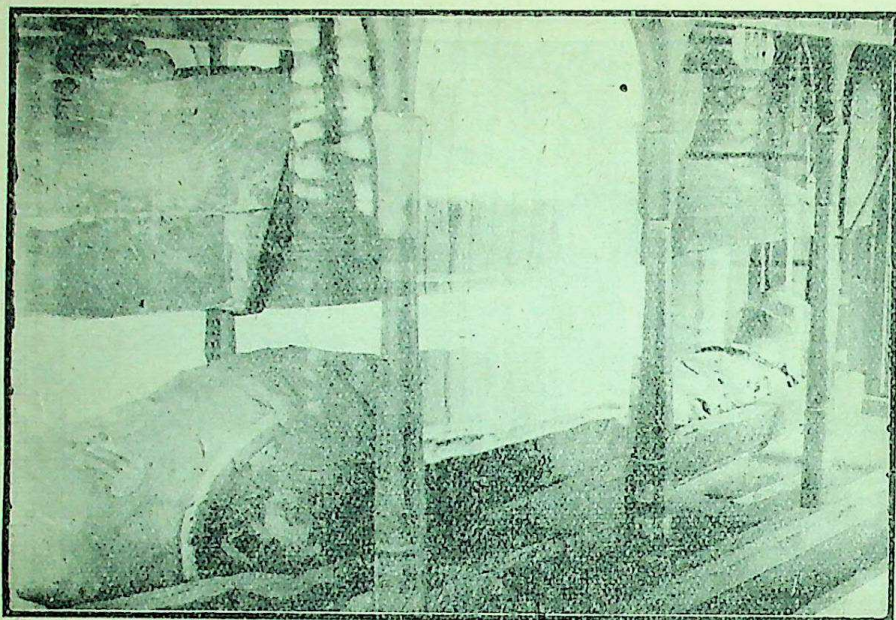
मिस्र देश में मिली हुई शेम घराने की, लगभग २२११ वर्षों की पुरानी एक स्त्री की लाश।

बीजू।
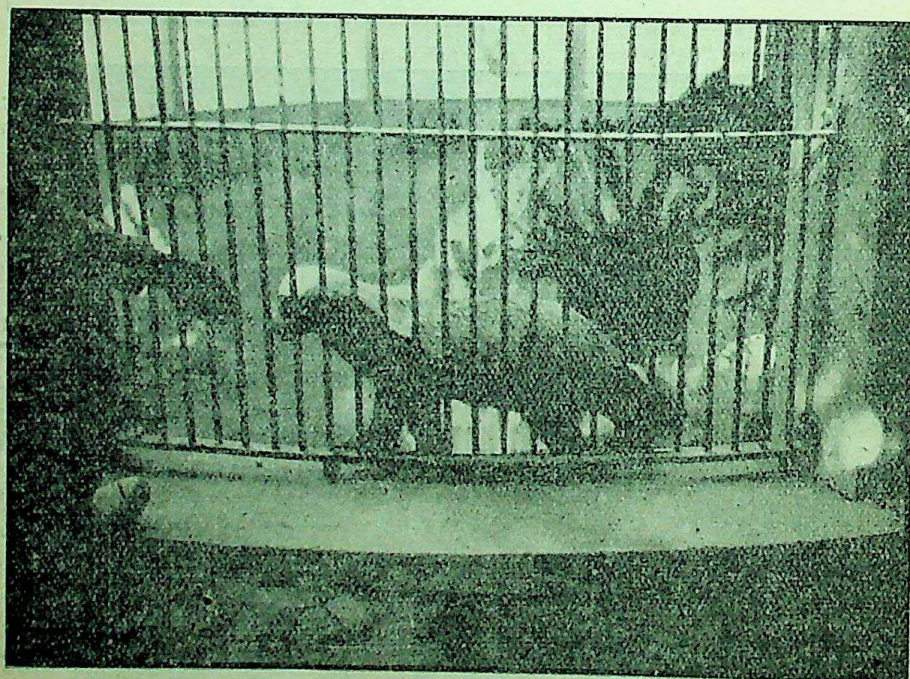
इसे अँगरेज़ो में Weasel (वीज़िल़) कहते हैं। यह रीछ-वर्ग का मांसाहारी जानवर राजपूताने ही का है।

होने से इसमें सब तरह के शिल्प का काम दिखाया गया है।

भवन के सामने के द्वार से भीतर प्रवेश करने पर एक चौकोर दालान मिलता है। इस दालान की दीवारों के ऊपरी भाग में जयपुर के चौदह राजाओं

बनराज।

यह शिकारी पक्षी गरुड़ के स्वरूप का होता है। अँगरेज़ी में इसे Hornbill हार्नबिल कहते हैं। यह पूर्वीय जावा में पाया जाता है।

के पूरे आकार के रङ्गीन चित्र बड़ी सुन्दरता से बनाये गये हैं। वहीं भवन और अजायबघर-सम्बधी लेख लगे हैं। शेष दालानों की दीवारें अबुल फ़ज़ल के लिखे हुए "रज़्मनामे" के चित्रों और ऐजेण्टा के गुफा-मन्दिरों के तथा चीन, ज़ापान, असेरिया, चाल्डिआ, ईजिप्ट, वाइज़ेन्टाइन, रोम आदि के प्राचीन प्राचीन चित्रों से विभूषित हैं।

सामने के दालान के सम्मुख एक बहुत बड़ा कमरा है जो "दरबार-हाल" के नाम से प्रसिद्ध है। इस कमरे की लम्बाई ७० फ़ुट और चौड़ाई ४५ फ़ुट है। भवन के तीन खण्डों तक इसकी ऊँचाई गई है और इसकी छत अत्यन्त सुन्दर चार डाटों पर स्थित है। इस कमरे में लगभग ३०० कुरसियाँ सुविधा-पूर्वक रक्खी जा सकती हैं। कमरे के ऊपरी भाग में स्त्रियों के बैठने के लिए सुन्दर झरोखे बने हैं, जिनमें परदे का प्रबन्ध सरलता-पूर्वक हो सकता है। कमरे का फ़र्श नृत्य, नाटक आदि के उपयोग के लिए लकड़ी की पटियों से पाटा गया है। यह कमरा दरबार, व्याख्यान, और समस्त राजपूताने की, विश्वविद्यालय की परीक्षाओं के उपयोग में आता है।

भवन के दो खण्डों के शेष भागों में नाना प्रकार

की चित्र-विचित्र वस्तुओं का सङ्ग्रह है। यह सङ्ग्रह ब्रिगेड सरजन टी० एच० हेन्डली साहब, सी० आई० ई० के निरीक्षण में हुआ है और ४ विभागों में विभक्त है—(१) शिल्प (२) इतिहास (३) शिक्षा और (४) अर्थ-शास्त्र। इन चारों विभागों की छोटी-बड़ी समस्त वस्तुओं की संख्या लगभग २० सहस्र के है, जिनमें से बहुतसी वस्तुएँ तो इस समय अमूल्य हैं।

चारों विभागों में सबसे बड़ा शिल्प-विभाग है। यही कारण है कि नीचे के खण्ड में केवल इसी विभाग की वस्तुएँ सज सकी हैं। शेष तीन भागों की वस्तुएँ दूसरे खण्ड में सुसज्जित हैं। भारतवर्ष में कलकत्ते का अजायबघर सबसे बड़ा माना जाता है; परन्तु वहाँ का शिल्प-विभाग भी कदाचित् इतना बड़ा नहीं है। यद्यपि इस विभाग में समस्त देशों की प्राचीन और अर्वाचीन शिल्प की वस्तुएँ रक्खी हुई हैं, तथापि इनमें से अधिकांश वस्तुएँ जयपुर की ही बनी हैं। भारतवर्ष की शिल्प-विद्या इतनी गिरी दशा में होने पर भी जयपुर इस विद्या के लिए अब तक भारतवर्ष के मस्तक को ऊँचा उठाये हुए है।

मिस्र देश में जो आश्चर्यजनक, सहस्रों वर्षों की पुरानी लाशें निकली हैं उनमें से "शेम" के महन्तों के घराने की लगभग २२११ वर्ष की पुरानी, "टालेमी" के समय की मिली हुई एक औरत की लाश भी इस अजायबघर में रक्खी हुई है। यह लाश "एखमीम" में मिली है। "शेम" उस देवता का नाम है जिसे मिस्र देश के लोग "एमन" कहते और संसार को उत्पन्न करनेवाला मानते हैं। सुनते हैं कि इस लाश के यहाँ मँगाने में कई सहस्र पाउण्ड व्यय हुए हैं।

यह भवन श्रीमान् महाराजा सर रामसिंहजी बहादुर के राजत्व-काल में प्रिन्स आलबर्ट एडवर्ड, प्रिन्स आफ़ वेल्स के जयपुर आने के स्मारक-स्वरूप में बनाया गया है। इसकी नींव तारीख़ ६ फरवरी सन् १८७६ ईसवी को प्रिन्स एडवर्ड ने स्वयं रक्खी थी और सन् १८८७ ईसवी में वर्तमान जयपुर-नरेश सर माधवसिंहजी बहादुर के शासन-काल में यह पूर्ण होकर तारीख २१ फरवरी को सर एडवर्ड ब्राडफोर्ड, एजेण्ट गवर्नर जनरल राजपूताना द्वारा खोला गया था। अजायबघर की सज्जित वस्तुओं को छोड़ केवल इस भवन के बनने ही में उस समय पाँच लाख से ऊपर व्यय हुआ है और आज तो इससे दूने-चौगुने व्यय में भी ऐसा सुन्दर भवन निर्माण होना असम्भव है। प्रिन्स आलबर्ट एडवर्ड का स्मारक होने के कारण इस भवन का नाम "आलबर्ट हाल" है।

इतना सब होने पर भी हमें यह बात अत्यन्त खेद के साथ लिखनी पड़ती है कि अजायबघर की वस्तुओं का पूर्ण रीति से वर्णन हिन्दी में न होकर अँगरेज़ी में है। शिक्षा-विभाग में वैज्ञानिक वस्तुओं का वर्णन तो फ्रेञ्च भाषा में लिखा गया है! इस अभाव अथवा कुभाव का फल यह है कि अजायबघर का पूरा लाभ हमारे भारतवासी नहीं उठा सकते। हिन्दू-राज्य में हिन्दी को इतना भी स्थान न देखकर किस शिक्षित हिन्दू को खेद न होगा?

अजायबघर के भवन और कुछ वस्तुओं के, तथा उद्यान के कुछ दृश्यों और कुछ विचित्र जीवों के चित्र इस लेख में दिये गये हैं।

गोविन्ददास।

स्त्रियों के सम्बन्ध में कुछ पाश्चात्य ग्रन्थकारों के उद्गार।

१ स्त्रियों को जो मान हम देते हैं वह केवल उनके सौन्दर्य के लिए नहीं है, बरन स्वाभाविक गुणों के लिए भी उनका गौरव किया जाता है।—एडिसन।

२ पातिव्रत ही स्त्रियों का मुख्य सद्गुण है। —एडिसन।

कोई यह समझते हैं कि जीती-जागती भाषा का व्याकरण ही क्या ? व्याकरण से तो भाषा की गति ही रुक जाती है, इत्यादि। इसके विरुद्ध इसी वर्ग का दूसरा मत यह है कि जिन कारणों की प्रेरणा से अधिकांश जीवित अथवा मृत भाषाओं के व्याकरण लिखे गये हैं वा लिखे जाते हैं, उन्हीं कारणों के आधार पर हिन्दी-व्याकरण-निर्माण की भी आवश्यकता है। दूसरे प्रकार के (आन्तरिक) मतवाले व्याकरण के विषयों के सम्बन्ध में झगड़ते हैं। कोई कहता है कि हिन्दी-व्याकरण में केवल शब्द-साधन और वाक्य-विन्यास, यही दो विषय रहने चाहिए और कोई यह कहता है कि इसमें वर्ण-विचार भी रहे, छन्दोनिरूपण भी रहे, विराम-चिह्नों के उपयोग के नियम भी रहें और रस, अलङ्कार, कहावतों और मुहाविरों का भी समावेश हो, अर्थात् वे सभी विषय रहें जो भाषा और साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होते हैं। इसी वाद-विवाद में हिन्दी की आयु के बहुत वर्ष बीत गये, पर उसके लेखकों को अपनी भाषा का व्याकरण लिखने का चाव न हुआ। जहां भारतवर्ष की अनेक आर्य-भाषाओं के अच्छे अच्छे प्रामाणिक व्याकरण पाये जाते हैं, वहां हिन्दी में लिखा हुआ, नाम लेने लायक़, हिन्दी का एक भी व्याकरण नहीं है।

हिन्दी-कौमुदी योग्यता-पूर्वक लिखा गया लघु व्याकरण है; पर इसमें भी दो-एक प्रकार के मतों की छाया है। लेखक महाशय अपनी भूमिका में लिखते हैं कि..."जो बातें इस पुस्तक में उन्हें (पाठकों को) नयी जँचें और जिन्हें स्वीकार करने को उनका जी न चाहे उनपर यदि वे पूर्व-संस्कारों का त्याग कर विचार करेंगे, तो आशा है कि बहुतसा मत-भेद दूर हो जायगा।" इसपर हमारा निवेदन है कि पूर्व-संस्कार किसी एक दल की सम्पत्ति नहीं है। आपने भी अपने पूर्व-संस्कारों का उतना त्याग नहीं किया है जितने कि आप दूसरों से आशा करते हैं। यदि ऐसा न होता तो आप अपनी भूमिका के अन्तिम भाग में इस बात की शङ्का क्यों करते कि आपकी भूलें बतानेवाले लोग यथार्थ भूलें बता सकेंगे या नहीं। आपके पूर्व-संस्कारों का परिचय आपकी कृति में भी अनेक स्थानों में है; जैसे चन्द्रबिन्दु का स्वीकार कर पुस्तक-भर में उसका उपयोग न करना। जो लोग किसी एक विषय का विशेष अध्ययन करते हैं, उनमें पूर्व-संस्कारों का अस्तित्व स्वाभाविक ही है। इनके सम्बन्ध से उनकी चिन्ता करना अथवा उन्हें हीन समझना अनुचित और निरर्थक है।

हिन्दी का वैयाकरण किसी भी प्रकार के मत का प्रवर्त्तक क्यों न हो, उसे इस बात का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि जो कुछ वह लिखे वह स्पष्ट हो और उससे उसके निज के मतों का स्वयं-खण्डन न होवे। जान पड़ता है कि लेखक महाशय ने इस बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया। आप कई स्थानों में कदाचित् भ्रम-वश कुछ का कुछ लिख गये हैं। फिर सूत्र-रूप से लक्षण बनाने की चेष्टा में आपके लक्षण भी कई जगह दूषित हो गये हैं। उदाहरण—

(क) कारकों का विवेचन करने में (पृ० ३७) आप केवल छः कारक मानते हैं, क्योंकि (पृ० ३९) "सम्बन्ध और सम्बोधन का सम्बन्ध क्रिया के साथ नहीं होता, इसलिए संस्कृत वैयाकरणों ने इन्हें कारक नहीं माना है।" फिर आप स्वयं (पृ० ३८) यह भी लिखते हैं कि "दो वस्तुओं में मेल बताने में 'सम्बन्ध कारक' का प्रयोग किया जाता है।" अब एक बार जिसको 'कारक' मानना छोड़ दिया उसे फिर कारक कहने की क्या आवश्यकता ? जान पड़ता है, यहां आप 'विभक्ति' के बदले कदाचित् भ्रम से 'कारक' लिख गये हैं।

(ख) "कर्म कर्तृवाच्य में कर्म ही कर्त्ता हो जाता है और उसमें पहली विभक्ति होती है। कर्म करनेवाला कर्त्ता नहीं बताया जाता और दिखाया जाता है कि काम आपसे आप होता है; जैसे, भोजन बनता है अर्थात् आप ही बनता है"; इ० (पृ० ४६)। इस नियम को लिखते समय लेखक महाशय ने कर्त्ता शब्द के उस अर्थ का ध्यान नहीं रक्खा जो आपने अन्यत्र (पृ० ३८) लिखा है। वहां आप लिखते हैं कि "किसी काम के करनेवाले को 'कर्त्ता' कहते हैं और यहां आप कर्म को कर्त्ता बताते हैं! वहां आप (पृ० ३८) यह भी लिख चुके हैं कि कर्त्ता का काम 'कर्म' कहाता है। तब भोजन बनानेवाला स्वयं भोजन कैसे बन जायगा! यथार्थ में जो कर्त्ता है सो कर्त्ता और कर्म है सो कर्म।

कर्त्ता और कर्म के रूप विभक्तियों से भले ही बदल जायँ ; पर एक ही क्रिया में कर्म का कर्त्ता होना सभी जगह एक असम्भव घटना है। व्याकरण में ऐसी पूर्वापरविरुद्ध बातें अनिष्ट हैं।

(ग) सम्बन्ध-सूचक अव्यय (पृ० ८३) शब्दों से सम्बन्ध रखनेवाला बताया गया है और उभयान्वयी अव्यय (पृ० ८४) के विषय में यह कहा गया है कि उसका सम्बन्ध दो शब्दों (वा वाक्यों) के अन्वय से होता है। अब इन दोनों शब्द-भेदों के 'सम्बन्धों' का अन्तर केवल "अन्वय" शब्द के आधार पर निकल सकता है, पर उसका कुछ भी स्पष्टीकरण नहीं किया गया। इसके सिवा लेखक ने सम्बन्ध-सूचक अव्ययों की जो सूची दी है उसमें बिना कारण बताये, कई एक दूसरे प्रकार के शब्द भी सम्मिलित कर दिये हैं। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि सम्बन्ध-सूचक अव्ययों का पृथक् विचार अँगरेज़ी ग्रामर के अनुकरण का फल है।

(घ) "पूर्ण वर्त्तमान बताता है कि काम पूरा हो चुका है ; जैसे, मैं आया हूँ। पूर्ण भूत में कार्य की समाप्ति हो जाती है ; जैसे, मोहन ने पोथी पढ़ी थी" (पृ०४३)। इन दोनों लक्षणों में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता, यद्यपि दोनों में कालों का बहुत भेद है।

(ङ) "किसी वस्तु के गुण, दोष, परिमाण, अवस्था और संख्या को विशेषण कहते हैं ; जैसे, काला घोड़ा, बुरा आदमी, दूना भोजन", इ० (पृ० १५)। "गुणवाचक संज्ञा उसे कहते हैं जिसमें किसी प्रकार का गुण पाया जाय; जैसे, मिठाई, खटाई आदि।" (पृ० १७) "जिस संज्ञा में किसी वस्तु के गुण वा दोष वा क्रिया का भाव पाया जाय, वह भाववाचक संज्ञा कहाती है; जैसे, लड़कपन, मिठास, हँसी आदि" (पृ० १८)। इन तीनों लक्षणों में गुण वा दोष की स्थिति प्रधान है। अब यदि 'मिठास' गुण है तो उसे लेखक के लक्षण के अनुसार विशेषण ही क्यों न कहें, क्योंकि आप एक जगह गुण को विशेषण, दूसरी जगह गुण-वाचक संज्ञा और तीसरी जगह भाववाचक संज्ञा बताते हैं ! आपके लक्षणों से यह भी तो स्पष्ट नहीं जाना जाता कि आप स्वयं गुण को विशेषण कह रहे हैं अथवा गुण-द्योतक 'गुण' शब्द को। इन तीनों लक्षणों में किसी भी लक्ष्य पद का असाधारण धर्म सूचित ही नहीं होता। एक का लक्षण दूसरे में सहज ही घटित हो जाता है। यह अतिव्याप्ति दोष है। जान पड़ता है कि पुस्तक को शीघ्र प्रकाशित करने की उतावली में स्पष्टता की ओर ग्रन्थकार की विशेष प्रवृत्ति नहीं रही।

इस पुस्तक में बहुधा मोटे मोटे नियम दिये गये हैं। इससे इनके अपवादों को बहुत कम स्थान मिला है। उदाहरणार्थ, लिङ्ग-विवेचन में (पृ० २४) कहा गया है कि "अप्राणिवाचक आकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों में इया प्रत्यय लगाकर स्त्री-लिङ्ग बनाते हैं; जैसे, लोटा + इया = लोटिया सोंटा + इया = सोंटिया।" पर बुढ़िया, बिटिया, बछिया, कुतिया, आदि प्राणिवाचक संज्ञाओं का कहीं भी उल्लेख नहीं है। और न डिबिया, पुड़िया, फुड़िया, डलिया आदि दूसरे अप्राणिवाचक शब्दों ही का विवेचन है। इयान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के जो एक-से दो उदाहरण लेखक ने दिये हैं उनसे तो यह भ्रम हो सकता है कि इया प्रत्यय आकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों में नहीं, किन्तु टाकारान्त शब्दों में लगता है ! आपको चाहिए था कि लोटा और सोंटा के सिवा और भी दो एक आकारान्त शब्दों के उदाहरण दे देते; जैसे लोढ़ा, गट्ठा, थैला। यथार्थ में इयान्त अप्राणिवाचक शब्द ऊन-वाचक संज्ञाओं के उदाहरण हैं और लेखक ने भी इसका विचार तद्धित-प्रकरण में (पृ० ९१) किया है। पर वहाँ केवल 'सोंटा' का उदाहरण है; 'लोटा' के बदले वहाँ 'खाट' आ गई है। यहाँ यह भी प्रश्न है कि शुद्ध शब्द 'लोटिया' है या 'लुटिया' ? प्रामाणिक कोषकार केवल पिछला शब्द शुद्ध मानते हैं। अपवादों के अभाव के अनेक उदाहरणों में एक और उदाहरण यह है कि यौगिक क्रियाओं का कर्मवाच्य बनाने के नियम में (पृ० १२४) लेखक ने यह नहीं बताया कि "देखा करना", "रो देना", आदि यौगिक क्रियाओं का कर्मवाच्य होता है या नहीं। यौगिक क्रियाओं के कर्मवाच्य के नियम में ऊपर लिखी दोनों क्रियाएँ अपवाद हैं ; पर आपने जो नियम लिखा है उससे अपवाद की गन्ध तक नहीं आती। हिन्दी व्याकरण में ऐसे निरपवाद नियम भाग्य से क्वचित् ही होंगे। यहाँ तो अधिकांश नियम "प्रायः" और "बहुधा" से

आरम्भ होते हैं। जहां स्वयं लेखक ने "प्रायः" शब्द लिखा है वहां भी (पृ० २६) आपने अपवाद बताने की आवश्यकता नहीं समझी! अस्तु।

लेखक महाशय ने अपनी भूमिका में कोई दस-बारह ऐसे विषयों की सूची दी है जिनमें आपके कथनानुसार नयापन है। आप स्त्रीलिङ्ग से पुल्लिङ्ग बनाने के अपने कुछ नियमों के विषय में कहते हैं कि ऐसे नियम "किसी भाषा के व्याकरण में आज तक नहीं देखे गये"। पर आप कदाचित् यह भूल गये कि साहित्य-सम्मेलन ने ऐसे नियमों का प्रचार पहले ही कर दिया था। इन नयेपनवाले विषयों में हिन्दी की सन्धि भी है, और हम यहां केवल इसी पर कुछ विचार करते हैं, क्योंकि लेखक महाशय इस विषय को अपना एक विशेष आविष्कार मानते हैं।

अच्छा, तो अब सन्धि किसे कहते हैं, यह पहले देखना चाहिए। लेखक महाशय का कहना है कि "दो अक्षरों के मेल को सन्धि कहते हैं" (पृ० ११)। पर यह तो सन्धि का केवल अर्थ हुआ और इस अर्थ में क्ख, ग्घ, आदि व्यंजनों के संयोग का भी समावेश होता है। सन्धि का शास्त्रीय लक्षण यह है—दो वर्णों के पास पास आने के कारण उनके मेल से जो विकृति होती है उसे सन्धि कहते हैं। सन्धि का यह लक्षण व्यापक है और कौमुदीकार का वर्णन (जो लक्षण नहीं कहा जा सकता) केवल दस पांच उदाहरणों में घटित होता है। उदाहरणार्थ, आपका एक नियम यह है कि "जब किसी शब्द के अन्त में ब हो और उसके बाद "ही" आवे, तो ब के आ का लोप हो जायगा और ब् + ही मिलकर "भी" हो जायगी; जैसे, अब + ही = अब् + ही = अभी, जब + ही = जब् + ही = जभी", इ० (पृ० १३)। यह नियम सार्वत्रिक नहीं है। यदि हम कहें कि "यह गट्टा दब ही नहीं सकता", तो इस वाक्य में "दब + ही" मिलकर "दभी" नहीं हो सकता। तब फिर हिन्दी की सन्धि के विज्ञापन में यह नियम रखने से क्या लाभ हुआ? यथार्थ में जिन थोड़े से उदाहरणों पर आपने एक सङ्कुचित नियम को व्यापक बताने का प्रयास किया है वह तद्धित से सम्बन्ध रखता है और थोड़े से प्रत्ययों की योजना में चरितार्थ होता है। इस विषय को इतना बाहरी महत्त्व देकर आविष्कार के रूप में अलग लिखने की कोई आवश्यकता न थी; इसके नियम यथा-स्थान बता दिये जा सकते थे। यह बात नहीं है कि पूर्व-वैयाकरणों ने इस विषय पर ध्यान नहीं दिया, पर उन्होंने इसे एक प्रकार का आविष्कार नहीं माना। जो लोग कहते हैं कि हिन्दी में सन्धि नहीं है वे बहुत ठीक कहते हैं; क्योंकि वे सन्धि का शास्त्रीय अर्थ लेते हैं। यही बात गुजराती और मराठी के वैयाकरण भी अपनी अपनी भाषाओं के सम्बन्ध में बताते हैं। लेखक ने अपने नियम में "ही" को कामाओं के भीतर रखकर कदाचित् यह बताने की चेष्टा की है कि वह स्वतन्त्र शब्द है, "हीन" अथवा "हीरा" का आद्य अक्षर नहीं है, नहीं तो सब + हीरे मिलकर "सभीरे" हो जाता। इसके बाद "भी" को भी आपने कामाओं से घेर दिया है जिससे यह ध्वनित होता है कि "भी" शब्द (अव्यय) इसी नियम के अनुसार बना है और अभी, कभी, जभी आदि में जो "भी" है वह भी "भी" अव्यय है! इस लिपि से आपके विराम-चिह्नों के उपयोग की प्रणाली का कुछ परिचय मिल जाता है।

इस पुस्तक की पूरी समालोचना लिखने के लिए बहुत स्थान और काल की आवश्यकता है; क्योंकि इसके प्रायः प्रत्येक पृष्ठ पर बहुत कुछ खण्डन-मण्डन लिखा जा सकता है। इसलिए अब हम यहां, संक्षेप में, केवल इसके गुणों का उल्लेख करते हैं।

आज तक के छपे हुए हिन्दी लिखित हिन्दी-व्याकरणों में यह पुस्तक अधिक प्रामाणिक और विचार-पूर्ण है। प्रायः प्रत्येक विषय क्रम-पूर्वक और संक्षेप में लिखा गया है और लेखक ने यथा-शक्ति बहुत कुछ खोज की है। नियमों को समझाने के लिए जो उदाहरण दिये गये हैं वे बहुधा उपयुक्त और शुद्ध हैं। पुस्तक का सब से प्रधान गुण भाषा की सरलता है। नौसिखुओं के लिए यह पुस्तक उपयोगी हो सकती है।

पुस्तक की छपाई और बँधाई अच्छी है। आकार मँझोला और पृष्ठ-संख्या । + १४४ है। मूल्य ॥=) कुछ अधिक मालूम होता है।

छापे की भूलों के लिए लगभग दो पृष्ठ का एक शुद्धि-पत्र है; पर पुस्तक में और भी इसी प्रकार की कुछ भूलें रह गई हैं। एक दो भूलें शुद्धिपत्र ही में हैं।

पुस्तक के प्रकाशक, श्रीयुत प्रतापनारायण वाजपेयी, (३० चासाधोबापाड़ा स्ट्रीट, कलकत्ता) हैं और उन्हींके पास से यह पुस्तक मिलती है।

देवदत्त शर्मा ।

अमरीका में क्रिस्मस ।

आज हमें इस देश में आये एक मास से पांच दिन अधिक हो गये। अभी तक हम न्यूयार्क ही में पड़े रहे। इस छोटे से वृत्तान्त में मैं न्यूयार्क नगर का विस्तृत दृश्य और विवरण लेख बढ़ जाने के भय से नहीं देना चाहता; किन्तु उसका दिग्दर्शन मात्र अवश्य कराना चाहता हूँ। यह नगर हडसन नदी के तट पर अमरीका के पूर्व अटलाण्टिक महासागर के निकट वर्तमान है। योरप के यात्री प्रायः यहीं आकर उतरते हैं। जिस समय जहाज़ सागर को छोड़ हडसन नदी में प्रवेश करता है, यात्री-समूह जो जहाज़ की छत पर नगर देखने के निमित्त एकत्र होते हैं, उनके नेत्रों को शीतल करने के लिए उन्हें एक विशाल भीमकाय मूर्त्ति का दर्शन होता है, जो अपनी दक्षिण भुजा उठाये उसमें एक विशाल मशाल लिये हुए मानों यात्रियों को प्रकाश प्रदान करती हुई अपनी ओर बुलाती है। पूछने से ज्ञात होता है कि यह विशाल मूर्त्ति पवित्र स्वतन्त्रता देवी की मूर्त्ति (Statue of Liberty) है।

यह मूर्त्ति इस संसार में सबसे बड़ी मूर्त्ति कही जाती है। यह फ़्रांस देश-निवासी विख्यात मूर्त्ति-निर्माता अगस्त बरथालडी (Auguste Bartholdi) की विचार-शक्ति का फल-स्वरूप है जिसे फ़्रांस देश के पञ्चायती राज्य ने अमेरिका के पञ्चायती राज्य को स्नेहाञ्जलि-स्वरूप सन् १७७६ में भेंट किया था। इस मूर्त्ति की उँचाई पैर से सिर तक १११ फुट है। यह इस्पात के ढाँचे पर ताम्रपत्र जड़कर बनी है। इसके भीतर ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियां लगी हैं। स्वतन्त्रता के उपासकों का हृदय इस मूर्त्ति को देख गद्गद् हो जाता है और अपने इष्टदेवता को देख उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु निकल पड़ते हैं।

उपर्युक्त मूर्त्ति के अतिरिक्त जो अन्य पदार्थ यात्रियों को प्रथम देख पड़ते हैं उनमें सीधे आकाश में चली जानेवाली इमारतें हैं। इनमें से सब से ऊँची दो इमारतें ये हैं—७९३ फ़ुट ऊँची मंज़िल "उलवर्थ हवेली" (Woolworth Building) और ६१२ फ़ुट ऊँची मंज़िल "सिंगर का कारख़ाना" (Singer Building)। इनमें से पूर्वोक्त हवेली संसार की सब हवेलियों से ऊँची है।

अमरीका के प्रधान नगरों की प्रधानता ऊँची ऊँची इमारतों में ही है। इस अंश में यह देश योरप से बढ़ा-चढ़ा है। न्यूयार्क की प्रधानता भी इसी कारण से है। यह नगर लम्बान-चौड़ान में संसार के सब नगरों से विस्तृत है। जन-संख्या के अनुसार केवल एक ही नगर और है जो इससे बाजी जीत जाता है। यहाँ चौड़ी चौड़ी साफ़-सुथरी सड़कें हैं और नवीन होने के कारण बड़े अच्छे ढङ्ग से बनी हैं। समस्त नगर चौपड़ की भांति बना हुआ है। नगर के बारे में इतने ही से सन्तोष कर अब हम अपने मुख्य विषय की ओर ध्यान देते हैं।

जिस प्रकार अपने देश में कृष्ण-जन्माष्टमी के दिन काली काली घटायें न छाई हों, बिजली की घनघोर से यदि हृदय न काँपता हो, और मूसलाधार वर्षा न होती हो, तो जन्माष्टमी की छटा और शोभा फीकी ही रहती है, उसी प्रकार यीशु ख़ीष्ट की जन्माष्टमी के पूर्व यदि हिम न गिरे और रास्ते, चौराहे, खेत, बाग़, घर, मैदान—सारी सृष्टि बरफ़ से न ढकी हो, तो यहां का क्रिस्मस फीका ही समझा जाता है। इस वर्ष यहां का क्रिस्मस फीका नहीं था। २४ तारीख़ के प्रातःकाल से ही आकाश से रुई गिरने लगी। बर्फ़ आकाश से धुनी हुई रुई के रूप में गिरती है और बूके हुए सेंधे नमक के समान कई दिनों तक सड़कों पर पड़ी रहती है; वह प्रायः गलती नहीं। देखते देखते तीन चार घण्टों में सारी जगह श्वेत हो गई। अहा! कैसा सुहावना श्वेत स्वरूप था, मानों महात्मा ख़ीष्ट की जन्म-गाँठ मनाने के लिए प्रकृति सुन्दर धोये हुए नैनसुख की साड़ी पहिनकर निकली हो! सड़कें, पटरियां, मकानों की सीढ़ियां, छतें, नीरस पत्र-हीन वृक्ष, मैदान, बाग़, बग़ीचे, छोटे ताल, तलैयां, स्रोत तथा हडसन नदी के बाग़ भी हिम से भर गये थे। सरोवरों ने तो हिम के भय से अपना

कवच बर्फ़ ही का बना लिया था जिसमें भीतर बसनेवाले जलचरों को हिम से दुःख न सहना पड़े। २४ तारीख़ के सायङ्काल के तीन बजे तक बराबर हिम की वर्षा होती रही। जाड़ा इतना बढ़ गया था कि भय के मारे सायङ्काल में नगर और हाट-बाट की शोभा देखने के लिए मैं घर से नहीं निकला। २५ तारीख़ को प्रातःकाल नित्य-क्रिया से निपट, वस्त्र पहिन, नौ बजे मैं अपने एक अमरीकन बन्धु के घर उत्सव मनाने के लिए चला। सड़क बर्फ़ से भरी थी, उसी पर चलकर मैं सुरङ्ग के सुहाने पर पहुँचा। (यहां पर तीन प्रकार की सवारियां नगर में एक जगह से दूसरी जगह जाने को मिलती हैं (१) सबवे (sub-way) अर्थात् सुरङ्ग में चलनेवाली बिजली की रेल, (२) एलीवेटर (elevator) अर्थात् सड़कों के ऊपर पुल पर चलनेवाली बिजली की गाड़ियां, (३) मामूली सड़कों की ट्रामगाड़ी।) यहां मैंने अपने बन्धु के लिए कुछ पुष्प लेना चाहा; पर मूल्य सुनकर होश ठिकाने हो गये! एक सुन्दर बेत की चङ्गेर में पत्तियों से सजाए हुए एक दर्जन पीले गुलाबों का मूल्य दो डालर अर्थात् छः रुपये! मैंने इसके पूर्व यहां पुष्प नहीं ख़रीदे थे। लन्दन में एक बार एक शिलिङ्ग के बारह ऐसे ही फूल ख़रीदे थे। अपने देश में इनका मूल्य चार आने से अधिक देनेवाले को फ़ज़ूल-ख़र्च या बेवक़ूफ़ समझेंगे। ख़ैर, फूल लेकर मैं सुरङ्ग में घुसा। वहां से रेलघर पहुँचा, रेल पर सवार हुआ, रेल चल दी। जिस मार्ग से रेल जाती है वह बड़ा ही मनोहर है। एक ओर हडसन नदी, दूसरी ओर छोटी छोटी पहाड़ियां और उनके ऊपर छितरे-बिथरे मकान तथा बस्ती। किन्तु आज सब बर्फ़ से ढका था। लम्बे लम्बे मैदान बरफ़ से ढके हुए ऐसी शोभा दे रहे थे कि जिसका वर्णन करना कठिन है। थोड़ी देर में हम लोग क्रूटन ग्राम के स्टेशन पर पहुँच गये। वहां उतर एक गाड़ी ले पहाड़ी के ऊपर चल दिये। गाड़ी छः इञ्च मोटी बर्फ़ की सड़क पर चल रही थी। गाड़ी के पहिये से कटकर बर्फ़ धूल की भांति उड़ती थी। यहां बहुत से बालक कोस्टिङ्ग (coasting) कर रहे थे; अर्थात् एक ऐसी गाड़ी पर चढ़ कर खसकते थे जिसमें छोटे छोटे लकड़ी के तख़्तों में पहियों के बदले दो अर्द्धचन्द्राकार लकड़ी या लोहे के टुकड़े जड़े रहते हैं। यह गाड़ी बर्फ़ पर बड़ी तेज़ी से खसकती है, और देखने में बड़ी अच्छी लगती है। यही तमाशा देखते देखते मैं अपने बन्धु के गृह पर पहुँच गया। यहां पर आज अनेक जातियों का क्रिस्मस था, अर्थात् कई देश के लोग यहां एकत्र थे—अमरीकन, जर्मन, स्काच, रूसी, यूनानी, भारतीय और चीनी।

यहां जो एक रूसी दम्पति थे वे विचित्र पुरुष थे। रूसी महिला अपने २७ वर्ष के जीवन में ही अनेक घटनायें देख चुकी थी। साइबेरिया की कठिन यातना भी दो बार भोग चुकी थी। एक जर्मन महिला भी एक प्रकार से समय की सताई हुई यहां अपने दुःख के दिन काट रही थी।

बन्धु महाशय का गृह अच्छी भांति सजाया हुआ था। दालान की छत में तोरन लगा था, खिड़की के पास क्रिस्मस—ट्री (क्रिस्मस का पेड़) लगा था। यह आज यहां सब घरों में लगाया जाता है। घरों में ही नहीं, किन्तु बाज़ारों में भी यह रखा होता है। यह चीड़ की डालियों का बना सुन्दर छोटे से सरो के वृक्ष की भांति देख पड़ता है। इसे भिन्न भिन्न प्रकार के खिलौनों से सजाते हैं। आगे पीछे तथा डालियों पर छोटी छोटी मोमबत्तियां लगाते हैं। जिस भांति हमारे यहां जन्माष्टमी पर सजावट होती है या दीपावली पर 'हटरी' सजाई जाती है, उसी प्रकार यहां भी सजावट होती है। दूसरी ओर टेबुल पर घर के बालक का छोटा सा क्रिस्मस-बाज़ार लगा था। भिन्न भिन्न प्रकार के खिलौने, 'हटरी', इत्यादि पदार्थ यहां सजाकर रखे हुए थे जिन्हें देख देख बालक इधर-उधर दौड़कर सबको उसकी शोभा दिखा रहा था। माता-पिता का चित्त बालक की तोतली, सीधी-सादी, कपट-रहित, भोली-भोली मधुर बातों से गद्गद होता था और वे प्रसन्न-वदन हँस हँसकर उस बोली का आनन्द ले रहे थे।

इस भांति खेलते-कूदते आनन्द-प्रमोद करते, भोजन का समय निकट आ गया। हम लोग सभी भोजन के आसन पर जा बैठे। भोजन की सामग्री गृहिणी के सम्मुख ला रखी गई। मांस की बड़ी थाली गृहपति के सामने आई। इन देशों में मांस हमारे देश की भांति काटकर नहीं रींधा जाता; किन्तु पशु समूचा का समूचा रींधकर भोजनालय

में लाया जाता है और गृहपति उसे काटकर परोसता है। इस मांस के काटने का नाम कारविङ्ग (carving) है। यह एक प्रकार की कारीगरी समझी जाती है। सभ्य लोगों को और और विद्याओं की भाँति इसे भी सीखना पड़ता है। ठीक रीति से न काटना जाननेवाले की हँसी होती है और वह अशिक्षित समझा जाता है। धन्य है यहाँ की सभ्यता! ख़ैर, धीरे धीरे भोजन प्रारम्भ हुआ और साथ साथ नाना प्रकार की हँसी-दिल्लगी और बातचीत भी होने लगी। एक शब्द या वाक्य को लेकर सब अतिथि लोग अपनी अपनी भाषा में उसका अनुवाद करते और हँसते थे। धीरे धीरे भोजन समाप्त हुआ और हम लोग दीवानख़ाने में आये।

यहाँ फिर वही सब प्रकार के खेल-कूद प्रारम्भ हुए। थोड़ी देर में सब लोग बाहर गये। वहाँ सब की एक तस्वीर ली गई। फिर हम लोग कोस्टिङ्ग (coasting) करने चले। थोड़ी देर कोस्टिङ्ग के उपरान्त थोड़े लोग भीतर आये। बाक़ी कुछ लोग आगे बढ़ गये। थोड़ी देर में वे भी लौट आये।

देखते देखते सन्ध्या हो गई और क्रिस्मस-वृक्ष पर प्रकाश करने का समय आ गया। घर के सब लोग मय अतिथियों के वृक्ष के चारों ओर एकत्र हो गये। गृहपति ने सब मोमबत्तियों को प्रकाशित कर दिया। बिजली की रोशनी गुल कर दी गई, केवल वृक्ष ही का प्रकाश रह गया। अब महिला-समाज ने बड़े मधुर स्वर से गान प्रारम्भ किया। अहा! कैसा मधुर स्वर था! गान सुनकर हृदय में प्रेम-स्रोत उमड़ आया! देखें, ऐसी उमङ्ग, ऐसी ख़ुशी, ऐसा प्रेम, ऐसी सादगी हमारे त्योहारों में कब आती है!

गान के उपरान्त गृहिणी एक चौकी पर बैठ गई और उसके सन्मुख एक बड़ा दौरा नाना प्रकार की वस्तुओं से भरा रक्खा गया। इसमें क्रिस्मस की भेंट थी। अधिकांश भेंट घर के बालकों के लिए ही थी जो माता-पिता और बन्धु-बान्धवों के पास से आई थी और एक एक पदार्थ अतिथियों के लिए था। सब वस्तुयें काग़ज़ में लपेटी थीं। उन पर नाम लिखे थे। माता एक एक को उठा बालक को देती जाती थी। बालक उसे भिन्न भिन्न व्यक्तियों को उनके नाम के अनुसार देता जाता था। बालक की वस्तुओं को माता स्वयं खोलकर बालक को उसका अभिप्राय समझा देती थी। बालक उसे प्रेम से ले गद्गद हो सबको दिखाता था। सभी उसकी भोली ख़ुशी पर प्रमुदित होते थे। थोड़े समय में इसका भी अन्त हुआ। फिर भोजन का समय आ गया। सभी लोग फिर भोजनालय में उपस्थित हुए। भोजन के उपरान्त बालक के नेत्र बाँधे गये और उससे कहा गया कि (Santa Cruz) सैण्टाक्रूज़ आते हैं। (यह यहाँ की चाल है। इस प्रकार बच्चे को बहकाकर उसे नाना प्रकार की वस्तुयें दी जाती हैं और कहा जाता है कि ये सैण्टाक्रूज़ बाबा दे गये हैं। ये बाबा साल में एक बार क्रिस्मस में बालकों को भेंट दे जाते हैं; पर उन्हें कोई बालक देखता नहीं।) अब पिता एक छिछली घोड़ी ले आया और बालक को उसके भीतर खड़ा करके उसे आधा घोड़ा आधा बालक-सा बना दिया। तब माता ने बालक को बड़े शीशे के सामने खड़ाकर उसकी आँख खोल दी। बालक अपना वेश देख चकित हो गया और घोड़े की भाँति इधर-उधर कूदने लगा। थोड़ी देर तक इस प्रकार सब लोग हँसते रहे, फिर अतिथियों ने बिदा हो घर की राह ली। चलते समय सब को थोड़ी थोड़ी मिठाई, या प्रसाद कहिए, दिया गया। इसी प्रकार आज के दृश्य का अन्त हुआ। मैंने अपने मित्र से जो अर्थशास्त्र के एक विख्यात अध्यापक हैं, क्रिस्मस-वृक्ष और सैण्टा क्रूज़ की उत्पत्ति का हाल पूछा; किन्तु उन्हें वह विषय ज्ञात नहीं था। वे केवल यही बता सके कि यह ईसाई धर्म्म के पूर्व से ही ड्रूइड (Druid) धर्म्म के अनुसार जाड़ों का त्योहार है; किन्तु यह अब ईसाई-त्योहार बना लिया गया है।

पाश्चात्य लोग भी बग़ैर जाने बहुत-सी पुरानी लीकें पीटते हैं।

अमरीका का यात्री।

उद्योग।

उद्योग वह चीज़ है जिसके बिना किसी का भी काम नहीं चल सकता। नाम पाने के लिए, कर्त्तव्य-पालन करने के लिए, जीवन-निर्वाह के लिए, ग़रज़ कि हर एक इच्छा को पूर्ण करने के लिए उद्योग करने की आवश्यकता है। जो मनुष्य कुछ भी उद्योग न करके सिर्फ़ यह चाहा करते हैं कि मुझे यह मिल जाय, मुझे वह मिल जाय, वे कभी अपना मनोरथ पूरा नहीं कर सकते। कहा है कि—

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

जो उद्यम करते हैं उनको उसका फल अवश्य मिलता है। लिखा है—

उद्योगः खलु कर्त्तव्यः फलं मार्जारवद्भवेत्।
जन्मप्रभृति गौर्नास्ति दुग्धं पिबति नित्यशः॥

चाहे मनुष्य कैसा ही दैव-वादी हो उसे भी काम से जी न चुराना चाहिए। यदि उसने काम छोड़ दिया—यदि उसने उद्योग न किया—तो उसे अपनी इस भूल का फल अवश्य मिलेगा। शेख़ सादी ने गुलिस्तां के तीसरे बाब में, पहलवानवाली हिकायत में, एक पात्र के मुँह से यों कहलवाया है—माना कि रिज़्क़ अपने आप पहुँचता है मगर शर्त यह है कि उसके लिए हर जगह कोशिश करे—अर्थात् उद्योग न करना मूर्खता है—

रिज़्क़ हरचन्द बेगुमां बिरसद।
शर्त अक़्लस्त जुस्तन अज़ दरहा॥

उसी बाब में, हातिम की हिकायत में, फ़र्माया है—

हर के नान अज़ अमले ख़ेश ख़ुरद।
मिन्नते हातिमताई न बरद॥

अर्थात् जो अपनी मिहनत से अपने उद्योग के बल रोटी कमा खाता है, वह हातिम के यहां क्यों मिन्नत करने जाय? सच बात है:—

अश्वस्य लक्षणं वेगो,
मार्सं मातङ्गलक्षणम्।
चातुर्यं लक्षणं नार्या,
उद्योगो नरलक्षणम्॥

इससे अच्छा लक्षण पुरुष का नहीं हो सकता। यदि कोई यह कहे कि क्यों हम मिहनत करके कष्ट उठावें, क्यों उद्योग करें? क्यों न गप-शप में, हाहा-हीही में, बैठे बैठे तेरी-मेरी किया करें? जिसने चोंच दी है वह अपने आप चुगा देगा, तो मैं अपने शब्दों में न कहकर परम पूज्य महर्षि वशिष्ठ जी के शब्दों में कहूँगा—

उद्यमः साहसं धैर्यं बलं बुद्धिः पराक्रमः।
षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र दैवं सहायकृत्॥

अर्थात् (१) उद्यम (२) साहस (३) धीरज (४) बल (५) बुद्धि (६) पराक्रम ये छहों जिसमें होते हैं दैव उसकी सहायता करता है।

God helps those who help themselves.

महर्षि गौतम ने भी न्याय-दर्शन में इसी बात को सिद्ध किया है। पहले उन्होंने पूर्व-पक्ष किया है—

"ईश्वरः कारणं पुरुषकर्मफलादर्शनात्"।

अर्थात् पुरुष कर्म-फल नहीं देखता, इससे ईश्वर चाहे तो फल देता है।

फिर सिद्धान्त किया है कि—

न पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्तेः।

अर्थात् पुरुष के कर्म न करने से फल की उत्पत्ति नहीं होती।

जो आदमी काम नहीं करता—उद्योग से दूर भागता है, उसका शरीर बिगड़ जाता है; मन गन्दे विचारों से भर जाता है; वह चिड़चिड़ा हो जाता है; उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है; अन्त को वह स्वयं नाश को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते नहि सिद्ध्येदकर्मणः॥

अर्थात् तू बराबर काम कर। खाली बैठे रहने से काम करना अच्छा है। काम न करने से शरीर भी नहीं चल सकता।

कोई कहते हैं कि भाग्य में तो अमुक पदार्थ लिखा ही नहीं, मिले कहां से? ऐसे लोगों से मैं वही कहूँगा जो ब्रह्मर्षि वशिष्ठजी ने मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी से कहा था:—

कल्पितं मोहितैर्मन्दैर्दैवं किंचिन्न विद्यते।

—मोह पाये हुए मन्द-बुद्धियों से कल्पना किया हुआ दैव कोई चीज़ नहीं। दैव की स्वयं-सत्ता कुछ भी नहीं है। वह हमारे ही कर्मों से बना हुआ है —

प्राक्तनं पौरुषं यद्वै तद्दैवमिति कथ्यते।
तस्मात्पुरुषयत्नेन विना दैवं न सिद्धयति॥

—पहले किया हुआ जो उद्योग है वही दैव है। इसलिए दैव की सिद्धि उद्योग के बिना होती ही नहीं।

"दैव दैव" शब्द प्रायः उन लोगों के मुँह से निकलते हैं जो विघ्न-बाधाओं से कम-हिम्मत होकर काम छोड़ देते हैं। परन्तु जो सफल-मनोरथ होते हैं वे कभी नहीं कहते कि "भाग्य में था सो हुआ"; बल्कि अपने उद्योग का अभिमान न करके मनोरथ-सिद्धि को परमेश्वर की कृपा का फल बताते हैं।

संसार में ऐसे भी मनुष्य हैं जो कहते हैं कि हमने बहुत उद्योग किया, पर कुछ फल न हुआ, परन्तु वे ऐसे होते हैं जिन्हें उद्योग करने का ढङ्ग नहीं मालूम। ऐसे लोग यदि अपने इष्ट स्थान पर न पहुँचें तो उसमें उन्हीं का अपराध है। मनुष्य को उसी काम में हाथ डालना चाहिए जिसे वह सोच-समझ सके। महाकवि भारवि ने लिखा है —

सहसा विदधीत न क्रिया-
मविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं
गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥
(किरात)

कारज ताही को सरे, करै जु समै निहारि।
कबहुँ न हारे खेल में, जो ले दाँव विचारि॥
(वृन्द)

अगर हक़परस्ती कुनी इख़्तियार।
दर कलीमे दौलत शवी शहरेयार॥
(सादी)

अगर हक़परस्ती इख़्तियार करोगे तो सब सम्पदाओं के बादशाह होगे।

एक रोज़ मैं बुख़ार के कारण खाट पर पड़ा था। सुबह का वक़्त था। देखा तो दो चिउँटियाँ एक चीज़ को ले जाना चाहती हैं। चीज़ कोई चींटी के मुक़ाबिले में १५-२० गुनी थी। एक चींटी काली थी और एक भूरी। एक छोटी थी और एक बड़ी। काली चींटी जो बड़ी थी अपनी ओर खींचती थी और भूरी अपनी ओर। उन्हें इस तरह खींचा-तान करते कोई एक घड़ी हो गई। इस अरसे में छोटी चींटी काली चींटी की ओर कोई एक गज़ के करीब खिंच गई। अब उसने उस चीज़ को छोड़ दिया और काली चींटी उसे लेजाने लगी। कुछ देर बाद उसने दौड़कर काली चींटी को ऐसा काटा कि वह तिलमिलाने लगी। यह उस चीज़ को उठा लाई और अपने उद्योग में सफल हुई। बल से काम न चला, बुद्धि से उसने अपने शत्रु को परास्त किया।

जीती-जागती जाति के महापुरुष, साधु-संन्यासी प्रयत्नशील होते हैं। वे निरुद्योग कभी नहीं बैठते। वेदान्त-श्रुति पुकारकर कहती है —

"आत्मा वा रे दृष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।

अर्थात् आत्म-ज्ञान प्राप्त करने का सब प्रकार से उद्योग करो।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो,
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वाम्॥

—न आत्मा बातें बनाने से मिल सकता है, न सुनने से, न ख़ियाली पुलाव पकाने से। जो उसे जानने की कोशिश करता है, उसे ही प्राप्त होता है।

और जिस जाति में उद्योग नहीं होता—आलस अपना डेरा जमाये रहता है, उसके अनेक लोग "बाबाजी" बन जाते हैं। और हो भी क्यों न जावें!—

"सिर मूंडन में तीन गुण
सिर की जावे खाज।
खाने को लड्डू मिलें
लोग कहें महराज"॥

इसलिए जिस जाति की यह इच्छा हो कि "जीवेम शरदः शतम्" या "सहवीर्यं करवावहै" उसे सदा उद्योग में लगे रहना चाहिए। जो जाति अपने को उन्नति के शिखर पर चढ़ाना चाहती हो उसे आलस्य को छोड़, दैव के भरोसे को कोने में रख पुरुषार्थ करना चाहिए।

(१)

हेरे भी मिलेंगे नहीं सङ्कट के चिह्न कहीं,
जायँगे कहाँ के कहाँ सारे विघ्न-बाधा-पीर।

बनेगा जगत् भर तुम्हारी दया का पात्र,
देखके तुम्हारा मुख आंखों में भरेगा नीर।
रखकर माथे हाथ भाग के भरोसे पर,
बैठे मत रहो सुनो भारत-निवासी वीर।
सावधान होके सदा काम करो, काम करो,
काम करो, काम करो, काम करो, धरो धीर॥

(२)

जाते हैं समुद्र बँध, रहते न अद्रि आड़े,
अग्नि, जल, वायु आदि हुक्म बजा लाते हैं।
हुक्म बजा लाते हैं उमंग भरे धीर वीर
होता धन-धान्य, शाह मस्तक नवाते हैं।
मस्तक नवाते हैं जगत के सकल लोग
गिरिधर-मूर्त्ति निज हिय में बिठाते हैं।
हिय में बिठाते हैं त्यों महिमा पराक्रम की
पौरुष दिखाये क्या क्या काम हो न जाते हैं॥

गिरिधर शर्म्मा

स्वप्न।

बालक के कम्पित-अधरों पर वह किस अक्षय स्मृति का हास,
जग की इस अविरत-निद्रा का आज कर रहा है उपहास?
उस स्वप्नों की शुचि-सरिता का सजनि! कहां है जन्म-स्थान?
मुसक्यानों में उछल उछल वह बहती है किस ओर अजान?
किन कर्मों की जीवित छाया उस निद्रित विस्मृति के सङ्ग,
आँखमिचौनी खेल रही है? यह किस अभिनय का है ढङ्ग!
मुँदे नयन-पलकों के भीतर किस रहस्य का सुखमय-चित्र,
गुप्त-वञ्चना के मादक कर खींच रहे हैं सजनि! विचित्र?
निद्रा के उस अलसित वन में वह क्या भावी की छाया,
दृग-सम्मुख मृदु विचर रही है? अहा! मनोहर यह माया!
मृदुल मुकुल में छिपा हुआ जो रहता है छविमय संसार,
सजनि! कभी क्या सोचा तूने वह किसका है शयनागार?
प्रथम स्वप्न उसमें जीवन का रहता है अविकच, अज्ञान,
जिसे न चिन्ता छू पाती है, जो है केवल अस्फुट गान!
दिनकर की अन्तिम किरणों ने उस नीरव तरु के ऊपर,
स्वप्नों का जो स्वर्ण-सदन है निर्माया सुखमय, सुन्दर।
विहग-बालिका वर हम दोनों वहां बैठकर, सखि! एकान्त,
स्वप्नों पर सोचें कुछ मिलकर दूर करें निज भ्रान्ति नितान्त।
सजनि! हमारा स्वप्न-सदन क्यों कांप उठा है यह थरथर,
किस अतीत के स्वप्न-अनिल में गूँज उठा है वह मरमर?
विरस डालियों से यह कैसा फूट रहा है रुदन मलिन,
हम भी हरी-भरी थीं पहले, पर अब स्वप्न हुए वे दिन।
पत्रों के विस्मित अधरों से यह किसका नीरस सङ्गीत,
मौन-निमन्त्रण देता है यह अन्धकार को सजनि! सभीत।
सघन द्रुमों के भीतर अब वह निद्रा का नीरव निःश्वास,
अन्धकार में मूँद रहा है अपने अलसित नयन उदास।
सखि! सोते के स्वप्न जगत के इसी तिमिर में बहते हैं,
पर जागृति के स्वप्न हमारे अन्तर ही में रहते हैं।
अहा! परम घन अन्धकार में डूब रहा है अब संसार!
कौन जानता है, कब इसके छूटेंगे ये स्वप्न असार?
सखि! क्या कहती है—प्राची से फिर उज्ज्वल होगा आकाश?
उषा-स्वप्न क्या भूल गई तू? क्या उसमें है प्रकृत प्रकाश?

सुमित्रानन्दन पन्त।

विविध विषय।

१—वारन हेस्टिंगज़ और श्रीमद्भगवद्गीता।

हिन्दुस्तान के पहले गवर्नर जनरल, वारन हेस्टिंगज़, में कुछ दोष ज़रूर थे और वे बहुत बड़े बड़े भी थे। इसीसे उन पर विलायत में, पारलियामेंट में, अनेक इलज़ाम लगाये गये थे। पर साथ ही इसके, उनमें कुछ गुण भी थे। उनकी ख़बर हम लोगों में से बहुत कम को है।

गवर्नर साहब के एक गुण का पता कुछ समय पूर्व लगा था। उस गुण की चर्चा, अभी हाल में, फिर कई अख़बारों में हुई है। वह था उनका विद्या-प्रेम। अठारहवीं सदी के अन्त में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक मुलाज़िम—मुलाज़िम क्यों एक वणिक्—चार्ल्स विल्किन्स नाम के थे। वे बड़े विद्या-व्यसनी थे। उन्होंने महाभारत के कुछ अंश का अनुवाद अँगरेज़ी में करके वारन हेस्टिंगज़ से ज़िक्र

किया । यह इसलिए कि गवर्नर साहब को ऐसे काम बहुत पसन्द थे । आप हिन्दुओं के शास्त्रों और प्राचीन ग्रन्थों में भरे हुए ज्ञान के पिपासु थे । विलकिन्स ने नवम्बर १७८४ में हेस्टिंग्ज़ के पास गीता का अनुवाद समालोचना के लिए भेजा । गीता महाभारत ही का एक अंश है । उसमें महाभारत के अन्यान्य अंशों से बहुत कुछ विशेषता है । इसीलिए वह उतना ही अंश गवर्नर साहब के पास भेजा गया । हेस्टिंग्ज़ उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने एक लम्बा पत्र, कम्पनी के कौंसिल के प्रधान मेम्बर, नथानियल स्मिथ साहब को लिखा । उसमें आपने गीता की बहुत प्रशंसा की और यह सिफ़ारिश की कि वह ग्रन्थ कम्पनी के ख़र्च से छपाकर प्रकाशित किया जाय ।

यह सिफ़ारिश मंज़ूर हो गई और विल्किन्स साहब का गीतानुवाद मई १७८५ ईसवी में छपकर निकल गया । इस अनुवाद के आरम्भ में हेस्टिंग्ज़ का वह पत्र भी, उपोद्घात के तौर पर, छापा गया जिसमें हेस्टिंग्ज़ ने गीता की समालोचना और उसके गुणों का गान किया था । यह अनुवाद अब तक इस देश के पुराने पुस्तकालयों में सुरक्षित है । इसके उपोद्घात को पढ़कर हेस्टिंग्ज़ की विवेक-बुद्धि और गुण-ग्राहकता की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता । उसमें हेस्टिंग्ज़ ने गीता के महत्त्व को खुले दिल से स्वीकार किया है और यह कहा है कि शायद ही ऐसी अच्छी पुस्तक उस समय की अन्यान्य भाषाओं के ग्रन्थ-समुदाय में कोई और हो । परन्तु इसी गीता को, अब कुछ समय से, कुछ लोग क्रूर दृष्टि से देखने लगे हैं । समय की बात ! अच्छी चीज़ों का बुरा उपयोग भी तो हो सकता है । इस क्रूर दृष्टि का शायद यही कारण होगा ।

२—एक नया फौंटेन पेन ।

संयुक्त राज्य, अमेरिका के बोस्टन नगर में एक कम्पनी है । उसका नाम है—क्राकर पेन कम्पनी । उसने एक नई तरह का फौंटेन पेन ईजाद किया है । फौंटेन पेन उस क़लम को कहते हैं जिसके भीतर स्याही भरी रहती है । वह आपही आप उतरती रहती है । क़लम को दावात में बार बार डुबोने की ज़रूरत नहीं पड़ती । एक दिन की भरी स्याही कई दिन लिखने के काम आती है । इस तरह के जितने पेन आज तक ईजाद हुए हैं कुछ को छोड़कर सबमें प्रायः एक कुप्पी के द्वारा स्याही भरनी पड़ती है । अब इस कम्पनी ने इस झंझट को भी दूर कर दिया है । उसकी ईजाद की हुई लेखनी में एक स्क्रू है । उसे फिराकर, लेखनी के भीतरवाले लीवर को ज़रा उठा दीजिए । फिर नीचे के निब को दावात की स्याही में डुबोइए । बस स्याही आप से आप भर जायगी । तब मज़े में लिखते रहिए । क़लम देखने में सुन्दर है । निब सोने की है । अच्छी चलती है । क़लमें ८।।।) से कोई २०) तक की हैं । ऐसी एक क़लम, नंबर एल० २५, इस कम्पनी के एजन्ट ने बम्बई से भेजने की कृपा की है । तदर्थ धन्यवाद । आपही से ये पेन प्राप्त हो सकते हैं । पता है—International Commercial Agency, Elphinstone Building, Murzban Road, Fort, Bombay.

३—लोहे के टायर ।

अब तक बाइसिकलों में रबर के टायर लगते थे । इनमें काँटे और कीलों के कारण छिद्र (पञ्चर) हो जाया करते थे । स्वीडन के किसी कारीगर ने अब ऐसी हिकमत निकाली है कि पतले लोहे के टायरों से वही काम निकलेगा जो रबर के टायरों से निकलता था । बाइसिकलों में कमानी के सहारे लोहे के टायर ऐसे जड़े जायँगे कि बाइसिकिल उसी सुगमता के साथ चलेगी जैसे रबर के टायरों से चलती है । हां, पञ्चरों का डर न रहेगा और मज़बूती भी ज़्यादा आ जायगी ।

४—रुपये गिननेवाली बिजली की कल ।

डिट्रोयट स्ट्रीट रेलवे के दफ़्तरों में रुपये गिननेवाली बिजली की कलें बड़ा काम देती हैं । संदूक़ों से रुपये इनमें डाल दिये जाते हैं । ये कलें आपसे आप रुपयों को गिनकर छोटे छोटे बंडलों में बाँध देती हैं । ख़ूबी यह कि फूटे और निकम्मे सिक्के कल से निकलकर अलग हो जाते हैं । सिर्फ़ वही सिक्के गिने हुए बंधेंगे जो ठीक और चलने लायक़ हैं ।

५—चमड़े की दृढ़ता ।

नारवे के अरेन्डल नामक नगर में एक इञ्जिनियर ने चमड़े को दृढ़ करने की अच्छी तरकीब निकाली है । इसकी तरकीब से जूते के तले का चमड़ा काष्ठ की तरह दृढ़ हो

जाता है, परन्तु उसमें लचीलापन वैसा ही रहता है। चमड़ा न केवल दृढ़ ही हो जाता है, किन्तु जल और उष्णता से बचने की शक्ति भी उसमें बढ़ जाती है। वह चमड़ा जो नीचे के तले के लिए ठीक नहीं समझा जाता इस इञ्जिनियर की तरकीब से तले के लायक बन सकता है। इञ्जिनियर अपने आविष्कार का पेटन्ट करा रहा है।

देखें, इञ्जिनियर साहब की तरकीब का उपयोग भारत वर्ष के चर्म्मकार कब तक करते हैं?

६—ज्ञानियों का अज्ञान।

इँगलेण्ड के नामी नामी समाचार-पत्र तक हमारे देश का कितना ज्ञान रखते हैं, इस बात का परिचय 'पायोनियर' के २६ नवम्बर १६१६ के अङ्क में प्रकाशित एक टिप्पणी पढ़ने से अच्छी तरह मिल जाता है। यह परिचय प्रदान करनेवाला इङ्गलेण्ड का प्रख्यातनामा 'मार्निङ्ग पोस्ट' समाचार-पत्र है। उसमें लिखा है—

"The Wana Waziris live in a mountainous district in the province of Rajputana, to the south-east of Jodhpur."

अर्थात् वाना वज़ीरी राजपूताना-प्रदेश में जोधपुर के दक्षिण-पूर्व एक पहाड़ी ज़िले में रहते हैं! यदि उक्त पत्र यह भी लिख देता कि वे लोग चटगांव के जङ्गलों से हींग ख़रीदकर कोहाट में बेंचा करते हैं तो उक्त वर्णन पूर्ण हो जाता!

विलायत की सरकार और प्रजा पर वहां के पत्रों का बड़ा भारी प्रभाव है; और सन्धि, विग्रह, शासन-सुधार जैसे राजनैतिक विषयों में इनका पूरा हाथ भी रहता है। ऐसे ही क्षमता-शाली पत्रों के भारत-सम्बन्धी विलक्षण ज्ञान का एक प्रत्यक्ष नमूना पूर्वोक्त उद्धृतांश है। ये पत्र हमारे देश के सम्बन्ध की नीति पर भी बहुधा भारी भारी सम्मतियां दिया करते हैं और बहुत सम्भव है कि हमारे देश के सम्बन्ध में इनके भ्रम-पूर्ण विचारों का बुरा प्रभाव विलायत की सरकार पर पड़ता हो। ऐसे विलक्षण ज्ञान-सम्पन्न समाचार-पत्रों की सम्मति से भगवान् भारत को बचावें।

७—बड़ादा के राजकुमार की शोचनीय मृत्यु।

राजकुमारी युवराज्ञी पद्मावती गायकवाड़ की मृत्यु से महाराज बड़ौदा और उनके परिवार के शोकाश्रु अभी सूखने नहीं पाये थे कि हाल ही में राजकुमार शिवाजीराव गायकवाड़ की आकस्मिक मृत्यु ने महाराज और उनके परिवार को शोक-सागर में डुबा दिया।

राजकुमार को पहले बुख़ार हुआ और अन्त में न्यूमोनिया हो गया था। सिर्फ़ छः दिन बीमार रहकर आप अपनी विधवा और तीन छोटे छोटे बच्चों को शोक में निमग्न कर इस संसार से सदा के लिए चल बसे।

आपकी अन्त्येष्टि-क्रिया बड़ौदे में की गई थी। आपकी रथी के साथ बड़े बड़े राज-कर्म्मचारी और बड़ौदा की प्रजा के झुण्ड के झुण्ड श्मशान तक गये थे। शव-दाह के समय तीस तोपें की सलामी दाग़ी गई थी।

राजकुमार सुशिक्षित थे। आपने बम्बई और आक्सफोर्ड-यूनिवर्सिटियों में शिक्षा पाई थी। योरप और अमरीका आदि देशों में भ्रमण कर आपने खूब अनुभव प्राप्त किया था। आपको राज्य-प्रबन्ध की शिक्षा भी मिली थी। सहकारी कलेक्टर और जज का काम करके उन विभागों से सम्बन्ध रखनेवाले लोगों को आपने अपने व्यवहार [illegible] सन्तुष्ट कर सम्मान प्राप्त किया था। आप बड़े सरल, मिलनसार और उदार स्वभाव के थे। व्यायाम, आखेट और क्रीकेट से आपको विशेष प्रेम था।

श्रीमान् महाराजा गायकवाड़ के इस घोर दुःख में हम अपनी समवेदना प्रकट करते हैं।

८—भोजन और स्वभाव।

पाश्चात्य विद्वानों ने बहुत खोज करके यह सिद्ध किया है कि जो जाति आवश्यकता अथवा धर्म्म की प्रेरणा से बहुत काल तक किसी एक प्रकार का भोजन करती रहती है, उसके स्वभाव पर उस भोजन का विशेष प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, मांसाहारी तातारी और कुर्द लोगों का स्वभाव, शाकाहारी हिन्दुओं के स्वभाव से बिलकुल विरुद्ध है। यही अवस्था उत्तरी अमेरिका के इण्डियन और दक्षिण अमेरीका के इङ्का लोगों की है। इनमें पहली जाति मांसाहारी और दूसरी शाकाहारी है। साधारण नियम यह जान पड़ता है कि मांसाहारी जाति चञ्चल, युद्ध-प्रिय तथा साहसी होती है और शाकाहारी लोग नम्र, शान्ति-प्रिय और दास्य-भाव की ओर प्रवृत्त रहते हैं। सभ्य जातियों के मिश्रित भोजन से इन दोनों प्रकार के गुणों का मिश्रण उत्पन्न होता

है। मिश्राहारी जाति युद्ध में असभ्यों की अपेक्षा अधिक चतुर होती है और साथ ही शान्ति के साधनों की उन्नति और उनका उपभोग भी करती है। व्यक्ति-गत उदाहरणों में देखा गया है कि कैदियों में और विशेषकर पागल अभियुक्तों में भोजन के परिवर्त्तन से स्वभाव में परिवर्त्तन हो गया है।

मांस और शाक में एक ही प्रकार के तत्व पाये जाते हैं। पृथकरण से जाना गया है कि पहले प्रकार के भोजन में चर्बी रहती है और दूसरे प्रकार में लेई और शक्कर। शाकमय भोजन की लेई और शक्कर मांसमय भोजन की चर्बी के समान है और दोनों प्रकार के तत्त्वों से एक ही सा काम होता है। अब यदि कोई यह पूछे कि इन दोनों प्रकार के भोजनों में कौन अच्छा है तो उसका उत्तर यह है—

मांसमय भोजन जल्दी पचता है, चाहे वह कच्चा हो वा पकाया हुआ; पर शाकमय भोजन को घुलाने और पचाने के लिए बहुत तैयारी करनी पड़ती है। रोटी की अपेक्षा बकरे का मांस और आलू की अपेक्षा अण्डा अधिक शीघ्र पचता है। इसके सिवा शाकमय भोजन से निश्चित परिमाण की पुष्टता प्राप्त करने के लिए उसे अधिक परिमाण में खाने की आवश्यकता होती है; इसलिए शरीर को उसका बहुत सा निस्सार भाग बाहर निकालने का श्रम करना पड़ता है। दोनों प्रकार के भोजनों की तुलना करने पर जान पड़ेगा कि शाकमय भोजन को अच्छी तरह रींधना और अधिक परिमाण में खाना चाहिए। उसे पचाने के लिए भी अधिक समय और शक्ति चाहिए, और जब वह पच जाता है तब भी उससे धीरे धीरे और कम परिमाण में पुष्टता प्राप्त होती है।

९—लहरों से बिजली।

कुछ इञ्जिनियर बहुत वर्षों से यह उद्योग कर रहे थे कि किसी तरह समुद्र की लहरों से बिजली पैदा हो जाय और वह भी इतनी कि उससे कलों और कारख़ानों को मदद पहुँचे तथा व्यापार में उन्नति हो। परन्तु अभी तक इस विषय में परिश्रम विफल ही रहा। सर विलियम रामसे के सदृश वैज्ञानिक भी हताश हो बैठे थे। अब प्रेस्टविच (मेञ्चस्टर) के एक इञ्जिनियर ने एक ऐसा यन्त्र निकाला है जिससे समुद्र की लहरों से बिजली तैयार हो सकेगी और इतनी जो कारख़ानों के काम में आ जाय। अब कोयले की अधिक बचत होगी। लहरों से बिजली उत्पन्न करनेवाली कलें भी औद्योगिक संसार में अपना रङ्ग दिखायँगी।

१०—हवाई जहाज़ों (वायुयानों) के नियम।

वायुयानों के लिए भी नियम गढ़े जाने लगे। जिस तरह इक्के-गाड़ियों के चलने के लिए म्युनिसिपलटियां नियम बनाती हैं और रेलों के लिए कम्पनियां, उसी तरह सरकार को वायुयानों को सुमार्ग में ले चलने की फ़िक्र हो चली। नूतन नभचर-मशीनों का निरीक्षण हुआ करेगा और इनके चलानेवाले पाइलटों को लाइसेन्स लेना पड़ेगा। बिना गवर्नर जनरल के हुक्म के किसी ऐसे आदमी को लाइसेन्स न दिया जायगा जो बृटिश गवर्नमेण्ट की रियाया न हो। पाइलटों की मानसिक और शारीरिक परीक्षा होगी और वायुयानों के चलाने की कुशलता जांची जायगी। जिन वायुयानों में मुसाफ़िर चलेंगे उनकी बहुत ही कड़ी परीक्षा हुआ करेगी। चलने से पहले पाइलट के अलावा और कोई दूसरा अफ़सर उनकी देखभाल करेगा। अभी वायुयानों के तीन ही मुख्य भेद माने गये हैं—फ्लाइङ्ग मेशीन, एयर शिप्स और बेलून। इन्हें एक प्रकार की हवाई डाक, पसींजर और मालगाड़ी समझिए। इनके नियम ऐसे ही जान पड़ते हैं। आकाश में एयर शिप्स को फ्लाइङ्ग मेशीन के लिए स्थान देना पड़ेगा और बेलूनों को एयर शिप्स के लिए। जहां कहीं आबादी होगी वहां वायुयानों को आकाश में इतने ऊँचे रहना पड़ेगा जहां से वे मेशीन के बिगड़ने पर भी बस्ती से दूर सुरक्षित स्थान में उतर सकें।

जिस तरह रेल और जहाज़ों ने संसार में बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया उसी तरह वायुयान (हवाई जहाज़) भी अनेक देशों की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति में उलट-पलट कर दें तो आश्चर्य्य ही क्या?

११—सिँचाई में किफ़ायत।

मिस्टर ई० ए० मेलोनी आगरा डिवीज़न के कमिशनर हैं। इण्डियन जर्नल आफ़ इकनामिक्स में आपने एक विचार प्रकट किया है। आपका मत है कि काश्तकार जब अपना खेत नहरों और बम्बों से सींचते हैं तब इन्हें परिमाण का ख़याल नहीं रहता और ये खेतों में ज़रूरत से ज़्यादा पानी काट देते हैं। इससे एक तो खेती को नुकसान पहुँ-

चता है, दूसरे पानी की फ़ज़ूल ख़र्चा से और खेत सिँचने से रह जाते हैं। पूसा के मिस्टरह वर्ड का भी यही तजर्बा है। सीँचने का उद्देश्य यही है कि पानी पैाधों की जड़ों तक पहुँचे। ज़मीन के ऊपर पानी भर देने से यथेष्ट लाभ नहीं होता। इसलिए मेलोनी साहब का विचार है कि सिँचाई का ढङ्ग बदल देना चाहिए। ज़मीन के नीचे अठारह इञ्च पर तीन तीन फ़ुट के फ़ासले से मिट्टी के पाइप लगा दिये जांय और सिँचाई के दाम खेतों के रक़बे पर न हों, किन्तु पानी के नाप पर लगाये जाया करें। इससे किसान पानी के ख़र्च में किफ़ायत भी कर सकेंगे और खेतों को फ़ायदा भी अधिक होगा।

१२—मध्यप्रदेश के पुरातन जीव।

कुछ दिन हुए जबलपुर की छावनी में मज़दूर सड़क के किनारे खुदाई कर रहे थे। वहां उन्हें एक विलक्षण वस्तु मिली जिसे पत्थर समझकर उन्होंने किनारे फेंक दिया। दैवात् वहां एक पुरातत्त्ववेत्ता आ पहुँचे। उन्होंने उस विलक्षण वस्तु को देख उसी स्थान के निकट और भी खुदाई कराई। वैसी ही अनेक वस्तुओं के मिलने और उन पर विचार करने से पता लगा कि वे पत्थर नहीं, किन्तु मध्यप्रदेश के उन पुरातन जीवों के अस्थि-पञ्जर के अवशिष्ट भाग हैं जो लाखों वर्ष पूर्व वहां विचरा करते थे! ये हड्डियां बहुत बड़ी और ऐसी दृढ़ हैं कि साधारण लोग उनमें और पत्थर में भेद नहीं कर सकते। कप्तान स्लीमन के समय में कुछ हड्डियां मिली थीं; परन्तु उनसे लोग ठीक ठीक पता न लगा सके कि वे किन जानवरों की हैं। तब से पुरातत्त्वान्वेषण में बहुत उन्नति हुई है। जिन जानवरों की हड्डियां पहले मिली थीं वे हाथियों से बड़े नहीं थे और उनका समय भी बहुत पहले का नहीं था। पर अब जो अस्थि-पञ्जर मिले हैं वे दो ऐसे जीवों के हैं जिन्हें गुज़रे लाखों वर्ष बीत गये और जिनके समय में मध्यप्रदेश का बहुत सा भाग उथल झील के रूप में रहा होगा। इन भीषण जीवों का नाम है डाइनोसार और मेगलोसार। इन सरीसृप जीवों के समय में स्तन्त प्राणी उत्पन्न ही न हुए थे। उनके वृहदाकार होने का कारण उस देश की परिस्थिति थी। इन भीमकाय जीवों की बराबरी करनेवाले प्राणियों में अब ह्वेल मछली ही रह गई है। उस डाइनोसार की लम्बाई जिसकी अस्थि जबलपुर में मिली है ६० फ़ीट अन्दाज़ी गई है। परन्तु ये जीव ६० फ़ीट से १०० फ़ीट तक लम्बे होते थे। ये मांसाहारी न थे, शाक और पेड़-पत्तों ही पर इनका गुज़र होता था। भूमि प्रायः जल से ढकी रहती थी और आब-हवा गरम होने के कारण पेड़-पत्तों की कमी न थी। डाइनोसार झीलों में रहा करते थे; परन्तु पृथ्वी पर भी ये रह सकते थे। जल से बाहर निकलकर ही ये अपने भोजन की फ़िक्र करते थे। इनका सिर छोटा होता था और दांत ऐसे थे जिनसे वे शाक-पात खा सकें। इनकी गर्दन बहुत लम्बी होती थी और चार पैर थे। दुम भी थी। जिस स्थान पर डाइनोसार की अस्थि मिली उसके सौ गज़ के फ़ासले पर मेगलोसार की भी अस्थि मिली। ये जीव यद्यपि डाइनोसार की भांति भीमकाय न थे, क्योंकि इनकी लम्बाई क़रीब ४० फ़ीट के थी, परन्तु थे बड़े शिकारी। इनका आकार सरीसृप कङ्गारू की तरह था, परन्तु गर्दन और पूँछ कङ्गारू से बड़ी होती थी। सिर डाइनोसार के सिर की अपेक्षा बहुत बड़ा, जबड़े दृढ़, दांत त्रिकोण और पैने, पञ्जे तेज़। यह जीव डाइनोसार का शिकार करता और प्रायः उसीसे अपनी उदरपूर्त्ति करता था। सरीसृप होने के कारण ये अण्डे देते रहे होंगे जिनका परिमाण इन जीवों के अनुरूप ही होता होगा। इनके चीत्कार का तो कहना ही क्या है!

पृथ्वी में परिवर्तन होने से डाइनोसार और मेगलोसार दोनों ही का अभाव हो गया।

१३—एक हिन्दी-प्रेमी रईस।

जबलपुर के स्वर्गवासी प्रसिद्ध सेठ राजा गोकुलदास का जीवनचरित कुछ वर्ष पूर्व सरस्वती में छपा था। आपकी प्रसिद्धि व्यापारी कौशल तथा प्रबन्धकारिणी योग्यता से हुई थी जिनके द्वारा आपने करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति उपार्जन की और साथ ही कई एक परोपकारी कार्य भी किये। अब आपके वंश को आपके पौत्र (रायबहादुर सेठ जीवनदासजी के पुत्र) बाबू गोविन्ददास ने अपनी विद्याभिरुचि और हिन्दी-हितैषिता से उज्ज्वल किया है। बाबू साहब की अवस्था इस समय लगभग चौबीस वर्ष की है और इस अवस्था ही में आपने अपने अनेक सद्गुणों का परिचय दिया है। हिन्दी-हितैषी तथा शिक्षित होने के साथ साथ आप हिन्दी के एक होनहार लेखक भी हैं।

बाबू साहब की शिक्षा योग्य शिक्षकों द्वारा घर ही पर हुई है; पाठशाला में आप एक दिन के लिए भी नहीं गये। हिन्दी की योग्यता के अतिरिक्त आपको अँगरेज़ी का साधारण अच्छा ज्ञान है और आप थोड़ी-बहुत संस्कृत भी जानते हैं। इनमें अपने महाजनी व्यवसाय की भी अच्छी योग्यता है जिसके सहारे ये अपनी विशाल सम्पत्ति के प्रबन्ध में पूर्ण योग देते हैं।

श्रीयुत बाबू गोविन्ददासजी।

गोविन्ददासजी ने शेक्सपियर के नाटकों के आधार पर चार-पांच उपन्यास लिखे हैं जिनमें दो-एक का विशेष आदर हुआ है। आपने एक नाटक ("मोहन") भी प्रणीत किया है जिसका अभिनय जबलपुर के 'नाटक-प्रचारक मित्र-मण्डल' के योग्य नटों द्वारा सफलता-पूर्वक हो चुका है। यह नाटक अभी प्रकाशित नहीं हुआ। आपकी एक और अप्रकाशित पुस्तक एक काव्य ("बाण-मद-मर्दन") है जिसका एक चित्र और कुछ कविता गत मास की सरस्वती में निकली है।

हिन्दी के प्रचार के लिए बाबू-साहब धन की अच्छी सहायता दे रहे हैं। गत पांच वर्षों से ये जबलपुर में 'शारदा-भवन' नामक पुस्तकालय चला रहे हैं जिसमें सब मिलाकर लगभग ढाई हज़ार पुस्तकें हैं और कई प्रकार के कोई १६ सामयिक पत्र आते हैं। इस पुस्तकालय को आपने निःशुल्क तथा सार्वजनिक कर दिया है और नगर में इसकी दो एक शाखाएँ भी खुलवा दी हैं। इस संस्था के लिए आपने अभी तक पांच-छः हज़ार रुपया ख़र्च किया है और इसकी भावी उन्नति के लिए अधिक ख़र्च करने का वचन दे चुके हैं। पुस्तकालय के वार्षिक अधिवेशनों में आप भारतवर्ष के अच्छे अच्छे व्याख्याताओं के व्याख्यानों का प्रबन्ध कराते हैं। इस पुस्तकालय के द्वारा अच्छे अच्छे ग्रन्थ प्रकाशित कराने का भी पूर्ण उद्योग हो रहा है। इस समय आप 'शारदा-भवन' को भारतीय दृष्टि से व्यापक और अधिक उपयोगी तथा चिरस्थायी संस्था बनादेने की चिन्ता एवं यत्न कर रहे हैं। इस कार्य में लाखों की सम्पत्ति लग जायगी।

बाबू गोविन्ददासजी का स्वभाव सात्विक, मिलनसार,

शान्त और उदार है। आप उन दूषणों से प्रायः मुक्त हैं जो धन-मद के कारण उत्पन्न होते हैं। आशा है, आपकी यह सुमति चिरस्थायिनी बनी रहेगी।

माधवराव सप्रे।

पुस्तक-परिचय।

१—श्रीविजयपञ्चाङ्गम्—रचयिता, विद्याभूषण पं० लक्ष्मीप्रसाद ज्योतिषी, जबलपुर। मूल्य ।=)।

वैक्रमीय संवत् १९७७ का यह पञ्चाङ्ग नवीन पद्धति [illegible] है। इसमें गणित के लिए जबलपुर की रेखा ली गई है, अ[illegible]तः मध्यप्रदेश के लिए यह विशेष गुणदायी है।

इस[illegible]की भूमिका में लिखा है कि इसका गणित ग्रह-लाघव के [illegible] आधार से किया गया है। पञ्चाङ्गों में सायन और [illegible] भेद है। सायन और निरयन में प्रायः २२-२३ दिन [illegible]न्तर रहा करता है। तथापि कर्त्ता ने अभी इस पञ्चाङ्ग [illegible] एकदेशीय न बनाकर तिथ्यादि निरयन-गणना से और शुक्रोदय, ग्रहण आदि दृश्य सायन-गणना से रक्खे हैं। सायन-निरयन के हानि-लाभ दिखाकर मतैक्य की ओर जनता का चित्त आकर्षित किया गया है।

अन्यान्य पञ्चाङ्गों के समान, इसमें मुहूर्त्त-चक्र हैं और विशेषता यह है कि प्रति पक्ष में एक लग्नसारिणी भी लगा दी गई है, जिससे प्रतिदिन अभीष्ट समय को सारिणी के अङ्कों में जोड़कर तात्कालिक स्पष्ट लग्न सहज में निकल आता है।

फलादेश सुस्पष्ट सरल हिन्दी में और संस्कृत में श्लोकप्रमाण-युक्त रक्खा गया है। ग्रहणों का सुस्पष्ट समय सेकण्डों तक लगाया गया है। सत्यता की परीक्षा करने के लिए यह गणित एक उत्तम साधन है।

संस्कृत में पदच्छेद विभक्त करने की ग़लतियां हैं। आशा है कि आगामि वर्ष में ये न रहेंगी।

श्रीनिवास द्विवेदी

✻

२—आशौच-पञ्जिका—इसका आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या कोई १५० और मूल्य १) है। इसकी रचना और सङ्कलन जयपुर की राजसभा के प्रधान पण्डित विद्यावाचस्पति श्रीमधुसूदन शर्म्मा ने किया है। श्रीसूर्य्यनारायण शर्म्मा, आचार्य, पुरानी बस्ती, बड़ का कुँवा, जयपुर को लिखने से मिलती है। पुस्तक संस्कृत में है। सब तरह के आशौच का निर्णय, सरल भाषा में, योग्यतापूर्वक किया गया है। आशौच के सिवा और भी कितनी ही बातें काम की लिखी गई हैं। नाना स्मृतियों और ग्रन्थों की आलोचना करके पुस्तक की रचना की गई है। अन्त में प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्मृतियों के अवतरण प्रमाणवत् उद्धृत किये गये हैं। विशदीकरण के लिए, पुस्तक में, जगह जगह चक्र भी दिये गये हैं। आशौच के विषय में यह ग्रन्थ अद्वितीय है। पर है संस्कृतज्ञों ही के काम का, क्योंकि इसमें हिन्दी-टीका नहीं।

✻

३—संसार—इस नाम का एक मासिक पत्र कानपुर से निकलने लगा है। इसके सम्पादक पं० उदयनारायण वाजपेयी और बाबू नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी० ए[illegible] हैं। इस पत्र के अभी तक दो अङ्क निकले हैं और दोनों में कई पठनीय लेख तथा कविताएँ हैं। प्रत्येक अङ्क [illegible] सरस्वती के आकार के ३६ पृष्ठ हैं और एक चित्र भी है[illegible] छपाई और काग़ज़ अच्छा है। वार्षिक मूल्य ३) और एक संख्या का ।=) है। पत्र बाबू गोवर्धनदास खन्ना-द्वारा 'खन्ना प्रेस', कानपुर में मुद्रित और प्रकाशित होता है।

✻

४—स्वार्थ—काशी के ज्ञानमण्डल ने गत मास "स्वार्थ" नाम का एक मासिक पत्र प्रकाशित किया है[illegible] अभी तक इसके दो अङ्क निकले हैं। यह "अर्थ-शास्त्र, समा[illegible] शास्त्र, राजनीति तथा इतिहास का मासिक पत्र" है। [illegible] पत्र से हिन्दी के कुछ उपयोगी विषयों के अभाव की पूर्त्ति हे[illegible] की बड़ी आशा है। इस समय पत्र का दूसरा अङ्क हम[illegible] सामने है। इसमें पत्र के उद्देशानुसार पाँच लेख हैं [illegible] योग्यतापूर्वक लिखे गये हैं। इसके "सम्पादकीय" भी [illegible] योगी हैं। "स्वार्थ" के सम्पादक और दोनों अङ्कों के लेख[illegible] ग्रेजुएट हैं। हिन्दी के लिए यह एक सौभाग्य की बात है[illegible] पत्र ऐण्टिक सफ़ेद काग़ज़ पर पतले टाइप में छपता है[illegible] छपाई अच्छी है। इसके प्रत्येक अङ्क में मझोले आकार[illegible]

४८ पृष्ठ हैं। वार्षिक मूल्य ४) और एक संख्या का ॥)। इस पत्र में 'श्रीयुत' का 'त' हलन्त छापा जाता है।

५—आर्य-महिला—इस नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका दो वर्ष से, काशी से, निकल रही है। श्रीभारत-धर्म-महामण्डल की "निरीक्षकता" में जो "आर्य-महिला हितकारिणी महापरिषद्" है यह उसकी मुख-पत्रिका है। इस परिषद् में स्त्रियाँ ही सभ्याएँ हो सकती हैं; पर यह नहीं मालूम कि इसकी कभी कोई बैठक होती है या नहीं। पत्रिका के दूसरे वर्ष की दूसरी संख्या हमारे सामने है। इस अङ्क के साथ जो परिचय-पत्र है उसमें बीस-पचीस ऐसे विषयों के नाम हैं जिन पर लेख लिखना इस पत्रिका का उद्देश है; परन्तु प्रस्तुत संख्या में चार-पांच विषयों से अधिक नहीं है। इनमें प्रेम, भक्ति और विनय की प्रधानता है। अधिकांश लेखों की भाषा नितान्त संस्कृत-मय और संस्कृत श्लोकों तथा उदाहरणों से पूर्ण है। ऐसी कठिन भाषा तो हिन्दी के उन मासिक पत्रों में भी नहीं पाई जाती जो शिक्षित पुरुषों के लाभ के लिए निकलते हैं।

इस पत्रिका की सम्पादिका "खैरीगढ़ राज्येश्वरी भारत-लक्ष्मी महाराज्ञी श्रीमती सुरथकुमारी देवी (O. B. E K. H. Gold Medalist) महोदया" हैं। "माननीया श्रीमती सम्पादिका जी ने काशी के विद्वानों की एक समिति स्थापित की है। जो पुस्तकें आदि समालोचनार्थ कार्यालय में पहुँचेंगी उन पर यह समिति विचार करेगी"। यदि यह समिति स्वयं "आर्य-महिला" की और उसमें छपे हुए कुछ अश्लील विज्ञापनों की भी समालोचना कर दिया करे तो स्त्री-जाति का बड़ा उपकार हो। साथ ही वह यह भी सलाह दे कि यह पत्रिका मासिक कर दी जाय जिसमें पाठिकाओं को गरिष्ठ भोजन के कारण तीन तीन महीने का निराहार व्रत न करना पड़े!

इस पत्रिका की प्रत्येक संख्या में अठपेजी रायल आकार के ९६ पृष्ठ और कई एक रङ्गीन तथा सादे चित्र रहते हैं। काग़ज़ बहुत अच्छा लगाया जाता है और छपाई भी अच्छी होती है। इसकी बाहरी सुन्दरता मनोमोहक है। वार्षिक मूल्य पाठिकाओं की स्थिति के अनुसार ६), ५) और ३) है।

——

प्राप्ति-स्वीकार।

बृंहण तैल—हुसेनगञ्ज, लखनऊ के आयुर्वेद-भास्कर औषधालय के मालिक और चिकित्सक, "वैद्यभूषण" श्रीश्यामसुन्दर शर्मा "वैद्यशास्त्री आयुर्वेदाचार्य" ने ह[मारे] पास अपना पूर्वोक्त नामवाला तैल भेजने की कृपा की [है।] इस तैल के गुणों के विषय में जो विज्ञापन है उसके [अनु]सार "यह तैल दिमागी कमज़ोरी के लिए [अक्सीर है।] मूल्य केवल फ़ी शीशी १॥) डेढ़ रुपया"।

——

चित्र-परिचय।

इस संख्या में टेहरी-गढ़वाल के राजा साहब की कृपा से प्राप्त हुआ एक और प्राचीन रङ्गीन चित्र प्रकाशित किया जाता है। आपके आज तक भेजे हुए प्रायः सभी चित्र दरबार के प्राचीन चित्रकारों के खींचे हुए हैं। सरस्वती पर राजा साहब की जो कृपा है उसके लिए शाब्दिक धन्यवाद बस नहीं है। इस चित्र में एक ओर सुग्रीव के राज्याभिषेक-महोत्सव का समारोह, नृत्य, गान, वाद्य, और राज-पुरोहित तथा राज-मन्त्रियों सहित लक्ष्मणजी का अपने हाथ से सुग्रीव को राज-तिलक देना सुन्दरता से अङ्कित किया गया है। दूसरी ओर राज्याभिषेक के अनन्तर लक्ष्मणजी के पीछे पीछे चलकर सुग्रीव के श्रीरामचन्द्रजी के पास जाने का मनोहर दृश्य दिखाई देता है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.